इकाई – 1 स्वास्थ्य की परिभाषा, स्वस्थ पुरुष के लक्षण, स्वस्थवृत्त का प्रयोजन

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 स्वास्थ्य क्या है
 1.3.1 स्वस्थ का अर्थ
 1.3.2 स्वास्थ्य की परिभाषा
 1.3.3 आयु व स्वास्थ्य का सम्बन्ध
1.4 स्वस्थ पुरुष के लक्षण
 1.4.1 आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार
 1.4.2 पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार
 1.4.3 आचार्य चतुरसेन के अनुसार
1.5 स्वस्थवृत्त
 1.5.1 स्वस्थवृत्त की परिभाषा
 1.5.2 स्वस्थवृत्त का प्रयोजन
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.10 सहायक ग्रंथ सूची
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संसार में बहुत बहुमूल्य पदार्थ हैं, परन्तु इनमें जीवन सबसे ज्यादा मूल्यवान है। जीवन के सम्मुख पृथ्वी भर की सम्पदाएं तुच्छ हैं।

इस जीवन की सार्थकता स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य ठीक होने पर ही जीवन स्वर्ग की विभूति बन जाता है और स्वास्थ्य ठीक न रहने पर जीवन नरक के समान दुःखदायी व भार स्वरूप हो जाता है।

हमारे प्राचीन संहिता ग्रंथों में भी स्वास्थ्य या आरोग्य की महिमा का वर्णन करते हुए इसे पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का मूल व तीन एषणाओं (पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा) की पूर्ति का माध्यम माना गया है। चरक संहिता में कहा भी गया है :–

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्" (च० सू०१/१५)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थ का प्रधान मूल आरोग्य ही है। तथा रोग जीवन को नष्ट करने वाला है। अतः हमें हर सम्भव प्रयास से अपने आरोग्य की रक्षा करनी चाहिये।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे–

- स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा
- स्वस्थ पुरुष के लक्षण
- स्वस्थ वृत्त का अर्थ एवं परिभाषा
- स्वस्थ वृत्त का प्रयोजन व महत्व

1.3 स्वास्थ्य क्या है

1.3.1 स्वस्थ का अर्थ – स्वस्थ शब्द का शाब्दिक अर्थ है– स्व + स्थ, अर्थात जो स्वंय में स्थित हो। तात्पर्य यह है कि वह अवस्था जिसमें व्यक्ति अपने मूल रूप में स्थित हो, स्वास्थ्य कहलाता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के दो पक्ष होते हैं– एक व्यक्तिगत और दूसरा सामाजिक। जिस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक जीवन महत्वपूर्ण होता है, उसी प्रकार उसका व्यक्तिगत जीवन भी महत्वपूर्ण होता है। व्यक्ति को आरोग्यपूर्ण या स्वस्थ बने रहने के लिये दोनों पक्षों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। इस प्रकार से पूर्ण रूप से स्वस्थ व्यक्ति उसे कहा जाता है, जिसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक पक्ष दृढ़ हो। स्वस्थ का मतलब है– रोगमुक्त जीवन। स्वस्थता तन, मन और आत्मोत्साह के समन्वय का नाम है। जब शरीर, मन, इन्द्रियाँ और आत्मा ताल से ताल मिलाकर सन्तुलन से कार्य करते हैं, तब ही अच्छा स्वास्थ्य कहलाता है।

1.3.2 स्वास्थ्य की परिभाषा

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वास्थ्य की परिभाषा इस प्रकार की है–

''Health is a state of complete physical mental & social well being and not merely an absence of disease or infirmity.''

अर्थात् ''स्वास्थ्य केवल रोग एवं शारीरिक दौर्बल्य से रहित होना मात्र नहीं है, वरन् शारीरिक, मानसिक व सामाजिक साम्य की स्थिति है।''

विश्व स्वास्थ्य संगठन की उपरोक्त परिभाषा से हजारों वर्ष पूर्व आचार्य सुश्रुत ने स्वास्थ्य की एक अद्वितीय परिभाषा प्रदान की है। वे कहते हैं कि –

''सम दोषः समानाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।'' (सु० सू० १५/४५)

अर्थात् जिस पुरुष के दोष (शारीरिक एवं मानसिक), धातु (सप्त धातुएं– रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र), मल (मूत्र, पुरीष, स्वेद) तथा अग्नि व्यापार सम हों अर्थात् विकार रहित हो तथा जिसकी इंद्रियाँ, मन व आत्मा प्रसन्न हों, वही स्वस्थ है।

समदोष– जब शारीरिक, मानसिक रचना एवं क्रिया की दृष्टि से वात, पित्त, कफ़ दोष साम्यावस्था में हों ।

समानाग्नि– जब सभी १३ अग्नियां (५ भूताग्नि, ७ धात्वाग्नि, १ जठराग्नि) अर्थात् सम्पूर्ण पाचन – पोषण की प्रक्रिया साम्यावस्था में हो।

समधातुमलक्रिया– जब धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) व मल (स्वेद, मूत्र, पुरीष) अर्थात् सम्पूर्ण शारीरिक क्रिया सम्यक् हो।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना– उपरोक्त शारीरिक एवं मानसिक रचना क्रिया के बाद भी यदि मन, इन्द्रियाँ एवं आत्मा प्रसन्न नहीं है, तो वह व्यक्ति स्वस्थ नहीं होता।

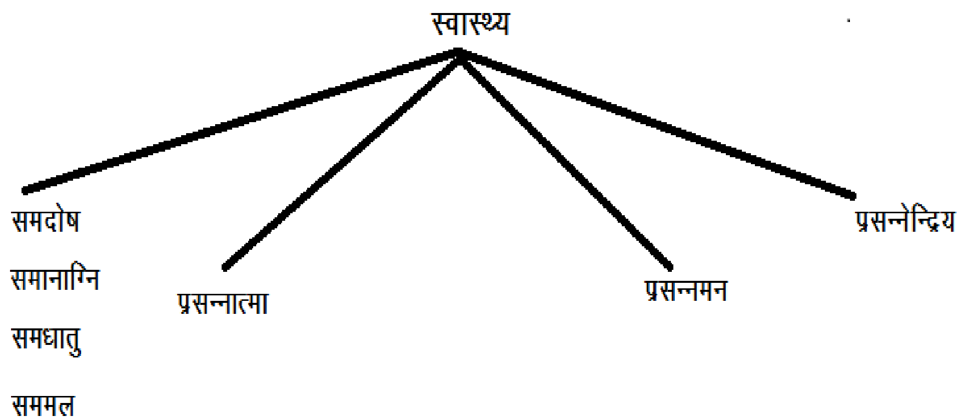

इस परिभाषा में प्रथम पद में कहे गये ''दोष–अग्नि–धातु–मल'' विषयक उल्लेख का संकेत शारीरिक स्वास्थ्य की ओर है जबकि द्वितीय पद में उल्लिखित ''मन– आत्मा–इन्द्रिय'' सम्बन्धी भाव का सम्बन्ध मानसिक, आध्यात्मिक व ऐन्द्रियिक स्वास्थ्य से है।
अतः यह स्वास्थ्य की अत्यन्त पूर्ण परिभाषा है।

''आधि–व्याधि रहित होना स्वास्थ्य का नकारात्मक पक्ष कहा जा सकता है, जबकि शारीरिक कार्यों का ठीक प्रकार से होते रहना तथा प्रसन्नता की अनुभूति एक सकारात्मक पक्ष है।''

1.3.3 आयु व स्वास्थ्य का सम्बन्ध –

आयुर्वेद में **आयु** को परिभाषित करते हुये कहा गया है–

''शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।'' (च. सू. १/४२)

शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। और इसके विज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं। इन चारों के संयोग से जीव की सुखकर स्थिति को ही आरोग्य कहा गया है। अर्थात् आयु को शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ रखना ही स्वास्थ्य है।

आयुर्वेद में चार प्रकार की आयु का वर्णन आता है–

१. हितायु
२. अहितायु
३. सुखायु
४. दुःखायु

आचार्य चरक द्वारा बताई गई इन चार आयुओं में से 'हितायु–अहितायु' का सम्बन्ध सामाजिक पक्ष से तथा 'सुखायु–दुःखायु' का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन के गुण–दोष से है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के दो पक्ष होते हैं, एक व्यक्तिगत और दूसरा सामाजिक। जिस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक जीवन महत्वपूर्ण होता है, उसी प्रकार उसका व्यक्तिगत जीवन भी महत्वपूर्ण होता है। व्यक्ति को आरोग्यपूर्ण या स्वस्थ बने रहने के लिये दोनों पक्षों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। इस प्रकार पूर्ण रूप से स्वस्थ व्यक्ति उसे कहा जा सकता है, जिसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक पक्ष दृढ़ होता है।

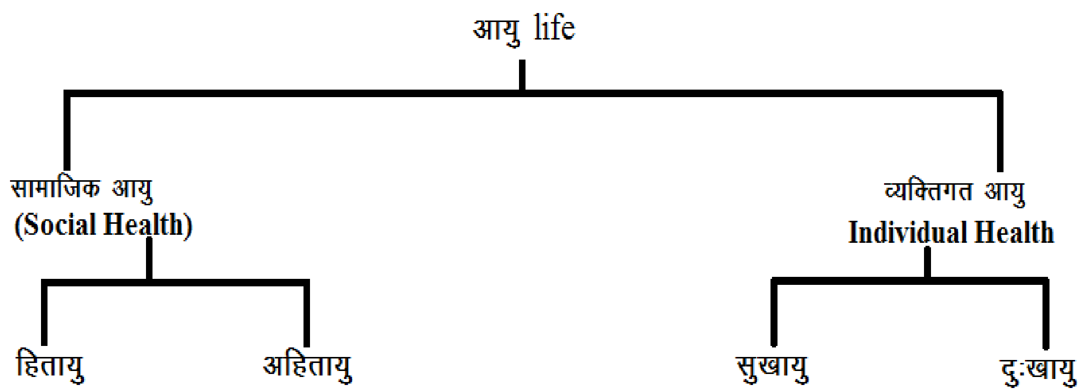

शरीर और मन ये दोनों रोग के स्थान हैं, तथा सुख का आश्रय भी ये, मन और शरीर ही है। जबकि आत्मा रोग का आश्रय नहीं होता है। आत्मा नित्य है एवं निराकार है, सभी चराचर जगत् का दर्शक है। अतः व्याधि का आश्रय नहीं है किन्तु शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के साथ ही आत्मा की प्रसन्नता भी प्राप्त होती है और तभी जीवात्मा को सुख दुःख का आधार कहा जा सकता है।

"विकारो धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।।" (च०सू० ६/४)

धातुओं की साम्यावस्था प्रकृति या आरोग्य है। आरोग्य को सुख और विकार को दुःख कहा जाता है। आरोग्य एवं स्वास्थ्य दोनों ही एक दूसरे के पर्याय हैं।

दोष, धातु, मल का समावस्था में होना (अर्थात् सभी का अपने–अपने कार्यों का सुचारु रूप से करना) प्रकृति कहलाता है। यह प्रकृति ही आरोग्य या स्वास्थ्य कहलाती है, और इसके विपरीत स्थिति विकृति कहलाती है। यह विकृति ही रोग या दुःख का कारण है। अतः अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य होना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

१. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

क. स्वस्थता तन, मन और................के समन्वय का नाम है।

२. सत्य/असत्य बताइये –

क. धातुओं की साम्यावस्था ही विकृति है।

ख. आत्मा रोग का आश्रय नहीं होता।

३. एक शब्द में उत्तर दीजिये –
    क. शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा के संयोग को क्या कहते हैं?
    ख. आयुर्वेद में कितने प्रकार की आयु का वर्णन आता है?
४. लघुत्तरीय प्रश्न –
    क. स्वस्थ शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?
    ख. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य की परिभाषा क्या दी है?
५. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –
    क. आचार्य सुश्रुत द्वारा दी गई स्वास्थ्य की परिभाषा का विस्तृत वर्णन करें।

1.4 स्वस्थ पुरुष के लक्षण

अब हम यह देखेंगे कि एक स्वस्थ पुरुष के अन्दर क्या–क्या लक्षण पाये जाते हैं। इन लक्षणों को समझकर हम अपने स्वास्थ्य का मूल्यांकन भी कर सकते हैं।

स्वस्थ का मतलब है– रोगमुक्त जीवन। स्वस्थता तन, मन और आत्मोत्साह के समन्वय का नाम है। एक अच्छा स्वास्थ्य या एक स्वस्थ पुरुष उसे कहेंगे, जिसमें–

- शरीर की समस्त प्रणालियाँ एवं सभी अवयव स्वतंत्रतापूर्वक अपना–अपना कार्य करें। किसी के भी कार्य में, किसी भी प्रकार का अवरोध, आलस्य अथवा निष्क्रियता न हो तथा न उनको चलाने हेतु किसी वाह्य दवा या उपकरणों की आवश्यकता पड़े।
- मन तथा पाँचों इन्द्रियाँ सशक्त हों।
- स्मरण शक्ति अच्छी हो।
- क्षमताओं का ज्ञान हो।
- विवेक जागृत हो। आवश्यक की क्रियान्विति तथा अनावश्यक की उपेक्षा का स्वविवेक हो।
- लक्ष्य सही व विकासोन्मुख हो तथा जीवन में स्थायी आनन्द, शान्ति, प्रसन्नता बढ़ाने वाला हो।
- प्राथमिकतायें सही हों एवं उसके अनुरूप संयमित, नियमित, नियन्त्रित जीवनचर्या हो।
- मन में बेचौनी न हो। मन का चिन्तन और आचरण सम्यक् एवं संयमित हो।
- इन्द्रियों की विषय – विकारों में आसक्ति न हो।
- समस्त प्रवृत्तियाँ सहज और स्वाभाविक हों अर्थात् पाचन व श्वसन सही हो, अनुपयोगी व अनावश्यक विजातीय तत्त्वों का शरीर से विसर्जन सही से होता हो, भूख प्राकृतिक लगती हो, निद्रा स्वाभाविक आती हो, पसीना गन्धहीन हो आदि।
- त्वचा मुलायम हो, बदन गठीला हो, कमर सीधी, खिला हुआ चेहरा और आँखों में तेज हो।
- नाड़ी, मज्जा, अस्थि, प्रजनन, लसिका, रक्त परिभ्रमण आदि तंत्र शक्तिशाली हों तथा अपना कार्य पूर्ण क्षमता से करने में सक्षम हों।
- जो निस्पृही तथा निरंहकारी हो।
- जो आत्मविश्वासी, दृढ़ मनोबली, सहनशील, धैर्यवान, निर्भय, साहसी और जीवन के प्रति उत्साही हो।
- जिसके सभी कार्य समय पर होते हों तथा जीवन नियमबद्ध हो।

1.4.1 आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार स्वस्थ पुरुष के लक्षण –

आचार्य वाग्भट्ट ने पूर्ण निरोगी व्यक्ति के गुणों का वर्णन करते हुए बताया है –

''नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावान् आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।'' (अ० सं०५/४६)

अर्थात् –

(१) नित्य हितकारी आहार और विहार करने वाला।
(२) देख–भाल और सोच–समझकर काम करने वाला।
(३) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों में असक्त पुरुष।
(४) दाता।
(५) समदर्शी (सबको समान भाव से देखने वाला)।
(६) सत्यवक्ता।
(७) बलवान होकर भी क्षमा करने वाला।
(८) बुद्धिमानों की संगति करने वाला।

इन आठ गुणों को नित्य धारण करने वाला पुरुष पूर्ण निरोग रहता है। अब इन आठों गुणों की हम संक्षेप में यहाँ व्याख्या करते हैं–

१. अपने शरीर, प्रकृति, आयु, ऋतु, काल, देश इन सब बातों पर विचार करके अनुकूल और लाभदायक खाने–पीने की वस्तुओं का सेवन करे तथा इसी प्रकार स्नान, व्यायाम, चलना–फिरना, जागरण, शयन, परिश्रम आदि विहार करे। वह मनुष्य स्वस्थ रहेगा।

२. जो मनुष्य प्रत्येक कार्य सोच–विचार कर करेगा, जोश और झोंक में न पड़ेगा वह बहुत शारीरिक और मानसिक कष्टों से बच सकेगा, जिसका स्वास्थ्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। जो लोग सोच–विचार कर काम नहीं करते, वे सदा चिंताओं और दुःख में डूबे रहते हैं, और इस तरह स्वास्थ्य नष्ट कर बैठते हैं।

३. दान देने वाला मनुष्य दाता कहलाता है। जो दाता है, उसका हृदय आनंद और उदारता से परिपूर्ण रहेगा। उसके सब परिजन, नौकर–चाकर प्रसन्न रहेंगे और ठीक कार्य करेंगे। यश मिलेगा। कंटक और कंजूस की स्त्री भी निन्दा करती है।

४. समदर्शी वह पुरुष है, जो हर्ष में आपे से बाहर न हो जाए और शोक में पागल न हो। जो शत्रु–मित्र सबको बराबर समझे, ऐसा पुरुष बहुत शांत और सबका प्रिय रहेगा।

५. सत्यवक्ता आदमी सदा निष्पाप और निर्भय रहता है। वह निश्चिन्त सोता है, और निर्भय विचरण करता है।

६. क्षमावान को कभी क्रोध नहीं आता और क्रोध के समान मनुष्य का घातक दूसरा शत्रु नहीं है।

७. बुद्धिमानों और सज्जनों की संगति से अच्छे कर्म सीखे जाते हैं, इससे मन में गंभीरता, स्थैर्य और विवेक बढ़ता है।

महर्षि वाग्भट्ट का उपर्युक्त श्लोक प्रत्येक व्यक्ति को अपने कमरे में लगाना और उसका मनन करना चाहिए।

1.4.2 पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार स्वस्थ पुरुष के लक्षण –

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने अपनी पुस्तक 'जीवेम् शरदः शतम्' में स्वस्थ पुरुष के लक्षणों को इस प्रकार उल्ल्लेखित किया हैः–

१. जिसे काम के करने में किसी प्रकार की तकलीफ़ न हो।
२. श्रम से जो न उकताए।
३. मन में काम करने के प्रति उत्साह बना रहे।

४. मन प्रसन्न रहे।
५. मुख पर आशा की झलक हो।
६. जो स्वाभाविक दशा में बिना किसी प्रकार की कठिनाई के सांस ले सके।
७. आँख की ज्योति व श्रवण शक्ति ठीक हो।
८. फ़ेफ़ड़े ठीक–ठीक ऑक्सीजन को लेकर कार्बन–डाइ–ऑक्साइड को बाहर निकालते हों।
६. सभी निकास मार्ग (त्वचा, गुदा, फ़ेफ़ड़े, गुर्दे आदि) ठीक से अपने कार्य कर रहे हों।
१०. जिसे न तो कब्ज ही हो व न तो पतले दस्त की शिकायत हो।
११. जिसके पेट, आंत व गुदा में किसी प्रकार का प्रवाह या मरोड़ न हो।
१२. प्रत्येक अंग ठीक–२ काम करते हों।

वह व्यक्ति स्वस्थ कहलाता है और जो चीजें इन स्वाभाविक क्रियाओं से दूर ले जाती हैं, वही रोग है।

1.4.3 आचार्य चतुरसेन के अनुसार स्वस्थ पुरुष के लक्षण – आचार्य चतुरसेन ने भी अपनी पुस्तक 'स्वास्थ्य रक्षा' में स्वस्थ पुरुष के लक्षणों का विस्तृत वर्णन किया है, जो कि हर विद्यार्थी के लिये अत्यन्त फ़ायदेमन्द सिद्ध हो सकता है । वे बताते हैं कि स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसकी–

(१) क्षुधा– भोजन के प्राकृतिक रूप में यथासम्भव कम विकृत करके भोजन करने की रुचि हो। स्वाद पूर्वक खा सके। खबर भी न पड़े, इस तरह पच जाय। शरीर को परिमाण में पुष्टि प्राप्त हो,उतना ही आहार लेने की नियमित इच्छा उत्पन्न हो। मिर्च–मसाले से रहित सदा फ़ल–फ़ूल ही खाने की विशेष इच्छा हो।

(२) प्यास– जो सिर्फ़ निर्मल जल या फ़लों के रस से ही तृप्त हो जाय। चाय, काफ़ी, शराब आदि उत्तेजक पेयों में रुचि ही न हो।

(३) दांत– स्वच्छ, निर्मल हों और जीवन पर्यन्त गिरें नहीं।

(४) मूत्र– स्वच्छ, दुर्गन्ध रहित, रख देने पर भी उसमे गाद न जमे, उज्ज्वल सुनहरी रंगयुक्त।

(५) दस्त– पीला, बादामी रंग का बंधा हुआ। उसका कोई भाग गुदा में चिपटा न रहे।

(६) पसीना– गंध रहित।

(७) चमड़ी– चिकनी और नर्म, स्थितिस्थापक, कुछ गीली, कपाल और आंख के नीचे आसानी से पकड़ी जा सकने योग्य हो, क्योंकि इन स्थानों पर चमड़ी और हाड़ के बीच में चर्बी की तह नहीं होती। शरीर के किसी भाग पर उंगली का पोरुआ दबाकर उठते ही तत्काल गड्ढा भर जाए।

(८) नाखून– किसी प्रकार की लकीरें या दाग न हों। उज्ज्वल गुलाबी रंग हो।

(६) चेहरा– न फ़ीका, न बहुत लाल,उस पर दाग, झाईं, मुहासे या मस्से न होने चाहिए। चमड़ी में चमक हो, पर तेल में डूबी हुई–सी न हो, न अस्वाभाविक रंग की हो।

(१०) बाल– पूरे भरावदार, स्वाभाविक रंग वाले हों, गन्जे न हों।

(११) आँख– पानीदार और निर्मल।

(१२) ज्ञानेन्द्रिय– अति तीव्र या मन्द न हों, किन्तु स्वाभाविक और सतेज हों।

(१३) श्वास–प्रश्वास– बिना आवाज और कष्ट के आवे, सदा नाक के मार्ग से चले और उसमें किसी तरह की गंध न हो।

(१४) नींद– स्वस्थ, थकान दूर करने वाली और बीच में न टूटने वाली हो।

(१५) **गर्दन**– गठी हुई और बिना चर्बी की, चंचल, स्नायु वाली तथा दिखने में कुछ लम्बी हो।
(१६) **पेट**– चिपका हुआ और छाती की अपेक्षा कम घिराव वाला हो।
(१७) **माथा**– शरीर की मध्य रेखा से छूता हुआ और चमकदार हो।
(१८) **शरीर के दोनों बाजू**– समान कद और आकार के हों।
(१६) **दोनो कन्धे**– गर्दन से समान आकृति में और क्षितिज रेखा से समांतर हो।
(२०) **शरीर के तमाम अवयव**– समान, प्रमाण–युक्त, जीवन्त और बलप्रद हों।
(२१) **चलने का ढंग**– बिना परिश्रम और सरल।
(२२) **वातावरण का परिवर्तन**– सर्दी, गर्मी और बरसात के उलटफ़ेर से किसी प्रकार की हानि शरीर में न हो।
(२३) **विषय–भोग की इच्छा**– केवल संतानोत्पत्ति ही के लिए ऋतुकाल में हो।
(२४) **मन**– स्थितिप्रज्ञ के समान। सदा स्वाभाविक आनन्द में मग्न रहे।
(२५) **चिन्ता**– अस्वाभाविक तीव्रता या जड़ता–रहित हो।
चमड़ी, मुख, गला, नाक, आंख कान और जननेन्द्रिय में से किसी प्रकार का कोई रस या श्लेष्मा न निकलता हो।
वास्तव में पूर्ण स्वस्थता के यही मापदण्ड हैं। जितने–जितने अंशों में उपरोक्त तथ्यों की प्राप्ति होती है, उसी अनुपात में व्यक्ति स्वस्थ होता है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की स्थिति पर अवश्य चिंतन करना चाहिये। जो–जो बातें उसके स्वयं के नियंत्रण में होती हैं, उसके अनुरूप अपनी जीवन शैली बनाने का प्रयास करना चाहिये।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में यहाँ पर शास्त्रोक्त विचार तथा कुछ विज्ञजनों के विचार प्रतिपादित किये गये, परन्तु सत्य की पूर्णतः अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। वह तो व्यक्ति के स्वयं की अनुभूति का विषय होता है। जो भी देखा जाता है, सुना जाता है, यन्त्रों अथवा परीक्षणों से पता लगाया जाता है, वह सत्यांश ही होता है। अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वालों से सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा रहती है। अतः स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति के स्वयं की सजगता, विवेक, बुद्धि, स्वावलम्बन जीवन पद्धति तथा स्वयं की स्वयं द्वारा नियमित समीक्षा, पूर्ण स्वस्थता की प्राप्ति के लिये अनिवार्य होती है। पराधीन अथवा दूसरों पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति स्थायी स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

स्वास्थ्य– रक्षा के ६ वैज्ञानिक नियम –

शरीर की रक्षा के लिए नीचे लिखी ६ बातों पर पूरा–पूरा ध्यान देना चाहिए –
(१) शरीर के पोषण के लिए उचित अन्न–जल।
(२) प्रकाश और शुद्ध वायु।
(३) मल, मूत्र, पसीना आदि का यथानियम निकलना।
(४) सर्दी और गर्मी से शरीर की रक्षा।
(५) उचित व्यायाम, परिश्रम और विश्राम।
(६) विषाक्त द्रव्यों और कीटाणुओं से बचना।
इन नियमों का यदि पालन किया जायगा तो दीर्घायु की प्राप्ति होगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

१. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –
क. स्वस्थ का मतलब है.........................।
२. सत्य/असत्य बताइये –

क. स्वस्थ पुरुष वह है जो स्वाभाविक दशा में बिना किसी प्रकार की कठिनाई के सांस ले सके।

३. लघु उत्तरीय प्रश्न –

क. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा बताये गये स्वस्थ पुरुष के लक्षणों का वर्णन कीजिये?
ख. स्वास्थ्य रक्षा के छः वैज्ञानिक नियम क्या हैं?

1.5 स्वस्थवृत्त

स्वस्थवृत्त आयुर्वेद का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। मानव शरीर धारी के लिए आरोग्य सबसे प्रथम आकांक्षा है। आरोग्यता ही मनुष्य जीवन की सार्थकता बतलाती है। आरोग्य रहकर ही मनुष्य अपना ऐहिक और पारलौकिक कर्त्तव्य पूरा करने में समर्थ होता है। पूर्ण आयुष्य और दीर्घायुष्य प्राप्ति उसे ही होती है जो निरोग और सशक्त है तथा सब प्रकार के कर्त्तव्य पालन करने में समर्थ है। शरीर और जीवात्मा के संयोग का नाम जीवन है तथा उस जीवन की उपस्थिति ही आयुष्य है। आरोग्य के लिए आयुर्वेद के उपदेशों को विधिपूर्वक निर्वाह करना मनुष्य मात्र का आदि कर्त्तव्य है। आरोग्य के बिना पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही नहीं हो सकती।

अतः मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए पूर्णायु तक जीवन यापन के लिए निम्न निर्दिष्ट ३ प्रमुख नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि ये शरीर अथवा जीवन के तीन उपस्तम्भ हैं– १. आहार, २. निद्रा, ३. ब्रह्मचर्य। जब कभी भी इनके समुचित परिपालन में येन–केन प्रकारेण व्यवधान उपस्थित होगा, तभी रोगमूलक परिणाम प्राप्त होंगे। इस प्रकार जब तक हम स्वस्थवृत्त का पालन नहीं करेंगे, तब तक इसी प्रकार बहुत सी आधि–व्याधियों से ग्रसित होते रहेंगे।

आज तक संसार की जितनी भी प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हैं उन सबमें 'निदान परिवर्जन' (जिन कारणों से रोग हो रहे हैं, उन कारणों को दूर करना) व 'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं' (स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाये रखना) को अल्प एवं 'आतुरस्य विकार प्रशमनं' (रोगी के रोगों को दूर करना) को ही अत्यन्त महत्त्व दिया जाता रहा है। विशेषकर जिसे हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के नाम से जानते हैं, उसमें भी इसी बात पर जोर दिया जाता है ।

आज का प्रगतिशील मानव आधुनिक युग की चकाचौंध में परिपोषित होता हुआ, कृत्रिम बाह्ययाडम्बरों से अपने आपको सुखी एवं समृद्ध जानता हुआ भी, ऐसे स्थाई सुख की खोज में भटकता फिरता है, जो कि उसे केवल अपने बौद्धिक प्रवाह को बदलकर ''मॉडर्न ओरियन्टल वे आफ थिंकिंग एण्ड लिविंग'' में उपलब्ध हो सकता है। इस चिन्तन और शाश्वत सत्य का साक्षात्कार हम सहस्रों पश्चिमी सभ्यता में पले, पोषित, शिक्षित विद्वानों एवं विचारकों में कर सकते हैं, जो कि अपनी उस ''वे आफ लिविंग एण्ड थिंकिंग'' से मुक्ति पाने के लिए पूर्व की दिव्य भूमि में आते रहते हैं। लेकिन हमारे यहाँ की आधुनिक कही जाने वाली सभ्यता में पोषित, परिवर्धित मानव इस शाश्वत सुख को प्राप्त करने का उपाय (जो शास्त्रोपदिष्ट है) का पालन करना अपनी शान के खिलाफ समझकर 'आउट आफ डेट' कहने में ही इति श्री समझ लेता है। इस स्थिति में यदि कोई साधारण व्यक्ति भी उसे हितोपदेश दे कि ब्रह्ममुहुर्त में उठना चाहिए, प्रातः भ्रमण करना चाहिए, शीतल जल पान करना चाहिए, जिससे कि विबन्ध न रहे, इत्यादि तो उसे यह सब मिथ्या या अनुपयुक्त ही लगता है, क्योंकि यहाँ दृष्टि भेद है।

संसार के आदिज्ञान स्रोत वेदों से लेकर स्मृति ग्रन्थों तक का पर्यावलोकन करने से यही तथ्य सामने आता है कि मनुष्य को किस देश में रहकर स्वस्थ रहने के किन–किन नियमों का पालन करना चाहिए तथा उनका पालन न करने से किस–किस प्रकार की व्याधियों से ग्रसित होना पड़ता है। अतएव शास्त्र में ऐसे समस्त सिद्धान्तों एवं नियमों का यथा स्थान महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रतिपादन किया गया, जिससे प्रेरणा लेकर मानव आदिभौतिक, आदिदैहिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार के तापों (व्याधियों) से अपने आपको मुक्त करने में सफल हो सकता है। लेकिन इसके लिए हमको एक काम करना होगा, वह है ''आस्था परिवर्तन'' जो अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि जब तक हमें आयुर्वेद के सिद्धान्तों एवं आदर्शों के प्रति श्रद्धा न होगी तब तक उनके द्वारा मिलने वाला अमूल्य लाभ का मूल्यांकन कर सकना हमारे सामर्थ्य के परे की बात होगी।

आयुर्वेद में जैसी स्वस्थ मनुष्य की विशद एवं सर्वांगीण व्याख्या की गई है, वैसी अन्यत्र तथाकथित चिकित्सा विज्ञान के साहित्य में भी उपलब्ध नहीं होती, जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। आयुर्वेदीय स्वास्थ्य की परिभाषा न सिर्फ मनुष्य के शारीरिक धातु, अग्निसाम्य के मापदण्ड का ही ध्यान रखती है, अपितु उसका वैशिष्ट्य इस बात में छिपा है– वह मनुष्य को आत्मना, इन्द्रियेण एवं मनसा भी प्रसन्न देखना अपेक्षित समझती है, तभी सच्चे अर्थों में मनुष्य को स्वस्थ कहा जा सकता है।

इस परिभाषा के अनुसार प्रश्न यह उठता है कि संसार में कितने व्यक्ति स्वस्थ हैं? क्योंकि इस वैज्ञानिक प्रगति ''एटोमिक एण्ड न्यूक्लियर एज'' के युग में अत्याधुनिक सुख–सुविधा सम्पन्न होते हुए भी आज हम विभिन्न प्रकार की नई–नई शारीरिक व्याधियों के साथ–साथ मानसिक विपन्नावस्था में जीवन यापन कर रहे हैं। आज संसार के अत्याधुनिक स्तर का जीवन यापन करने वालों में लगभग ६०–७० प्रतिशत व्यक्ति उच्च रक्तचाप (Hypertension), मधुमेह (Diabetes), मानसिक अवसाद (Depression), मानसिक तनाव (Mental stress) आदि व्याधियों से ग्रस्त हैं। इसलिए वैदिक मंत्रों में ईश्वर से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा मन को शुभ संकल्पों से युक्त बनाने की प्रार्थना की गई है। [1]

आयुर्वेद में स्वास्थ्य से अभिप्राय शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक तीनों ही प्रकार से स्वस्थ रहने से है। तथा इस स्वास्थ्य को पाने के नियम जिसके अन्तर्गत बताये जाते हैं, उसे ही स्वस्थवृत्त विज्ञान कहते हैं।

1.5.1 स्वस्थवृत्त की परिभाषा –

''उत्थायोत्थाय सततं स्वस्थेनारोग्यमिच्छता।
धीमता यदनुष्ठेयं तदस्मिन् सम्प्रवक्ष्यते।।'' (स्व.वृ.सं.१)

अर्थात् स्वास्थ्य परिरक्षण हेतु स्वस्थ पुरुष को नित्य सोकर उठने के बाद जो कर्म करना चाहिये, उसे ही स्वस्थवृत्त कहते हैं। इसके पालन से रोगों को दूर रखते हुए आरोग्य पूर्वक सप्रयोजन जीवन–यापन किया जा सकता है।

आयुर्वेद में स्वास्थ्य के परिरक्षण हेतु विस्तृत दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या का उल्लेख आता है। इनके पालन से शरीर स्वस्थ रहता है तथा अपालन से रोग उत्पन्न होते हैं।

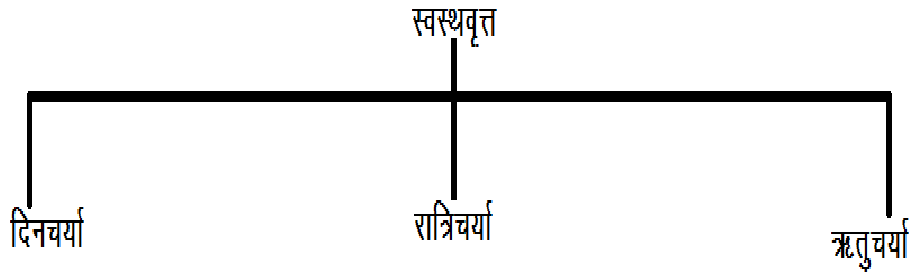

अतः हम आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त, कफ़ इन त्रिदोषों को नियन्त्रित रखने के लिये स्वस्थवृत्त का पालन कर सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

1.5.2 स्वस्थवृत्त का प्रयोजन –

पृथ्वी पर कोई भी प्राणी अमर होकर नहीं उत्पन्न होता, अतः मृत्यु से त्राण नहीं मिल सकता, परन्तु रोग दूर किये जा सकते हैं। इसी उद्देश्य से आयुर्वेद शास्त्र तथा स्वस्थवृत्त विज्ञान का विकास किया गया है। इसी उद्देश्य पर बल देने हेतु चरक संहिता में कहा गया है कि संसार में सब कुछ छोड़कर स्व–शरीर का पालन करना चाहिए क्योंकि शरीर ही सर्व सुख, दुःख के भोग का माध्यम है।

''सर्वमन्यपरित्यज्य शरीरमनुपालयेत्''। (च०वि०६/७)

जिस प्रकार नगर स्वामी नगर तथा सारथी रथ की रक्षा में सदा तत्पर रहता है, उसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष को अपने शरीर की रक्षा में तत्पर रहना चाहिए।

आयुर्वेद के प्रमुख उद्देश्य हैंः–

१) स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना.
२) रोगी के रोगों को दूर करना.

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत्त का पालन आवश्यक है। अतः प्रथम प्रयोजन की पूर्ति हेतु स्वस्थवृत्त का अध्ययन आवश्यक है।

अन्य प्राणियों के समान मनुष्य भी शरीर के बाहर व शरीर के अंदर की परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। यदि बाह्य व आभ्यन्तर परिस्थितियाँ अपरिवर्तनशील होतीं, तो स्वास्थ्य के नियम भी अति सरल होते। परन्तु इस गतिमान व परिवर्तनशील संसार में ऐसा होना असंभव है। अतः हमें अपनी जीवनचर्या को इन परिवर्तनों में इस प्रकार ढालना अनिवार्य हो जाता है, जिससे हम स्वस्थ रहते हुए जीवन–यात्रा सुचारु रूप से पूरी कर सकें व अपने अन्तिम लक्ष्य ''मोक्ष'' की ओर अग्रसर हो सकें।

हमारे स्वास्थ्य को बाहर से प्रभावित करने वाले कारणों में मौसम का परिवर्तन, तापमान का परिवर्तन भौगोलिक परिवर्तन व अन्य भौतिक व रसायनिक परिवर्तन ही नहीं हैं, वरन् सामाजिक परिस्थितियाँ भी उसे प्रभावित करती हैं। इस प्रकार हमें अपनी शारीरिक व मानसिक वृत्तियों तथा सामाजिक परिस्थितियों के मध्य सामांजस्य रखना पड़ता है।

शरीर के भीतर भी जैव–भौतिक एवं जैव–रासायनिक क्रियाएं निरन्तर क्रियाशील रहती हैं। इन क्रियाओं में परस्पर समन्वय रखना स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है।

अनेक हानिकारक जीवाणु व विजातीय तत्व शरीर में प्रवेश पाकर हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। अनेक अनिष्ट प्रभावों से रक्षा के लिए हमें अपनी रोग क्षमत्व शक्ति को भी बनाए रखना होता है। इन समस्त अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से निकलने के लिए हमें किस प्रकार के आहार–विहार, आचार–विचार की

आवश्यकता है, इसका विवेचन आवश्यक है। अतः इन सबके लिए स्वस्थवृत्त का ज्ञान अपेक्षित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

१. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

क. मानव शरीर धारी के लिए .... सबसे प्रथम आकांक्षा है।

२. सत्य/असत्य बताइये –

क. आरोग्य के लिए आयुर्वेद के उपदेशों को विधिपूर्वक निर्वाह करना मनुष्य मात्र का आदि कर्त्तव्य है ।

ख. मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत्त का पालन आवश्यक है।

३. एक शब्द में उत्तर दीजिये –

क. जिस प्रकार नगर स्वामी नगर तथा सारथी रथ की रक्षा में सदा तत्पर रहता है, उसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष को किसकी रक्षा में तत्पर रहना चाहिए?

ख. आयुर्वेद के अनुसार किसे नियन्त्रित रखने के लिये स्वस्थवृत्त का पालन आवश्यक है।

४. लघुत्तरीय प्रश्न –

क. आयुर्वेद के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

ख. स्वस्थवृत्त की परिभाषा क्या है?

५. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

क. स्वस्थवृत्त के प्रयोजन तथा महत्त्व पर प्रकाश डालिये।

1.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि आरोग्य स्वाभाविक स्थिति है, प्रकृति की देन है और इसकी रक्षा करना हमारा प्रमुख कर्त्तव्य है। आरोग्य की रक्षा के कुछ सामान्य से सूत्र हैं, जिनको धारण कर, उनके अनुसार आचरण कर हम उत्तम आरोग्य या स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकते हैं तथा अनेक शारीरिक व्याधियों का निवारण कर सकते हैं। स्वस्थ रहना मनुष्य का अधिकार है, यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये स्वस्थ पुरुष के लक्षण जानना तथा स्वस्थवृत्त का पालन करना आवश्यक है। स्वस्थवृत्त के अपालन से नानाविध शारीरिक तथा मानसिक विकार उत्पन्न होते रहते हैं और अस्वस्थ पुरुष इहलोक तथा परलोक में उपलब्ध पुरुषोचित भोगों को प्राप्त नहीं कर पाता। इसलिये आरोग्य को पुरुषार्थ चतुष्टय का मूल तथा त्रिऐषणाओं की पूर्ति का माध्यम माना गया है। अतः आरोग्य प्राप्ति के लिये आयुर्वेद के उपदेशों को विधिपूर्वक निर्वाह करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य होना चाहिये।

1.7 शब्दावली

- चतुर्विध पुरूषार्थ – धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष
- दाता – अपनी आय से दान करने वाला व्यक्ति
- अनिष्ट – बुरे प्रभाव
- साम्यावस्था – समान अवस्था
- अवयव – अंग

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3.4—

1. क. आत्मोत्साह
2. क. असत्य, ख. सत्य
3. क. आयु, ख. चार

1.4.4—

1. क. रोगमुक्त जीवन
2. क. सत्य

1.5.3—

1. क. आरोग्य
2. क. सत्य, ख. सत्य
3. क. शरीर, ख. त्रिदोष

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रह्मवर्चस, (२०११) आयुर्वेद का दर्शन क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, हरिद्वार
2. गौड़, डॉ० शिवकुमार, (२०००) स्वस्थवृत्तम्, नाथ पुस्तक भण्डार, रोहतक
3. मेहरा, डॉ० राखी, (२०१०) आयुर्वेद परिचय, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली
4. आचार्य चतुरसेन, (२००६) स्वास्थ्य रक्षा, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
5. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय संख्या ४१, जीवेम शरदरू शतम, सम्पादक—ब्रह्मवर्चस, (१९९८) अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
6. सिंह, प्रो० रामहर्ष, (२००७) स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
7. चोरडिया, डॉ० चंचलमल, (२००४) कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

1.10 सहायक ग्रन्थ सूची

1. चरक संहिता — पूर्वार्ध
2. सुश्रुत संहिता — भाग १
3. अष्टांग संग्रह
4. अष्टांग हृदय
5. भाव प्रकाश निघण्टु
6. माधव निदान

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

क. स्वास्थ्य की परिभाषा बताते हुये स्वस्थ पुरुष के लक्षणों का वर्णन कीजिये।
ख. आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त की क्या महत्ता बताई गई है? इसके प्रयोजन पर प्रकाश डालिये।

इकाई 2 दिनचर्या (भाग–१)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 परिभाषा
2.4 दिनचर्या के पालनीय नियम (भाग–१)
2.4.1 प्रातःकाल जागरण
2.4.2 मलत्याग
2.4.3 मुखशुद्धि
2.4.4 दन्तधावन
2.4.5 जिह्वानिर्लेखन
2.4.6 गण्डूषधारण
2.4.7 मुख नेत्र प्रक्षालन
2.4.8 अभ्यंग (मालिश)
2.4.9 व्यायाम
2.4.10 परिभ्रमण (टहलना)
2.4.11 क्षौर कर्म
2.4.12 उद्वर्तन
2.4.13 स्नान
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.9 सहायक ग्रंथ सूची
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने स्वास्थ्य का अर्थ व परिभाषा, स्वस्थ पुरुष के लक्षण और स्वस्थवृत्त का अर्थ व प्रयोजन के बारे में जाना। अब आगे हम स्वस्थवृत्त के अन्तर्गत आने वाली दिनचर्या के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

जैसा कि हम जानते हैं कि स्वस्थवृत्त आयुर्वेद का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मानव शरीर धारी के लिये आरोग्य सबसे प्रथम आकांक्षा है। आरोग्यता ही मनुष्य जीवन की सार्थकता बतलाती है। आरोग्य रहकर ही मनुष्य अपना लौकिक और पारलौकिक कर्त्तव्य

पूरा करने में समर्थ होता है। पूर्ण आयुष्य और दीर्घायुष्य की प्राप्ति उसे ही होती है, जो निरोग और सशक्त है, तथा सब प्रकार के कर्त्तव्य पालन में समर्थ है। शरीर और जीवात्मा के संयोग का नाम जीवन है और उस जीवन की उपस्थिति ही आयुष्य है। इसी आयुष्य की प्राप्ति हेतु दिनचर्या का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यदि व्यक्ति को यह पता हो कि उसे सुबह से उठकर कब क्या करना है और क्यों करना है, यह सब करके वह एक निरोगी काया किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, तो उसे उसके चरम लक्ष्य की प्राप्ति से कोई नहीं रोक सकता है।

अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह एक सही दिनचर्या को जाने, समझे और उसे अपने जीवन में उतारने का पूरा–पूरा प्रयास करे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे–

- एक आदर्श दिनचर्या
- दिनचर्या के पालनीय नियम
- दिनचर्या पालन के लाभ एवं महत्त्व
- दिनचर्या पालन की हमारे जीवन में उपयोगिता

2.3 परिभाषा

स्वयं को स्वस्थ रखने के लिये, सुबह उठने के बाद जो कर्म करते हैं, उसे स्वस्थवृत्त कहते हैं।स्वस्थवृत्त पालन से रोगों को दूर रखते हुए आरोग्यपूर्वक, सप्रयोजन जीवन यापन किया जा सकता है। आयु के सुख दुःख का साधन शरीर है, अतः आयुर्वेद के नियमों द्वारा उसके स्वास्थ्य की रक्षा करना नितांत आवश्यक है।

आधुनिक स्वस्थवृत्त का अध्ययन परम्परा में मुख्यतया दो माध्यम से किया जाता है–

१. व्यक्तिगत स्वस्थवृत्त और २. सामाजिक स्वस्थवृत्त

व्यक्तिगत स्वस्थवृत्त प्रधानतया शरीर से सबमन्धित है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण दिनचर्या अर्थात् स्वस्थ पुरुष का नित्य सोकर उठने से लेकर रात्रिचर्या (सोने तक) तक होती है। इसके बारे में आगे विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

2.4 दिनचर्या के पालनीय नियम

2.4.1 प्रातः काल जागरण–एक स्वस्थ व्यक्ति को प्रातःकाल सूर्य निकलने से पहले उठना चाहिये और अपनी मंगल–कामना तथा आरोग्य रक्षा के लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा का स्मरण करना चाहिये।

भाव प्रकाश में कहा गया है–

''ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थ मायुषः'' – भा. प्र.१/१४

स्वस्थ मनुष्य आयु की रक्षा के लिए रात के भोजन के पचने, न पचने का विचार करता हुआ ब्रह्ममुहूर्त (उषाकाल) में उठे।

प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में शय्या अवश्य छोड़ देनी चाहिए। चौबीस घण्टों में ब्रह्ममुहूर्त ही सर्वश्रेष्ठ है। मानव जीवन बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। उसका प्रत्येक क्षण बहुमूल्य है। सन्त तुलसीदास ने भी कहा है–

''बड़े भाग मानुष तन पावा। सुरदुर्लभ सब ग्रंथहिं गावा।।''

प्रत्येक प्रभात मानव जीवन का आरम्भ काल है। इसी समय जीवन के उत्थान और निर्माण का स्फूर्तिदायक सन्देश मिलता है। प्रातः काल कमल खिल जाते हैं, पक्षी मधुर गान करने लगते हैं, मृदुल समीर मन्दगति से बहने लगता है। सृष्टि में एक नव जीवन, नव चेतन, स्फूर्ति दिखाई देने लगती है।

शारीरिक स्वास्थ्य, मन, बुद्धि, आत्मा सभी की दृष्टि से ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। इस समय प्रकृति मुक्त हस्त से स्थानीय, प्रसन्नता, मेधा, बुद्धि की वर्षा करती है। अर्थात् वेद में कहा है, बहुत सारी बुद्धियाँ प्रातः काल के साथ जाग्रत होती हैं। आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है–

प्रातः उठने से सौन्दर्य, यश, बुद्धि, धन–धान्य, स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। शरीर कमल के समान खिल जाता है। प्रातः उठकर ईश्वर चिंतन, आत्मबोध तथा पृथ्वी माँ को नमस्कार करना चाहिए।

1. **आत्मबोध की साधना –**

प्रातः आँख खुलते ही यह साधना की जाती है। रात्रि में नींद आते ही यह दृश्य जगत समाप्त हो जाता है। मनुष्य स्वप्न–सुषुप्ति के किसी अन्य जगत में रहता है। इस जगत् में पड़े हुए स्थूल शरीर से उसका संपर्क नाम मात्र का, काम चलाऊ भर रह जाता है। जागते ही चेतना का शरीर से सघन सम्पर्क बनता है, यह नये जन्म जैसी स्थिति होती है।

जागते ही पालथी मारकर बैठ जाएँ। ठण्डक हो तो वस्त्र ओढ़े रहें। दोनों हाथ गोदी में रखें, सर्वप्रथम लम्बी सांस लें–नील वर्ण प्रकाश का ध्यान करें, नाक से ही सांस छोड़े, दूसरी श्वास में पीले प्रकाश का ध्यान करते हुये पूर्ववत् क्रिया दोहराये, तीसरी बार फिर रक्त वर्ण का ध्यान करते हुए गहरी श्वास लें, धीरे–धीरे नाक से ही श्वास छोड़ दें। स्वस्थ प्रसन्नचित्त हो अनुभव करें कि परमात्मा ने कृपा करके हमें आज नया जन्म दिया है कि उनका पुत्र इस जीवन का कैसा उपयोग करता है। हम उसके प्रिय पुत्र हैं– नैष्ठिक साधक हैं, उसकी योजना के अनुसार ऐसा जीकर दिखायेंगे कि उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठें।

आज के नये जन्म के लिए भगवान का आभार मानते हुए साधक के अनुरूप दिनभर के क्रिया कलापों का खाका मस्तिष्क में बनाना चाहिए। प्रार्थना करनी चाहिए– हे प्रभु! आपने हमें जो दुर्लभ शरीर–विभूतियाँ एवं अवसर सहित यह जीवन दिया है, उसे हम सार्थक बनाने का संकल्प लेते हैं। हे दाता! आपने जिस उदारता से यह सब दिया है, हम उसे उसी स्तर की तत्परता के साथ उपयोग में लायेंगे। हम अपनी सामर्थ्य भर कोई कोर–कसर नहीं रहने देंगे। आप हमें शक्ति देना।

2. **पृथ्वी माँ को नमस्कार –**

''समुद्र मेखले देवी पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णु पत्नीं नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व में।।''

मेखला (तागड़ी) की तरह सब ओर से समुद्र से घिरी हुई, पर्वतरूपी स्तनों से सुशोभित, विष्णु पत्नी–पृथ्वी माता आपको नमस्कार है। मुझे पैरों से स्पर्श के लिए (आप पर पैर रखकर अब मैं अपनी जीवन यात्रा आरम्भ कर रहा हूँ) आप क्षमा करें।

3. **ऊषापान –** ऊषापान शौच जाने से पूर्व ही करना चाहिए। आयुर्वेद में ऊषापान का विधान है– " प्रातः उठकर नित्य ऊषापान जो करता है, निज शरीर को स्वस्थ बना रोगों से रक्षा करता है।''

ऊषापान में शीतल जल का ही सेवन करना सर्वोत्तम है। दुर्भाग्य से आज भारत वर्ष में अधिकांश व्यक्तियों की बेड टी, काफी पीने की आदत पड़ गई है, जो हमारे स्वास्थ्य के नियमों के प्रतिकूल है। शीतल जल हमारे दाँतों के लिए लाभकारी है तथा पाचन संस्थान को बल प्रदान करता है। हमारे अंदर की पाचकाग्नि शीतल वस्तु को उष्ण बना लेती है। उष्ण पदार्थ को अन्दर ठण्डा करने की कोई प्रक्रिया नहीं है। अत्यधिक उष्ण पदार्थ लेने से तो हमारे मुख, अन्न नली आदि में श्लेष्मिक कला जल जाती हे। इसके परिणाम स्वरूप व्रण बन जाता है। जो अधिक दिन बना रहने से कैंसर का रूप धारण कर लेता है। शीतल जल के सेवन से रात्रि के भोजन की अपच भी ठीक हो जाती है।

भाव प्रकाश में लिखा है—

सूर्योदय के समय जो व्यक्ति प्रतिदिन चार अंजलि (२ प्रसृत= १अंजलि) जलपान करता है, वह रोग से मुक्त हो जाता है। बुढापा उसके पास नहीं जाता और वह सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त करता है।

उषापान से मल की अच्छी तरह शुद्धि होती है। उत्साह की वृद्धि होती है तथा वीर्य सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हे। काम विकार, शारीरिक उष्णता, बवासीर, उदररोग, बिबन्ध, सिरदर्द, नेत्र विकार दूर हो जाते हैं।

2.4.2 मल त्याग — ऊषापान के पश्चात् शौच जाना चाहिए। प्रातः काल सूर्योदय के पूर्व मल त्याग करना दीर्घायु प्रदान करता है। शौच में बैठने की भारतीय विधि ही सर्वोत्तम है। दाहिने पैर पर जोर देकर बैठने से शौच खुलकर आता है। यदि मल त्याग के समय दाँतों को भींचकर बैठा जाय तो दन्त रोग नहीं होते। मल विसर्जन का जो लोग ध्यान नहीं रखते उनके शरीर में विकार संग्रह होकर रोग उत्पन्न होने लगते हैं। प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति को दिन में दो बार शौच अवश्य जाना चाहिए, प्रातः आत्मबोध साधना के बाद तथा सायंकाल।

बहुत से लोग तंबाकू पीकर, बहुत से चाय पीकर और बहुत से कुछ खा—पीकर मल त्याग करते हैं, यह बुरी आदत है। यदि बस्ती छोटी हो, मल—त्याग को बाहर दूर मैदान में जाएं। यदि पाखानों में जाना है, तो वे अति शुद्ध होने चाहिए। महात्मा गॉधी का मत है कि ''पाखानें पुस्तकालयों की भाँति शुद्ध रहने चाहिए।'' वह जेल में इसी वचन को प्रमाणित करने के लिए गीता का पाठ पाखाने में करते रहे हैं। गंदे और दुर्गंधित पाखाने कब्ज, बवासीर और अन्य गंदे रोगों को उत्पन्न करते हैं। दिन में दो बार से अधिक दस्त जाना भी रोग है।

मल—त्याग के लिए देर तक बैठे रहने की आदत अच्छी नहीं है। यदि मल त्याग में देर लगे, तो भोजन में चिकित्सक की सम्मति से परिवर्तन करें। लोग भंग, अफ़ीम, शराब, मिठाइयाँ आदि खाने के आदी होते हैं, जिसमें मल त्याग देर में और ठीक—ठीक नहीं होता। वे उसके असली कारण को दूर न करके विरेचक दवाएं खाते हैं। यह बुरी बात है। तंदुरस्त आदमी का मल बंधा हुआ, चिकना एक—सा, पीला और एक बार में ही आसानी से निकलने वाला तथा कम दुर्गन्ध का होता है। इससे कोठा साफ़ और हल्का हो जाता है। चित्त प्रसन्न होता है।

बहुत से लोग मल—मूत्रों के वेगों को रोक लेते हैं, ऐसा करना शरीर के लिए बहुत हानिकारक है। इससे रोग उत्पन्न होते हैं। बहुत से लोगों को प्रातः शौच साफ नहीं होता अथवा प्रायरू दो या तीन बार जाना पड़ता है। अतः जिन लोगों को कब्ज रहता है, उन्हें नियमित व्यायाम तथा आँतों को ठीक रखने के लिए योगासन करना लाभदायक है। भोजन

में मोटे आटे की चोकर सहित रोटी, हरी सब्जी का अधिक प्रयोग करना चाहिए। दाल सदैव छिलके वाली तथा अंकुरित अन्न का प्रयोग से कब्ज नहीं रहता।

यदि फिर भी कब्ज रहता है, उनको नियमित प्रातः उषापान लाभकारी होगा। कब्ज को दूर करने के लिए सप्ताह में एक दिन एनीमा का प्रयोग करना चाहिए। कोष्ठ शुद्धि के लिए रात्रि को हरीतकी चूर्ण १ चम्मच अथवा त्रिफ़ला चूर्ण एक चम्मच उष्ण जल के साथ लेने से शौच साफ हो जाता है।

दिन में उत्तराभिमुख तथा रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर, बोलना बंद करके यत्नपूर्वक अंगों को संकुचित करके मल मूत्र का स्वाभविक उत्सर्ग करना चाहिये। बिना वेग के अनावश्यक यत्न द्वारा मल उत्सर्ग नहीं करना चहिये।

यदि मल त्याग के लिये बस्ती से बाहर जाना पड़ता है तो यह ध्यान रखना चाहिये कि—गन्दे स्थानों पर, राख आदि के ढेर पर, पशुओं के बैठने के स्थान पर, गोबर के समीप, निवास स्थानों के समीप, चिता के समीप, वृक्ष के नीचे, जिस खेत में हल चल चुका है उस खेत में मलत्याग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार गाय, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, अन्न था पूज्य जनों के सामने भी मलत्याग नहीं करना चाहिए। मल त्याग के पश्चात् तुरन्त मल को मिट्टी से ढक देना चाहिए।

मल त्याग के पश्चात् शुद्ध, दुर्गन्ध रहित मिट्टी के ढेले से, जिसमें काँटे, कंकड़ आदि न हों, गुदा स्थान (मलायन) साफ कर शुद्ध जल से धो लेना चाहिये। जिससे वहाँ पर मल लिप्त न रहे और मल की दुर्गन्ध दूर हो जाये। इस प्रकार जल से साफ़ करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जल की बूँदें इधर—उधर उछलकर शरीर पर अथवा वस्त्रों पर नहीं गिरनी चाहिये। गर्म जल इस काम मे नहीं लेना चाहिए। थोड़े जल से या कागज आदि से मल द्वार की ठीक—ठीक शुद्धि नहीं होती है।

शौच से जाकर हाथ, पैर, मुख धोना चाहिए। ऐसा करने से थकावट दूर होती है तथा नेत्र की ज्योति बढ़ती है। हाथ पैर और मल मार्गों को सदा शुद्ध रखने से बुद्धि और आयु बढ़ती है तथा लक्ष्मी व पाप नष्ट होते हैं।

2.4.3 मुखशुद्धि —मल त्याग के पश्चात् हाथ—पैर आदि को शुद्ध करने के बाद आचमन के द्वारा मुख को शुद्ध कर लेना चाहिए।

स्नान के पश्चात्, भोजन करने के पूर्व और पश्चात्, सोकर उठने के पश्चात्, छींक के पश्चात् एवं रास्ता चलकर आने के पश्चात् तथा देव पूजन के पूर्व आचमन कर लेना चाहिए।

किसी की तरफ़ न देखते हुए, न बातचीत करते हुए, न उठकर, न झुककर, न ऊपर को मुख कर के, न गर्म जल से और न अशुद्ध जल से जो दुर्गंधयुक्त हो या झागयुक्त हो अथवा क्षारीय हो, आचमन द्वारा मुखशुद्धि करनी चाहिए। दोनों हाथों का चुल्लू बना कर अंगुष्ठ के मूल तक जल लेकर आचमन करना चाहिए। ऐसा करते समय जल के छींटों से हाथ पैर अपवित्र न हों यह ध्यान रखना चाहिए।

2.4.4 दन्तधावन —दाँतों की सफाई प्रातः एवं सायं सोने से पूर्व करनी चाहिए। इसके लिए दातुन, मंजन, टूथपेस्ट आदि को व्यवहार में लाते हैं। पूर्वकाल में टूथब्रश या टूथपेस्ट नहीं थे जैसा वर्तमान में है, अधिकांश दातुन का व्यवहार करते थे और आजकल भी यह काफी प्रचलित है। दातुन १२ अंगुल लम्बी, कनिष्ठिका अंगुली के आगे के भाग के समान मोटी, सीधी, बिना गाँठ की, स्वस्थ डाल की ताजी होनी चाहिये और ऐसी होनी चाहिये जिसकी अच्छी प्रकार की कूँची बन सके।

सुश्रुत संहिता ने कटु, तिक्त, कषाय रस वाले वृक्षों के साथ मधुर रस वाले वृक्षों की दातुन भी लेने की सलाह दी है। प्रत्येक रस वाले श्रेष्ठ वृक्षों का नाम उसमें इस प्रकार दिया गया है–

''निम्बश्चतिक्तके श्रेष्ठः, कषाये खदिरस्तथा।
मधूको मधुरे श्रेष्ठः, करञ्जः कटुके तथा।।'' (सु० चि०२३/७)

अर्थात् दातुन लेने के लिये तिक्त रस वाले वृक्षों में नीम श्रेष्ठ है, कषाय रस वाले वृक्षों में खदिर श्रेष्ठ है, मधुर रस वाले वृक्षों में महुआ तथा कटु रस वाले वृक्षो में करञ्ज श्रेष्ठ है। आजकल खैर वृक्ष सब स्थानों पर सुलभ नहीं है अतः कषाय रस युक्त वृक्षों में बबूल (कीकर) को श्रेष्ठ मानते हुए उसकी दातुन व्यवहार में लाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के मुख–स्वास्थ्य (Oral health) प्रोग्राम के प्रमुख डा० डेविड बरनेस (Dr-David Barnese) का कहना है कि यदि नियमित रूप से नीम की दातुन की जाती रहे तो मुख गुहा में कैंसर रोग नहीं होता, यह सिद्ध है।

दातुन के अगले भाग को कुचलकर कूँची बना लेनी चाहिये। फिर उस कूँची से धीरे– धीरे मसूड़ों को हानि न पहुँचाते हुए दिन में दो बार अर्थात् पहली बार प्रातः दांत साफ करते समय पहिले नीचे के दांत साफ करने चाहिए, फिर ऊपर के साफ करने चाहिए। शय्या त्याग के पश्चात् तथा दूसरे सायं के भोजन के उपरान्त सोने से पूर्व करनी चाहिये। दातुन करते समय बातचीत नहीं करनी चाहिये।

संहिता ग्रन्थों में दातुन की कूँची पर लगाने के लिये कुछ दन्तशोधन चूर्णों का वर्णन भी आया है। इन्हें दातुन की कूँची पर लगाकर दाँत साफ करने का भी निर्देश है।

व्याप्य (कूठ) और त्रिवर्ग, त्रितय अर्थात्

(१) त्रिफ़ला (हरड़, बहेडा, आंवला),

(२) त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली) तथा

(३) त्रिजातक़ (दाल–चीनी, इलायची, तेजपात)

इनके चूर्ण को शहद में मिलाकर कूँची द्वारा प्रयोग करें अथवा सरसों के तैल में सेंधा नमक और तेजबल के चूर्ण को मिलाकर प्रयोग करें।दातुन के स्थान पर केवल इन दंतशोधन चूर्णो को व्यवहार में लाया जा सकता है। वर्तमान में अनेक प्रकार के दन्तमंजन उपलब्ध हैं। इन्हें अंगुली पर लगाकर प्रयोग किया जाता है। पेस्ट के रूप में भी दन्तमन्जन मिलते हैं, जिन्हें दन्त ब्रुश पर लगाकर काम में लाते हैं। दन्त ब्रुश कठोर एवं कोमल रेशेवाले दोनों प्रकार के मिलते हैं। अपने अनुकूल रेशेवाले ब्रुश को व्यवहार में लाना चाहिये। ब्रुश को दाँतों पर चक्राकार घुमाते हुए दाँत साफ करने चाहिये है ब्रुश को दाँतों पर अधिक दबाव देते हुए जोर से घर्षण नहीं करना चाहिये।

प्रातः दाँतों को साफ करने के पश्चात् आँखों पर शीतल जल के छींटे देने चाहिये। मुख में शीतल जल भरकर आँखों का सिंचन करना चाहिये। परन्तु इस कार्य के लिये शीतल जल का उपयोग केवल ग्रीष्म और शरद ऋतु में करना चाहिये, अन्य ऋतुओं में गुनगुने जल को व्यवहार में लाया जा सकता है।

ज्वर आदि से पीड़ित व्यक्ति के मुख में भोजन के पूर्व जो रस हो उसके विपरीत रस वाली अच्छी लगनेवाली दातुन से दाँतों की सफाई करनी चाहिये। ऐसी दातुन करने से मुख में स्वच्छता और अन्नपान की अभिलाषा उत्पन्न होती है तथा उस व्यक्ति को रसों का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। विपरीत रस वाली दातुन से दाँतों को साफ कर गुनगुने जल से

मुख को साफ कर लेना चाहिये। उसके पश्चात् पथ्य आहार आदि का सेवन किया जा सकता है।

रात्रि को सोने से पूर्व अधिकांश लोगों को दुग्ध पीकर सोने का अभ्यास है, दुग्ध पीकर दाँतों की सफाई न करने से दाँतों में कीड़े लग जाते हैं। अतः सोने से पहले दाँतों की सफाई दातुन, ब्रुश आदि से करनी चाहिए। प्रतिदिन दाँतों का अभ्यास आवश्यक है, इसके लिए जो खाया जाय अच्छी तरह चबाया जाना चाहिए।

1. **दन्ताधावन से लाभ** – दाँत साफ करने से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है। दाँतों का मैल हट जाता है। कफ का नाश होता है। जिह्वा, दाँत और मुख में होने वाले रोग नहीं होते हैं। अन्न के प्रति रुचि एवं प्रसन्नता होती है।
2. **दन्तधावन के अयोग्य व्यक्ति** – अजीर्णावस्था, श्वास, कास अथवा ज्वर से ग्रसित व्यक्ति को एवं मुख रोग, हृदय रोग, नेत्र रोग, कर्ण रोग, अर्दित (facial paralysis) वाले व्यक्ति को दातुन नहीं करनी चाहिये।

प्यास से व्याकुल व्यक्ति को भी दातुन नहीं करनी चाहिए। मुख रोगों में गला, तालु, ओष्ठ जिह्वा के रोग एवं मुखपाक का समावेश है। मूर्छा एवं मद से पीड़ित, शिरशूल से ग्रसित, थके हुए एवं मद्यपान किए हुए व्यक्ति के लिए भी सुश्रुत संहिता में दातुन करने का निषेध है। यदि चिकित्सक किसी रोग के कारण दातुन अथवा ब्रुश आदि के प्रयोग को मना करते हैं तो उसका पालन करना चाहिए।

2.4.5 जिह्वानिर्लेखन – दातुन के पश्चात् जिह्वा के मैल को हटाने के लिये जिह्वानिर्लेखन की आवश्यकता होती है। जीभ को साफ करने के लिये जिह्वा निर्लेखन (जीभी) सोने, चाँदी, तांबे या वृक्ष की कोमल टहनियों की होनी चाहिए। इसकी लम्बाई कम से कम दस अंगुल होनी चाहिए। दातुन को बीच से चीर कर भी व्यवहार में लाया जा सकता है। आजकल प्लास्टिक आदि की भी जीभियाँ मिलती हैं। जीभी के किनारे तेज तथा पैने नहीं होने चाहिए तथा काम में लाते हुए जीभ पर जोर से रगड़ना भी नहीं चाहिए।

जीभी द्वारा जीभ के मल को साफ करने से मुख की विरसता, दुर्गन्ध, शोथ, जड़ता का नाश होकर प्रसन्नता उत्पन्न होती है तथा रुचि, निर्मलता तथा लघुता की प्राप्ति होती है।

2.4.6 गण्डूषधारण –जो व्यक्ति दातुन, मंजन, टूथपेस्ट से दाँतों को साफ करने में असमर्थ हैं उन्हें तैल के गण्डूष करने चाहिए। अर्थात् मुख में तैल भरकर थोड़ी देर मुख में रखकर निकाल देना चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति भी दातुन एवं जिह्वा निर्लेखन के पश्चात् गणडूष धारण कर सकता है।

1. **गण्डूषधारण से लाभ** –

इससे हनुओं और स्वर को बल मिलता है, शरीर में माँस की वृद्धि होती है, मुख की दुर्गन्ध दूर होती है। जिह्वा शुद्ध हो जाती है, विरसता समाप्त हो जाती है, रसों का ज्ञान तथा भोजन के प्रति रुचि बढ़ जाती है, मुख और कण्ठ में कभी शुष्कता नहीं होती है, ओष्ठ फटते नहीं हैं, दाँतों का क्षय नहीं होता है वरन् उनकी जडें मजबूत हो जाती हैं। खट्टे पदार्थों को खाने पर भी दन्तहर्ष नहीं होता है। दाँत इतने दृढ़ हो जाते हैं कि कठोर द्रव्यों को भी चबा सकते हैं।

दन्तहर्ष अथवा दाँतों के हिलने पर तथा वातजन्य मुखरोगों में सुहाता हुआ गर्म या शीतल तिल के कल्क को पानी में घोलकर गण्डूष धारण करना उत्तम है। मुँह में दाह होने पर, मुखपाक में, आगन्तुज क्षत में, विष, क्षार अथवा उष्ण वस्तु से मुख के जलने पर घी या

दूध का गण्डूष धारण करना चाहिये। इससे मुख में विशदता आती है और व्रण भर जाते हैं। शहद के गण्डूष धारण करने से दाह और प्यास शान्त होती है। काँजी के गण्डूष से मुख की विरसता, मल तथा दुर्गन्ध नष्ट होती है। सज्जीक्षार का गण्डूष कफसंचय को नष्ट करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

१. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क. प्रातः उठकर नित्य ———————————— जो करता है, निज शरीर को स्वस्थ बना रोगों से रक्षा करता है।

ख. दातुन लेने के लिए तिक्त रस वाले वृक्षों में ——————————— श्रेष्ठ है।

२. सत्य / असत्य बताइए –

क. गण्डूष धारण से जबड़ों व स्वर को बल मिलता है।

ख. मल–मूत्र के वेगों को रोकना शरीर के लिए लाभदायक है।

३. एक शब्द में उत्तर दीजिए –

क. दातुन कितनी अंगुल लम्बी लेनी चाहिए?

ख. स्वस्थ मनुष्य किसकी रक्षा के लिए रात के भोजन के पचने, न पचने का विचार करता हुआ ब्रह्ममुहूर्त में उठे।

४. लघुत्तरीय प्रश्न –

क. आत्मबोध की साधनाश के बारे में बताइए।

ख. मलत्याग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

2.4.7 मुख–नेत्र–प्रक्षालन –बहुधा यह समझा जाता है कि यह साधारण सा काम है, परन्तु आपको सावधान रहना चाहिए कि मुख–नेत्र धोने के लिए शुद्ध और यथासंभव ऐसा जल लेना चहिए जो उबाल कर ठंडा किया गया हो। कच्चे तालाब, नदी आदि का जल बहुधा बहुत से रोग–जन्तुओं से परिपूर्ण रहता है और ये जन्तु मुख और दाँतों की जड़ में जमकर बैठ जाते हैं। इनसे भयानक रोग होते हैं।

मुख धोने में नेत्रों का धोना भी अत्यन्त सावधानी से होना चाहिए, वरना नेत्रों का सारा सौंदर्य ही नष्ट हो जायगा, क्योंकि रात्रि में बहुत–सा मैल नेत्रों में जमकर सूख जाता है। दांत और जीभ को भी अच्छी तरह साफ़ करना चाहिए और जमा हुआ कफ़ निकाल डालना चहिए। इसके बाद अच्छी तरह कुल्ला करना चाहिए।

शीतोदक (शीतल जल)से अपने मुख तथा नेत्रों का प्रक्षालन करना चाहिये। ऐसा करने से पीलिका, मुख शोष, पिडिका, व्यंग एवं रक्तपित्तकृत रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं।

क्षीरी वृक्ष, लोध्र अथवा आमलक क्वाथ से मुख का प्रक्षालन करना चाहिये। इसी प्रकार कोष्ण जल से मुख नेत्र का प्रक्षालन करने से कफ़वात एवं मुखदोष का नाश होता है।

2.4.8 अभ्यंग (मालिश) –

(१) जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में जल देने से उसके अंकुर (पत्ते) बढ़ते हैं उसी प्रकार अभ्यंग से शरीर की रसरक्तादि धातुयें दृढ़ तथा वृद्धि को प्राप्त होती हैं।

(२) जिस प्रकार मिट्टी का घड़ा चिकनाई पीकर मजबूत और दीर्घकाल तक चलने वाला हो जाता है उसी प्रकार अभ्यंग से मनुष्य भी दीर्घायु को प्राप्त होता है तथा वृद्धावस्था में शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती हैं।

(३) जिस प्रकार चमड़े पर चिकनाई रगड़ने से यह मजबूत तथा कोमल बन जाता है और उस पर तापमान का प्रभाव नहीं पड़ता है उसी प्रकार शरीर पर तैल के अभ्यंग से शरीर दृढ़ तथा स्पर्श में कोमल एवं गर्मी–सर्दी के प्रभाव से अप्रभावित हो जाता है।

(४) जिस प्रकार गाड़ी के धुरे में तैल देने से वह सरलता से कार्य करता है उसी प्रकार अभ्यंग से शरीर रूपी चक्र भी अच्छे प्रकार से जीवन रूपी कार्य करता है।

अतः स्वस्थ व्यक्ति को चाहिये कि ऋतु के अनुसार अर्थात् शीतकाल में कुछ उष्ण गुणयुक्त तथा उष्णकाल में शीत गुण युक्त सुगन्धित वात नाशक तैलों से शरीर पर अभ्यंग करें। सरसों का तेल, सुगन्धित तेल, पुष्पवासित और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से युक्त तैल कभी वर्जित नहीं होता। तेलों में तिल तैल या सरसों के तेल से मालिश करना अच्छा रहता है।

1. तैल मर्दन की विधि –

सबसे पूर्व तैल नाभि में लगाना चाहिए, उसके बाद हाथों, पैरों के नाखूनों में, पैरों के तलवों का मालिश करने के बाद दोनों पैरों की पिण्डलियों, जंघाओं, फिर दोनों भुजाओं, पीठ, गर्दन, पेट, बाद में सीने की मालिस करनी चाहिए। पैरों, भुजाओं, पीठ की मालिश नीचे से ऊपर की ओर, पेट और छाती की मालिश हृदय से ऊपर की ओर करनी चाहिए। गर्दन की मालिश ऊपर से नीचे की ओर करने से लाभ होता है। ग्रीष्म काल में शीतल छाया में तथा शीतकाल में धूप उपलब्ध हो सके तो धूप में ही करनी चाहिए। शीतकाल में मालिश करते समय तेज शीतल वायु का ध्यान रखे, ऐसी स्थिति में कमरे के अन्दर ही मालिश करनी चाहिए।

कानों में तेल डालने से वायु के रोग नहीं होते। पैर के तलवों की मालिश करने से नेत्र ज्योति बढ़ती है। प्रतिदिन न हो सके तो अवकाश के दिन अवश्य ही मालिश करनी चाहिए। वैसे मालिश करने में अधिक समय नहीं लगता, नहाने से पहले मालिश करके, क्षौर कर्म के पश्चात् स्नान किया जा सकता है। ज्वर कास आदि रुग्णावस्था में मालिश नहीं करनी चाहिए तथा भोजन के कम से कम तीन घण्टे बाद मालिश करनी चाहिए।

2. अभ्यंग के गुण –

प्रतिदिन तेल की मालिश करने से वायु विकार, बुढापा, थकावट नहीं होती है। दृष्टि की स्वच्छता, आयु की वृद्धि, निद्रा, सुन्दर त्वचा, शरीर दृढ़ हो जाता है। सिर, कान तथा पैरों में विशेष मालिस करनी चाहिए।

स्पर्शन कर्म में वायु प्रधान है, वह स्पर्श का गुण त्वचा में आश्रित है और मालिश त्वचा के लिए अति हितकारी होती है। नित्य मालिश करने से मनुष्य कोमल स्पर्श, पुष्ट अंग वाला और बुढापे में उसके लक्षणों की कमी होकर शरीर सुन्दर हो जाता है। तैल मालिश से आयु बढ़ती है, शरीर की कान्ति बढ़ती है। तेल का महत्त्व घृत से कम नहीं है। तैल में घृत से साठ गुणा शक्ति है, अन्तर केवल इतना है घृत खाने पर गुणकारी है तथा तेल मालिश करने पर। तैल वातनाशक है, अतः तेल मालिश से शरीर में वातजन्य रोग नहीं होते हैं एवं अन्य कोई विकार भी सरलता से नहीं होते हैं। अभ्यंग से शरीर दृढ़, सुन्दर हो जाता है और वर्ण में निखार आ जाता है। धातुयें पुष्ट हो जाती हैं। वृद्धावस्था में भी आयु के लक्षण पूर्णरूप से प्रकट नहीं होते है एवं कफ की वृद्धि नहीं होती है।

अभ्यंग करते रहने से जलने पर उसकी पीड़ा, शस्त्र आदि से क्षत होने पर उसकी रुजा, अस्थि के भंग होने पर उसकी व्यथा हल्की हो जाती है। क्लम (आलस्य) तथा श्रम (थकावट) दूर हो जाते हैं। संक्षेप में कह सकते है कि पौधे की जड़ को जल देने से जिस

प्रकार वृक्ष अंकुर बढ़ते है उसी तरह स्नेहसिक्त (अभ्यंग से) व्यक्ति की धातुएँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं।

3. अभ्यंग का निषेध –

नवीन ज्वर से पीड़ित तथा अजीर्ण वाले व्यक्ति को अभ्यंग नहीं करना चाहिए अन्यथा व्याधि कष्टसाध्य और यदि कष्टसाध्य है तो असाध्य हो जाती है।विरेचन, वमन अथवा निरूहवस्ति व स्नेहवस्ति से जिसने शरीर की शुद्धि की हो उसे भी अभ्यंग नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से अग्निमांद्य आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।स्निग्ध, मधुर, गुरु, नव अन्न, माँस, मद्य आदि पदार्थों का अधिक सेवन संतर्पण कहलाता है। संतर्पणज़न्य व्याधियों से पीड़ित तथा कफजन्य रोगों से पीड़ित व्यक्ति को अभ्यंग नहीं करना चाहिये।

4. शिर की मालिश –

सिर पर तैल की मालिश करने से शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं। बाल मुलायम, चिकने, काले तथा घने हो जाते हैं, वे झड़ते नहीं हैं। खालित्य (गंजापन), पालित्य (असमय केशों का श्वेत हो जाना) नहीं होता है। नींद सुखपूर्वक आती है। शिर की तृप्ति होती है। मस्तिष्क की शून्यता नष्ट हो जाती है। त्वचा सुन्दर और इन्द्रियाँ संतृप्त होती हैं।

सिर पर मालिश के लिए मुलहठी, क्षीरविदारी, देवदारु, लघु पंचमूल (शलिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली तथा गोखरू) को समान भाग लेकर तैल सिद्ध कर उस तेल की या अन्य किसी सिद्ध तैल की मालिश करनी चाहिए।

5. कान में तैल डालना –

कानों में नित्य तेल डालने से कान में वातजन्य रोग नहीं होते हैं। मन्यास्तम्भ (neckstiffness) और हनुस्तम्भ (locked jaw) रोग नहीं होते है। कर्ण बाधिर्य, शिर शूल एवं कर्णशूल नष्ट होते हैं।

6. पादाभ्यंग –

पैरों में तैल मालिश से पैरों का खुदरापन, जकड़ाहट (स्तब्धता), रुक्षता, थकावट, शून्यता (सुप्ति) आदि शान्त हो जाते हैं तथा कोमलता, बल और स्थिरता, आती है। पैरों में वातजन्य रोग नहीं होते हैं और ऐसे रोग हैं तो शान्त हो जाते हैं यथा गृध्रसी (sciatica), सिरास्नायु संकोच आदि हैं तो शान्त हो जाते हैं। बिवाई (पादस्फुटन) नहीं होता है। नेत्रों में प्रसन्नता की वृद्धि होती है। निद्रा सुखपूर्वक आती है। पादाभ्यंग सदा हितकर होता है।

2.4.9 व्यायाम –

''शरीर चेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धनी।
देह व्यायाम संख्याता मात्रया तां समाचरेत।।'' (च.सू. ७/३१)

अर्थात् शरीर का वह अभीष्ट कर्म जो शरीर में स्थिरता एवं बल वृद्धि करता है, शारीरिक व्यायाम कहलाता है।

जीवन रक्षा के लिए जिस प्रकार भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार व्यायाम को हम स्वास्थ्य संजीवनी कह सकते हैं। चाभी के बिना घड़ी नहीं चलती, इसी प्रकार व्यायाम के बिना शरीर भी नहीं चलता। व्यायाम कामधेनु तथा कल्पवृक्ष के समान है।

''शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।।'' (सु० चि० २४/३८)
''शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते।।'' (अ० सं० सू०३/६८)

अर्थात् शरीर में थकावट उत्पन्न करने वाला कर्म व्यायाम कहलाता है।

1. व्यायाम से लाभ –

महर्षि चरक के अनुसार–

''लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं दुःखसहिष्णुता।
दोषक्षयोग्निश्चवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते।।'' (च.सू.७/३२)

अर्थात् व्यायाम से शरीर में हल्कापन, कार्य करने की शक्ति, स्थिरता तथा कष्ट सहने की शक्ति बढ़ती है। शरीर के विकारों का नाश एवं जठराग्नि की वृद्धि होती है।

भाव प्रकाश के अनुसार–व्यायाम के द्वारा शरीर सुदृढ़ होकर कोई रोग उत्पन्न नहीं होने देता। शरीर में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ जाती है। आहार में किया गया विरुद्ध अन्न (अच्छी प्रकार न पचने वाला) अन्न भी शीघ्र पच जाता है।

मोटापा दूर करने के लिए व्यायाम के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। व्यायाम करने वाले को बुढ़ापा जल्दी नहीं आता। शरीर की मांस पेशियाँ दृढ़ एवं सुडौल हो जाती हैं। नाड़ियों को नवजीवन प्राप्त होता है। फेफ़ड़े सुदृढ़ होते हैं, रक्त की शुद्धि होती है तथा दीर्घायु को प्राप्त करता है। व्यायाम सदैव खुली हवा में करना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए दौड़ना और यौगिक व्यायाम अधिक लाभकारी है। प्रत्येक ऋतु में अपने बल की आधी शक्ति से व्यायाम करना चाहिए। इसके विपरीत अधिक व्यायाम करना हानिकारक है।

व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है। शरीर की कान्ति बढ़ती है। प्रत्येक अंग प्रत्यंग स्पष्ट पृथक्–पृथक् सुडौल रूप से दीखने लगता है। पेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं। बढ़े हुए मेद का क्षय हो जाता है। शरीर की शुद्धि होकर स्थिरता एवं लघुता की प्राप्ति होती है। श्रेष्ठ आरोग्य लाभ होता है। किसी कार्य के करने में आलस्य नहीं होता है। श्रम (थकावट), क्लम (आलस्य), प्यास, शीतता तथा उष्णता को सहन करने की शक्ति में वृद्धि होती है। शत्रु भय खाते हैं। वृद्धावस्था सहसा आक्रमण नहीं करती है।व्यायाम करने वाले तथा पैरों की भली–भांति मालिश करने वाले व्यक्ति के निकट व्याधियाँ उसी प्रकार नहीं पहुँचती हैं जिस प्रकार सिंह के सम्मुख मृग नहीं पहुँचते हैं। व्यायाम से आयु–रूप और गुणहीन व्यक्ति भी सुन्दर बन जाता है। नित्य व्यायाम करने वाला व्यक्ति यदि विरुद्ध आहार अथवा कच्चा पक्का जो भी खा लेता है वह भी पच जाता है। स्वस्थ एवं स्निग्ध आहार सेवन करने वाले व्यक्ति के लिए व्यायाम सदा हितकर है। वसन्त तथा शीत ऋतुओं में तो व्यायाम अति हितकर है। अन्य ऋतुओं में प्रतिदिन आधी शक्ति के अनुकूल व्यायाम करते रहना चाहिए। व्यायाम कभी करें और कभी छोड़ दें इस प्रवृत्ति का प्रभाव हानिकर होता है। व्यायाम के पश्चात् सम्पूर्ण शरीर को धीरे–धीरे मलना चाहिये।

2. **अनुकूल व्यायाम के लक्षण** – मनुष्य को आयु–बल–शरीर–देश–काल और आहार का विचार करते हुए व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम करते हुए जब मुख से श्वास–प्रश्वास आने लगे तो बलार्ध समझना चाहिए। शरीर से पसीना निकलना,श्वास गति में वृद्धि हो जाना, हृदय गति तीव्र हो जाना, प्रत्येक अंग में लघुता का अनुभव होना यह अनुकूल व्यायाम के लक्षण हैं।
3. **अधिक व्यायाम से हानि** –

अधिक व्यायाम से क्षय, अधिक प्यास, अरुचि, वमन, रक्त–पित्त, चक्कर, सुस्ती, खाँसी, शोष, ज्वर और श्वास कष्ट रोग हो जाते हैं।

जिस प्रकार सिंह अपने से अधिक बलवान् हाथी को खींचता हुआ स्वयं ही थककर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अति व्यायाम, अति हँसने, अति बोलने, अति रास्ता चलने, अति मैथुन एवं अति जागरण से व्यक्ति स्वयं हानि उठाता है। अतः इन सबका अति सेवन स्वास्थ्य के लिए वर्जित है।

4. व्यायाम के अयोग्य –

रक्त–पित्त का रोगी, कृश, शोष, श्वास–कास, खाँसी और उरः क्षय से पीड़ित, तुरन्त भोजन किया हुआ, स्त्री प्रसंग से क्षीण तथा चक्कर से पीड़ित मनुष्य को व्यायाम नहीं करना चाहिए। व्यायाम में यौगिक व्यायाम का दोहरा लाभ है। एक ओर आसनों से शरीर बलिष्ठ और रोग रहित होता है, दूसरी ओर आत्मिक उन्नति भी होती है। कुछ समय तक नियमित यौगिक व्यायाम का अभ्यास करने से मस्तिष्क की धारणा शक्ति बढ़ जाती है। स्नायु तथा मांसपेशियों में बल आ जाता है। कब्ज, बहुमूत्र रोग आदि दूर होते हैं। शरीर रोग मुक्त होकर यौवन, कान्ति, ओज की वृद्धि, दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

2.4.10 परिभ्रमण (चंक्रमण, टहलना) –यद्यपि बहुत अधिक पैदल चलना वर्ण, कफ, स्थूलता और सुकुमारता को नष्ट करता है परन्तु व्यायाम करने में अशक्त व्यक्तियों को नियमित रूप से परिभ्रमण के लिए जाना चाहिए। जिस परिभ्रमण से शरीर को कष्ट न हो वह आयु, बल, मेधा और अग्नि को दीप्त कर इंद्रियों को चौतन्य रखता है। नंगे पैर परिभ्रमण नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य रोगी और अल्पायु बनता है और नेत्रों की ज्योति नष्ट होती है।

1. भ्रमण कैसे किया जाए –

प्रातः भ्रमण करते समय गर्दन सीधी, रीढ़ की हड्डी सीधी, सीना तना हुआ, दोनों हाथ पूरी तरह हिलते रहने चाहिए। ग्रीष्म और वर्षा के ऋतु में शरीर पर कम से कम वस्त्र होने चाहिए। मुँह बन्द, नाक से ही सांस लेनी चाहिए। टहलते समय सदैव गहरे–गहरे श्वास लेवें। किसी मित्र आदि दूसरे व्यक्ति के साथ टहलते वक्त बातचीत नहीं करनी चाहिए। तेज गति से टहलना, मन्द गति से दौड़ना चाहिए। इससे गहरे श्वास स्वतः चलने लगते हैं। टहलते समय स्वास्थ्य बनाने की भावना होनी चाहिए। मेरे अन्दर ओज, तेज और शक्ति का संचार हो रहा है। शरीर से संचित विकार निकल रहे हैं। युवा व्यक्तियों को दौड़ने का ही अभ्यास करना चाहिए। वृद्ध लोगों को टहलने का क्रम अपनाना चाहिए। महात्मा गाँधी प्रतिदिन प्रार्थना के बाद भ्रमण किया करते थे। महर्षि दयानन्द प्रतिदिन दौड़ लगाया करते थे।प्रतिदिन भ्रमण करने वालों को कब्ज नहीं रहती तथा खुलकर क्षुधा लगती है। जिन युवकों को वासनात्मक विकार अधिक आते हैं उनको दौड़ने का क्रम अपना लेने से वासनात्मक विकारों का शमन हो जाता है। टहलने का स्थान जो पवित्र हों, शुद्ध वायु बहती हो, बाग–बगीचे व पार्क को चुना जा सकता है। विद्यार्थियों के लिए दौड़ और यौगिक व्यायाम अत्यन्त लाभकारी हैं। जिन्हें दौड़ने का स्थान न मिले, उसे खुला द्वार रखकर कमरे में ही अपनी जगह पर दौड़ने का अभ्यास करना चाहिए।

2.4.11 क्षौर कर्म –केश, नख एवं रोम कटवाते रहना क्षौर कर्म कहलाता है। इसके करने से पाप का शमन होता है। नित्य व्यायाम के समान ही नियमित रूप से क्षौर कर्म, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य एवं मानवोचित सौन्दर्य के लिए आवश्यक होने से इसका स्वस्थवृत्त में महत्त्व है और दिनचर्या का एक अंग है। केश (सिर के बाल), श्मश्रु (दाढ़ी के बाल) और नख को काटने और ठीक प्रकार से प्रसाधन कर रखने से शरीर पुष्ट होता है एवं आयु के लिए हितकर है। आचार्य चरक ने इसे पुष्टिकर, वृष्य, आयुष्य, शुचिकर तथा सौन्दर्यवर्द्धक कर्म कहा है। इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में भी इसे पापों को शमन करने वाला, हर्षोत्पादक, सौभाग्यकर, हल्कापन, उत्साहवर्द्धक माना है। अतः नियमित रूप से क्षौर कर्म करना चाहिए। प्रतिदिन दाढ़ी बनाने से शरीर में स्फूर्ति आती है। जो लोग दाढ़ी रखते हैं, उनकी प्रतिदिन सफाई पर ध्यान रखना चाहिए। महिने में एक बार बाल कटाने चाहिए तथा सम्भव

हो सके तो तीन सप्ताह में कटावें, सप्ताह में एक बार नख काटना आवश्यक है। दाढी, नख काटने का स्वयं अभ्यास करना चाहिए। नाई से केवल केश कटाना चाहिए। उसके उस्तरे, ब्रुश आदि से संक्रामक रोग की सम्भावना बनी रहती है। किफायत (मितव्ययता) की दृष्टि से पैसे और समय की बचत होती है। क्षौर कर्म के पश्चात् स्नान करना आवश्यक है।

2.4.12 उद्वर्तन (उबटन लगाना) –

स्नान से पूर्व कफ़नाशक द्रव्यों से बनाया हुआ उबटन शरीर पर मलना चाहिए। इससे आवश्यकता से अधिक शरीर में संचित मेद शरीर में ही लीन हो जाता है।

उबटन मलने से अंग स्थिर होते हैं, त्वचा कोमल और निर्मल होती है, रोमकूपों के मुख खुल जाते हैं। घर्षण से मेद और कफ पिघल जाते हैं और शरीर में लीन हो जाते हैं। उबटन वातनाशक (सुश्रुतानुसार), कफ़नाशक (वाग्भट के अनुसार) होता है। यह दो प्रकार से बनाया जाता है–

(१) कफनाशक द्रव्यों यथा अरहर की छाल, आम की छाल, नीम के पत्ते, लोध्र वृक्ष की छाल और अनार की छाल को कूटकर छानकर बारीक चूर्ण बनाकर जल अथवा दूध में मिलाकर शरीर पर उबटन की तरह मलते हैं। यह बिना चिकनाई का औंषधचूर्ण है। इसे उद्घर्षण कहते हैं। उद्घर्षण से प्रसन्नता, सौभाग्य, शरीर की शुद्धि और लघुता आदि की प्राप्ति होती है और कण्डू एवं वात का नाश होता है।

(२) यदि उबटन के द्रव्यों में स्नेह मिलाते हैं तो उसे उत्सादन कहते हैं; यथा हिन्दुओं में शादी से पूर्व जौ का आटा, हल्दी, तेल और जल के मिश्रण से उबटन की तरह मलते हैं। इससे शरीर कान्तियुक्त हो जाता है और त्वक् रोग नष्ट होते हैं।

मुख की कान्ति –

(१) क्षीरवृक्षों के क्वाथ

(२) क्षीरवृक्षों के क्वाथ में दूध मिलाकर

(३) लोध्र का क्वाथ अथवा

(४) आँवले का क्वाथ,

इसमें से किसी एक से मुख और नेत्र प्रतिदिन धोने से मुख की नीलिमा, मुखशोष, पिड़का, व्यंग्य तथा रक्तपित्तजन्य विकार नष्ट हो जाते हैं। मुख सुन्दर दिखाई देने लगता है। नेत्रों की ज्योति बनी रहती है। उपरोक्त द्रव्यों के अभाव में शीतल जल का व्यवहार किया जा सकता है।

2.4.13 स्नान – प्रतिदिन स्नान करना वैदिक दिनचर्या का एक आवश्यक अंग माना गया है। स्नान करने से शरीर शुद्ध हो जाता है, रोम कूप खुल जाते हैं। शरीर का आलस्य तथा निद्रा रोग दूर होकर चित्त शान्त होता है। मन में प्रसन्नता, उपासना, ध्यान आदि में मन लगता है तथा स्वाध्याय के प्रति रुचि हो जाती है। पाचकाग्नि तीव्र होकर क्षुधा को बढ़ाती है। वेद में जल को अमृत और जीवन का नाम दिया है।

जल ही औषधि है, जल ही रोगों का शत्रु है। अतः सभी रोगों का नाश करता है। जल में आरोग्यता प्रदान करने की शक्ति है, जल कल्याण करने वाला है। वेदों में एक स्थान पर यहाँ तक कहा है–

''भिषाभ्यो भिषक्तरा आपः।'' (अर्थ.१६/२/३)

जल औषधियों की भी परम औषधि है। जल के इस महत्त्व को समझकर जल चिकित्सा द्वारा रोगों की चिकित्सा की जाने लगी है। पाश्चात्य विद्वान् भी जल के महत्त्व

को अनुभव करने लगे हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध डॉ. लुई कुने तो केवल स्नान क्रिया से मनुष्य के सभी रोगों को दूर किया करते थे।

प्रतिदिन स्नान करने से बल, बुद्धि तथा स्वास्थ्य का सम्वर्द्धन होता है। शरीर में स्वच्छता और स्फूर्ति बनी रहती है। महर्षि चरक ने निम्न लाभ बताये हैं–

''पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीर बल संधानं स्नानं ओजस्करं परम्।।'' (च.सू.५/६४)

स्नान करने से शरीर पवित्र होता है, आयु बढ़ती है, थकावट, पसीना और मैल को दूर करता है, शरीरिक बल बढ़ाकर ओज उत्पन्न करता है।

आचार्य सुश्रुत के अनुसार– स्नान– दाह, थकावट, पसीना, खुजली और प्यास को नाश करने वाला, हृदय को प्रसन्न करने वाला, मैल नाशक तथा श्रेष्ठ इन्दियशोधक है। तन्द्रा, पाप को नाश करने वाला, पौरुषवर्द्धक, रक्त को साफ करने वाला एवं अग्नि को दीप्त करने वाला कहा गया है।

अधिक गरम पानी से स्नान नहीं करना चाहिए, सिर पर गरम पानी नहीं डालना चाहिए। इससे नेत्र ज्योति की हानि होती है। ठंडे जल से स्नान करने रक्तपित्त रोग शान्त होता है। सिर पर बिना पड़े गर्म जल से स्नान करना, बलकारक एवं वातकफ़ को नाश करने वाला है। ठंडा पानी सिर पर डालकर स्नान करना चाहिए, इससे नेत्र–ज्योति बढ़ती है। ठंढे जल से स्नान करने से आरोग्यता एवं बल प्राप्त होता है।

स्नान विधि – सर्वप्रथम जल सिर पर डालना जाहिर, सिर पर जल डालने के लिए सिर नीचा करके दो–तीन लोटे जल डालना चाहिए। ऐसा करने से मस्तिष्क की गर्मी पैरों से निकल जाती है। जो लोग पहले पैर धोते हैं, उनकी गर्मी मस्तिष्क में चली जाती है। इससे मस्तिष्क में नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। सिर को भिगोकर पश्चात् अन्य अंगों को भिगोना चाहिए। गीले खद्दर आदि मोटे वस्त्र की सहायता से शरीर को खूब रगड़ना चाहिए। पसीना आदि दुर्गन्ध को मिटाने के लिए साबुन लगाकर, पुनः अच्छी तरह पानी डालकर शरीर को अच्छी तरह रगड़ना चाहिए। इससे रोम कूप खुल जाते हैं। साबुन के स्थान पर बेसन, हल्दी, सरसों तैल का उबटन लगाकर भी शरीर की अच्छी सफाई हो जाती है।

स्नान करने के पश्चात् फिर अंगों से मैल नहीं उतारना चाहिये। बालों को भी नहीं झटकना चाहिये। तौलिए से शरीर को भलीभांति सुखाकर धुले हुए वस्त्र धारण कर लेने चाहिये। स्नान से पूर्व जो वस्त्र त्वचा से लगे पहने हुए होते हैं, उन्हें स्नान करने के पश्चात् नहीं पहिनना चाहिये। सार्वजनिक स्थानों पर वस्त्रविहीन होकर स्नान नहीं करना चाहिए। नदी आदि में स्नान करते समय जल को हाथों अथवा पैरों द्वारा नहीं उछालना चाहिये। जल के अन्दर अपनी परछाई नहीं देखनी चाहिये।

सामान्य शीतल जल में स्नान करना स्फूर्तिदायक है, तंत्रिका तन्त्र को इससे बल की प्राप्ति होती है। रक्तसंवहन तथा चयापचय क्रिया बढ़ती है। त्वचा की तान बनी रहती है तथा वाह्य तापमान के परिवर्तनों का दुष्प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता है।

स्नान निषेध – ज्वर, अतिसार, कान के रोग, वायु रोग, अफारा, अजीर्ण तथा भोजन के बाद स्नान नहीं करना चाहिए। अर्दित, नेत्र रोग, मुख रोग तथा जुकाम में स्नान नहीं करना चाहिए।

शरीर मार्जन – जो व्यक्ति स्नान नहीं कर सकते हैं उन्हें जल में वस्त्र भिगोकर और हल्का नि चोड़कर उस भीगे वस्त्र से शरीर की शुद्धि कर लेनी चाहिये। ऐसा करने से शरीर की

दुर्गन्धि, भारीपन, तन्द्रा, कण्डू, मैल, स्वेद की दुर्गन्ध तथा भोजन के प्रति अरुचि समाप्त हो जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

१. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क. ————————— करने से शरीर पवित्र होता है।

ख. केश, नख एवं रोम कटवाते रहना ——————————— कहलाता है।

ग. जिस प्रकार गाड़ी के धुरे में तैल देने से वह सरलता से कार्य करता है उसी प्रकार ———————— से शरीर रूपी चक्र भी अच्छे प्रकार से जीवन रूपी कार्य करता है।

२. सत्य / असत्य बताइए –

क. शीतल जल से मुख व नेत्रों का प्रक्षालन करना चाहिए।

ख. ज्वर, कास आदि रुग्णावस्था में मालिश करनी चाहिए।

३. एक शब्द में उत्तर दीजिए –

क. प्रतिदिन स्नान करना किसका आवश्यक अंग माना गया है?

ख. शरीर का वह अभीष्ट कर्म, जो शरीर में स्थिरता एवं बल वृद्धि करता है, क्या कहलाता है?

४. लघुत्तरीय प्रश्न –

क. भ्रमण किस प्रकार करना चाहिए।

ख. अनुकूल व्यायाम के लक्षण क्या हैं?

ग. संक्षेप में अभ्यंग (मालिश) के लाभ बताइए।

घ. स्नान करने की उपयुक्त विधि का वर्णन करें।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने एक आदर्श दिनचर्या के कुछ घटकों के बारे में पढ़ा व समझा। इसे पढ़ने के बाद आप यह जान चुके होंगे कि हमें प्रातःकालीन जागरण से लेकर स्नान तक किन–किन चीजों का ध्यान रखना चाहिए व एक स्वस्थ परम्परा अपनाते हुए इन्हें किस प्रकार से करें ताकि हम इनका पूरा लाभ अपने जीवन में उतार सकें। इसके साथ ही यह भी जाना कि दिनचर्या पालन का हमारे जीवन में क्या महत्व है तथा एक आदर्श दिनचर्या हमें किस प्रकार आयुर्वेद के प्रथम प्रयोजन (स्वास्थ्य का रक्षण) की तरफ अग्रसर कर सकती है।

2.6 शब्दावली

- ब्रहममुहूर्त – देवताओं के जागने का समय (प्रातः काल चार से छः बजे के बीच)
- प्रक्षालन – धोना (अंगों को स्वच्छ करना)
- मर्दन – मालिश करना
- उष्णता – गर्मी
- उबटन – शरीर पर लगाने वाला द्रव्य पदार्थ

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१(क) उषापान १(ख) नीम

२(क) सत्य	२(ख) असत्य
३(क) १२	३(ख) आयु
१(क) स्नान	१(ख) क्षौरकर्म १(ग) अभ्यंग
२(क) सत्य	२(ख) असत्य
३(क) वैदिक दिनचर्या	३(ख) शारीरिक व्यायाम

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रह्मवर्चस, (२०११) आयुर्वेद का दर्शन क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, हरिद्वार
2. गौड़, डॉ० शिवकुमार, (२०००) स्वस्थवृत्तम्, नाथ पुस्तक भण्डार, रोहतक
3. मेहरा, डॉ० राखी, (२०१०) आयुर्वेद परिचय, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली
4. आचार्य चतुरसेन, (२००६) स्वास्थ्य रक्षा, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
5. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय संख्या ४१, जीवेम शरदः शतम्, सम्पादक–ब्रह्मवर्चस, (१९९८) अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
6. सिंह, प्रो० रामहर्ष, (२००७) स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
7. चोरडिया, डॉ० चंचलमल, (२००४) कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

2.9 सहायक ग्रन्थ सूची

1. चरक संहिता – पूर्वार्ध
2. सुश्रुत संहिता – भाग १
3. अष्टांग संग्रह
4. अष्टांग हृदय
5. भाव प्रकाश निघण्टु
6. माधव निदान

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक आदर्श दिनचर्या का जीवन में महत्व बताते हुए दन्त धावन, अभ्यंग तथा स्नान के बारे में विस्तृत वर्णन करें।
2. अभ्यंग व व्यायाम के महत्व पर प्रकाश डालिए?

इकाई 3 दिनचर्या (भाग—२)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 दिनचर्या के पालनीय नियम
    3.3.1 वस्त्रधारण
    3.3.2 केशप्रसाधन
    3.3.3 अनुलेपन
    3.3.4 अंजन कर्म
    3.3.5 नस्य कर्म
    3.3.6 सन्ध्योपासना
    3.3.7 स्वाध्याय
    3.3.8 भोजन
    3.3.9 ताम्बुल सेवन
    3.3.10 धूम्रपान
    3.3.11 सुगन्धित द्रव्य, माला, रत्नादि धारण करना
    3.3.12 सिर पर साफा, टोपी आदि धारण करना
    3.3.13 पैरों में जूते आदि धारण करना
    3.3.14 दण्ड धारण करना
    3.3.15 छाता धारण करना
    3.3.16 जीविकोपार्जन
3.4 रात्रिचर्या
    3.4.1 सन्ध्योपासना
    3.4.2 रात्रिप्रहर
    3.4.3 रात्रिभोजन
    3.4.4 रात्रिशयन
    3.4.5 तत्वबोध की साधना
    3.4.6 विशेष
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.9 सहायक ग्रंथ सूची
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जान चुके हैं कि आयुर्वेद के दो प्रयोजनों में से प्रथम प्रयोजन श्स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना अति महत्वपूर्ण है। इस प्रयोजन की प्राप्ति का हमारे ऋषि–मुनियों ने अत्यन्त सरल उपाय बताया है– एक व्यवस्थित दिनचर्या का पालन। एक सही दिनचर्या को अपने जीवन में धारण करके हम शारीरिक व मानसिक रूप से तो स्वस्थ रहेंगे ही, इसके आध्यात्मिक लाभ भी हमें देखने को मिलेंगे।

पिछली इकाई में आपने दिनचर्या के कुछ घटकों के बारे में विस्तार से अध्ययन किया। अब आगे हम दिनचर्या के बाकी बचे घटकों के बारे में पढ़ेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे–

- एक आदर्श दिनचर्या
- दिनचर्या के पालनीय नियम
- दिनचर्या पालन के लाभ एवं महत्त्व
- दिनचर्या पालन की हमारे जीवन में उपयोगिता

3.3 दिनचर्या के पालनीय नियम (भाग–२)

पिछली इकाई में आप दिनचर्या के पालनीय नियमों में प्रातरूकालीन जागरण, मलत्याग, दंतधावन, जिह्वानिर्लेखन, गण्डूषधारण, अभ्यंग, व्यायाम, परिभ्रमण, क्षौर कर्म, उद्वर्तन, स्नान आदि के बारे में विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं। अब स्नान के आगे के नियमों के बारे में बताया जा रहा है।

3.3.1 वस्त्र धारण –दिनचर्या क्रम में विधिवत् स्नान करने के बाद, निर्मल वस्त्रों का धारण करने से, शरीर में सुंदरता एवं यश और आयु की वृद्धि होती है। शरीर की अशोभा दूर होती है तथा मन में हर्ष उत्पन्न होता है और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

सोने, बाहर निकलने तथा देवपूजन के वस्त्र भिन्न–भिन्न होना चाहिए। इसी प्रकार ऋतुओं के अनुसार भी वस्त्र धारण कर सके तो स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम है। शीतकाल में मनुष्यों को वायु और कफ हरने वाले रेशमी, ऊनी, लाल तथा कई रंगों वाला कपड़ा पहनना चाहिए। कषाय वस्त्र मेधा के लिए हितकारी, शीतल, पित्तनाशक होता है। अतः यह ग्रीष्म काल में पहनना चाहिए। सफेद वस्त्र सुखदीय, शीत और धूप को रोकने वाला, न अधिक उष्ण न अधिक शीतल होता है। इसे वर्षा ऋतु में धारण करना चाहिए।

किसी दूसरे का धारण किया हुआ, पुराना, मैला, अत्यन्त लाल कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। कपड़ा, जूता किसी दूसरे का धारण किया हुआ प्रयोग नहीं करना चाहिए। सफेद वस्त्र पहनने से व्यक्तित्व वजनदार बनता है। भड़कीले चटक–मटक वाले वरत्रों के पहनने से व्यक्तित्व में हल्कापन आता है।

वस्त्रों की धुलाई का प्रबन्ध घर पर ही करना चाहिए। धोबी से नहीं धुलाना चाहिए; क्योंकि अनेक प्रकार के वस्त्रों को एक साथ मिला देता है तथा आजकल गन्दे पानी के नालों में धुलाई कर, उस स्थान पर सुखाते है, जहाँ पर लोग मल–मूत्र त्याग करते हैं। कपड़ा देखने में साफ होते हुए भी अशुद्ध हो जाता है। मितव्ययता की दृष्टि से भी घर पर

धोने में कम खर्च होता है तथा कपड़ा जल्दी फटता भी नहीं। व्यायाम भी होता है, जहाँ तक हो सके प्रत्येक सदस्य को अपने कपड़े स्वयं धोने का अभ्यास करना चाहिए।

3.3.2 केश प्रसाधन – स्नान के पश्चात् केश प्रसाधनी (कंघा, कंघी अथवा ब्रुश) से बालों को संवार लेना चाहिये। ऐसा करने से धूल, जूँ तथा मैल दूर हो जाता है। इससे केश तथा शरीर सुन्दर लगता है। केशप्रसाधनी (कंघा अथवा कंघी) प्रत्येक व्यक्ति की पृथक–पृथक होनी चाहिए।

3.3.3 अनुलेपन –अनुलेपन सौभाग्य को देने वाला, वर्ण को उत्तम करने वाला, प्रीति, ओज तथा बल को बढ़ाने वाला तथा स्वेद की दुर्गन्धि, विवर्णता और श्रम का नाशक होता है।

आजकल जिस प्रकार स्नान के पश्चात् कुछ लोग वेनिशिंग क्रीम आदि का मुख आदि पर अनुलेपन करते हैं इसी प्रकार प्राचीन भारत में भी सुगंधित द्रव्यों यथा केशर, चन्दन आदि का अनुलेपन मुख पर तथा शरीर के अन्य भागों पर किया जाता था। इन अनुलेपनों से शरीर की दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध आती है, मुख, स्कन्ध आदि भरे हुए लगते है। व्यंग, पीडिका आदि नष्ट होकर मुख सुन्दर कमलतुल्य लगता है। नेत्र दृढ़ होते हैं। आयु का हित होता है। पुष्टि, बल और ओज की वृद्धि होती है। श्रम (थकावट) का नाश होता है तथा शरीर की अशोभा नष्ट होकर सौभाग्य की वृद्धि होती है।

3.3.4 अंजन कर्म –शलाका या अंगुली से नेत्र में औषध लगाने को अंजन कहते हैं ।

नेत्र प्रक्षालन तथा अंजन प्रयोग से मनुष्य बिना कष्ट के सुखपूर्वक सूक्ष्म वस्तुओं को दृढ़तापूर्वक देखता है। स्रोतोंजन, नेत्रदाह, कण्डू तथा नेत्रमल को दूर करता है। इससे दृष्टिक्लेद तथा पीड़ा समाप्त हो जाती है, आँखों की दृष्टि बढती है तथा नेत्र में हवा एवं सूर्य की उष्मा को सहने की क्षमता आ जाती है, नेत्र रोग भी उत्पन्न नहीं होते।

मनुष्य को चाहिये कि वह सौवीरंजन का नित्य प्रयोग करे वह नेत्र के लिये हित कर है, तथा नेत्र से दूषित जल निकालने के लिये पाँच या आठ दिन पर रसांजन का प्रयोग करना चाहिये।

1. **नेत्र रक्षा क्रिया –** सुश्रुत ने नेत्रों की रक्षा हेतु पाँच क्रियाओं को बताया है–
   तर्पण, पुटपाक, सेक, आश्च्योतन और अंजन

यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि दिनचर्या में अंजन का प्रयोग स्वस्थ स्थिति में किया जाता है। जबकि विभिन्न रोगों के निराकरण में तर्पण, पुटपाक, सेक, आश्च्योतन एवं अंजन का प्रयोग किया जाता है।

2. **अंजनशलाका (सलाई) –**

नेत्रों में अंजन के लिये सलाई स्वर्ण, रजत, ताम्र, वैदूर्य,कांस,लौह, हाथी दाँत,सींग, नीम या यशद की व्यवहार में लाते हैं। सलाई का अग्र भाग तेज नुकीला नहीं होना चाहिए वरन् फूलों की कली के समान होना चाहिये। सलाई की लम्बाई ८– १० अंगुल, मोटाई मटर अथवा राजमाष के समान होनी चाहिये। सलाइयों के अभाव में अथवा जब अंजन केवल वर्त्म पर लगाना हो तो अंगुली को व्यवहार में लाना चाहिये। कोमल होने के कारण अंगुली इस कार्य के लिये उपयोगी होती है।

3. **अञ्जन के प्रकार–** रसरत्नसमुच्चय में पाँच प्रकार के अञ्जनों का वर्णन है–
   (१) सौवीराञ्जन (stybnitis)
   (२) स्रोतोञ्जन (antimony sulphide)
   (३) रसाञ्जन (yellow oÛide of mercury)

(४) पुष्पाञ्जन (zinc oÛide)

(५) नीलाञ्जन (lead sulphide)

ये पाँचों द्रव्य वर्तमान में भी नेत्र औषधि के रूप में व्यवहार में आते हैं।

रसाञ्जन का प्रयोग प्रतिदिन नहीं करना चाहिए। इसका प्रयोग प्रति पाँच सात दिन के पश्चात् करना चाहिये। यह तीक्ष्ण अंजन है। अतः प्रतिदिन व्यवहार में लाने से नेत्रों को हानि होती है यद्यपि नेत्रों से दूषित जल एवं मल इससे दूर होते हैं।

स्रोतोञ्जन अथवा सौवीराञ्जन को अत्यन्त बारीक पीस घोटकर अज्जन बना लिया जाता है। यह अञ्जन मृदु एवं नेत्रों के लिए अति हितकर होता है अतरू इसका प्रयोग प्रतिदिन करना चाहिये। इससे नेत्र सुन्दर लगते हैं। सूक्ष्म वस्तु को भी देख सकते हैं। दृष्टि की क्लिन्नता नष्ट हो जाती है। नेत्रों से पानी आना बन्द हो जाता है तथा नेत्र वायु एवं ताप को सहन करने योग्य हो जाते हैं। नेत्रों के तीनों भाग–'लालभाग' (नेत्रश्लेष्मा), 'श्वेतभाग' (स्वच्छमण्डल) तथा 'कृष्णभाग' (परितारिका) निर्मल, चमकदार तथा स्वच्छ होकर पृथक–पृथक चमकने लगते हैं । आँखें साफ धुली हुई एवं पलकें स्निग्ध तथा घनी बन जाती हैं।

शरीर में नेत्र तेजस्वरूप हैं। अतः तीनों दोषों में कफ दोष से नेत्र को विशेष भय रहता है, क्योंकि कफ शीतगुण वाला है और तेज उष्ण गुण वाला है। विपरीत गुण वाले होने के कारण एक दूसरे के विरोधी हैं। इसलिये सामान्यता कफ़नाशक कर्म नेत्र को स्वस्थ रखने में हितकर होते हैं। तीक्ष्ण अज्जन कफ़नाशक होते हैं। इन तीक्ष्ण अंजनों का प्रयोग दिन में नहीं करना चाहिए।

4. **अंजन प्रयोग से लाभ –**

जिस प्रकार स्वर्ण आदि धातुओं के आभूषणों को साफ करने से वे निर्मल और चमकदार होते जाते है इसी प्रकार अंजनों के प्रयोग से नेत्र स्वच्छ आकाश में चन्द्रमा के समान दीप्तिमान हो जाते हैं।

5. **अंजन निषेध –**

जब नेत्रों में किसी भी दोष का वेग बढ़ रहा हो उस समय अंजन का व्यवहार नहीं करना चाहिए, अन्यथा नेत्रों में लालिमा बढ़ जाती है और अक्षिपाक तथा तिमिर रोग हो जाते हैं।

कुद्ध, भयभीत, शंकित, शोकमग्न, थके हुए होने पर, भोजन के तुरन्त पश्चात् विरेचन के पश्चात्, धूम्रपान के पश्चात्, नस्य के पश्चात्, शराब के नशे के समय, रात्रि में जागरण किये हुए, मलमूत्रादि वेगों से पीड़ित, रोते समय, प्यासा होने पर, ज्वर से पीड़ित, वमन रोग से पीड़ित, कृश, नेत्र में चोट लगने पर एवं सिर से स्नान करने के पश्चात् अंजन नहीं लगाना चाहिये।

6. **अंजन योग्य –**

हेमन्त शिशिर में दिन में, ग्रीष्म में पूर्वार्ध, दोपहर में, वर्षा में बादल न होने पर वसंत में सदा ही अंजन का प्रयोग करना चाहिये।

7. **अंजन अयोग्य –**

भोजन के बाद, सिर से स्नान करने पर, थके होने पर, उल्टी होने पर, रात्रि जागरण करने पर, नव ज्वर में, श्वास रोग में, अंजन का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

3.3.5 नस्य कर्म –नेत्रों में अंजन लगाने से यदि वात एवं कफ कुपित हो जाते हैं तो उनकी शान्ति नस्य से होती है। नासा द्वारा ली जाने वाली औषधि एवं सिद्ध तैल आदि के प्रयोग को नस्य कहते हैं। नावन और नस्य कर्म इसी के पर्याय हैं।

''नासा हि शिरसो द्वारम्।'' (अ०सं०सू०२६/३)

नासिका सिर का द्वार है अतः नासिका द्वारा ली गई औषधि श्रृंगाटक स्रोत में पहुँचकर और वहाँ फैलकर शिरोगगत रोगों को नष्ट करती है। नेत्र–श्रोत्र–कण्ठ आदि की शिराओं के ऊपरवाले भागों में रहने वाले सम्पूर्ण वैकारिक दोषों को बाहर निकाल देती है। जिस प्रकार मूंज में लिपटे सरकण्डे को खींचकर मूंज से पृथक् कर देते हैं, उसी प्रकार नस्य इन स्थानों से दोषों को बाहर निकाल देती है।

सबसे उत्तम नस्य अणु तैल है। प्रतिवर्ष वर्षा, शरद और वसन्त ऋतुओं में जब आकाश में मेघ नहीं हों उस समय नस्य रूप में अणु तैल का अवश्य प्रयोग करना चाहिए।

नस्य के रूप में अणुतैल विधिपूर्वक लेने से दृष्टि, गन्ध ग्रहणशक्ति तथा श्रवणशक्ति कभी नष्ट नहीं होती है। केश तथा शरीर के अन्य स्थानों के रोमादि दाढ़ी, मूँछ के बाल कभी न वर्ण में हल्के पड़ते हैं और न श्वेत होते हैं। शरीर की शिरायें, सन्धियाँ, स्नायु, कण्डरा बलवती होती हैं। स्वर स्निग्ध, स्थिर और गम्भीर हो जाता है। सभी इन्द्रियाँ स्वच्छ और शक्तिशाली रहती हैं। जत्रु प्रदेश के ऊपरी भाग में रोग सहसा नहीं होते हैं। वृद्धावस्था आने पर भी शिर आदि उत्तमांगों में वृद्धावस्था के लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। मन्यास्तम्भ, शिररूशूल, अर्दित, हनुस्तम्भ, पीनस, अर्धावभेदक तथा शिररूकम्प रोग शान्त हो जाते हैं।

प्रयोग विधि –

तर्जनी अंगुली के प्रथम दो पर्व घी आदि स्नेह में डुबाकर निकाल लें और उस स्नेह को अंगुली से टपकाये। जो मात्रा स्नेह की बूँद के टपकने से प्राप्त होती है उसकी संज्ञा एक बूँद है। स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन एक या दो बूँद पर्याप्त होती है। यह प्रतिमर्श प्रयोग है। परन्तु व्याधि निवारण के लिये नस्य मात्रा की दृष्टि से दस बिन्दु उत्तम, आठ बिन्दु मध्यम तथा ६ बूँद ह्रस्व मात्रा मानी जाती है। यह मर्श नस्य प्रयोग है।

प्रतिमर्श नस्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त लिया जा सकता है। नित्य सेवन अत्यन्त गुण प्रदान करता है। किसी प्रकार के परहेज रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे किसी रोग के होने का भी भय नहीं है। यह अतिशीघ्रकारी है, विशेष रूप से दुर्बल, क्षत, तृष्णा एवं शोषरोगी, वृद्ध, बाल, सुकुमार आदि प्रत्येक व्यक्ति के लिए उत्तम है।

नस्य लेने का समय– प्रतिमर्श नस्य चौदह अवस्थाओं में हितकर होता है–

(१) प्रातः काल सोकर उठने पर– इस समय लिया गया नस्य रात्रि में एकत्रित नासा स्रोत के मल को नष्ट करता है।

(२) दन्तधावन के पश्चात्– दाँतों को मजबूत बनाता है और मुख में सुगन्ध उत्पन्न करता है।

(३) घर से बाहर जाते समय– नस्य लेने के कारण नासारन्ध्रों के गीला होने से धूल अथवा धूम से हानि नहीं होती है।

(४) व्यायाम, (५) मैथुन, (६) मार्गगमन आदि से थके हुए होने पर लिया गया नस्य थकावट दूर करता है।

(७) मूत्र, (८) अधोवायु के उपरान्त लिया गया नस्य दृष्टि का भारीपन दूर करता है।

(६) कवल करने के पश्चात्, (१०) अंजन के पश्चात् नस्य से नेत्र निर्मल होते हैं।

(११) भोजन के पश्चात् लिया गया नस्य स्रोतों को शुद्ध करता है तथा शरीर में लघुता उत्पन्न करता है।

(१२) छींक, वमन के पश्चात् लिया गया नस्य स्रोतों में चिपके हुए श्लेष्मा को मिलाकर भोजन में रुचि उत्पन्न करता है।

(१३) निद्रा के पश्चात् लिया गया नस्य निद्रा द्वारा भारीपन तथा मल को दूर कर चित्त में एकाग्रता उत्पन्न करता है।

(१४) सायंकाल में लिया गया नस्य सुखपूर्वक निद्रा लाकर प्रातः ही जगाता है।

शिशिर और हेमन्त ऋतुओं में मध्याह्न में, शरद और वसन्त ऋतुओं में पूर्वाह्न में, ग्रीष्म ऋतु में अपराह्न में तथा वर्षा ऋतु में प्रातः सूर्य के दर्शन के समय मर्श नस्य देना चाहिये। वर्तमान में अणुतैल को नासाबिन्दु के रूप में व्यवहार में लाना सुलभ है।

3. प्रतिमर्श नस्य के अयोग्य व्यक्ति –

दूषित प्रतिश्याय रोग से पीड़ित, शिर में कृमि रोग से पीड़ित, शराब के नशे वाले व्यक्ति, दुर्बल श्रवण शक्ति वाले व्यक्ति को प्रतिमर्श नस्य नहीं लेना चाहिये।

3.3.6 सन्ध्योपासना – प्रतिदिन प्राणायाम, सूर्योपासना तथा इष्टदेव की अर्चना करनी चाहिए। प्रातः काल की संध्या में उपासना का बड़ा महत्त्व है। संध्या करने के कारण ही सद्गृहणियों में दीर्घायु, बुद्धि, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चस की वृद्धि पायी जाती है। सद् बुद्धि, आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण (धन), ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति होती है। उपासना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। शरीर के भोजन की अपेक्षा आत्मिक भोजन अधिक आवश्यक है।

यदि संध्या को जीवन का आधार कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। संध्या से शारीरिक स्वास्थ्य, बुद्धि, मेधा और दीर्घायु प्राप्त होती है। संध्या में प्राणायाम भी किया जाता है। प्राणायाम के द्वारा प्राण, उदान, व्यान, अपान, समान, कृकल, देवदत्त, धनंजय आदि दसों प्राण नियंत्रित रहते हैं। प्राणायाम के द्वारा इंद्रियों के समस्त विकार दूर हो जाते हैं। फेफडों को शक्ति मिलती है। मानसिक शक्ति बढ़ती है तथा मन, इंद्रियाँ वश में हो जाती हैं। ख,

ज्यों–ज्यों पश्चात्य शिक्षा हमारे घर में प्रवेश करती जाती है, सन्ध्या–वंदन हमसे छूटती जाती है, यह बड़े लज्जा और दुरूख का विषय है। मुसलमान भाई नमाज के कितने पाबंद हैं। यूरोपियन लोग भोजन और शयन के समय परमेश्वर का स्मरण करते हैं, प्रत्येक समझदार स्त्री, पुरुष और बालक को स्नान के बाद कुछ परमेश्वर का स्मरण अपनी रुचि, शिक्षा एवं ज्ञान के अनुसार अवश्य करना चाहिए। यह इसलिए नहीं कि परमेश्वर खुशामद से प्रसन्न होगा, प्रत्युत इसलिए कि इससे आपके विचार और भावना शुद्ध होंगे।

3.3.7 स्वाध्याय – मनुष्य जीवन की चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऋषियों और महर्षियों ने सम्यक् ज्ञान को ही परम साधन बतलाया है।

ज्ञान से मनुष्य को मोक्ष मिलता है और मोक्ष ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। प्राचीन ऋषियों ने स्वाध्याय का बड़ा महत्व समझकर, इस पर बल दिया है। प्राचीन समय में जब दो लोग आपस में मिलते थे तो कुशल मंगल पूछते थे, ''आपका स्वाध्याय तो ठीक चल रहा है न है।'' स्वाध्याय मनुष्य जीवन का बड़ा तप है, इसमें सदाचार की प्रेरणायें मिलती हैं, वैसे तो स्वाध्याय सभी आश्रमों के लिए आवश्यक है, परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम में इसका अधिक महत्व है।

स्वाध्याय का तात्पर्य ''धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय''। प्रतिदिन ५ पेज १५ मिनट में स्वाध्याय करें तो एक माह में १५० पेज तथा एक वर्ष में १८२५ पृष्ठ का (१२ पुस्तक १५०

पेज की) स्वाध्याय किया जा सकता है। स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार श्वास–प्रश्वास तथा हदय प्रतिदिन प्रतिक्षण चलता रहता है उसी प्रकार स्वाध्याय का क्रम भी नहीं टूटना चाहिए। स्वाध्याय से ही विद्वान बनते है एवं आंतरिक ज्ञान ज्योति जागृत होती है। स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य ज्ञान की चरम सीमा तक पहुँच सकता है। इसी से यश, कीर्ति, गौरव प्राप्त करता है।

3.3.8 भोजन – अन्न मार्ग से जो कुछ शरीर के अंदर जाता है उसे आहार कहते हैं। यह आहार रसादि धातुओं में परिणत होकर शारीरिक अंगों का पोषण करता है, साथ ही शरीर की रक्षा करता है, इसकी (शरीर) क्षति को पूरा कर शारीरिक शक्ति को बढ़ाता है और जीवित रखता है।

जिस आहार का वर्ण–गन्ध–रस–स्पर्श स्वभाविक रूप से होने से रुचिकर हो और विधिपूर्वक बनाया गया हो, उसका प्रत्यक्ष शुभ फल दिखाई देने के कारण विद्वान् लोग उसको जीवित प्राणियों का प्राण कहते हैं। भोजन पदार्थों में अन्न जीविका यापन करने वाले पदार्थों में श्रेष्ठ है तथा जल तृप्ति करने वाले पदार्थों में श्रेष्ठ है।

''अन्नं वृत्तिकराणां श्रेष्ठम, उदकमाश्वासकराणाम्।।'' (च०सू० २५/४०)

शरीर की पुष्टि, बल प्राप्ति, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि वृद्धि के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। आहार शरीर का धारक है।प्राणियों के लिए अन्न अमृत तुल्य है और जब अन्न अयुक्ति पूर्वक सेवन किया जाता है, तो विष भी बन जाता है। अतः स्वस्थ रहने के लिए भोजन का ज्ञान होना आवश्यक है।

प्रत्येक मनुष्य का भोजन देश, काल, आयु, प्रकृति, कार्य के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। स्वास्थ्य तभी ठीक रह सकता है, जबकी यथोचित मात्रा में देश, काल, प्रकृति, कार्य के अनुसार भोजन मिले। उचित मात्रा में भोजन न मिलने से शरीर रोगी हो जाता है; क्योंकि आन्तरिक अंगों पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

आहार विधि – स्नान करने के पश्चात् अथवा हाथ पैरों को धोकर और मुख को अच्छी तरह साफ कर, स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर, सुगन्धित पदार्थ लगाकर, अपने मतानुसार वन्दना, जप आदि कर प्रसन्नतापूर्वक ऊँचे आसन पर बैठकर शरीर को सम रखते हुए अर्थात् बिना झुके हुए भोजन करना चाहिए। स्वयं के भोजन करने से पूर्व यह निश्चयपूर्वक जान लेना चाहिए कि गुरुजनों, अतिथियों एवं अभ्यागतों ने भोजन कर लिया है तथा अपने आश्रित भृत्य, पालतू पशु, पक्षियों आदि को भी भोजन मिल चुका है अथवा उसकी व्यवस्था हो गई है तथा अग्नि, पितर एवं देवताओं को उनका भाग समर्पित किया जा चुका है। तत्पश्चात् स्वयं भोजन करें।

भोजन के पश्चात् हाथों को साफ कर दाँतों में लगे अन्न के अंश को शलाका से हटाकर जल से मुख की शुद्धि कर लेनी चाहिये। जल से नेत्रों का सिंचन भी लाभप्रद है। हाथ, मुखादि स्वच्छ वस्त्र से साफ कर ताम्बुल आदि सेवन करना चाहिए फिर सौ कदम चलकर वाम पार्श्व से कुछ देर के लिये लेट जाना चाहिए। द्रवबहुल भोजन के पश्चात् शय्या बहुत देर तक सेवन नहीं करनी चाहिए।

आहार के सामान्य गुण –आहार शरीर को पुष्ट करने वाला, बल कारक, देह को धारण करने वाला, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि को बढ़ाने वाला होता है। (सु.चि. अ. २४)

आहार के संबन्ध में मुख्यतः पाँच सूत्र हैं–

१. क्या खायें, २. कितना खायें, ३. कब खायें, ४. क्यों खायें, ५. कैसे खायें।

१. क्या खायें– मनुष्य को सदैव हितकारी पदार्थों का सेवन करना चाहिए। भोज्य पदार्थों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें विष के समान मानकर छोड़ देना चाहिए। जैसे– चरस, गाँजा, भाँग, अफीम आदि।

(ख) कुछ हानिकारक वस्तुएँ हैं, जिनका सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनके सेवन से शरीर में विषाक्तता बढ़ती है। जैसे– शराब, चाय, काफी, पान, तम्बाकू आदि तथा अण्डे, मांस, मछली, धूम्रपान आदि मानसिक क्षमता को कम करता है। मांसाहार तामसिक पदार्थ है।

(ग) कुछ वस्तुएँ जीवनोपयोगी होती हैं, जैसे– गेहूँ, चावल, मक्का, बाजरा, दालें, क्रीम, मक्खन आदि।

(घ) इनमें दुग्ध, घी, दही, सभी प्रकार के फल, साग–पात, मूली, गाजर आदि। सदैव भोजन ताजा लेना चाहिए। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के लिए जो हितकर हो उसे ही खाना चाहिए।

(२) कितना खायें– शमिताशी स्यात् थोड़ी मात्रा में खायें। खाद्य पदार्थ कितना ही पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्द्धक हो, यदि उनका सेवन उचित मात्रा में नहीं किया गया, तो हानिकारक सिद्ध होते हैं। भोजन इतना अधिक न खाया जाय कि मुँह से डकार के साथ बाहर जाने लगे और न ही इतना कम खाया जाय कि शरीर को पोषण ही न मिले।

भोजन हर व्यक्ति के कार्य विभाजन के अनुसार लिया जाना चाहिए। मानसिक कार्य करने वालों का भोजन कम होने से भी शरीर को पोषण मिल जाता है। जबकि शारीरिक श्रम करने वालों की मात्रा अधिक होती है। शारीरिक श्रम करने वालों को पर्याप्त प्रोटीन, चिकनाई तथा शर्करा की मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। मानसिक कार्य करने वालों को सुपाच्य, उबली सब्जियाँ, रोटी, दलिया, दुग्ध, मीठे फल पर्याप्त पोषण दे देते हैं।
आयुर्वेद के अनुसार आमाशय के तीन भाग करने चाहिए–

क. भोजन, ख. पानी तथा ग. वायु तीनों के लिए स्थान रखना चाहिए। अतः सदैव भूख से कम रवाना चाहिए। अधिक भोजन करने वालों की आयु कम होती है तथा अल्प भोजन करने वाले दीर्घजीवी होते हैं। कम खाने से कभी पाचन संस्थान खराब नहीं होता। जब भी पाचन संस्थान के रोग होते हैं, अधिक खाना उनमें प्रमुख कारण है।

आज स्वाद के वशीभूत होकर राजसिक और तामसिक पदार्थों का सेवन अधिक करते हैं, इसी के कारण रोगों का बाहुल्य हो रहा है। शरीर देखने में स्थूलकाय होते हुए भी अन्दर से शक्तिहीन है।

(३) कब खायें– भोजन अग्निहोत्र की भाँति दो ही समय करना चाहिए। प्रथम भोजन १२ बजे से पूर्व तथा सायंकाल ७ बजे तक कर लेना चाहिए। आयुर्वेद में दो बार भोजन करने का विधान है। अपने भोजन का समय निश्चित और उचित मात्रा में करने से भोजन समय से पच जाता है।

भोजन भूख लगने पर ही किया जाना चाहिए। बिना भूख लगे भोजन करने से हम रोगों को निमंत्रण देते हैं। तेज जलती अग्नि में जो समिधाएँ डाली जाती हैं तत्काल भस्म हो जाती हैं। सुलगती अग्नि में जिसमें धुआँ निकल रहा हो, उसमें समिधाएँ डालने से धुआँ ही निकलता है। इसी प्रकार भोजन का पाचन न होकर अपरिपक्व रस शरीर में रोग उत्पन्न करता है।

पाचन संस्थान को सक्षम बनाये रखने के लिए अपने भोजन का समय निर्धारित कर लेना चाहिए।

(४) क्यों खायें– भोजन करने का उद्देश्य है, अपने शरीर को स्वस्थ, निरोग और बलवान बनाना। मनुष्य का धर्म है, शरीर को निरोग रखना, ''शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्''। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का माध्यम भी स्थूल शरीर ही है।

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने भी युग निर्माण सत्संकल्प का प्रथम सूत्र दिया है– 'शरीर को भगवान् का मंदिर समझकर, आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करना।'

भोजन सदैव स्वस्थ और जीवित रहने के लिए किया जाना चाहिए, न कि खाने के लिए जीना।

(५) कैसे खाएँ– भोजन इस प्रकार खाया जाना चाहिए, जिसमें जठराग्नि को कम से कम श्रम करना पड़े। हमारे मुख में ३२ दाँत होते हैं। अतः प्रत्येक ग्रास इतनी देर तक चबाना चाहिए, जिससे पतला हो जावे, तभी उसका घूँट गले के नीचे उतारना चाहिए। अतः कहा गया है भोजन को पीना चाहिए तथा पानी को खाना चाहिए।

जो भी भोजन सामने आए, उस थाली के भोजन की पूजा कर, प्रसाद की भावना से खाना चाहिए। भोजन को देखकर सदैव हर्षित–प्रसन्न होकर ग्रहण करना चाहिए।

भोजन करते समय अधिक जल पीने से भोजन अच्छी तरह नहीं पचता है। इसी प्रकार बिलकुल जल न पीने से भोजन का पाक अच्छी तरह नहीं होता। भोजन करने के एक घण्टे बाद पानी पीना प्रारम्भ कर, प्रति घण्टे थोड़ा–थोड़ा जल पीते रहना चाहिए। ऐसा करने से भोजन जल्दी पच जाता है। जूठा भोजन न तो किसी को देना चाहिए और न ही खाना चाहिए।

भोजन के सामान्य नियम –

१. भोजन जहाँ तक हो सके एकान्त में करना चाहिए। साथ में यदि कोई हो तो साथ–साथ भोजन करें।

२. भोजन करते समय मौन रहना चाहिए। भोजन करते समय बातें करने से कई बार श्वास नली में अन्न कण चले जाने से खांसी आने लगती है।

३. भोजन करते समय यह भावना करनी चाहिए, कि जो हम ग्रहण कर रहे हैं, उससे सत्कर्म, सद्विचार, सद्भावनाएँ उत्पन्न हों, हमारे शरीर को आरोग्यता प्रदान करे।

४. भोजन करने से पूर्व हाथों की अच्छी तरह सफाई करें, यदि सम्भव हो सके तो पैरों को भी धोकर भोजन करना चाहिए।

५. भोजन करते समय ढीले वस्त्र होने चाहिए, ऐसे वस्त्र जो पेट आदि को कसे हों, उतार देना चाहिए।

६. भोजन करने के उपरान्त तत्काल मूत्र त्याग करना चाहिए, इससे मूत्रवह संस्थान के रोग नहीं होते।

७. भोजन करने के बाद दाँतों में फँसे हुए अन्न आदि के कणों को नीम की काड़ी, चाँदी, ताँबा (की बनी दाँत साफ करने की काड़ी मिलती है), उससे साफ करके अच्छी तरह कुल्ला करना चाहिए।

ताम्बुल सेवन – ताम्बुल सेवन करने का रिवाज भारत में अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन काल में जायफल, कटुक (कत्था अथवा लता, कस्तूरी का फल), सुपारी, लवंग, शीतलचीनी (कंकोल), कर्पूर, छोटी इलायची और चूने को पान में रखकर मुख में

रखते थे। भारत के कुछ भागों मे, विशेष रूप से दक्षिण भारत में, यह प्रथा आज भी प्रचलित है कि कत्थे तथा चूने को बिना जल में घोले पान पर डालकर सुपारी तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों के साथ लिया जाता है।

पान खाने से मुख में निर्मलता, सुगंधि, कान्ति एवं सुन्दरता आती है। भोजन के प्रति रुचि जाग्रत होती है। दाँत, जिह्वा का मल दूर होता है। स्वर में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है। इन्द्रियाँ शुद्ध होती हैं। मुख प्रसेक (मुख से लार टपकना) शान्त होता है। हृदय को बल मिलता है। गले की व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

सोकर उठने पर, भोजन के पश्चात्, स्नान के पश्चात् तथा वमन के पश्यात् पान खाना हितकर है। वाग्भट्टाचार्य कहते हैं कि एक पान के स्थान पर दो पान एक साथ खाने चाहिये। ऐसा रिवाज पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में आज भी है।

3.3.10 धूम्रपान –

प्राचीन भारत में सुगन्धित पदार्थों की वर्ति बनाकर पीते थे और उसे धूम्रपान कहते थे। आयुर्वेदीय संहिता ग्रन्थों में धूम्रपान का जो वर्णन किया गया है, उसका सम्बन्ध बीड़ी, सिगरेट अथवा हुक्के में तम्बाकू पीने से नहीं है।

आचार्य चरक एवं आचार्य वाग्भट्ट ने धूम्रपान के तीन प्रकारों का वर्णन किया है–

(१) प्रायोगिक– शमन (२) स्नेहिक– वृंहण (३) वैरेचनिक– शोधन

आचार्य सुश्रुत ने दो अन्य प्रकार के धूम्रपान का वर्णन किया है–

(१) कासघ्न (२) वमनीय

प्रायोगिक धूम्रपान का प्रयोग ही स्वस्थ व्यक्ति करते थे। अन्य प्रकार के धूम्रपान विकारों की अवस्था में अथवा संशोधन कर्म के रूप में व्यवहार में लाये जाते थे।

धूम्रपान हेतु विभिन्न औषध का प्रयोग –

हरेणुका, प्रियड्गु, पृथ्वीका, केशर, ह्वीबेर, चंदन, ध्यामक, मधुक, जटामांसी, गुग्गल, न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष, लोध्र, त्वच, सर्जरस, मुस्त, शैलेय, कमल, उत्पल, श्रीवेष्टक, शल्लकी आदि औषधों से बने शास्त्रीय धूम से धूमपान किया जाता है।

धूम्रपान के काल –

प्रायोगिक धूम्रपान के आठ काल उचित माने गये हैं –

(१) स्नान के पश्चात्
(२) भोजन के पश्चात्
(३) वमन के पश्चात्
(४) छींक आने के पश्चात्
(५) दाँत और मुख की शुद्धि के पश्चात्
(६) नस्य लेने के पश्चात्
(७) नेत्र में अंजन लगाने के पश्चात् तथा
(८) निद्रा से उठने के पश्चात्

एक बार में वर्ति के तीन कश लेते हैं। फिर कुछ रुक–रुक कर तीन–तीन कश और इस प्रकार नौ कश लेने का विधान है। दिन में केवल दो बार धूम्रपान करने को कहा गया है।

उपरोक्त वर्णित आठ काल के अतिरिक्त बिना काल में लेने से अथवा अधिक धूम्रपान करने से बधिरता, नेत्रदृष्टि हानि, मूकपन, रक्तपित्त, सिर में चक्कर, तालु, शोष, दाह, पिपासा, मूर्च्छा, मद, कानों में ध्वनि, नासारोग तथा दुर्बलता होने का भय माना गया है।

धूम्रपान से लाभ – इस प्रकार धूम्र सेवन से–

(१) मनुष्य की इंद्रियाँ, वाणी और मन प्रसन्न होता है।
(२) शिर का भारीपन, शिररूशूल, पीनस, अर्धावभेदक, कान और नेत्र का शूल, कास, हिक्का, श्वास, गलग्रह, दन्तशूल, कान, नाक और नेत्र से दूषित स्राव का निकलना, नाक से दुर्गन्धयुक्त स्राव (पूति घ्राण), मुख की दुर्गन्ध,अरोचकता, हनुग्रह, मन्याग्रह आदि शान्त होते हैं।
(३) कण्डू, कृमिरोग, मुख का पीला पड़ जाना, मुख से कफ का स्राव होना, केशों का झड़ना, छींक अधिक आना, अधिक तन्द्रा और निद्रा आना, आलस्य का रहना, बुद्धि का व्यामोह होना, स्वरभेद, गलशुण्डी, उपजिह्विका, खालित्य, केशों का वर्ण परिवर्तित होना आदि रोग शान्त होते हैं।
(४) बाल, कपाल, इन्द्रियों एवं स्वर में बल की वृद्धि होती है।
(५) संक्षेप में व्यक्ति के जत्रु के ऊपरी भाग में होने वाले समस्त रोग,विशेष रूप से वात और कफजन्य रोग शान्त होते हैं।

सम्यक् धूम्रपान के लक्षण –
(१) ह्दय, कण्ठ एवं ज्ञानेन्द्रिय की शुद्धि
(२) शिर का हल्का होना और
(३) बढ़े हुए दोषों का शान्त हो जाना सम्यक् प्रकार से किये गये धूम्रपान के लक्षण हैं।

धूम्रपान के आरोग्य –
(१) १८ वर्ष से कम आयु तथा ८० वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति
(२) विरेचन के पश्चात्
(३) वस्ति लेने के पश्चात्
(४) रक्त पित्त तथा विष से पीड़ित व्यक्ति के लिए
(५) रात्रि जागरण के पश्चात्
(६) शिर का आघात होने पर
(७) मधु–दूध–दही–मद्य एवं यवागू खाने के पश्चात्
(८) विषैला जल पीने के पश्चात्
(९) मछली खाने के पश्चात्
(१०) पाण्डु–प्रमेह–आध्मान–ऊर्ध्ववात–तिमिर रोगी
(११) अति उष्ण और रूक्ष शरीर वाले
(१२) क्रोध से सन्तृप्त व्यक्ति
(१३) गर्भिणी
(१४) आमावस्था
(१५) मद व पित्त विकार वाले व्यक्ति

3.3.11 सुगन्धित द्रव्य, माला, रत्नादि धारण करना –रत्न, आभूषण पहिनने तथा स्नान के पश्चात् सुगन्धित इत्र, चन्दन आदि लगाने एवं सुगन्धित पुष्पों की माला धारण करने से शरीर में वृष्यता, सौभाग्य, मंगल, सुन्दरता और आयु में वृद्धि होती है। शरीर सुन्दर लगता है। मन में प्रसन्नता होती है तथा ओज में वृद्धि होती है। अच्छी लम्बी नाभि से नीचे तक लटकती हुई माला धारण करनी चाहिए। कमल और गुलाब के लाल पुष्पों के अतिरिक्त अन्य लाल पुष्पों की माला धारण नहीं करनी चाहिए।

चन्दन–केशर–कस्तूरी–लेपन, सुगंधद्रव्य जलाकर धूप में वस्त्रों को बसाना तथा पुष्प–माला, गुलदस्तों अथवा इत्र–फुलेल और सेंट आदि से वस्त्र, शरीर और घर को

सुवासित रखना उत्तम है। ये सब कार्य ऋतु के अनुकूल होना चाहिए। देशी इत्रों में गर्मी में गुलाब, वर्षा में खस और शीत में हिना उत्तम है।

3.3.12 सिर पर साफा, टोपी आदि धारण करना –सिर को ढके रखने से पवित्रता रहती है। बालों की वृद्धि तथा वायु, धूप और धूल से रक्षा होती है।

3.3.13 पैरों में जूते आदि धारण करना – पैरों में जूते आदि पहिनने से नेत्रों के दृष्टि–बल में वृद्धि होती है। ये पैरों की त्वचा के लिए हितकर होते है। पैरों की काँटे आदि तथा रोगों से रक्षा होती है। बल, पराक्रम तथा सुख प्राप्त होता है।

बिना जूतों के पहिने भ्रमण करने से व्यक्ति रोगी और अल्पायु बनता है तथा नेत्रों की ज्योति को हानि होती है।

3.3.14 दण्ड धारण करना –दिनचर्या में ही घर से बाहर निकलते समय हाथ में दण्ड लेकर चलना चाहिये। हाथ में लिया हुआ बेंत, छड़ी अथवा दण्डा थकावट को कम करने में सहायक होता है तथा फिसलने और गिरने से भी बचाता है। शरीर का सहायक होता है। कुत्ता, सर्प आदि हिंसक जन्तुओं तथा सींग वाले पशुओं को भय दिलाता है। वृद्धावस्था में अति सहायक होता है। सत्व, उत्साह, बल, तेज, स्थिरता एवं धीरता प्रदान करता है।

3.3.15 छत्र (छाता) धारण करना –दिनचर्या के अन्तर्गत घर से बाहर निकलने पर छाता धारण करना चाहिए। छाता धारणा करने से भावी रोगों की शान्ति, भय, भूत, प्रेत पिशाच आदि से रक्षा होती है। यह शिर का आच्छादन कर धूप, हवा, धूल एवं जल से रक्षा करते हुये कल्याणकारक होता है।

यह वर्ण, नेत्रज्योति और ओज की वृद्धि करता है। ईति (शारीरिक दुर्दैव) को शान्त करता है। इस प्रकार यह कल्याणकारी होता है।

3.3.16 जीविकोपार्जन – प्रातः काल नित्य कर्मो से निवृत्त होकर, भोजन के पश्चात्, जीविका उपार्जन हेतु छाता, पादुका धारण कर बाहर जाने के विधान के साथ ही आयुर्वेद सामाजिक स्वास्थ्य के पहलू को ध्यान रखते हुये यह भी निर्देश देता है कि मनुष्य को जीविका के लिये उन्हीं उपायों का प्रयोग करना चाहिये, जो नीति विरूद्ध न हो।

शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह हेतु आवश्यक हिताहित एवं सुख–दुःख का ध्यान रखते हुये ऐसी किसी वृत्ति से जीविकोपार्जन करना चाहिये जो शारीरिक, मानसिक, नैतिक, तार्किक, वाचिक या आर्थिक रूप से दूसरों का अहित न करे। तभी शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुये, अध्ययन कर, स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

१. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क. आहार शरीर को पुष्ट करने वाला तथा ––––––––––– को बढ़ाने वाला होता है।

ख. शरीर के भोजन की अपेक्षा –––––––––––––– भोजन अधिक आवश्यक है।

ग. –––––––––––––– नस्य जन्म से मृत्युपर्यन्त लिया जा सकता है।

२. बहुविकल्पीय प्रश्न –

क. रसरत्नसमुच्चय में कितने प्रकार के अंजनों का वर्णन है –

(च) २ (छ) ३ (ज) ४ (झ) ५

ख. आचार्य चरक ने धूम्रपान के कितने प्रकारों का वर्णन किया है –

(च) २ (छ) ३ (ज) ४ (झ) ५

३. एक शब्द में उत्तर दीजिए –

क. अन्नमार्ग से जो कुछ शरीर के अंदर जाता है, उसे क्या कहते हैं?

ख. प्रतिमर्श नस्य के कितने काल बताए गए हैं?
ग. किस दोष से नेत्र को विशेष भय रहता है?
४. लघुत्तरीय प्रश्न –
क. भोजन के सामान्य नियमों की चर्चा करें।
ख. स्वाध्याय का महत्व बताइए।
ग. वस्त्रधारण करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

3.4 रात्रिचर्या

दिनचर्या का विधिवत् पालन करने से, रात्रिचर्या में विशेष सन्ध्योपासना, भोजन ग्रहण एवं निद्रा का समावेश किया जा सकता है।

3.4.1 सन्ध्योपासना –प्रातः और सायं काल में ईश्वर उपासना के साथ सूर्योपासन, इष्टदेव अर्चना, प्राणायाम करना चाहिये। दीर्घकाल तक सन्ध्योपासन से मनुष्य दीर्घायु, बुद्धि, यश, कीर्ति तथा वर्चस्व प्राप्त करता है। उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु दोनों काल में प्राणायाम एवं ईश्वर उपासना दोनों लाभकर हैं।

आयुर्वेद सायंकाल भोजन, मैथुन, निद्रा, पठन तथा मार्गगमन इन पांच बातों को वर्ज्य कहता है। सायंकाल में भोजन करने से अन्नज रोग, मैथुन से गर्भ विकृति, निद्रा से दारिर्द्य, पठन से आयु हानि तथा मार्गगमन से त्रास होता है।

3.4.2 रात्रिप्रहर – आयुर्वेद में रात्रि के प्रदोष तथा अन्तिम प्रहरों में अध्ययन (वेदाभ्यास) तथा शेष दो प्रहरों में शयन करने का निर्देश दिया है।

3.4.3 रात्रि भोजन –रात्रि के प्रथम प्रहर में ही भोजन कर लेना चाहिए तथा भोजन दिन की अपेक्षा कुछ कम खाना चाहिए। देर से पचने वाले गरिष्ठ पदार्थों को नहीं खावें। भोजन करने व सोने के समय में न्यूनतम दो–तीन घण्टे का अन्तर होना चाहिए। तत्काल भोजन करके सो जाने से पानी पीने का अवसर नहीं मिलता। भोजन करने के बाद, सोने से पूर्व एक–एक घण्टे के अन्तर से कम से कम दो या तीन बार जल लेना चाहिए। इससे भोजन पचने में भी सहायता मिलती है, रात्रि में अपच होने की सम्भावना नहीं रहती, निद्रा अच्छी आती है तथा प्रातः शौच भी साफ हो जाता है। सोने से पूर्व उष्ण पेय चाय, काफी आदि पीने से निद्रा अच्छी नहीं आती। अच्छी नींद न आने से प्रातः उठने पर शरीर में थकावट रहती है, स्नान तथा व्यायाम आदि करने का मन नहीं होता।

रात्रि में सोने से पूर्व दाँतों की सफाई करना आवश्यक है। अधिकांश व्यक्ति दुग्ध पीकर सो जाते हैं। ऐसे लोगों के जल्दी ही दाँतों में कीड़े आदि लग जाते, खराब हो जाते हैं।

प्रतिदिन जैसे शरीर को स्नान द्वारा सफाई की जाती है, और कपड़ों की धुलाई साबुन तथा पानी से होती है, उसी प्रकार नेत्रों की सफ़ाई के लिए प्रतिदिन रात्रि को सोने से पहले नेत्रों में अंजन करने का विधान है।

आजकल डॉक्टर काजल लगाने को मना करते है। कारण यह है कि घर में मातायें– बहिनें एक ही अंगुली से घर के कई बच्चों को लगाती हैं, इससे रोग दूसरे में फ़ैलता है। अँगुली साबुन से अच्छी तरह धो लेने से किसी प्रकार के संक्रमण का भय नहीं रहता। ख्न,

3.4.4 रात्रि शयन –शयन स्थान पवित्र, स्वच्छ तथा हवादार होना चाहिए। पलंग घुटनों तक ऊंचा होना चाहिए। सिराहना न बहुत ऊंचा और न बहुत नींचा, ठीक प्रकार का होना चाहिए। पलंग की बिस्तर की लंबाई चौड़ाई ऐसी होनी चाहिए कि जिस पर बिना कष्ट भली–भाँति सोया जा सके।

सोते समय सिर पूर्व या दक्षिण दिशा की तरफ़ रखना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रहना चाहिए कि पैर पूज्य जनों की तरफ़ करके न सोना पड़े। यदि ऐसा है तो फ़िर सिर किसी भी दिशा में रखा जा सकता है।

शयन विधि –रात्रि में सोने से पूर्व वस्त्रों की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जो वस्त्र हम सारे दिन पहिने रहें, उसे पहन कर सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। सोने से पहले वस्त्रों को बदल लेना चाहिए तथा सोते समय किसी अंग पर कोई दबाव नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए वस्त्र ढ़ीले पहनने चाहिए।

इसी प्रकार बिस्तर भी स्वच्छ हो, जहाँ तक हो सके अपना बिस्तर अलग रखना चाहिए। किसी दूसरे के बिस्तर का उपयोग किसी विशेष परिस्थिति में ही करें। हर व्यक्ति के लिए चारपाई या तखत अलग होना चाहिए। सोने वाला कमरा हवादार होना चाहिए। खिड़कियाँ बन्द करके सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। कई बार सर्दियों में लोग कोयले की अंगीठी आदि कमरे को गरम करने के लिये रख लेते हैं। ऐसा करने से कार्बन–डाई–ऑक्साइड और कार्बन मोनोआक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इस स्थिति में लोग सोते के सोते रह जाते हैं। अतः सोने से पहले शुद्ध वायु के आवागमन का ध्यान रखना चाहिए।

रात्रि के प्रथम प्रहर में सोने से पूर्व, रात्रि के अन्तिम प्रहर में अथवा निद्रा त्यागने पर, अपने–अपने धर्म की मान्यताओं के अनुसार चिन्तन करना चाहिए।

3.4.5 तत्त्वबोध की साधना –सोने से पूर्व तत्त्वबोध की साधना शिथिलीकरण की मुद्रा में करनी चाहिए। दिनभर के कार्यों की समीक्षा करनी चाहिए। ऐसा करने से निद्रा अच्छी आ जाती है। सोने से पूर्व यह भावना करें कि शरीर के पंच तत्व अपने मूल तत्व में विलीन हो रहे हैं। हमारे आज के जीवन का अन्त हो रहा है।

भूलों के लिए क्षमा–पश्चाताप–प्रायश्चित जैसे क्रम बनाने चाहिए। इसके बाद विचार करना चाहिए कि निद्रा भी एक प्रकार की मृत्यु है। संसार का और अपने स्थूल शरीर का अस्तित्व बोध उस बीच समाप्त हो जाता है। संसार, घर– परिवार इन सबकी रक्षा सोता हुआ व्यक्ति भी नहीं कर सकता। इसे मृत्यु स्थिति मानकर सब कुछ परमात्म चेतना को सौंपकर निश्चिंत भाव से नींद–मृत्यु की गोद में जाने की मनोभूमि बनाना चाहिए। अब शान्ति से चादर ओढ़कर लेट जाएँ, दोनों हाथ (आधी मुट्ठी बन्द) छाती के ऊपर रखें। ध्यान मुद्रा में आँखें बन्द कर लें। इस प्रकार सब प्रभु को सौंपकर स्वंय भी उसी की गोद में जाना चाहिए।

3.4.6 विशेष – आयुर्वेद में रात्रि में स्वस्थ मन एवं शान्तिपूर्वक शयन का निर्देश किया है। तथा ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में दिन में सोने का निषेध किया गया है। अतः बुद्धिमान मनुष्य को अपने शरीर की क्रियायें शास्त्रोक्त दिनचर्या एवं ऋतुचर्या के अनुरूप सम्पन्न कर, स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिये।

सामान्यतः स्वस्थ व्यक्ति के लिये दिनचर्या–रात्रिचर्या उपाय कहा गया है तथापि रोगी के लिये ब्रह्ममुहुर्त में उठना, दंतधावन, जिह्वानिर्लेखन, नस्य, कर्णपूरण, धूम्रपान, गण्डूष, कवल धारण, शिर तैल मर्दन, स्नान, वस्त्रधारण आदि दिनचर्या रोग के अनुरूप योग्य, अयोग्य का विचार करके करना चाहिये। इसी तरह इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि आयुर्वेद के दो प्रयोजनों में प्रथम स्वास्थ्य रक्षण के अन्तर्गत स्वस्थ हेतु दिनचर्या रात्रिचर्या का वर्णन है। जबकि व्याधिग्रस्त को रोग एवं रोगी के बलाबल के अनुसार ही पथ्य–अपथ्य, दिनचर्या एवं रात्रिचया का पालन करना चाहिये। इसी तरह प्रत्येक ऋतु के

अनुसार जब सूर्य, चन्द्रमा की स्थिति बदलती है तब शरीरस्थ तदनुरूप दोष व्यवस्था बदलने से दिनचर्या में भी संशोधन करना आवश्यक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

१. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क. रात्रि में सोने से पूर्व ——————————— की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

ख. सोने से पूर्व यह भावना करें कि शरीर के ————————————— अपने मूल तत्व में विलीन हो रहे हैं।

२. सत्य / असत्य बताइए –

क. जो वस्त्र हम सारे दिन पहने रहें, उसे पहन कर सोना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।

ख. सोते समय सिर पूर्व या दक्षिण दिशा की तरफ रखना चाहिए।

३. बहुविकल्पीय प्रश्न –

क. आयुर्वेद सायंकाल किन बातों को वर्ज्य कहता है –

(च) भोजन (छ) निद्रा (ज) मैथुन (झ) उपर्युक्त सभी

ख. रात्रिभोजन रात्रि के किस प्रहर में कर लेना चाहिए –

(च) प्रथम (छ) द्वितीय (ज) तृतीय (झ) कभी भी

४. लघुत्तरीय प्रश्न –

क. रात्रिचर्या में विशेष रूप से किन बातों का समावेश होता है।

ख. रात्रिभोजन में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

ग. 'तत्वबोध की साधना' पर प्रकाश डालें।

3.5 सारांश

प्रत्येक मनुष्य एक स्वस्थ व निरोग जीवनयापन करना चाहता है। इसके लिए उसे सर्वप्रथम अपनी दिनचर्या को सुधारना आवश्यक है। पिछली इकाई (दिनचर्या – भाग १) तथा इस इकाई (दिनचर्या – भाग २) को पढ़ने के बाद आप अवश्य समझ गए होंगे कि एक आदर्श जीवनशैली किस प्रकार होनी चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त ईश्वर आराधना के लिए श्रेयस्कर होता है। ब्रह्ममुहूर्त में उठने से सौन्दर्य, बुद्धि, धन–धान्य, स्वास्थ्य व दीर्घायु की प्राप्ति होती है, शरीर कमल के समान खिल उठता है। इसी प्रकार रात्रि को सोने से पहले तत्वबोध की साधना कर अपने को ईश्वर को सौंप कर सोना व उठने के बाद आत्मबोध की साधना कर भगवान को धन्यवाद देना चाहिए।

प्रातःकाल से लेकर रात्रि–शयन तक जो दिनचर्या बताई गई है उसका व्यवस्थित तरीके से पालन कर हम विभिन्न रोगों व मानसिक परेशानियों से भी बच सकते हैं, व जीवनपर्यंत एक निरोगी, स्वस्थ व सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

3.6 शब्दावली

- उद्वर्तन – उबटन लगाना
- कषाय वस्त्र –पूराने वस्त्र
- दृष्टिक्लेद – ऑखो का मल

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१(क) अग्नि	१(ख) सात्विक	१(ग) प्रतिमर्श
२(क) झ–५	२(ख) छ–३	
३(क) आहार	३(ख) १४	३(ग) कफ
१(क) वस्त्रों	१(ख) पंच तत्व	
२(क) असत्य	२(ख) सत्य	
३(क) झ–उपर्युक्त सभी	३(ख) च–प्रथम	

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रह्मवर्चस, (२०११) आयुर्वेद का दर्शन क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, हरिद्वार
2. गौड़, डॉ० शिवकुमार, (२०००) स्वस्थवृत्तम्, नाथ पुस्तक भण्डार, रोहतक
3. मेहरा, डॉ० राखी, (२०१०) आयुर्वेद परिचय, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली
4. आचार्य चतुरसेन, (२००६) स्वास्थ्य रक्षा, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
5. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय संख्या ४१, जीवेम शरदरू शतम्, सम्पादक–ब्रह्मवर्चस, (१९९८) अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
6. सिंह, प्रो० रामहर्ष, (२००७) स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
7. चोरडिया, डॉ० चंचलमल, (२००४) कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

3.9 सहायक ग्रन्थ सूची

1. चरक संहिता – पूर्वार्ध
2. सुश्रुत संहिता – भाग १
3. अष्टांग संग्रह
4. अष्टांग हृदय
5. भाव प्रकाश निघण्टु

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

१. रात्रिचर्या के प्रमुख घटकों का विस्तार से वर्णन करें।
२. दिनचर्या के पालनीय नियमों में भोजन, नस्य कर्म व अंजन कर्म सविस्तार वर्णन करें।

इकाई 4 सद्वृत्त एवं आचार रसायन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 सद्वृत्त
 4.3.1 सद्वृत्त की आवश्यकता
 4.3.2 सद्वृत्त की अवधारणा
 4.3.3 सद्वृत्त की परिभाषा
 4.3.4 सद्वृत्त के आयाम
  मानसिक सद्वृत्त
  चारित्रिक सद्वृत्त
  सामाजिक सद्वृत्त
  सामाजिक दायित्व
  धार्मिक सद्वृत्त
  पारिवारिक सद्वृत्त
  वैयक्तिक सद्वृत्त
 4.3.5 सद्वृत्त पालन के लाभ
 4.3.6 सद्वृत्त पालन लाभ का मूल्यांकन
4.4 आचार रसायन
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.9 सहायक ग्रंथ सूची
4.10निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के जीवन पर जिस प्रकार दिनचर्या, ॠतुचर्या व रात्रिचर्या का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार उसके जीवन पर कुछ सामाजिक वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है तथा उसके कुछ सामाजिक दायित्व भी होते हैं; इनका निर्वहन वह तभी कर सकता है जब वह स्वयं मानसिक रूप से स्वस्थ होगा। हमारे आचार्यों ने सद् वृत्त व आचार रसायन आदि का वर्णन मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु व उसके फलस्वरूप समाजमूलक स्वास्थ्य की उन्नति के लिए ही किया है। यह किस प्रकार सम्भव है, इसका विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे–

- सद्वृत्त का अर्थ व महत्व

- सद्वृत्त पालन करने के लाभ
- आचार रसायन का अर्थ व प्रयोजन
- मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु सद्वृत्त व आचार रसायन की भूमिका

4.3 सद्वृत्त

4.3.1 सद्व्त्त की आवश्यकता – जगत की उत्पत्ति के साथ–ही–साथ दु:ख की उत्पत्ति भी अवश्यम्भावी है, तदनुसार उसी काल से मनुष्य ने दु:ख या व्याधि के निराकरण के उपायों का चिन्तन भी प्रारम्भ कर दिया और यह कार्य सृष्टि पर्यन्त चलता रहेगा। इसीलिए आयुर्वेद को शाश्वत कहा गया है। यहाँ पर यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि आज के वैज्ञानिक युग में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने जो उन्नति की है वह महत्त्वपूर्ण है। इसके विकास की दिशा तर्क व तथ्य पर आधारित है। इस पद्धति से विश्लेषण करते हुए शरीर की प्रत्येक कोशिका में होने वाली प्रक्रियाओं को समझा गया है और इससे उत्पन्न ज्ञान के विकास हेतु अनेकों शाखाओं का विकास हो गया है और आगे होता जा रहा है। ये विशेषज्ञ शरीर के एक–एक अवयव या प्रक्रिया के शरीरक्रियात्मक, नैदानिकीय तथा चिकित्सीय पक्षों के अध्ययन तथा विकास में संलग्न हैं। यह चिकित्सा विज्ञान की विशेषज्ञता का युग है।
इस तर्क व तथ्य पर आधारित प्रणाली से जहाँ एक ओर हमें यह लाभ हुआ कि शरीर के प्रत्येक अवयव तथा तत्सम्बन्धी प्रक्रिया का सूक्ष्मतम ज्ञान प्राप्त होता जा रहा है वहीं दूसरी तरफ हमें एक बड़ी हानि भी हुई है कि सम्पूर्ण शरीर को एक समझने का हमारा दृष्टिकोण लुप्त होने लगा है। इससे चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान की समस्याएं सुलझने के बजाय उलझती ही गयीं और हम 'अंधगज' न्याय की तरह आंशिक सत्य को ही सम्पूर्ण मानने को तत्पर होने लगे हैं। परन्तु इधर पिछले कुछ वर्षों में मानव विज्ञान की तर्क व तथ्य पर आधारित पद्धति के दोष तथा उससे उत्पन्न समस्याओं की ओर आधुनिक वैज्ञानिकों का ध्यान गया है और सम्पूर्ण शरीर–मानस इकाई को एक मानकर एक सम्पूर्णात्मक (Holistic) चिकित्सा विज्ञान के विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है।
आयुर्वेद में सद्वृत्त का सम्पूर्ण प्रसंग मेण्टल हाइजीन (मानसिक स्वच्छता) से सम्बन्धित है। वैसे तो दिनचर्या–ऋतुचर्यादि के रूप में वर्णित सम्पूर्ण स्वस्थवृत्त का वर्णन भी पूर्ण मनोशारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से किया गया है और दिनचर्या–ऋतुचर्यादि में अनेक मानस स्वास्थ्यकर भावों का प्रवेश है। आचार्यों ने सद्वृत्त का प्रसंग उच्चकोटि के मानस स्वास्थ्य को प्राप्त करने तथा पूर्ण समाज मूलक स्वास्थ्य की उन्नति हेतु ही उपस्थापित किया है।

4.3.2 सद्वृत्त की अवधारणा – आयुर्वेद तो प्रारम्भ से सम्पूर्ण है। यहाँ तो केवल एक मनुष्य को पूर्ण इकाई न मानकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ही एक इकाई माना गया है और 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। आयुर्वेद में शरीर, इन्द्रिय, सत्व तथा आत्मा के संयोग को ही जीवन माना गया है, इसे ही आयु की संज्ञा दी है और इसी के ज्ञान–विज्ञान का नाम आयुर्वेद है।
आधुनिक रहन–सहन के प्रभाव से मन तथा इन्द्रियाँ अधिकाधिक प्रभावित हो रही हैं। इस प्रकार मन के माध्यम से भी वही रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जो बाह्य इंद्रियों के प्रभावित होने से होते हैं। परन्तु इसमें विवेक की कमी ही कारण है, बाह्य जगत् का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। अतः आयुर्वेद में इन्हें श्प्रज्ञापराधजश रोग माना गया है। मन त्रिगुणात्मक कहा गया है। सत्व, रज, तम ये तीन मन के गुण कहे गये हैं। इनमें से सत्व साम्यावस्था का द्योतक है। इसके विपरीत रज एवं तम मन के दोष माने गये हैं। वाह्य कारणों से प्रभावित होकर

चिन्तन आदि द्वारा मन के व्यथित होने से रज व तम की वृद्धि होने की सम्भावना बनी रहती है। रजोगुण की वृद्धि से मन उत्तेजित हो जाता है तथा तमोगुण की अधिकता से यह शिथिल हो जाता है। इन मानस दोषों से वात, पित्त, कफ आदि शरीर दोषों पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है। किसी एक, दो या तीन दोषों के विकृत होने से सारे शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है। वात, पित्त आदि शरीर दोषों पर मानस दोषों का नियंत्रण रहता है। रजोगुण की वृद्धि से वात, तमोगुण की वृद्धि से कफ और सत्व गुण रजोगुण की वृद्धि से पित्त दोष की वृद्धि होती है। दोषों की विकृति एवं प्रकृति, कुल, देश, काल, वय, साम्यादि भावों के संयोग से नानाविध रोग उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार शरीर व मन एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। विशेष रूप से मन शारीरिक क्रियाओं को सदा प्रभावित करता रहता है और यदि इसका उपयुक्त नियमन न किया जाय तो व्याधिजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसी प्रकार की अशुभ परिस्थितियों की रोकथाम के लिए तथा मानस दोषों के नियंत्रण के उद्देश्य से आयुर्वेद में सद्वृत्त का वर्णन किया गया है। सद्वृत्त–योग साधना हेतु योगशास्त्र में कहे गये यम एवं नियम के समान ही है। काम, क्रोध, भय, ईर्ष्या, मोह, हर्ष, लोभ, शोक, चिंता आदि मनोविकारों की उत्पत्ति रज–तम की विकृति से सम्बन्धित है।अतः सद्वृत्त पालन से समाज मूलक रोग निवारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जा सकती है।

4.3.3 सद्वृत्त की परिभाषा– विधेयात्मक चिन्तन, श्रेष्ठ वृत्तियों (विचार, भावना) के समुच्चय को सद्वृत्त की संज्ञा दी गयी है और इन्हें कर्म रूप देने (जिसे सामाजिक मर्यादा, मान्यता प्राप्त है) को ही सदाचार कहते हैं।

इसका पालन करने से एक ही साथ आरोग्य और इंद्रियों पर विजय को मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

4.3.4 सद्वृत्त के आयाम – (च० सू० ८/१७–३४, सु० चि० २४/८६–११३)

अपने प्रति एवं अन्य जनों के प्रति हमारा आचरण हमारी शारीरिक चेष्टाओं एवं मनोवृति को दर्शाता है। अन्य व्यक्ति हमारे आचरण से हमारे विषय में अपनी अच्छी अथवा बुरी धारणा बनाते हैं। हमारी सभ्यता के आदिकाल से ही हमारे आचरण के सम्बन्ध में पूर्वजों द्वारा यम एवं नियमों के रूप में निर्देश दिए हैं। यम एवं नियमों आदि को दृष्टि में रखते हुए संहिता ग्रन्थों में हमारे लिए इस सम्बन्ध में मार्ग बताए गए हैं। इसके अनुसार व्यवहार करना सदैव, प्रत्येक परिस्थिति में हमारे लिए यश एवं सौभाग्य का कारण होता है। अतः अपना कल्याण चाहने वाले सभी व्यक्तियों को सदा अपनी स्मरण शक्ति को जागरूक रखते हुए सद्वृत्तों का पालन करते रहना चाहिए। सद्वृत्त एवं शिष्टाचार के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का ज्ञान आवश्यक है–

मानसिक सद्वृत्त –मन सर्वदा त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) एवं त्रिभावों (इच्छा, राग, द्वेष) से प्रभावित रहता है। सत्त्व गुण का मन पर सदैव श्रेष्ठ प्रभाव पड़ता है, परन्तु रज एवं तम तथा त्रिभाव मन को इधर–उधर भटकाते रहते हैं। इन भटकाने वाले कारणों पर नियन्त्रण रखने की चेष्टा करने के प्रयत्न ही मानसिक सद्वृत्त के अन्तर्गत आते हैं।

करणीय–

(१) विवेक से कार्य करें,
(२) प्रसन्न मन रहें,
(३) दूसरे के कटु वचन सहें,
(४) राग एवं द्वेष के कारणों को नष्ट करें,

(५) सुख बाँटे, दुःख बँटायें,
(६) निश्चिन्त, निडर, उत्साही बने रहें,
(७) इंद्रियों का दमन कर सदैव शान्तिप्रिय रहें,
(८) दुःख सुख में धैर्य रखें ।

अकरणीय–

(१) चित्त चंचल न करें,
(२) इन्द्रियों का अतियोग, अयोग एवं मिथ्यायोग न करें,
(३) क्रोध, हर्ष के वशीभूत न हों,
(४) ईर्ष्या, चिंता, भय आदि न करें,
(५) अभिमान न करें, सिद्धि प्राप्त होने पर भी अभिमान न करें,
(६) अधिक महत्त्वाकांक्षा न करें,
(७) दैन्य भाव को प्राप्त न करें,
(८) मोह एवं लालच न करें,
(९) बैर में रुचि न रखें,
(१०) अनिष्ट करने की इच्छा या स्वयं का अनिष्ट न करें,
(११) धैर्य न छोडें,
(१२) उद्दण्ड मन वाले न बनें,
(१३) निजी व्यक्तियों पर अविश्वास न करें, तथा सर्वसाधारण पर विश्वास अथवा सन्देह न करें,
(१४) अकेले सुखी रहने की चेष्टा न करें,
(१५) दुःखदायी आचार विचार वाले न बनें,
(१६) सर्वदा सोच विचार में तल्लीन न रहें ।

उपरोक्त सभी बातें वर्जनीय मानी गयी हैं। इसलिए इन्हें आचरण एवं व्यवहार में न लायें।

चारित्रिक सद्वृत्त –

करणीय–

(१) सत्यप्रिय एवं शान्तिप्रिय रहें,
(२) विनयशील हों,
(३) समयानुसार मितभाषी हों,
(४) कुशल बनें,
(५) क्षमा करें,
(६) धैर्य रखें,
(७) लज्जा करें,
(८) मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाये रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था बनाये रखें,
(९) नर–नारी परस्पर एक दूसरे के प्रति पवित्र दृष्टि रखें ।

अकरणीय–

(१) इन्द्रियलोलुप न बनें,
(२) पर–धन की इच्छा न करें,
(३) नियमों का उल्लंघन न करें,
(४) किसी का गुप्त रहस्य न खोलें,

(५) दुर्जन लोगों का आश्रय न लें,
(६) द्यूत तथा वेश्या प्रसंग में रुचि न रखें,
(७) पर–स्त्री से संबंध न रखें ।

सामाजिक सद्वृत्त –

करणीय–

(१) अतिथियों का सम्मान करें,
(२) आचार्यों एवं सिद्ध पुरुषों का सम्मान करें,
(३) वृद्ध कुल तथा वय में श्रेष्ठ जनों का सम्मान करें,
(४) सभी प्राणियों से आत्मीयता रखें,
(५) भयभीत जनों को आश्वस्त करें,
(६) दुर्गति में पड़े लोगों की रक्षा करें,
(७) मर्यादाओं का पालन करें,
(८) वर्जनाओं से बचें,
(६) नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करें,
(१०) समाजनिष्ठ बने रहें,
(११) चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सफलता का वातावरण बनायें,
(१२) अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करें,
(१३) मनुष्य के मूल्यॉंकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद् विचारों और सद्कर्मों को मानें,
(१४) दूसरों के साथ वह व्यवहार न करें, जो आपको अपने लिए पसंद नहीं,
(१५) संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगायें,
(१६) परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व दें,
(१७) सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नव सृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लें,
(१८) राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान् रहें ।

अकरणीय–

(१) अव्यावहारिक न बनें तथा दुःखद व्यवहार न करें,
(२) लोगों से कलह न करें,
(३) श्रेष्ठ एवं योग्य लोगों से विरोध न करें,
(४) स्त्री, मित्र एवं सेवकों के साथ अधिक न रहें,
(५) अधार्मिक लोगों के साथ न रहें,
(६) पूज्य लोगों तथा मंगलमय पदार्थों को बायें न करें तथा विपरीत पदार्थों को दक्षिण न करें,
(७) जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेद–भाव न रखें।

सामाजिक दायित्व –

१. अशिक्षा दूर करने के लिए प्रौढ़ पाठशालाओं और रात्रि पाठशालाओं की स्थापना व संरचना।

२. प्रेरक विचारधारा प्रस्तुत करने वाले ज्ञान मंदिरों की, प्रेरक पुस्तकालयों की प्रतियोगितायें।

३. व्यायाम शालायें, खेलकूद, शस्त्र–संचालन और शरीर बल प्रदर्शन की प्रतियोगितायें।
४. देहाती क्षेत्रों में स्वच्छता आन्दोलन। नये ढ़ंग के टट्टीघर, पेशाबघर, सोख्ता नाली, कूड़े के लिए गड्ढे, गोबर न जलाने, मिल–जुल कर गाँव की सफाई करने जैसी प्रवृतियाँ पैदा करके ग्रामीण जीवन में व्याप्त गन्दगी को दूर करने का अभियान।
५. खर्चीली विवाह–शादियों के स्थान पर बिना खर्च के आदर्श विवाहों का प्रचलन। मृतकभोज, भूत–पिशाच, भिक्षावृत्ति, पर्दा, ऊँच–नीच, बाल विवाह जैसी अगणित सामाजिक कुरीतियाँ हटाने के लिए विभिन्न स्तरों पर प्रचार, विरोध एवं प्रतिरोधात्मक आन्दोलन का सृजन एवं नेतृत्व।
६. भावनात्मक नव निर्माण के लिए साहित्य, संगीत, कला, अभिनय, चित्र प्रदर्शनी, प्रवचन, सम्मेलन आदि के समस्त प्रचार साधनों का आरम्भ एवं अभिवर्द्धन।
७. शाक, फल, फूल, वृक्ष आदि उगाने, अन्न बचाने, जूठन न छोड़ने, दावतों पर नियन्त्रण, सुधरे ढंग की कृषि, पकाने तथा खाने सम्बंधी जानकारी, कम ईंधन से जलने वाले चूल्हे आदि के द्वारा खाद्य समस्याओं का समाधान।
८. धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एव आध्यात्मिक शिक्षा के लिए व्यापक एवं प्रखर प्रशिक्षण व्यवस्था। व्यक्तिगत जीवन में सत्त्प्रवृत्तियों के समावेश को प्रोत्साहन, सत्कार्यों का अभिनन्दन।
६. जीव–दया, पशु–पक्षियों के साथ सद्व्यवहार।
१०. गृह उद्योगों का व्यापक प्रचलन, फ़ैशन, फिजूलखर्ची एवं अपव्यय को निरुत्साहित करना।

4.3.4.5 धार्मिक सद्वृत्त –करणीय–

(१) आस्तिक बनें, दान करें, जप करें, मंत्रोच्चारण करें,
(२) देव, गौ, ब्राह्मण, गुरु, सिद्ध, वृद्ध एवं आचार्य आदि की पूजा करें,
(३) हवन एवं यज्ञ करें, अग्नि में जूठा न डालें,
(४) परमात्मा की सर्वव्यापकता, समदर्शिता और न्यायशीलता पर आस्था रखें,
(५) सच्चा भक्त ईश्वर प्रदत्त उपहारों में से न्यूनतम ही अपने लिए लेता है, शेष पीड़ित मानवता की सेवा में लगा देता है,
(६) ईश्वर हमें ऐसी प्रेरणा, शक्ति एवं उमंग प्रदान करें, जिनसे प्रेरित होकर हम महामानवों जैसे विचार एवं कर्म अपनाकर मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध कर सकें,
(७) देवताओं से तरह–तरह की मनौती माँगने और उन्हें खुशामद या रिश्वत के बाल प्रलोभनों से प्रसन्न करने के छिछोरेपन को हम जितनी जल्दी छोड़ दें, उतना ही उत्तम है। देवता न इतने मूर्ख या ओछे हो सकते हैं और न उन्हें सस्ते प्रलोभनों से बहलाया–फुसलाया जा सकता है।

अकरणीय–

(१) पाप न करें,
(२) शव को देखकर अनाद्रित न करें,
(३) धार्मिक वृक्ष, ध्वज, गुरु, पूज्य एवं अकल्याणकारक वस्तुओं की छाया न लाँघें।

पारिवारिक सद्वृत्त –

(1). छोटों का बड़ों के प्रति कर्त्तव्य–

१. बड़ों को उचित सम्मान, श्रद्धा सुविधा देने का सभी छोटे लोग समुचित ध्यान रखें।

२. बड़ों के अनुभवों से लाभ उठाने और पिछली सेवाओं के लिए कृतज्ञ रहने की भावना विद्यमान रहे।
३. समय–समय पर उनसे परामर्श लेकर उनमें से जो उचित व आवश्यक हो उसका पालन किया जाए।
४. शारीरिक स्थिति से अशक्त लोगों के लिए भोजन, स्नान, स्वच्छता, चिकित्सा आदि की सुविधा देने तथा शरीर यात्रा में आवश्यक सहायता करने की व्यवस्था रखना।

(2). बड़ों का छोटों के प्रति कर्त्तव्य–

१. वृद्धों को, घर के समझदार लोगों की विवेक बुद्धि विकसित करने में सहायता देनी चाहिए व अत्यधिक नियंत्रण में नहीं रखना चाहिए।
२. वृद्धों की बुद्धिमत्ता इस बात में है कि वे अपने अनुभव परामर्श का लाभ भी नई पीढ़ी को देते रहें और इतनी ढील भी दें कि उन्हें अपनी रुचि का रहन–सहन अपनाने की छूट रहे। हाँ, स्वतन्त्रता को उच्छृंखलता और अनैतिकता की सीमा तक नहीं पहुंचने दिया जाये।
३. कमाऊ लोगों पर इस बात की भारी जिम्मेदारी है कि वे अपने द्वारा उपार्जित धन को पूरे परिवार की धरोहर समझें और अपने लिए अनावश्यक खर्च की चाह न करें।
४. बड़े भाइयों को, छोटे भाई–बहिनों के प्रति एक अभिभावक की तरह स्नेह प्यार देकर खर्च वहन करना चाहिए।
५. क्रोध, आवेश, उत्तेजना, अवज्ञा या उच्छृंखलता के बीज जहाँ भी, जिसमें भी पनपें उन्हें आरम्भ से ही रोके जाने, सुधारे, सँभाले जाने का ध्यान पूरे परिवार को रहे।

(3). दम्पत्ति के कर्त्तव्य–

१. प्रजनन की संख्या कम से कम रहे व बच्चों के बीच ५ वर्ष का अन्तर रहे।
२. कुरीतियाँ एवं अन्ध परम्परायें हटाने पर जोर दिया जाय, भले ही वृद्धों एवं बड़ों का विरोध ही क्यों न सहना पड़े।
३. पतिव्रत धर्म और पत्नीव्रत धर्म का पालन किया जाय।
४. सुसन्तति निर्माण के लिए पति–पत्नी को सन्तानोत्पादन की क्रिया आरम्भ करने से पूर्व ही अपने दोष–दुर्गुणों का परिष्कार करना चाहिए।
५. शिशु जन्म के बाद माता–पिता को समस्त प्रकार की घर की ऐसी परिस्थितियाँ बनानी चाहिए, जिसमें अस्वच्छता, कुढ़न, मनोमालिन्य, उद्दण्डता एवं अनैतिकता के लिए कोई गुंजाइश न रहे।
६. माता–पिता को परस्पर लड़ने–झगड़ने से पूरी तरह बचना चाहिए और काम क्रीड़ा पर अधिक से अधिक नियंत्रण रखना चाहिए।

वैयक्तिक सद्वृत्त –

(1). स्वच्छता सम्बन्धी सद्वृत्त–

१. ऋतु के अनुसार दोनों समय स्नान करें,
२. मलत्याग के पश्चात् मलद्वार एवं पाद–प्रक्षालन करें,
३. पक्ष में कम–से–कम तीन बार क्षौर कर्म करें,
४. स्वच्छ वस्त्र धारण करें,
५. छत्र, दण्ड, शिरस्त्राण (टोपी) एवं पादत्राण (जूते) धारण करें,
६. केश प्रसाधन करें,
७. नित्य तैलाभ्यंग करें,
८. औषधियुक्त धूम्रपान विशेषकर भोजन पान, दन्तधावन के पश्चात् करें,

९. ध्यानपूर्वक देखते हुए चलें,
१०. प्रशस्त औषधियों को धारण करें,
११. गन्दे स्थानों पर न रहें।

(2). आहार सम्बन्धी सद्वृत्त–

(१) अष्टविध आहारविधि विशेषायतन का पालन करें–
(क) प्रकृति– गुरु, लघु आदि भोज्य पदार्थों का विचार
(ख) करण– पाकादि संस्कार का विचार
(ग) संयोग– खाद्य पदार्थों के मिश्रण का विचार
(घ) राशि– मात्रा का विचार
(ङ) देश– स्थान का विचार
(च) काल– समय का विचार
(छ) उपयोग संस्था– उपयोग के नियम का विचार
(ज) उपयोक्ता– उपयोग करने वाले का विचार
(२) भोज्य पदार्थ ताजा ही ग्रहण करें। मांस, शुष्क शाक तथा मोदक आदि पदार्थ को बासी भी प्रयोग कर सकते हैं।
(३) दधि, मधु, सत्तू, घृत, लवण आदि पदार्थों के अतिरिक्त निःशेष भोजन न करें
(४) भोजन करने के बीच–बीच में थोड़ा–थोड़ा जल (घूंट–घूंट) पीना चाहिए।
(५) सत्तू यथोचित विधि से ग्रहण करें।

(3). अध्ययन सम्बन्धी सद्वृत्त–

(१) निम्नलिखित समय में अध्ययन न करें–विद्युत चमकते समय, अनुचित मौसम में, दिशाओं में अग्नि जलते समय, अग्नि के उपद्रव के समय, महोत्सव के समय, उल्कापात के समय, महाग्रहों के संयोग के समय, चन्द्रमाहीन तिथियों मे, सन्ध्याकाल में
(२) बिना शिक्षक द्वारा पढ़ाये जाने पर अध्ययन न करें
(३) हीन अक्षरों वाले तथा अधिक लम्बे वाक्यों का अध्ययन न करें
(४) अतिशीघ्रता या अतिधीमी गति से अध्ययन न करें
(५) अधिक जोर या अधिक धीमें स्वर से न पढें
(६) लेट कर न पढ़ें
(७) अधिक दूर या अधिक पास से न पढ़ें
(८) तत्काल भोजनोपरान्त या तत्काल व्यायाम के बाद न पढ़ें
(९) दिग्भ्रान्त करने वाला साहित्य न पढ़ें
इसके अलावा निम्न बातों का ध्यान रखें–
(१) मेरुदण्ड सीधा रखना चाहिए
(२) एकाग्रचित्त होकर बैठना चाहिए
(३) शान्त वातावरण में तथा समुचित प्रकाश में पढ़ना चाहिये
(४) ऋषि प्रणीत एवं महामानवों का साहित्य तथा जो भी प्रेरणादायक हो, वैसे सत्साहित्य का सतत अध्ययन करना चाहिये।

(4). व्यायाम सम्बन्धी सद्वृत्त–

(१) कष्टदायक वाहन पर न चढें,
(२) श्रम से पूर्व व्यायाम न करें,
(३) पर्वतश्रेणी पर भ्रमण न करें,

(४) वृक्ष पर न चढें,
(५) जल की वेगवती धारा को न रोकें,
(६) घुटनों के बल अधिक न बैठें,
(७) अंगों को टेढ़ा न चलायें।

(5). मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त–

(१) अमैथुनार्ह स्त्रियाँ– रजस्वला, रुग्णा, असमान वय वाली, कुरूपा, अकुशल, बिना इच्छा वाली, दूसरे पुरुष को चाहने वाली तथा विकृत योनि वाली स्त्री के साथ मैथुन न करें।
(२) अमैथुनार्ह स्थल– धार्मिक वृक्ष के नीचे, खुले स्थान में, चौराहे पर, श्मशान में, वधस्थल में, जल में, औषधियों के समीप, ब्राह्मणगृह, गुरुगृह, देवमन्दिर, विद्यामन्दिर एवं सार्वजनिक स्थान में मैथुन न करें।
(३) अमैथुनार्ह काल– सन्ध्याकाल में, निन्दित तिथियों में, अपवित्रता से, बिना वृष्य औषधियों के सेवन के, बिना निश्चय के, बिना उत्तेजना के, अधिक भोजन के बाद, विषम स्थिति में, मल–मूत्रादि वेग से पीड़ित, श्रम, व्यायाम तथा उपवास से शिथिलावस्था में तथा बिना एकान्त के मैथुन नहीं करना चाहिए।

(6). त्यागने योग्य दुष्प्रवृत्तियाँ–

(१) चोरी, बेईमानी, छल, मुनाफाखोरी, हराम की कमाई, मुफ्तखोरी आदि अनीतियों से दूर रहना, अनीति से उपार्जित धन का उपयोग न करना।
(२) मांसाहार तथा मारे हुए पशुओं के चमड़े का प्रयोग बन्द करना।
(३) पशुबलि अथवा दूसरों को कष्ट पहुंचाकर अपना भला करने की प्रवृत्ति छोड़ना।
(४) विवाहों में वर पक्ष द्वारा दहेज लेने तथा कन्या पक्ष द्वारा जेवर चढ़ाने का आग्रह न करना।
(५) विवाहों की धूम–धाम में धन की और समय की बर्बादी न करना।
(६) नशे (तम्बाकू, शराब, भांग, गांजा, अफीम आदि) का त्याग।
(७) गाली–गलौज एवं कटु–भाषण का त्याग।
(८) जेवर और फैशनपरस्ती का त्याग।
(९) अन्न की बर्बादी और जूठन छोड़ने की आदत का त्याग।
(१०) जाति–पाँति के आधार पर ऊँच–नीच या छूआछूत न मानना।
(११) पर्दा प्रथा का त्याग– किसी को पर्दा करने के लिए बाध्य न करना, स्वयं पर्दा न करना।
(१२) महिलाओं एवं लड़कियों के साथ पुरुषों और लड़कों की तुलना में भेद–भाव या पक्षपात न करना।

(7). अपनाने योग्य सद् वृत्तियाँ–

(१) कम से कम दस मिनट नित्य प्रार्थना (अपने धर्मानुसार)।
(२) घर में अपने से बड़ों का नियमित अभिवादन करना।
(३) छोटों के सम्मान का ध्यान रखना, उनसे तू करके न बोलना।
(४) अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहना, किसी काम को छोटा न समझना।
(५) नियमित स्वाध्याय–जीवन को सही दिशा देने वाला सत्साहित्य कम से कम आधा घण्टे नित्य स्वयं पढ़ना या सुनना।
(६) सादगी का जीवन जीना, औसत भारतीय स्तर के रहन–सहन के अनुरूप विचार एवं अभ्यास बनाना, उसमें गौरव का अनुभव करना।

(७) सद्विचार के प्रसार हेतु प्रयासरत् रहना।
(८) परिवार में सामूहिक प्रार्थना (अपने–अपने धर्मानुसार) का क्रम प्रारम्भ करना।
(६) प्रतिवर्ष अपना जन्मदिन आध्यात्मिक वातावरण में सामूहिक रूप से मनाना तथा जीवन की सार्थकता के लिए व्रतशील जीवन का क्रम बनाना।
(१०) समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूकता, समाज में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए किये जाने वाले सामूहिक प्रयासों में उत्साह भरा योगदान देना।
(8). सामान्य त्याज्य वृत्त–
(१) मद्यपान न करें,
(२) अधिक समय नष्ट न करें,
(३) दीर्घसूत्री न होवें,
(४) अधिक न बोलें,
(५) अधिक शयन या अधिक जागरण न करें,
(६) रात्रि में अनुचित स्थान पर न जायें,
(७) निर्जन घर या जंगल में प्रवेश न करें,
(८) हिंसक पशुओं का पीछा न करें,
(६) अपनी शक्ति का अपव्यय न करें,
(१०) नाक न सिकोड़ें व नख न बजायें,
(११) प्रवृत्त मल–मूत्र के वेगों को धारण न करें।

4.3.5 सद्वृत्त पालन के लाभ –

उपर्युक्त सद्वृत्त पालन से मनुष्य को–
(१) आरोग्य एवं स्वस्थ जीवन,
(२) शतायु,
(३) साधु पुरुषों में पूजनीय स्थान,
(४) लोक में यश तथा ख्याति,
(५) प्राणिमात्र का प्रीति भाजन तथा
(६) पुण्यात्माओं के उत्कृष्ट लोकों की प्राप्ति हो जाती है।
आचार्य चरक ने कहा है कि सद्वृत्त के अनुष्ठान से दो लाभ होते हैं–
(१) आरोग्य, तथा
(२) इन्द्रियों पर विजय

4.3.6 सद्वृत्त पालन के लाभ का मूल्यांकन –उपर्युक्त सद्वृत्त को परिवर्तित रूप में आज भी प्रयोग किया जा सकता है और उसके प्रयोग द्वारा मानसिक स्वास्थ्य के उन्नयन द्वारा पूरे समाज को संस्कारित किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से सद्वृत्त पालन की उपयोगिता के मूल्यांकन हेतु प्रो० राम हर्ष सिंह द्वारा एक आपरेशनल रिसर्च प्रोजेक्ट का संचालन किया गया था।

इस अध्ययन हेतु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर के निकट के एक गांव की एक निश्चित जनसंख्या का चयन किया गया। सर्वप्रथम उस जनसंख्या का मानसिक स्वास्थ्य संबंधी सर्वेक्षण किया गया और वहाँ के वासियों के मानसिक स्वास्थ्य का मिश्र एवं सिंह (१६७६) द्वारा विकसित मानसिक स्वास्थ्य प्रश्नावली के आधार पर मूल्यांकन किया गया। तदुपरांत उनमें से लगभग दस प्रतिशत व्यक्तियों को सद्वृत्त पालन के लिए प्रेरित किया गया। इस हेतु प्रति सप्ताह दो बार परामर्श कार्यक्रम रखा गया और चुने हुए लोगों को

जितना संभव हो उतना ही सद्वृत्त पालन करने को कहा गया। एक वर्ष के उपरान्त उन्हीं व्यक्तियों पर पुनः सर्वेक्षण करके यह जानने का प्रयत्न किया गया कि उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पूर्वोक्त सद्वृत्त पालन का क्या प्रभाव हुआ। इस मूल्यांकन के कुछ परिणाम अग्रिम तालिका में संक्षिप्त रूप से दिये जा रहे हैं।

चयन की गयी ग्रामीण बस्ती के युवकों के मानसिक स्वास्थ्य के स्तर का सर्वेक्षण

मानव स्वास्थ्य	एम, एच, आई, (**) स्कोर्स	जनसंख्या प्रतिशत	
		प्रथम सर्वेक्षण	द्वितीय सर्वेक्षण
उत्तम	<25	5	10
सन्तोषप्रद	25-50	40	50
असन्तोषप्रद	>50	55	40

* मिश्र एवं सिंह द्वारा विकसित मानस स्वास्थ्य प्रश्नावली (1979) के आधार पर

** मेन्टल हेल्थ इंडेक्स (एम. एच. आई.)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि सद्वृत्त पालन का मानसिक स्वास्थ्य पर निश्चय ही उत्तम प्रभाव होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

१. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क. विशेष रूप से ––––––––––– शारीरिक क्रियाओं को सदा प्रभावित करता रहता है।

ख. मन को भटकाने वाले कारणों पर नियंत्रण रखने की चेष्टा करने के प्रयत्न ही ––––––––––––– सद्वृत्त के अंतर्गत आते हैं।

२. सत्य / असत्य बताइए –

क. निजी व्यक्तियों पर अविश्वास तथा सर्वसाधारण पर विश्वास या संदेह नहीं करना चाहिए।

ख. जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर भेदभाव रखना चाहिए।

३. बहुविकल्पीय प्रश्न –

क. सच्चा भक्त ईश्वर प्रदत्त उपहारों में से न्यूनतम ही अपने लिए लेता है तथा शेष किसकी सेवा में लगा देता है –

(च) माता–पिता (छ) बन्धु बान्धव (ज) पीड़ित मानवता (झ) रिश्तेदार

ख. आचार्य चरक के अनुसार सद्वृत्त के पालन से मिलने वाले लाभ हैं –

(च) आरोग्य (छ) इन्द्रियों पर विजय (ज) उपर्युक्त दोनों(झ) कोई नहीं

४. लघुउत्तरीय प्रश्न –

क. सद्वृत्त की परिभाषा बताइए।

ख. सामाजिक दायित्वों के बारे में बताइए।

ग. बड़ों का छोटों के प्रति क्या कर्त्तव्य बताया गया है।

घ. अपनाने योग्य किन्हीं तीन सद्प्रवृत्तियों को लिखिए।

4.4 आचार रसायन

आयुर्वेद में यह कल्पना की गयी है कि रसायन गुणयुक्त औषधि तथा आहार के प्रयोग के बिना भी, मात्र सदाचार पालन एवं सद्वृत्त पालन से भी शरीर व मन पर रसायनवत् प्रभाव पड़ता है, और आचार पालन मात्र से रसायन के सभी फल प्राप्त होते हैं। अर्थात् धातु पोषण की प्रक्रिया में सुधार तथा उसके परिणाम स्वरूप दीर्घायुष्य, व्याधिक्षमत्व एवं मेधा वृद्धि प्राप्त होते हैं। संभवतः आचार–पालन से मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है और मन स्वस्थ रहने से शारीरिक क्रियाएँ स्वस्थ परम्परा में काम करती हुई शरीर में रसायनवत् प्रभाव उत्पन्न करती हैं।संहिताओं में रसायन तंत्र के प्रसंग में कुछ सद्वृत्तक नियमों का उल्लेख है, जिन्हें 'आचार रसायन' कहा गया है। आचार रसायन के अन्तर्गत कहे गये भाव भी सद्वृत्त के ही समान मानस तथा सामाजिक स्वास्थ्य के पोषक हैं। उनका रसायन तंत्र के सदंर्भ में उल्लेख करने का उद्देश्य यह बताना है कि –

१. सदाचार पालन से मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति के साथ–साथ उसका जैविक प्रभाव होकर शरीर में भी रसायनवत् प्रभाव होते हैं। मन शरीर को प्रभावित करता ही रहता है– 'सत्वं शरीरमनुविधीयते' (चरक)

२. दूसरा उद्देश्य यह भी है कि बिना सदाचार पालन के रसायन द्रव्यों के सेवन से यथोचित लाभ नहीं हो सकता।

आचार रसायन में निम्न भावों का समावेश होता है–

''क्षमा सत्यम् दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजा च हवनं संतोषस्तप आर्जवम्।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।।'' **(शा. सं.)**

क्षमा, सत्यभाषण, दया, दान, शुचिता (पवित्रता), प्रियभाषण, इन्द्रिय पर नियन्त्रण, देवों की पूजा, हवन, तप, संतोष, तपस्या, सभी धर्मों में आदर और परहित भावना से ओत–प्रोत होना आचार रसायन है।आचार्य चरक ने आचार रसायन का वर्णन करते हुये बताया है–

''सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्।।
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्।।
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्।।
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम्।
शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्।।
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्।।'' **(च. चि. १.४.३०–३४)**

सत्य बोलना, क्रोध न करना, मद्य सेवन और मैथुन से दूर रहना, हिंसा न करना, शांत एवं प्रिय वचन आचार रसायन है। जप, पवित्रता, सदा दान, तप, देवता, गो, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु एवं वृद्धजनों की पूजा करने में तत्पर रहना आचार रसायन है। क्रूरता से दूर रहना, सर्वदा दया करना, समय पर जगना तथा नींद लेना, सदा दूध व घृत का उचित सेवन करना आचार रसायन है। देश, काल व मात्रा को जानना, युक्ति को जानना, अहंकार न करना, उत्तम आचार–विचार, संकीर्ण विचार से दूर रहना, अध्यात्म विषय में अपनी

इन्द्रिय को लगाना आचार रसायन है। आस्तिकता (ईश्वर पर विश्वास), जितात्मा (इन्द्रियों को जीतना), वृद्धों की सेवा करना, धर्मशास्त्र को पढ़ना तथा एक जैसा रहना आचार रसायन है।उपर्युक्त गुणों से युक्त होना स्वयं व दूसरों के लिये हितकारी होता है और जीवन का मूल सदाचार है। आयुर्वेद में वर्णित १०१ मृत्यु में से १०० प्रकार की आगन्तुज मृत्युओं पर सदाचार व सद्विचार के धारण से ही विजय हो जाती है।

आचार्य वाग्भट्ट ने स्वस्थ पुरुष का वर्णन करते हुये कहा है–

''नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विष्येष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगाः।।''

(अ. ह्र. सू. ४/३७)

अर्थात् नित्य हित आहार–विहार करने वाला, सोच–समझ कर कार्य करने वाला, विषयों (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि) में अनासक्त, दान देने वाला, हानि लाभ में सम रहने वाला, सत्यपरायण, क्षमावान, आप्तपुरुषों की सेवा करने वाला पुरुष निरोगी व शतायु होता है।

चरक संहिता में भी बताया गया है–

''मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं सत्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः।।''

(च. शा. २/४७)

अर्थात् सुख देने वाली बुद्धि, सुखकारक वचन एवं कर्म, अपने अधीन मन और शुद्ध तथा पापरहित बुद्धि जिनके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने तथा योग सिद्ध करने में तत्पर रहते हैं, उन्हें शारीरिक अथवा मानसिक कोई भी रोग नहीं होता।

अतः इन सब बातों का समावेश आचार रसायन के अन्तर्गत किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

१. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क. आचार रसायन के अन्तर्गत कहे गए भाव भी सद्‌वृत्त के ही समान मानस तथा ———————— स्वास्थ्य के पोषक हैं।

ख. बिना सदाचार पालन के ———————— द्रव्यों के सेवन से यथोचित लाभ नहीं हो सकता।

२. बहुविकल्पीय प्रश्न –

क. आचार रसायन में किन भावों का समावेश है –

(च) क्षमा (छ) दान (ज) सत्यभाषण (झ) उपर्युक्त सभी

ख. ''सत्वं शरीरमनुविधीयते'' – इस श्लोक का अर्थ है –

(च) मन शरीर को प्रभावित करता है (छ) शरीर मन को प्रभावित करता है

(ज) उपर्युक्त दोनों (झ) कोई नहीं

३. दीर्घउत्तरीय प्रश्न –

क. आचार्य चरक के अनुसार आचार रसायन का वर्णन कीजिए।

4.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे कि शारीरिक आरोग्य की जितनी आवश्यकता अनुभव की जाती है, मानसिक आरोग्य पर उससे भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। सदाचार, सद्‌वृत्त, आचार रसायन का पालन करने से हमें मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति तो होती ही है व साथ ही साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी बना रहता है, क्योंकि मन

शरीर को प्रभावित करता ही रहता है। उपर्युक्त बताई गई बातों के प्रति यदि हम जागरूक हो जाएँ तो आत्म परिष्कार के साथ–साथ समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, रोगों व अशिक्षा आदि को दूर करने में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं जिससे स्वस्थ परिवार, सभ्य समाज व समुन्नत राष्ट्र की स्थापना सम्भव हो सकती है।

4.6 शब्दावली

सम्पूर्णात्मक – समग्र रूप में
शरीरक्रियात्मक – शरीर से सम्बन्धित क्रिया विधि
अवज्ञा – अवहेलना करना
परिष्कार – त्याग करना/सुधार करना

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

१(क) मन	१(ख) मानसिक
२(क) सत्य	२(ख) असत्य
३(क) ज–पीड़ित मानवता	३(ख) ज–उपर्युक्त दोनों
१(क) सामाजिक	१(ख) रसायन
२(क) झ–उपर्युक्त सभी	२(ख) च–मन शरीर को प्रभावित करता है

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रह्मवर्चस, (२०११) आयुर्वेद का दर्शन क्रिया शारीर एवं स्वस्थ वृत्त, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, हरिद्वार
2. गौड़, डॉ० शिवकुमार, (२०००) स्वस्थवृत्तम्, नाथ पुस्तक भण्डार, रोहतक
3. मेहरा, डॉ० राखी, (२०१०) आयुर्वेद परिचय, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली
4. आचार्य चतुरसेन, (२००६) स्वास्थ्य रक्षा, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
5. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय संख्या ४१, जीवेम शरदः शतम्, सम्पादक–ब्रह्मवर्चस, (१६६८) अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
6. सिंह, प्रो० रामहर्ष, (२००७) स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
7. चोरडिया, डॉ० चंचलमल, (२००४) कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

4.9 सहायक ग्रन्थ सूची

1. चरक संहिता – पूर्वार्ध
2. सुश्रुत संहिता – भाग १
3. अष्टांग संग्रह
4. अष्टांग हृदय
5. भाव प्रकाश निघण्टु
6. माधव निदान

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. सद्वृत्त की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए इसके प्रमुख आयामों का सविस्तार वर्णन करें।
2. आचार रसायन से आप क्या समझते हैं? एक स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु इसकी भूमिका स्पष्ट करें।

इकाई 5 आहार की अवधारणा, उद्देश्य, गुणधर्म एवं मात्रा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 आहार की अवधारणा
5.4 आहार के उद्देश्य
5.5 आहार के गुणधर्म एवं मात्रा
5.6 आहार के सिद्धान्त
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेश्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नबोधाय योगोभवति दुःखहा।। (गीता)

श्रीमद् भगवत् गीता के छठे अध्याय में श्री कृश्ण कहते हैं कि स्वस्थ जीवन जीने के लिए निश्चित ही प्राकृतिक एवं नियमित आहार–विहार, समय पर षयन तथा जागरण आवश्यक हैं तथा जो व्यक्ति प्रकृति के इस स्वास्थ्य संबंधी विषेशकर ऋतुचर्या के सिद्धान्तों का पालन नहीं करता प्रकृति उसे रोगग्रस्त कर देती है। अतः योगासन, प्राणायाम, दिनचर्या ऋतुचर्या, रात्रिचर्या के साथ साथ आहार का स्वास्थ्य की दृष्टि से विषेश सर्वाधिक महत्त्व है। आज प्रकृति में प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ एवं बुद्धिमान कहलाने वाली ''मानव जाति'' ही सर्वाधिक रोगों से ग्रसित होती जा रही है। शारीरिक, मानसिक, आगन्तुज एवं सहज रोग इन चारों प्रकार के रोगों से पीड़ित मनुष्य दिनचर्या में भूल, विरोधी एवं प्रदूषित आहार, असंतुलित जीवनचर्या के कारण नित नये चिकित्सालयों, चिकित्सकों की संख्या बढ़ते हुये भी रोगी कम न होकर रोग एवं रोगी दोनों बढ़ते ही जा रहे है। ऐसी दुविधायुक्त स्थिति में यह इकाई आहार की अवधारणाा, उद्देश्य, गुणधर्म एवं मात्रा से संबंधी जन जागरण के आहार रूपी स्वास्थ्य की जानकारियों के साथ संक्षेप में वर्णित किया जा रहा है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्न समझ सकेंगे –

- आहार की अवधारणा, आहार करने का वास्तविक उद्देष्य एवं आहार के गुणधर्म तथा आहार के रसों के अनुसार यथा मधुर, अम्ल, लवण, कटू, तिक्त, कशाय आदि के अनुसार गुणधर्म तथा आहार की आयु के अनुसार विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं जैसे नवजात षिशु किषोर अवस्था, युवा अवस्था एवं प्रौढ़ा अवस्था में आहार की स्वास्थ्यवर्धक हितकारी मात्रा का वर्णन या अध्ययन किया गया है। साथ ही आहार संबंधित विषेश सिद्धान्त विरोधिक आहार का भी आज के परिप्रेक्ष्य में वर्णन किया गया है।

5.3 आहार की अवधारणा

''आहार'' शब्द का तात्पर्य अन्ननलिका में विभिन्न 4 प्रकार से सेवित द्रव्यों से है। ''आहियते अन्ननलिका युक्तदाहारः''। आहार चार प्रकार से ग्रहण किया जाता है। अषित, पीत, लीढ़

एवं खादित। प्रत्येक व्यक्ति की (Diet) की मात्रा उसकी पाचन षक्ति (Digestive capacity) पर निर्भर करती है। आहार की वास्तविकता उपादेयता उसकी मात्रा पर निर्भर करती है। स्वस्थ जीवन के मूलतत्त्वों के अन्तर्गत आहार की अवधारणा को मुख्य आधार माना गया है। स्वस्थ रहने एवं स्वस्थ होने के लिये आहार का दोनों प्रयोजन की दृष्टि से महत्त्व है। प्राणियों में ''भूख लगना'' एक स्वाभाविक आवश्यक प्रक्रिया है। इस ''भूख को मिटाने'' एवं शारीरिक पोषण तत्त्वों की कमी की पूर्ति करना आहार का सर्वमान्य प्राथमिक आधार है। आहार क्यों करें? कब करें? कब नहीं करे? कैसे करे? कितना करे? कैसा करें? आदि प्रश्नों का उत्तर इस इकाई के अन्तर्गत हम विवेचन करेगें।

आहार प्रीणनः सद्योवलकृद्देहधारणः।
स्मृर्त्यायुः षक्ति वर्णोजः सत्त्वषोभा विवर्द्धनः।

आहार के द्वारा हमें संतृप्ति शरीर धारण, स्मृति, आयु, बल, वर्ण ओज, सत्त्व एवं शोभा (सौन्दर्य) आदि की वृद्धि प्राप्त होती है। प्राणियों का जीवन स्वस्थ बना रहे इस हेतु आहार की सर्वप्रथम महती आवश्यकता है। आहार के अन्तर्गत उपयोग में आने वाले सभी द्रव्य 'पाज्चभौतिक'' है तथा हमारा शरीर भी पाञ्चभौतिक है। अतः पंचमहाभूतप्रधान इस सृष्टि में आहार करने वाला तथा सेवित आहार सामग्री सभी पंचतत्त्वों से निर्मित एक दूसरे को पूर्ति करने हेतु परस्पर पूरक है।

हमारे शरीर में सात धातुयें होती है यथा – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र। इन सात धातुओं का उत्तरोत्तर क्रमशः निर्माण होता है। इन धातुओं की क्षतिपूर्ति एवं निर्माण हेतु पांचभौतिक आहार द्रव्यों के भोज्यांशों की आवश्यकता होती है। भोज्यांश शरीर में दो प्रकार से विभक्त होकर कार्य करते हैं। भोज्यांशों के पाचन प्रक्रिया के तहत सर्वप्रथम धातुओं के निर्माण की सतत् प्रक्रिया चलती है। तथा दूसरे भाग से शक्ति का निर्माण होता है। धातुयें एवं शक्ति निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की ''पाक एवं परिवर्तन; की क्रिया आहार द्वारा होता है।

रसरक्तादि धातुओं के निर्माणोपरान्त जिस अंश से शक्ति का निर्माण होता है उसका एक प्रकार से नाश होकर जो कुछ अंश बच जाता है वह मल एवं मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है। शरीरस्थ उक्त देह धारण हेतु शरीर धातु के निर्माण हेतु, मांस तत्त्व(Protien) शाक तत्त्व(Carbony drates) वसा तत्त्व(Fat) तथा लवण (Salts) और पानी आदि की आवश्यकता होती है। जिसे आहार द्वारा प्राप्त किया जाता है।

आहार की अवधारणा के अन्तर्गत मनुश्य के बाल्यकाल से ही आहार एवं पोषण की प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। हमारे देश में स्वस्थ की दृष्टि से बच्चों में कुपोषण एवं महिलाओं में पाडूरोग (खून की कमी) होना आम बात है। ऐसे में भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय तथा खाद्य एवं पोषण बोर्ड भी आहार के बारे में विशेष जागरूकता के विभिन्न कार्यक्रम संचालित किये जा रहे है। जिसमें बच्चों को स्तनपान कराने तथा गर्भावस्था में विभिन्न प्रकार के आइरन, कैल्शियम युक्त आहार के बारे में होने वाले लाभों के संदर्भ में जागरूक जाता है।

शिशु में आहार की अवधारणा

नवजात शिशु एवं माता में आहार के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण मानक निम्नानुसार है।

1. जन्म के तुरन्त बाद ही स्तनपान का नवजात के आरंभ करा देना चाहिये। प्रयास करें कि नवजात एक घंटे के भीतर मां के दूध का स्तनपान करें।

2. शिशु को प्रथम छः माह तक केवल मां के दूध का स्तनपान ही करावें। वही उसका ''श्रेष्ठ आहार'' है, अन्य आहार सामग्री जैसे – बाहरी दूध, खाद्य एवं पेय पदार्थ यहां तक की पानी भी नहीं देना चाहिए।
3. शिशु के 6 माह के पश्चात स्तनपान के साथ साथ अन्य उपयुक्त एवं पर्याप्त पूरक आहार का सेवन कराना चाहिये।
4. शिशु को मां का स्तनपान न्यूनतम दो वर्श तक या उसके बाद भी कराना चाहिये।

षिषु एवं छोटे बच्चे की आहार पद्धतियों को अन्तर्गत विशेष रूप से स्तनपान सर्वोत्तम शुरूआत होती है। मनुष्य सहित प्राणियों में स्ननपान की प्रक्रिया नवजात शिशु एवं माता के मध्य घनिष्ठ–प्रगाढ़ संबंध बनाने का एक अनूठा प्राकृतिक तरीका है।
स्नतपान के लाभ निम्नानुसार है : –

- शिशु का विकास होता है।
- मां के साथ प्राकृतिक प्रगाढ़ संबंध/विश्वास बढ़ता है।
- शिशु को ज्ञानेन्द्रियों सूघना, चखना, सूनना, स्पर्श करना आदि को उत्प्रेरित करता है।
- मां के दूध का फैटी एसिड, बौद्धिक क्षमताओं (आइ.क्यू.) को बढ़ाता है।
- शिशु की नेत्रज्योति को बढ़ाता है।
- मस्तिष्क विकास के साथ सीखने की शक्ति को बढ़ाता है।
- संक्रमण जन्य रोगों से शिशु को बचाता है।
- अतिसारीय (दस्त) संक्रमण को रोकता है।
- बच्चों में होने वाली रक्ताल्पता को दूर करता है।
- स्तनपान से प्रसवोपरान्त रक्तस्राव में कमी आती है।
- रक्तपान से मां एवं शिशु दोनों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- स्तनपान से मधुमेह पीड़ित माताओं में ''इन्सुलिन;; की आवश्यकता में भारी कमी आती है।
- माताओं मे स्तनपान से ब्रेस्ट केंसर (स्तन अर्बुद) तथा अण्डाशयी कैंसर आदि नहीं होता।
- स्तनपान से बालक एवं मां दोनों की हड्डियां मजबूत होती है जिससे ''ओरिस्टयोपोरोसिस'' नामक रोग की संभावना नहीं होती।
- मां का दूध सुपाच्य एवं शिशु के लिये अमृततुल्य होता है।
- मां के दूध की दुग्धशर्करा शीघ्र पाचित होकर शिशु को ऊर्जा प्रदान करती है।
- मां के दूध से सभी विटामिन्स पर्याप्त मात्रा में शिशु को स्तनपान द्वारा प्राप्त होते हैं।
- मां का दूध सदैव स्वच्छ एवं निर्मल होता है।
- मां का दूध शिशु को प्रकृति का उपहार है जिसे खरीदने की आवश्यकता नहीं होती है। वर्तमान में विकसित राष्ट्रों में मां का दूध बैंक बनाकर बेचने की योजना की जा रही है।

- स्तनपान से पुनः पुनः गर्भधारण में अंतर रखने मे सहायता मिलती है। जिससे ''परिवार नियोजन'' में सहायता मिलती है।
- स्तनपान से बालक के शरीर भार में वृद्धि तथा मां में अतिरिक्त बढ़ा हुआ भार कम करने में सहायता मिलती है।
- दुलार करते हुये स्तनपान से बच्चे की भूख तथा विकास को बढ़ावा मिलता है।
- प्रसूता मां के दूध मे प्रारंभिक पीला गाढ़ा दूध जिसे ''कोलोस्ट्रम'' कहते हैं यह संक्रमणरोधी होता है।
- शिशु को प्रथम 6 माह में ग्लूकोज का जल, शहद, दही एवं पावडर का दूध नहीं देवें। इससे संक्रमण (अतिसार–दस्त) का खतरा बढ़ता है।
- छः माह के बाद शिशु को पर्याप्त ऊर्जा, प्रोटीन एवं पोषक तत्त्वों की पूर्ति हेतु पूरक आहार देना चाहिये।

पूरक आहार

- पूरक आहार में दलिया, दाल, सब्जियां आदि को मिश्रित कर देना चाहिये।
- खिचड़ी के अन्तर एक दो सब्जियाँ डालकर खिलाने से उत्तम पोषक तत्त्वों की वृद्धि होती है।
- चावल, चोकर का आटा, मूंग, चना, मूंगफली, गुड़, तेल, नमक घी, दूध, आदि का आहार में उपयोग करना चाहिये।
- विटामिन 'ए' तथा 'लोहतत्त्व' की पूर्ति हेतु हरी पत्तेदार सब्जियाँ, गाजर, कद्दू, पपीता, आम, चीकू, केले मौसमी फलो का उपयोग करना चाहिये।

गार्मिणी माताओं का आहार

- सामान्य भोजन में वृद्धि करें
- पर्याप्त पोषणयुक्त आहार को सुनिश्चित करें।
- लौह तत्त्व (आइरन) एवं फालिक एसिड की गोलियों का सेवन करें।
- पत्तेवाली हरी सब्जियों का सेवन करें, इनमें फोलिक एसिड होता है।
- साबुत चने, दालें, अंकुरित दालें, पत्तेदार सब्जियाँ, गुड़, तिल, मूंगफली, खजूर का सेवन अधिक करें।
- ऋतुफल एवं मौसम्मी, पपीता एवं सेवफल आदि का सेवन करें।
- गाय का दूध, दही एवं लस्सी का सेवन करें।
- आहार में आयोडीनयुक्त नमक का सेवन करें जिससे गर्भ में पल रहे बच्चे के मस्तिष्क का विकास हो सके।
- थोड़ी मात्रा में लेकिन अधिक बार आहार सेवन करें।
- तरल द्रव्यों का पर्याप्त मात्रा में सेवन करें।

किशोरावस्था मे आहार की अवधारणा–

किशोरावस्था बाल्यावस्था एवं युवावस्था के मध्य की एक महत्त्वपूर्ण अवस्था है। सामान्यतः यह आयु 11 से 18 वर्ष के मध्य की आयु को कहा जाता है। ऐसी अवस्था मे शारीरिक एवं मानसिक योवनावस्थाजन्य भावो में बदलाव आते हैं। बालक एवं बालिकाओं में द्वितीयक

लैंगिक लक्षणों का प्रादूर्भाव होता है। बालिकाओं में मासिक स्राव आना, शारीरिक बनावट में बदलाव आता है तथा भावनात्मक एवं मानसिक बदलाव भी आना प्रारंभ हो जाते है। शारीरिक विकास तीव्रता के साथ होता है। अतः उचित एवं पर्याप्त मात्रा में आहार लेना चाहिए। अधिक व्यायाम एवं परिश्रम के कारण अतिरिक्त पोषण हेतु प्रोटीन, कैल्शियम, लौह तत्त्व, लवण तत्त्व की पूर्ति हेतु आहार लेना चाहिए। प्रोटीन शरीर के अंगों को पूर्ण विकास हेतु आवश्यक होता है । खनिज लवण, अस्थियों तथा दांतों के निर्माणनार्थ, मजबूती हेतु कैल्शियम की अधिक मात्रा का आहार में संयोजन करें। साथ ही रक्त में हीमोग्लोबिन संश्लेषणार्थ लौह लवण की आवश्यकता हेतु खनिज लवणों का प्रयोग अधिक करना चाहिए।

सभी विटामिन्स यथाः विटामिन ए, थायमिन, राइबोफलेबिन, नियासिन, विटामिन सी, विटामिन डी, फोलिक एसिड, विटामिन बी $_{12}$, हेतु संतरा, नारंगी, टमाटर, नींबू, पपीता, केला, खजूर, का सेवन दूध, गुड़ एवं हरी सब्जियां, गाजर, अंकुरित अन्न, ताजे फलों का सेवन करना चाहिये।

प्रौढ़ों में आहार की अवधारणा

60 वर्ष से अधिक आयु में अंग शिथिल एवं कार्यक्षमता में कमी आती है परिणामस्वरूप पाचन शक्ति कमजोर होने लगती है।

जरावस्था में प्रोटीन की सामान्य आवश्यकता होने के कारण केवल जीर्ण–शीर्ण ऊतकों की मरम्मत एवं कुछ नवीन ऊतकों के निर्माण हेतु आहार से प्रोटीन की सामान्य मात्रा जैसे चना, मूंग, मटर, सोयाबीन, पनीर, दूध, दही, अखरोट, बादाम, गेहूं, चावल, टमाटर, हरी सब्जियों से युक्त भोजन सामग्री का सेवन करना चाहिये।

आहार में अधिक परिश्रम करने वालों को अधिक वसा की आवश्यकता होती है, लेकिन जरावस्था में चूंकि दिमागी कार्य अधिक होता है अतः अधिक वसायुक्त आहार नहीं लेना चाहिए। अधिक वसा युक्त आहार लेने से संतर्पणजन्य रोग एवं ह्रदय संबंधी व्याधियां /उपद्रव होने की संभावनायें बनी रहती है।

1 रेशेयुक्त (फाइबर) आहार का सेवन करें।
(चोकर युक्त आटा, छिलकायुक्त दालें उन्हें लेने से कब्ज की शिकायत दूर होती है।)

2 हरी पत्तेदार सब्जियों के अधिक सेवन करने से पोष्टिक तत्त्व कैल्शियम, आयरन आदि की प्राप्ति होती है।

3 तरल द्रव्य आहार में अधिक लेने से अम्लपित्त कम होता है साथ की कब्जियत भी दूर होती है। पाचन शक्ति बढ़ती है।

4 हल्का सुपाच्य, मुलायम एवं आसानी से चबने वाला या सब्जियों में गलाकर आहार का सेवन करना चाहिये।

5 मौसमी फल, आंवला, पपीता, अंकुरित अन्न, दलिया, खिचड़ी, गाय का दूध, टमाटर सूप, सलाद, गाजर, खीरा, मूली, ककड़ी तथा विटामिन सी एवं कैल्शियम युक्त आहार का सेवन करना चाहिये।

5.4 आहार का उद्देश्य

- क्षुधा को शान्त करना
- स्थूल शरीर को शक्तिमान बनाना।

- शरीर में बल की वृद्धि करना
- रोग प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाना
- शरीर का पोषण करना
- मानसिक स्वास्थ्य (सात्विक भाव) को बढ़ाना
- आध्यात्मिक स्वास्थ्य का संरक्षण करना
- शरीर, मन एवं आत्मा को स्वस्थ रखना
- सत्त्व (मन) बुद्धि का विकास करना
- आहार शुद्धि से सत्त्व शुद्धि करना
- सत्त्व शुद्धि द्वारा राग द्वेष, मोह आदि से दूर रहना
- शरीर एवं मन को शुद्ध एवं पवित्र बनाये रखना
- शारीरिक शक्ति क्षय को रोकना
- शरीर में उचित ताप को प्रदान करना
- सुपाच्य एवं बलकारक – पुष्टिकारक होना
- उत्तेजनाओं से दूर करने वाला
- स्मृति, आयु एवं ओज बढ़ाने वाला
- वर्ण–सत्व एवं सौन्दर्य बढ़ाने वाला
- ऋतु संधिजन्य रोगों से दूर करने वाला
- स्वास्थ्य के लिये हितकर एवं कल्याणकारी
- संतुलित आहार में 80 प्रतिशत क्षार एवं 20 प्रतिशत अम्लीय होता है।
- आंतों की सफाई कराने वाला
- मानसिक शान्ति प्रदान कराने वाला
- संतृप्ति देने वाला
- थकान एवं भूख मिटाने वाला हो
- शरीर में लचीलापन एवं स्निग्धता बढ़ाने वाला
- सप्तधातुओं का सम्यक् विकास करने वाला
- तेजमिर्च मसाला एवं तरीदार तेलीय उत्तेजित आहार न हो।
- निष्प्राण (तत्त्वहीन/निस्सार) भोजन न हो।
- नशीली – विर्षली आहार सामग्री न हो
- फल सब्जियों युक्त पोषण तत्त्वों वाला आहार हो।
- प्राकृतिक चिकित्सा के अनुकूल पालक, बथुआ, पत्तागोभी, लौकी, टमाटर, मैथी, आदि सब्जियों एव सेव, अमरूद, पपीता, अंगूर आदि फलों युक्त आहार होना चाहिये।

शरीर एवं आत्मा रूपी मकान के तीन आधाररूपी स्तम्भ वात पित्त एवं कफ माने गये हैं। इसी प्रकार तीन उपस्तम्भ (अर्थात सहायक खम्भे) के रूप में आहार निद्रा एवं ब्रह्मचर्य की

गणना की है यथा – ''त्रय उपस्तभा इति – आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति''। इन तीन उपस्तभों में भी आहार की गणना सर्वप्रथम की है। आहार से ही रसादि सात धातुओं की क्रमशः उत्पत्ति वात, पित्त एवं कफ रूपी त्रिदोषों की उत्पत्ति एवं वृद्धि तथा क्षय होता है। आहार के अभाव में शरीर की जीवनीय स्थिति का परिचालन असंभव है। ''कलावन्नगताः प्राणाः'' अर्थात् प्राणो ंकी स्थिति अन्न (आहार) पर आश्रित है।

''प्राणाः प्राणमृतामन्नंन्लोकोमनोडवसाद अ्धावति।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्।।
तुष्टिः पुष्टिबलिं मेर्धा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।।''

5.5 आहार के गुणधर्म (षड् रसों के अनुसार)

शरीर के रखरखाव, मरम्मत एवं विकास के लिये गुणात्मक आहार की आवश्यकता होती है। ऐसे में जो आहार का सेवन किया जाता है, सामान्यतः वह शड् रस युक्त होता है। पञ्चमहाभूतों से इन मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त एवं कशाय छः रसों की उत्पत्ति होती है। सर्वप्रथम आकाश से उत्पन्न होने वाला सौम्य तासीर का जल जो कि शीतल, हल्का एवं अव्यक्त इस रूपी गुण प्रधान होता है वह वर्षा से पांचभौतिक पृथ्वी पर गिरकर इन पंचतत्त्वों से गुणयुक्त हेकर स्थावर एवं जंगम प्राणियों को तृप्त करता है।

इन रसों का पांचभौतिक संगठन पूर्णतया प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से वैज्ञानिक है।

रसों का पांचभौतिक संगठन – सोम गुण की प्रधानता से मधुर रस की सर्वप्रथम उत्पत्ति होती है। अर्थात् पृथ्वी एवं जले के संयोग से मधुर रस उत्पन्न होता है। पृथ्वी एवं अग्नि की अधिकता से अम्ल रस की उत्पत्ति होती है। जल एवं अग्नि महाभूत की संयोजन से लवण रस उत्पन्न होता है। वायु एवं अग्नि गुण के संयोग से कटू रस की उत्पत्ति होती है।

वायु एवं आकाश गुण के संयोग से तिक्त रस उत्पन्न होता है। पृथ्वी एवं वायु महाभूत के संयोग से उत्पन्न गुण से कशाय रस की उत्पत्ति होती है।

वैद्यक शास्त्र में आहार के गुणों के सिद्धान्तानुसार रसों की दो प्रकार की ऊर्ध्व एवं अधोगति का उल्लेख किया है। आचार्य चरक कहते है कि जिन रसों में पंचमहाभूत की दृश्टि से अग्नि और वायु प्रधान रूप से होते है वे प्रायः ऊर्ध्वगामी होते है, कारण स्पष्ट है कि वायु हल्की एवं गतिशील गुण प्रधान होती है। साथ ही अग्नि गतिशीलता जलती हुई ऊर्ध्वगामी होती है। अतः ऐसे रस ''कटुरस'' प्रधान है। जिन रसों में पृथ्वी एवं जल महाभूत की प्रधानता विशेषरूप के होती है। वे रस अधोगामी गतिशील स्वभाव वाले होते है। उदाहरण के लिये जैसे – मधुर रस। पृथ्वी महाभूत गुरू स्वभाव वाली होती है। जल भी नीचे की ओर गतिशीलमय होता है। साथ ही जिन रसों में दोनों प्रकार के अन्य मिश्रित पंचमहाभूतों का सम्मिश्रण होता है, वे शरीरस्थ ऊर्ध्व एवं अधोभाग में गतिशील होने वाले होते हैं।

1 **मधुर रसजन्य आहार के गुणधर्म :**

- यह रस रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा, शुक्र एवं ओजवर्धक होता है।
- आयु के लिये ''हितायु'' होता है।
- कर्ण, नासिका, रसना, चक्षु एवं स्पर्श सहित पांचों इन्द्रियों को प्रसन्न रखता है।

- वर्ण को निखारता है।
- शारीरिक बल की वृद्धि करता है।
- बढ़े हुए पित्त को शान्त करता है।
- बढ़ी हुयी वायु को शान्त करता है।
- षरीरस्थ विश को शान्त करता है।
- तृश्णा (प्यास) को दूर करता है।
- त्वचा, केश, कण्ठ के लिये हितकर होता है।
- जीवनीय शक्ति (इम्यूनिटी) को बढ़ाता है।
- शरीर को प्रसन्न करता है।
- शरीर को स्थूल (मोटा) बनाता है।
- शरीर में स्थिरता उत्पन्न करता है।
- सप्त धातुओं की क्षीणता को नश्ट करता है।
- शरीरस्थ करे हुये स्थानों का संघान करता है।
- आहार में रोचकता उत्पन्न करता है।
- पाचन रस अधिक गुरू नहीं, स्निग्ध एवं उष्ण स्वभाव वाला होता है।

2. कटुरसजन्य आहार के गुणधर्म –

- ''कटु को रसों वक्रं शोधयति'' मुख शोधन करता है।
- ''अग्निं दीपयति'' अग्नि को प्रदीप्त करता है।
- ''मुक्तं शोशयति'' सेवित आहार का अवशोषण करता है।
- नसिका से कफ का स्त्राव कराता है।
- ''चक्षुर्विरेचयति'' आंखों से जल का स्त्राव कराता है।
- पंचज्ञानेन्द्रियों को अपने अपने कार्य में कर्म करने हेतु उत्तेजित करता है।
- आमदोष, शरीर में शोध (सूजन) स्थूलता (मोटापन) को दूर करता है।
- शरीर में स्नेह (चिपकापन) को नष्ट करता है।
- भोजन में स्वाद उत्पन्न करता है।
- खुजलाहट को दूर करता है।
- स्त्रोतसों को फैलाने का कार्य करता है।
- बढ़े हुए कफ को शान्त करता है।
- कटूरस लघु, उष्ण एवं रूक्ष गुण प्रधान होता है।

3 तिक्त रस जन्य आहार के गुणधर्म

- तिक्तरस स्वयं अरोचक किन्तु अरूचि को दूर करने वाला होता है।
- विष के प्रभाव को दूर करता है।
- कृमियों (पेट के कीड़े) को दूर करता है।

- रक्त का शोधन करता है।
- मूर्च्छा, दाह (जलन) पिपासा (प्यास) को नष्ट करता है।
- दाद, खुजली एवं कोढ़ को दूर करता है।
- पित्त एवं कफ को सुखाने का कार्य करता है।
- तिक्तरस रूक्ष, शीत और लघुगुण प्रधान होता है।
- नासिका, मुख, गला, औष्ठ एवं जिव्हा को स्वच्छ रखता है।
- दाह (जलन) एवं मुर्च्छा को दूर करता है।
- भ्रमर (भौरों) और चीटियों को विशेष प्रिय होता है।
- मधुर रस स्निग्ध, शीत एवं गुरू (भारी) गुण प्रधान होता है।

3. अम्ल रस जन्य आहार के गुणधर्म

- अम्ल रस (खट्टा रस) आहार में रूचि उत्पन्न करता है।
- जठराग्नि को बढ़ाता है।
- शरीर को मोटा करता है।
- शाररिक शक्ति बल को बढ़ाता है।
- इन्द्रियों को बलवान बनाता है।
- ह्दय को तृप्त रखता है।
- मुख से जल का स्राव कराता है।
- वायु का अनुलोमन करता है।
- सेवित आहार को मुख से खींचकर आमाशय में पहुंचाता है।
- भोजन को गीलाकर उसे पकाता है।
- सप्तधातुओं को तृप्त करता है।
- अम्ल रस, लघु, उष्ण और स्निग्ध गुण प्रधान होता है।

4 लवण रस जन्य आहार के गुणधर्म

- आहार को पचाने में प्रधान होता है।
- जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।
- सप्तधातुओं में से ''ओज'' को पृथक करता है।
- छेदन, भेदन, तेज (तीक्ष्ण) होता है।
- विकासी संधि बंधनों को ढीला करने वाला होता है।
- मुख में अर्थात लालास्त्राव (लार) को बढ़ाता है।
- कफ को पतला करता है।
- शरीर में ऊर्ध्व एवं अधो स्त्रोतों को षुद्ध करता है।
- शरीरस्थ अवयवों को कोमल बनाता है।

5 कषायरस जन्य आहार के गुणधर्म

- कषाय रस संधान (जोड़ने वाला) होता है।

- कषाय रस संशमन करने वाला होात है।
- रोपण (मांसादिदि की पूर्ति) करने वाला होता है।
- क्लेद का शोषण करने वाला होता है।
- पित्त, रक्त एवं कफ में आये दोषों को शान्त करता है।
- कशायरस रूक्ष, शीत एवं गुरू गुण प्रधान होता है।

इस प्रकार इस षड्रस गुण प्रधान प्रत्येक रस के गुणधर्म का स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्णन किया है। आज आहार सामग्री के प्रदूषित सेवन करने से स्वास्थ्य के क्षेत्रों में प्रतिकूल प्रभाव बढ रहा है। जीवन शैली जन्य रोग जैसे मोटापा, थायोराइड, मधुमेह, जोड़ों में दर्द, उच्चव्यान (हाई बी.पी.) आदि रोगोंने सम्पूर्ण विश्व में पांव पसार रखे है। षड्रसों के गुणधर्मानुसार इनकी मात्रा कम अधिक होने पर इनका संतुलन करते हुये वात–पित्त एवं कफ रूपी त्रिदोशों को सम अवस्था में किया जाता है। जिससे दोषसाम्य होकर आरोग्यता प्राप्त होती है।

रूक्ष गुणों के अन्तर्गत कषाय रस सभी रसों में प्रधान तथा कटुरस मध्यम एवं तिक्त रस कम रूक्ष होता है। उष्ण गुणों के अन्तर्गत लवण रस ''उत्तम'' तथा अम्ल रस मध्यम एवं कटु रस कम उष्ण गुण वाला होता है। शीत वीर्य प्रधान गुणों के अन्तर्गत मधुर रस प्रधान तथा कषायरस मध्यम और तिक्त रस कम शीत होता है।

गुरूतारूपी गुणों के अन्तर्गत मधुर रस प्रधान, कशायरस, मध्यम तथा लवण रस न्यून होता है। कटुता के अन्तर्गत तिक्त रस प्रधान तथा कटु रस मध्यम तथा अम्लरस न्यून होता है।

सेवन किये गये (भक्षित) मधुरादि रस वाले आहार द्रव्यों को आमाशय से लेकर छोटी बड़ी आन्त्रों में जठराग्नि द्वारा परिपाक होकर जिस रस विशेष को उत्पत्ति होती है उसे ''विपाक'' कहते है। ''यथा जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्। आहारपरिणामन्ते स विपाक इति स्मृतः।।

(आचार्य वाग्भट्ट सू.अ.9) सामान्यतः विपाक तीन प्रकार का होता है। कटुतिक्त कषाय के रस वाले आहार द्रव्यों का विपाक कटु होता है। अम्ल रस वाले आहार द्रव्यों को विपाक अम्ल होता है तथा मधुर एवं लवण रसों वाले आहार द्रव्यों को विपाक मधुर होता है।

पाक अर्थात शाब्दिक अर्थ के रूप में ''पकाना'' है। इसी प्रकार परिणाम अर्थात पककर द्रव्यों का स्वरूपान्तरण या रसान्तर परिवर्तित होना परिणाम कहलाता है। आहार द्रव्यों का भोजन करने के उपरान्त पहला ''अवस्था पाक'' तथा दूसरा निष्ठापाक या विपाक होता है। अवस्थापाक के अन्तर्गत आहार से किट्ट के रूप में कफ–पित्त–वात–मूत्र–पुरीष आदि का पृथक्करण होता है। इस परिवर्तनों के अन्त में सार रूप में ''रस धातु'' की उत्पत्ति होती है। यही 'रसधातु' शरीर के अवयवों का पोषण करती है। जो कि आहार का अन्तिम परिणाम कहलाता है।

आहार के अन्तिम परिणाम के रूप में ''रसधातु'' का मधुर अम्ल तथा कटू रूप में जो अन्तिम परिवर्तन होता है। उसको विपाक या निष्ठापाक कहते है। आयुर्वेद के आचार्य सुश्रुत दो प्रकार के ही विपाक मधुर तथा कटु को ही मानते हैं। वे ''अम्ल विपाक'' को नहीं मानते है।

विपाकों के पृथक पृथक कार्य निम्नानुसार होते है। 1 मधुर विपाक वाले द्रव्य मल एवं मूत्र को निकालते हैं। कफ और शुक्र को बढ़ाते है। 2 अम्ल विपका वाले पित्त को बढ़ोते है। मल मूत्र को निकालते है तथा शुक को नष्ट करते है। 3 कटु विपाक वाले द्रव्य शुक्र को

नष्ट करते हैं, मल एवं मूत्र की बांधते है और वात को बढ़ाने वाले होते हैं। गुरू एवं लघु की दृष्टि से मधुर विपाक 'गुरू' और कटु एवं अम्ल विपाक लघु होता है।

आहार द्रव्यों के छः रसों को वैज्ञानिक लक्षण –

मधुर रस –

1 जो रस स्नेहन, प्रीणन, तृप्तिकर, आह्लाद। (आनन्ददायक) शरीर में मृदुता उत्पन्न करे वह मधुर रस होता है। मधुर रस मुख में शीघ्र फैलता है, और लेप की तरह महसूस होता है।

2 अम्लरस – जो रस खाने पर दांतों को खट्टा करें, मुख से लाला स्त्राव करावे। मुख में पूर्ववर्ती अन्य रसों का बोध करावें। मुख एवं कण्ठ में दाह उत्पन्न करावें । वह अम्ल रस होता है।

3 लवण रस – जो रस खाने के बाद मुख में गीलापन उत्पन्न करें, लाल स्त्राव करावें, मुख में मृदुता उत्पन्न करें और मुख तथा कंठ के दाह उत्पन्न करें वह लवण रस होता है।

4 कटुरस – जो रस आहार करते ही स्पर्श मात्र से उद्विग्नता उत्पन्न करें, सुई सुभने जैसी वेदना उत्पन्न कर दे, मुख–नसिका में नेत्र में दाह उत्पन्न करते हुए जल का स्त्राव करावे वह कटु रस होता है।

5 तिक्त रस – जो रस जिह्वा से संयुक्त होते ही जिह्वा की शक्ति को नष्ट करे अर्थात् जिह्वा के लिये प्रिय नहीं हो, जो मुख में विशदता, शोष उत्पन्न करें वह तिक्त रस होता है।

6 कशाय रस – जो रस जिह्वा के स्पर्श में विशुद्धता एवं जड़ता उत्पन्न करें, जिसके द्वारा गला बंधने जैसा महसूस हो उसे कषाय रस कहा जाता है।

7 हितकर एवं अहितकर आहार – हितकर एवं अहितकर आहार के अन्तर्गत जल स्वभाव से अन्न को क्लिन्न करता है तथा धातुओं में क्लेद उत्पन्न करता है।

लवण रस कफादि के संघात को पतला करता है। क्षारीय आहार का पाचन करता है। मधुर द्रव्यों युक्त आहर टूटे स्थान को जोड़ता है। घी स्नेहन करता है। दूध जीवनीय होता है। मांस शरीर को मोटा/स्थूल करता है। मांस रस शरीर में तृप्ति को उत्पन्न करता है। मदिरा मांसादि को शिथिल करती है।

द्राक्षासव अग्नि को तेज करता है। दही शोथ (सूजन) उत्पन्न करता है। उड़द की दाल मल मूत्र अधिक पैदा करती है। क्षारीय आहार दृष्टि तथा शुक को कम करता है। अम्ल आहार अनाज तथा आंवले को छोड़कर सभी पित्त को बढ़ाते हैं। सभी मधुर प्रायः कफ को बढ़ाते है। तिक्त द्रव्य वातवर्धक और अवृश्य होते हैं तथा कटुरस वाले द्रव्य वातवर्धक एवं अवृष्य होते है।

अहितकर आहार –

(अ) दानेदार चीनी, मिठाइयां, मुरब्बा, तली हुई आहार द्रव्य सामग्री, आचार, नमकीन, कचौड़ी, डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ, मेदा से बनी हुई वस्तुऐं, जकफूड, फास्ट फूड, आदि का सेवन हानिकर होता है।

ब) विशेषकर बच्चों को भी टॉफी, गोली, कुल्फी,बिस्कुट, ठंडे पेय, चाय कॉफी की आदत से बचाना चाहिये क्योंकि इनके सेवन से पाचन तंत्र तथा दांत दोनों को नुकसान होता है।

स) उत्तेजक एवं मादक आहार द्रव्यों के सेवन से बचना चाहिये।

द) कब्जनाशक जुलाब तथा तेज दस्तावर (रेचक) दवायें लेना भी हानिकारक है। इनसे आंते कमजोर होती है तथा पाचन शक्ति और कमजोर हो जाती है।

निम्न विरोधी आहार (इनको मिलाकर सेवन नहीं करें।)

- दही को गर्म रोटी या अन्य किसी गर्म पदार्थ के साथ नहीं खाना चाहिये।
- ठंडे दूध में घी मिलाकर नहीं पीना चाहिए।
- घृत के साथ समान मात्रा में शहद (मधु) का सेवन नहीं करें यह विष के समान हानिकारक होता है।
- कांसा, तांबा, पीतल के पात्र में रखी खटाई, दही–छाछ, दूध, मक्खन नहीं खाना चाहिये।
- दूध के साथ, शराब, मांस, मछली, इमली, नीबू, जामुन तथा कटहल नहीं खाना चाहिये।
- मछली के साथ गन्ने का रस एवं शहद नहीं खाना चाहिये।
- मूली के साथ शहद एवं खरबूजा तथा खरबूजे के साथ दही का सेवन नहीं करना चाहिये।
- गरम भोजन के बाद ठंडी लस्सी, आइसक्रीम, ठंडे पेय का सेवन नहीं करना चाहिये।
- भोजन करते समय ''साधु भाव'' रखें न कि ''स्वादु भाव''इससे अधिक भोजन खाने में आता है जो कि कब्ज पैदा कर सभी रोगों का कारण है।
- झूठे भोजन एवं मक्खियां बैठी हुयी हो एसे आहार का सेवन नहीं करना चाहिये।
- भोजन के पूर्व हाथ मूंह का प्रक्षालन करें तथा अन्त में दांतों मसूठों पर अंगुलियाँ मुलायम ब्रुश से साफ कर कुल्ले अवश्य करना चाहिये।
- व्यसनयुक्त आहार बीड़ी, तम्बाकू, भांग, शराब अधिक चाय के सेवन से पूर्णतया बचना चाहिये।
- भोजन के लिये नहीं जीयें अपितु जीवन जीने के लिये भोजन करें जो कि भूख मिटाने के लिये है।
- प्रातः कालीन नाश्ते (अल्पाहार) में ताजे फल, गाजर आदि का सलाद, अंकुरित अनाज या दूध कोई भी एक आवश्यकतानुसार ही लेना चाहिये।
- हमेशा स्वच्छ एवं सबल रहने हेतु शाकाहार ही सर्वश्रेष्ठ है।
- ज्यूस (फलरस) की अपेक्षा फूलों का सेवन ज्यादा लाभदायक होता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत (फाइबर) रेशा होता है जो कि पाचन तंत्र के लिये हितावह है।
- कब्ज ही सभी रोगों का मूल कारण है अतः फल, सब्जियाँ, चोकर, अंकुरित अनाज, आंवला, नीबू नारंगी एवं मात्रावत आहार प्रसन्नचित होकर करना चाहिये।
- आहार जीर्ण होने पर ही करें यथा – ''जीर्णेअरनीयात्''।।
- उशण आहार करना चाहिये – जिससे स्वाद प्रतीती होती है। भोजन शीघ्र पचता है। कफ शोषण एवं वायु का अनुलोम होता है।

- स्निग्ध आहार का सेवन करना चाहिये – जिससे अग्नि तीव्र होती है। बल वर्ण एवं इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है।
- विरूद्ध वीर्य वाले आहार नहीं करना चाहिये। जैसे दूध एवं मछली का एक साथ सेवन। मछली उश्णवीर्य तथा दूध शीतवीर्य होता है। एक साथ सेवन से बेमेल होकर रक्तविकार, कुष्ठ एवं नपुसंकता आदि रोग उत्पन्न करता है।
- ''इष्टेदेशे'' अर्थात अनुकूल स्थान पर और सभी मनोनुकूल सामग्रियों के साथ भोजन करना चाहिये।
- जल्दी जल्दी भोजन करने से आहार उन्मार्गी हो जाता है। सम्यक् पाचन नहीं होने से उत्तम गुणों की प्राप्ति नहीं होती है।
- अत्यधिक धीरे धीरे भी आहार नहीं करना चाहिये क्योंकि अधिक धीरे खाने से भोजन अधिक खाने में आता है एवं शीतल भी हो जाता है। आहार का पाक भी विषम हो जाता है। अतः बहुत अधिक धीमे धीमे भोजन नही करें।
- भोजन में चोकर के आटे की रोटी के साथ हरी सब्जियां व पत्तीदार सब्जियां श्रेयस्कर होती है।
- भोजन में तेज मसालें एवं तेल की तरी से बचना चाहिये।
- रेशे युक्त (फाइबर) आहार लाभदायक है। रेशेदार आहार मलनिष्कासन (आंतों की सफाई) में सहायक होता है तथा रोग निरोध/निवारण में लाभप्रद होता है।
- भोजन में साधारण नमक की बजाय अल्प मात्रा में यथा संभव सैंधव लवण का हो प्रयोग करना चाहिये।
- अन्न प्रधान भोजन सामान्यतः दो से अधिक बार नहीं करें।
- भोजन में क्षारधर्मी आहार द्रव्यों की मात्रा 80 प्रतिशत तथा अम्ल वर्षा आहार द्रव्यों की मात्रा 20 प्रतिशत संतुलित होनी चाहिये। अन्यथा रक्त में अम्लता बढ़ने से अनेक रोग होते है।
- मुख्य क्षारधर्मी आहार द्रव्यों – हरी सब्जियां, मटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, ककड़ी, गाजर, मूली, तुरई, टिण्डा, लौकी, भिण्डी, पत्तीदार सब्जियाँ, कच्चा नारियल, अंकुरित अन्न, कच्चा दूध, भीगे हुये सूखे मेवे (दाख, अंजीर, खजूर) गुड़ आदि आते हैं।
- मुख्य अम्लधर्मी आहर द्रव्यों में – घी, तेल, तली चीजें, पापड़, गर्म छाछ, दही, गेहूं, चावल, मक्का, बाजरा, काजू, मूंगफली, मैदा, बेसन, बिना चोकर का आटा, गिरीदार मेवे, आचार, चटनी, मुरब्बा, शक्कर, मांस एवं अन्य जंक फूड पिज्जा, बर्गर आदि आते है।
- शरीर के तापमान के अनुसार ही भोजन एवं पेय पदार्थ का प्रयोग करना चाहिये।
- तन्मना मुञ्जीत – मन लगाकर भोजन करना चाहिये।
- अजल्यन्नहसन् – वार्तालाप करने हुये, हंसते हुए भोजन नहीं करें।
- आत्मानमभिसमीक्ष्य भुज्जीय सम्यक, अपनी आत्मा को भली प्रकार सोच समझ कर आहार सेवन करना चाहिये। यह भोजन सामग्री मेरे स्वास्थ्य एवं षरीर तथा मन के

लिये लाभकारी है, ऐसा विचार कर आत्मा के अनुसार भली प्रकार सोच समझकर ही भोजन करना चाहिये।

5.6 आहार के गुणधर्म एवं मात्रा

आचार्य चरक ने कहा कि ''आहार की जो मात्रा भोजन करने वाले की प्रकृति में बाधा न पहुंचाते हुए यथा समय पच जाये वही उस व्यक्ति के लिये प्रमाणित मात्रा है।''

1 जो समय पर पच जाये।
2 जो किसी भी प्रकार कष्ट न पहुचावें।
3 जो शरीर की नित्य होने वाली क्षतियों की पूर्ति करें।
4 स्वाभाविक भूख से कुछ कम प्रमित मात्रा में करें।
5 ठूंस ठूंसकर अधिक आहार का सेवन नहीं करें।
6 आमाशय का आधाभाग आहार से पूर्ति करें।
7 चौथाई भाग पानी एवं चौथाई हवा के लिये छोड़े।

आहार की मात्रा के अन्तर्गत चरक ऋशि कहते हैं कि उदर (आमाशय) के तीन विभाग (स्थान) रखकर मात्रापूर्वक आहार करना चाहिये।

यथा– त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेद वकाशांश माहारस्या हारमुपयुञ्जानः
तद्यधा– एकमव काशांशं मूर्तानामाहारविकाराणाम्, एकं द्रवाणां
एकं पुनवतिपित्त ष्लेश्माणाम्म्, एवावतीं आहारमात्रामुपयुज्जयो
नामात्राहारजं किंचिदषुभं प्राप्नोति।।

(चरक वि.स्थान 2/3)

अर्थात् स्वस्थ रहने के लिये आहार के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने उदर (पेट –आमाशय) में आहार के लिये तीन प्रकार का स्थान (अवकाश) रखें।

(1) एक अवकाशैवसपक (ठोस द्रव्यों) के लिये (2) एक अवकाश स्पुनपके (द्रव द्रव्यों) के लिये 3 एक अवकाश वातफि्तकफ इन दोषों के संचरण हेतु रखें। आचार्य चरक कहते हैं कि इतनी मात्रा ध्यान में रखकर आहार करने वाला व्यक्ति ''अमात्र पूर्वक किये गये आहार से होने वाले दुर्गुणों को प्राप्त नही करता।

मात्रा पूर्व आहार निम्नानुसार है –

जिस आहार के सेवन करने से उदर में दबाव न पड़े, हृदय की गति में रूकावट न पड़े। आमाशय के बगल (पार्श्व) में फटने जैसी पीड़ा न हो, पेट में भारीपन न लगे, इन्द्रियों तृप्त रहें, भूख–प्यास की शांति हो जाय, बैठने, शयन करने, श्वास लेने, हंसने तथा वार्तालाप करने में सुख की अनुभूति हो, प्रातः एवं सांयकाल सूखपर्वक आहार का सुपाच्य हो जाय तथा बल वर्ण एवं शरीर की वृद्धि करें उसे मात्रापूर्वक आहार करते हैं।

2 आहार की कम मात्रा सेवन से निम्नानुसार हानि होती है ।

बल–वर्ण – शरीर की वृद्धि का नाश करने वाला, तृप्ति नहीं देने वाला आयु के लिए हानिकारक, वीर्य तथा ओज को घटाने वाला, शरीर–मन–बुद्धि को नष्ट करने वाला, उदासीनता तथा कमजोरी उत्पन्न करने वाला तथावायु के अस्सी प्रकार के रोगों का कारण वाला होता है।

3 आहार की अधिक या अतिमात्रा से निम्नानुसार हानि होती है।

त्रिदोष (वात–पित्त–कफ) प्रकुपित होते हैं। प्रकुपित दोश अमाशय में आश्रित होकर विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते है।

(अ) वात दोष – शूल, आनाह, अंगदर्द, मुख एक सूखना, भ्रम, मूर्च्छा, पृश्ठ एवं कटि में जकड़ाहट उत्पन्न करता है।

(ब) पित्तदोष ज्वर, अतिसार, प्यास, मद, भ्रम, एवं प्रलाप को उत्पन्न करता है।

(स) कफ दोष, छर्दि (उल्टी) भोजन में अरूचि, अपचन, शीतज्वर आलस्य, एवं शरीर में गुरूता (भारीपन) पैदा करता है।

अतः आहार की हीन या अतिमात्रा शरीर के लिये कष्टकारी कुपोषणजन्य होता है। इससे जाठराग्नि विकृत होकर ''आमदोष'' की उत्पन्न करती है। यहां पर विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, दुःख, दिवास्वप्न एवं रात्रिजागरण के कारण मात्रा से भी खाया हुआ आहार का ठीक से पाचन नहीं होता एवं वह भी ''आम दोष'' की उत्पत्ति कर रोगों को जन्म देता है।

अध्यशन – जो खाने के बाद पुनः पुनः शीघ्र ही भोजन किया जाता है। अतः बार बार बिना भोजन के पाचन हुए आहार के पुनः भोजन करने को अध्ययन या अजीर्णाशन कहते है।

हमेशा पाचन शक्ति अर्थात् जठराग्नि का विचार करते हुए मात्रापूर्वक आहार का सेवन करना चाहिय। मात्रार्पूक आहर सेवन से पूर्ण आयु बढ़ती है। मल गुदा तक मलाशय आसानी से पहुंच जाता है, अग्नि को नष्ट नहीं करता है। बिना किसी प्रकार कीबाधा/उपद्रव के पच जाता है, अतः मात्रापूर्वक भोजन स्वास्थ्यवर्धक होता है।

1 मात्रावत् भोजन भूख से कम करें। ठूंस ठूंस कर नहीं करें। आहार द्रव्यों से पेट का आधाभाग तथा चौथाइ भाग पानी एवं चौथाई भाग हवा के लिये छोड़ना चाहिये।

2 भोजन इतना ही करें कि उठने पर न तो भूख महसूस हो, न ही अधिक खाया हुआ भारीपन लगें। प्रत्येक व्यक्ति को पाचन जरणशक्ति के अनुसार भोजन की मात्रा स्वयं निर्धारित की जाननी चाहिये।

3 इस भाग मभाग की जिन्दगी में यदि हमारे पास भोजन करने का समय नहीं है तो जल्दी जल्दी पेट भरने की बजाय इतना ही भोजन करें जितना भली भांति चबा सकें। अर्थात् दांतों का काम आंतों से नहीं करावें।

4 शरीर के अंगावयों, कोशिकाओं की मरम्मत एवं विकास तथा स्वस्थ रहने एवं स्वस्थ होने के लिये आहार का सेवन किया जाना चाहिये।

- बिना भूख भोजन नहीं करें। कड़ी भूख लगने पर आहार का सेवन करें।
- सायंकाल शयन से 2 घंटे पूर्व आवश्यक रूप से आहार का सेवन करें।
- आफिस/कार्यालय/काम/ड्यूटी से आने के बाद थकान मिटने तक एक या आधे घंटे विश्रामोपरान्त भोजन करना चाहिये।
- दो प्रधान भोजनों के मध्य बार बार कुछ नहीं खाया जाना चाहिये।
- भोजन में सलाद एवं फलों का सम्मिश्रण हो ऐसा प्रयास होना चाहिये।
- कोल्ड स्टोरेज एवं फ्रिज में रखे फलों से के सवेन से यथा संभव बचना चाहिये। मौसमी फलों/सब्जियों को ताजा उपयोग करना चाहिये।
- सामान्यतः सुबह का भोजन दोपहर 12 बजे से पूर्व तथा शाम का भोजन सूर्यास्त से पूर्व या सायंकाल 7 से 8 बजे ही कर लेना चाहिये।

- बीमार होने पर भोजन त्यागना चाहिये।
- चिन्तित /तनाव/टेंशन/क्रोधावस्था में भोजन नहीं करना चाहिये।
- बिना भूख एवं रूचि के कभी भोजन नहीं करना चाहिये।
- भोजन से पूर्व हाथ–पैर एवं मुंह धोकर शुद्धता के बाद ही आहार ग्रहण करें।
- मुंह में लिये ग्रास को चबा चबाकर खाने से आहर सुपाच्य एवं तृप्ति कारक होता है।
- प्रसन्नचित होकर एकाग्र भाव से भोजन करना लाभदायक होता है।
- भोजन के समय मौन रहकर ही करना चाहिये।
- अखबार, पत्रिका उपन्यास टीवी, मोबाइल आदि का उपयोग भोजन करते समय नहीं करना चाहिये।
- शुद्धवातावरण, स्वच्छ बर्तनों में ही भोजन करें।
- कच्चा, खाने योग्य, अग्नि से बिना पकाया, सूर्य द्वारा पकाया भोजन सर्वोत्तम होता है यथा फल, सब्जियां, सूखे मेवे आदि।
- चोकरयुक्त आटा, बिना पॉलिष का चावल, भोजन में लाभदायक हैं।
- भोजन के साथ सलाद सब्जियों का अवश्य उपयोग करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न–

1 आहार सेवन के चार प्रकार बताइये?
2 छः माह तक के शिशु के आहार बताइये?
3 स्तनपान के कोई भी चार लाभ बताइये?
4 अम्ल एवं क्षारीय आहार का अनुपाात बताइये?

5.7 सारांश

संक्षेप में हम इस इकाई में वर्णित आहार की अवधारणा, आहार करने का वास्तविक उद्देश्य, आहार के गुणधर्म, आहार रसो के गुणधर्म, आहार की विभिन्न अवस्थाओं जैसे नवजात शिशु, किशोरावस्था, युवावस्था, एवं प्रौढ़ावस्था में मात्रा हितकर आहार, अहितकर आहार एवं आहार संबंधित सामान्य सिद्धान्तो का वर्णन आरोग्य की दृष्टि से किया गया है।

5.8 शब्दावली

- लीढ़ – चाटने युक्त आहार
- पांडू – खून की कमी
- आइ.क्यू0 – बौद्धिक क्षमता
- अतिसार – दस्त
- ऋतुफल – जिस मौसम मे जो फल आते हो
- जरावस्था – प्रौढ़ावस्था 60 वर्श से अधिक आयु वाले
- अध्यषन – बार बार आहार का सेवन
- क्षुधा – भूख
- तिक्त– स्वाद में कड़वा

- जल्प – बातचीत करना

5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आयुर्वेदचिकित्साविज्ञान – वैद्य बनवारी लाल गौड़
- चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काशीनाथ शास्त्री
- आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत
- स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेशकुमार अग्रवाल
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेश जिन्दल
- चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- सद्वृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्षसिंह
- पांतञ्जल योग दर्शन – डॉ. नित्यानन्द शर्मा

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1 आहार की अवधारणा के बारे में विस्तार से विवेचन कीजिये?
2 शडरसों के गुणधर्म आहार के प्ररिप्रेक्ष्य मे वर्णित कीजिये।
3 आहार का वास्तविक उद्देश्य एवं मात्रा का वर्णन कीजिये।
4 आहार के सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये।

इकाई 6 संतुलित आहार एवं मिताहार

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 संतुलित आहार (आधुनिक मतानुसार)
6.4 संतुलित आहार (प्राकृतिक चिकित्सानुसार)
6.5 मिताहार के कार्य एवं लाभ
6.6 संतुलित आहार की तालिकाऐं
6.7 संतुलित आहार को प्रभावित करने वाले तत्त्व
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भोजन जीवन के साथ–साथ स्वास्थ्य का आधार है। "संतुलित भोजन " जीवन के सर्वागींण विकास में प्राणियों के लिए आवश्यक है। आधुनिक खान पान की यह विसंगति है कि जब शरीर श्रम करता है तब उसे कम आहार दिया जाता है और जब वह विश्राम की अवस्था में होता है तो उसे अधिकतम "कैलोरी युक्त आहार " आज की जीवन शैली में दिया जाता है। दिन में व्यक्ति चाय , नाश्ता, कॉफी , ठंडे पेय आदि जब जैसे जहॉं मिल जाये उसका सेवन करता है एवं रात्रि में विश्राम के समय सोने के पूर्व गरिष्ठ आहार का सेवन करता है जो कि स्वास्थ्य के सिध्दांतों के विपरीत है। अतः भोजन संतुलित, पौष्टिक, सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्धक एवं खिलाने वाले का आचरण, मन के भावों की शुध्दता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

संतुलित आहार के बिना स्वस्थ रह पाना मुश्किल ही है। संतुलित आहार का तात्पर्य उस आहार से है "जो शारीरिक क्रिया तथा मानसिक विकास में सहायक, उर्जा एवं शक्ति देने वाला, स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने वाला रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने वाला हो।" भोजन के अंतर्गत, प्रोटीन, कार्बोज, विटामिन्स, खनिज लवण, जल आदि की उचित मात्रा जिससे शरीर की भिन्न–भिन्न आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जायेवह संतुलित आहार है। जिससे शरीर का पोषण हो जिसके सेवन से कोशिकाओं की मरम्मत हो , नई उर्जावान स्वस्थ कोशिकाओं का निर्माण हो तथा 80 प्रतिशत क्षारीय धर्मी तथा 20 प्रतिशत अम्लीयधर्मी प्रधान आहार वस्ततुः संतुलित आहार कहलाता है।

6.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई में अध्ययन के बाद आप जान सकेंगें कि

- संतुलित आहार क्या है?

- आधुनिकमतानुसार संतुलित आहार के प्रमुख घटक क्या है?
- प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार संतुलित आहार क्या है?
- क्षार एवं अम्लधर्मी आहार द्रव्य क्या है एवं वे कौन–कौन से है?
- संतुलित एवं मिताहार को प्रभावित करने वाले 10 तत्त्वों का संतुलित आहार की तालिका में वर्णन किया गया है।

6.3 संतुलित आहार (आधुनिक मतानुसार)

शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक तत्त्व जिस भोजन में हो वह संतुलित आहार कहलाता है। संतुलित आहार द्वारा ही शरीर को पर्याप्त सम्यक मात्रा में पोषण प्राप्त होता है। व्यक्ति के कार्य करने की क्षमतानुसार आवश्यक कैलोरी की मात्रा अलग–अलग व्यक्ति की अलग आहार मात्रा होती है। समन्यतया एक मनुष्य को प्रतिदिन कौन–कौन सी आहार सामग्री कितनी–कितनी मात्रा में कब–कब सेवन की जानी चाहिये, जावे जिससे कि उसके शरीर का पोषण होता रहे। शरीर की सात धातुऐं यथा–रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, एवं शुक्रादि की पूर्ति होती रहे। अतः स्वस्थ रहने के लिए उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति एवं दीर्घायु प्राप्ति हेतु तथा रोगों से बचने के लिए संतुलित आहार का उपयोग परमावश्यक है।
सामान्यतयाः संतुलित आहार के अंतर्गत प्रोटीन, कार्बोज, वसा, खनिज लवण, विटामिन्स, एवं जल की मात्रा का निश्चित प्रमाण में उपयोग संतुलित आहार में परमावश्यक है।
आधुनिक मतानुसार संतुलित आहारः– आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार संतुलित आहार को निम्न 6 भागों में विभक्त किया गया हैः–

1. कार्बोहाइड्रेट(Carbohydrates)
2. प्रोटीन(Proteins)
3. वसा(Fat)
4. खनिज लवण(Mineral Salts)
5. विटामिन (Vitamins)
6. जल(Water)

1. कार्बोहाइड्रेट(Carbohydrates)

कार्बोहाइड्रेट के अन्तर्गत छः तत्त्वों को समाहित किया जाता है।

i. मोनोसैक्केराईड(Monosaccharides)
ii. डाइसैक्केराईड(Disaccharides)
iii. पोलीसैक्केराईड(Polysaccharides)
iv. स्टार्च (Starch)
v. ग्लाइकोजन(Glyeogen)
vi. सेल्युलोज(Cellulose)

i. मोनोसैक्केराईड(Monosaccharides)

रासायनिक दृष्टि से मोनोसैक्केराईड सरलतम प्रकार के कार्बोहाइड्रेट होते हैं। आहार द्रव्यों के अन्तर्गत जटिल प्रकार के कार्बोहाईड्रेटों का पाचक नली में पाचन तथा मोनोसैक्केराईड के रूप में ही उनका अवशोषण होता है। मोनोसैक्केराइड केवल एक

इकाई या अणु के बने होते हैं। जैसे ग्लूकोज आदि का अवशोषण होने के लिये पाचन की आवश्यकता नहीं होती इनका सीधे ही क्षुद्रांत्र आंत से अवशोषण हो जाता है।
मोनोसैक्केराइड तीन प्रकार के होते है यथा– ग्लूकोज, फैक्ट्रोज एवं सामान्यतया ग्लेक्टोज। इनमें "फैक्ट्रोज" फलों की शर्करा को कहते है।

ii. डाइसैक्केराईड(Disaccharides)
मोनोसैक्केराइड में ये कुछ जटिल प्रकार के होते है। इनका निर्माण दो मोनोसैक्केराइड के द्वारा बना होता है। आहार नाल के अन्तर्गत इनके पाचन हेतु एन्जाइम्स की आवश्यकता होती है एन्जाइम्स के द्वारा इनका पाचन होता है। तदुपरान्त आंत से इनका अवशोषण होता है। सामान्यतयाः डाइसैक्केराइड चार प्रकार के होते है यथा–(1) इक्षु शर्करा (2) सुक्रोज (3) माल्टोज (4) लैक्टोज डाइसैक्केराइड आदि। इक्षु शर्करा को sugar cane भी कहते हैं।

iii. पोलीसैक्केराईड (Polysaccharides)
दो से अधिक मोनोसैक्केराइड के संयोजन से बने होते है। इनकी बनावट बहुत ही जटिल प्रकार की होती है। सभी प्रकार के पोलीसैक्केराइड का पाचन नहीं हो पाता इसलिये सब्जियों के रेशे (फाइबर) एवं सेल्युलोज बिना पचे ही आहार नली द्वारा गुदमार्ग से बाहर जाते हैं। पाचन क्रिया के समय एन्जाइम्स द्वारा कुछ जटिल कार्बोहाइड्रेट मोनोसैक्केराइड के रूप में विघटित हो जाते हैं जो शीघ्र घुलनशील होते हैं एवं आसानी से उनका आंतो द्वारा अवशोषण किया जाता है।

iv. स्टार्च(Starch)
स्टार्च की सामान्यतः उत्पत्ति हरे पेड़–पौधों से होती है। स्टार्च जल में घुलनशील नहीं होते है। प्रायः सभी प्रकार के अनाजों में यथा–गेंहू का आटा, चावल, मक्का, जौ तथा दालों में और आलू, अरबी, शक्करकन्द, सहित जमीन के अन्दर होने वाली सब्जियों में स्टार्च अधिक पाया जाता हैं।

v. ग्लाइकोजन(Glyeogen)
ग्लाइकोजन(Glyeogen) को सफेद पावडर के रूप में,जन्तुओं की पेशियों एवं यकृत में उपलब्ध रहने वाला स्टार्च होता है। जब शरीर में शर्करा की आवश्यकता नहीं होती तो जन्तु स्टार्च के रूप में यकृत एवं पेशियों में संग्रहित हो जाता है। शरीर के क्रियाशील होने पर आवश्यकतानुसार ग्लाइकोजन पुनः ग्लूकोज के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकिया में इन्सुलिन का बहुत महत्त्व है।

vi. सेल्युलोज(Cellulose)
सेल्युलोज के द्वारा पेड़ पौधों की मित्तियाँ बनी हुयी होती है। अतः सैल्यूलोज नामक कार्बोहाइड्रेट फल सब्जियों, सहित अनाजों में अधिक पाया जाता है सेल्युलोज का भोजन के साथ सेवन करने से आहार नली की क्रमाकुंचन गतियाँ बढ जाती है। जिससे आहार द्रव्य पाचित होकर सुगमता से मल निष्कासन होता है। अतः परिणामस्वरूप कब्ज दूर होता है।

2–प्रोटीन(Proteins)

प्रोटीन दो प्रकार का होता है।

A-जन्तु प्रोटीन(Animal proteins)

B-वनस्पति प्रोटीन(Vegetable proteins)

A-जन्तु प्रोटीन– इसे उच्च श्रेणी की प्रोटीन मानते हैं इसलिये इसे प्रथम श्रेणी की प्रोटीन कहा जाता है। जानवरों से प्राप्त उत्पाद उदाहरण के लिए दूध, अण्डा, मांस तथा मछली आदि में जन्तु प्रोटीन निम्नानुसार पायी जाती है।

क्र0	नाम	**जन्तु प्रोटीन**
1.	मांस तथा मछली में	**मायोसिन** Myosin
2.	अण्डे की सफेद जर्दी में	Oralbumin
3.	दूध में	Lectalbumin & Serum Albumin
4.	दही जमने पर	Caseinogen
5.	रक्त में	Serum Globulin
6.	अण्डे की जर्दीमें	Vitellin

B-वनस्पति प्रोटीन(Vegetable proteins)

यह द्वितीय श्रेणी का प्रोटीन है। इसमें प्रथम श्रेणी के समान स्वास्थ्य संरक्षण हेतु सभी आठ आवश्यक अमीनों एसिड नहीं पाये जाते है, तथा इनका पाचन भी आसानी से नहीं होता है।

वनस्पति प्रोटीन

1. दालों में – उड़द, अरहर, मूंग, मटर, सोयाबीन आदि।
2. ड्राईफ्रूट में – मूंगफली, बादाम, काजू।
3. अनाजों में – गेंहू, मक्का, जौ, चना,
4. ग्लूटेन – यह प्रोटीन गेंहू के आटे सहित अन्य अनाजों में पायी जाती है।
5. लैग्यूमिन – मूंग, मसूर, सेम, तथा सोयाबीन आदि में "लैग्यूमिन" नामक वनस्पति प्रोटीन पायी जाती है।

प्रोटीन की उपयोगिता

1. शरीर में शक्ति संवर्धन हेतु
2. शरीर की वृध्दि एवं विकास हेतु
3. शरीर के अंगावयवों के रचना हेतु
4. शरीर के ऊतकों की टूट–फूट एवं मरम्मत हेतु
5. रक्त निर्माण हेतु
6. हार्मोन्स एवं एन्जाइम निर्माण हेतु
7. प्लाज्मा प्रोटीन के निर्माण हेतु
8. एन्टी बाडियों के निर्माण हेतु

वसाऐं (Fats)

वसाऐं ठोस एवं द्रव्य दो प्रकार की होती है।

ठोस वसा– घी एवं मक्खन आदि।

द्रव्य वसा– तेल आदि।

वसाओं को भी प्रोटीन की तरह सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता हैः– 1. जन्तु वसा 2. वनस्पति वसा

1. **जन्तु वसा**– प्राप्ति स्त्रोतः 1. दूध, पनीर, घी, अण्डों की जर्दी, मांस, मछली का तेल, मक्खन आदि।
   2. पशुओं की चर्बी में जन्तु वसा सर्वाधिक होती है।
   3. जन्तु वसा में विटामिन ए तथा डी पाये जाते हैं।
2. **वनस्पति वसा**–
   प्राप्ति स्त्रोतः 1–सरसों, मूंगफली, नारियल, और तिल का तैल
   2– काजू, बादाम, अखरोट आदि सूखे मेवों में
   वसाओं का कार्य– ऊष्मा एवं ऊर्जा उत्पन्न करना।
   – विटामिन ए,डी,ई और के का वहन एवं अवशोषण
   – शरीर की वृध्दि करना
   –त्वचा को स्वस्थ रखना।

खनिज लवण (Mineral Salts)

ये लगभग 20 प्रकार के होते हैं। मानव शरीर में होने वाली सभी जैविक क्रियाओं के लिये खनिज लवण परमावश्यक होते हैं। मुख्य खनिज लवण निम्न हैः– कैल्सियम, फास्फोरस, लौह, सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, आयोडिन, एवं गंधक इत्यादि।

1. **कैल्सियम**–
   - हड्डियाँ एवं दांतों के निर्माण के लिये।
   - बच्चों में व्यस्कों से अधिक आवश्यकता।
   - हड्डियों की मजबूती हेतु विटामिन डी एवं फास्फोरस की आवश्यकता
   - हृदय की गति के नियंत्रण हेतु।
   - मांसपेशियों को क्रियाशील बनाने हेतु।
   - सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन 1 ग्राम कैल्सियम की आवश्यकता ।
   - प्राप्ति स्त्रोतः– दूध, दही पनीर, अन्डे की जर्दी एवं मछली बादाम, एवं मूली गोभी के पत्तों में, मैथी एवं दांलों में पाया जाता हैं।
2. **फास्फोरस**–
   - शरीर की प्रत्येक कोशिका में होता है।
   - कैल्शियम एवं विटामिन “डी” के साथ मिलकर हड्डी एवं दांतों का निर्माण।
   - तंत्रिका तंत्र को स्वस्थ बनाये रखने हेतु।
   - प्रतिदिन 1–5 ग्राम सामान्य व्यक्ति में आवश्यकता होती हैं।
   - गर्भवती स्त्री व बच्चों में युवा में अधिक आवश्यकता होती हैं।

   प्राप्ति स्त्रोतः– सर्वाधिक प्राप्ति मछलियों में , सेव, पत्ता गोभी, पालक, मूली, गाजर, सोयाबीन, मक्का के भुट्टे, आलू, दूध पनीर अण्डे की जर्दी एवं मांस आदि में पाया जाता हैं।
3. **लोहा**–

- इससे रक्त में हीमोग्लोबीन बनता है।
- रक्त निर्माण हेतु परम आवश्यक है।
- गर्भिणी को गर्भावस्था में अधिक आवश्यकता

प्राप्ति स्त्रोत– लोहा, सेव, पालक, पत्ता गोभी, मटर, बथुआ, मैथी, गाजर , खीरा, पोदीना, प्याज, टमाटर, अनार, अंगूर, खजूरा,, आलू, शकरकन्द, अंडे की जर्दी एवं मांस व मछली में पाया जाता है।

आवश्यकता– प्रतिदिन एक व्यस्क व्यक्ति हेतु 20 से 30 मि.ग्रा.

1. **पोटेशियम–**
    - पोटेशियम यह तंत्रिका जन्य आवेगों के संचारण के लिये आवश्यक है तथा पेशियों के संकुचन में भाग लेता है।
    - पोटेशियम के द्वारा अम्ल/क्षार का संतुलन किया जाता है।
    - इलैक्ट्रोलाईट्स का संतुलन बनाये रखने में सहायक
    - पेशियों को मजबूत बनाता है।
    - हृदय पेशी के कार्य को सामान्य बनाता है।
    - चक्कर, प्यास एवं भ्रम को दूर करता है।
    - यह सोडियम तथा क्लोराइड के साथ मिलकर अन्तः कोशिकी परासरणी दाब (Intracellular osmotic pressure) को सामान्य बनाये रखता है।

    आवश्यक मात्रा– प्रतिदिन सामान्य व्यस्क हेतु 4 ग्राम पोटेशियम
2. **मैग्नीशियम–**
    - मैग्नीशियम (Magnesium) एक सफेद खनिज पदार्थ है जो शरीर में सर्वाधिक रूप से हड्डियों एवं दांतों में पाया जाता है।
    - शरीर के मेटाबोल्जिम में सहायक होता है।
    - हाथ पैरों मे कम्पन्न को रोकता है।
    - मानसिक अवसाद (Mental Depression) को दूर करता है।

    प्राप्ति स्त्रोत–
    - सामान्यतः सभी खाद्य पदार्थों में पाया जाता है।
    - केले में सर्वाधिक पाया जाता है।
    - अनाजों में सब्जियों तथा फलों से प्राप्त होता है।
3. **आयोडीन (Iodine)**
    - यह थायोराइड ग्रंथि को सामान्य बनाये रखने में उपयोगी है।
    - गलगण्ड या घेंघा रोग को दूर करता है।
    - मन्दबुध्दि को रोकता है।
    - शारीरिक एवं मानसिक विकास करने में सहायक होता है।

    प्राप्ति स्त्रोत–

- प्याज में सर्वाधिक पाया जाता है।
- समुद्र के नमकीन पानी में पाया जाता है।
- समुद्री मछलियों में पाया जाता है।
- आयोडीन युक्त मिट्टी में पाया जाता है।

4. **गंधक**–इसे सल्फर (Sulphur) भी कहा जाता है। यह सभी प्रोटीन पदार्थों द्वारा उपलब्ध होता है। यह सभी प्रोटीन पदार्थों द्वारा उपलब्ध होता है। यह सभी ऊतकों (टिश्यू) की स्वस्थता के लिए आवश्यक होता है।

5. विटामिन **(Vitamins)**

- भोजन के पूर्ण चयापचम (मेटोबोलिज्म) के लिये उपयोगी
- संतुलित भोजन में सभी विटामिन्स उपयोगी
- गर्भवती स्त्रियों में गर्भ के विकास में उपयोगी
- बढते हुए बच्चों में शारीरिक विकास में उपयोगी
- विटामिन ए,डी,ई तथा के वसा में घुलनशील है।
- विटामिन ए वृध्दि कारक एवं संक्रमण रोधी है।
- विटामिन डी कैल्सियम को बढाता है।
- विटामिन डी1, डी2 तथा डी 3 तीन रूप में होता है, जो अस्थि एवं दांत का निर्माण करता है।
- विटामिन डी रिकेट्स अर्थात बालकों के अस्थि विकार को रोकता है।
- विटामिन ई सन्तानोंत्पत्ति की शक्ति देता है।
- विटामिन ई पुरूषों में नपुंसकता एवं स्त्रियों में बन्ध्यता को दूर करता है।
- विटामिन के रक्त को जमाने में आवश्यक है।
- विटामिन बी1 तन्त्रिका शोथ Neuritis को दूर करता है।
- विटामिन बी2 चर्म रोगों से शरीर की रक्षा करता है।
- विटामिन बी6 यह गर्भावस्था के प्रारम्भिक तीन माह में उल्टियों को रोकता है।
- विटामिन बी6 त्वचा, स्नायु एवं मांसपेशियों को स्वस्थ रखता है।

6. **फोलिक एसिड**

- यह विटामिन बी12 के साथ मिलकर रक्त निर्माण करता है।
- विटामिन बी12 –यह रक्तकल्पता (खून की कमी) को रोकता है।
- बायोटिन त्वचा की सूजन तथा नेत्र श्लेषमकला की सूजन को दूर करता है।
- विटामिन सी यह रक्तवाहिनियों को फटने से रोकता है।
- विटामिन सी संक्रमण को दूर कर 'इम्यूनिटी' को बढाता है।
- विटामिन सी स्कर्वी नामक रोग को दूर करता है।

विटामिनों की प्राप्ति के स्त्रोतः– विटामिन ए दूध, पनीर,घी, मक्खन, तैल, लहसुन, एवं टमाटर तथा गाजर, हरी पत्तियों की सब्जियों में पत्ता गोभी, मैथी, पालक तथा केला आम, सन्तरा, पपीता आदि फलों में पाया जाता है।

विटामिन डी सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों की क्रिया से त्वचा में बनता है। डी2 पेड़, पोधों में बनता है, तथा डी3 दूध,पनीर, घी, मक्खन, अण्डा, मछली के लिवर में पाया जाता है। विटामिन ई अंकुरित गेहूँ , मक्का, दूध, मक्खन, जैतून तथा नारियल तेल एवं हरी सब्जियों में पाया जाता है।विटामिन "के" सोयाबीन, मछली के लिवर, टमाटर आदि में पाया जाता है। लगभग सभी विटामिन न्यूनाअधिक मात्रा में दूध, यीस्ट, पनीर, अण्डे की जर्दी , सोयाबीन, मटर, हरी सब्जियों , फलों, मूंगफली अनाजों एवं दालों मांस रसों एवं मछलियों में पाये जाते है। विटामिन के की कमी से रक्त स्कंदन में कमी होने से रक्त स्त्राव लम्बे समय तक होता रहता है।

जल में घुलनशील विटामिन– संतुलित आहार के अंतर्गत अच्छे स्वास्थ्य के लिये विटामिन आवश्यक है। विटामिन बी1 अथवा एन्यूरीन हाईड्रोक्लोराइड (Aneurine Hydrochloride) यह विटामिन शरीर को स्वस्थ एवं विकास करने में परमावश्यक होता है। कार्बोहाइड्रेट का चयापचय (Metabolism) हेतु महत्त्वपूर्ण है।

प्राप्ति स्त्रोतः– हरी सब्जियां, हरी मटर, दालों में, अनाज के छिलकों में, दूध अण्डों में, काष्ठ फलों सहित चावल की भूसी आदि में पाया जाता है।

विटामिन बी 1 की कमी से तंन्त्रिका शोध (Neuritis) हो जाता है, मानसिक मनोअवसाद (Mental depression) हो जाता है। मन्द बुध्दि हो जाती है। अधिक समय तक कमी रहने से बेरी–बेरी नामक रोग हो जाता है जिससे पेरों में सुन्नता एवं चीटियां चलने जैसी पैरो मे अनुभूति होती है। विटामिन बी2 अथवा रिबोफलेविन यह चर्म रोगों से शरीर की रक्षा करता है। बालों को झड़ने से रोकता है।

प्राप्ति स्त्रोतः– दूध, यीस्ट, पनीर, अण्डे की सफेदी, सोयाबीन मटर, हरी सब्जियाँ, फलों, मूंगफली एवं दालों सहित अनाजों में पाया जाता है।

विटामिन बी2 की कमी तथा मक्का अधिक खाने वालों में (Dermatitis) त्वचा की सूजन, (cheilosis) चीलोसिस त्वचा फटी–फटी सी, (glossitis) जिह्वाशोथ या जीभ पर छाले हो जाते है। दृष्टि मन्द हो जाती है।

विटामिन बी$_6$ की कमी से गर्भावस्था के प्रथम तीन माह में प्रातः काल महिला को उल्टियाँ होती है, त्वचा संबंधी विकार चिड़चिडापन अनिद्रा आदि रोग होते हैं।

इसी प्रकार संतुलित आहार के अन्तर्गत विटामिन बी$_{12}$ अथवा सायनोकोबालामीन (Cyanocobalamin) बायोटिन, विटामिन सी या एस्कोर्बिक एसिड (Ascorbic acid) अथवा एन्टी स्कोर ब्यूटिक (Anti scorbutic) विटामिन जो कि नीबूं, सन्तरा, मौसम्मी, आंवला, टमाटर, प्याज, शलजम, बन्दगोभी, हरी सब्जियां ताजे फलों तथा अंकुरित अनाजों में पाया जाता है।

6. **जल या पानी (Water)**–1 भाग आक्सीजन एवं 2 भाग हाईड्रोजन के रासायनिक संयोजन से बना एक तरल यौगिक (H_2O) है। संतुलित आहार में जल भोजन को सुपाचित करने में सहायता करता है यह रक्त को तरल बनाये रखता है। जीवित कोशिकाओं में "प्रोटोप्लाज्म" आवश्यक तथा मुख्य घटक होता है। विजातीय द्रव्यों, अपशिष्ट

पदार्थों को घोलकर मल–मूत्र श्वास, तथाा पसीने के द्वारा जल शरीर से बाहर निकलता है।

प्राप्ति स्त्रोतः– एक तो साधारण जल के रूप में जिसे हम पीते है, दूसरा फल, दूध सब्जियों के द्वारा सेवनोपरान्त प्राप्त जल । सब्जियों में तथा फलों मे 75 प्रतिशत तथा तरबूज (मतीरा) में सर्वाधिक 95 प्रतिशत जल होता है। उल्टी दस्त (हैजा) होने पर निर्जलीकरण(Dehydration) हो जाता है। जल की कमी से पथरी बनने की सम्भावना रहती है। तथा रक्त चाप सामान्य से कम हो जाता है।

6.4 संतुलित आहार (प्राकृतिक चिकित्सा अनुसार)

प्राकृतिक चिकित्सानुसार व्यावहारिक जीवन में क्षारतत्त्व एवं अम्लतत्त्व की दृष्टि से संतुलित भोजन माना जाता है। सामान्यतयाः शुध्द रक्त में 80 प्रतिशत क्षारतत्त्व, एवं 20 प्रतिशत अम्लतत्त्व पाये जोते है। तद्नुरूप संतुलित आहार के अन्तर्गत 80 प्रतिशत क्षारतत्त्व, एवं 20 प्रतिशत अम्ल पाये जाते हैं।

अम्ल पदार्थों का सेवन करना संतुलित आहार की श्रेणी में माना जाता है। अतः अम्ल एवं क्षार का अनुपात संतुलित आहार की दृष्टि से 1:4 का आरोग्य की दृष्टि से माना जाता है।
क्षारधर्मी खाद्य पदार्थः– घारोष्ण दूध, मट्ठा, हरी सब्जियाँ हरी मटर, आलू छिलका, सहित, मूली पत्तों सहित, प्याज, शहद, मक्खन, गुड़ , किशमिश, गाजर, पके और खट्टे फलों एवं अंकुरित अनाज मूंग मोठ मैथी आदि क्षार धर्मी खाद्य पदार्थों में माने जाते है।

अम्लधर्मी खाद्य पदार्थः–अम्लधमीर्ल खाद्य पदार्थो के अन्तर्गत रोटी, दालें, सूखे मेवे, शक्कर, मिश्री, मिठाइयां, चाय, कॉफी सभी प्रकार के व्यसन सामग्री, अण्डा, पनीर, मछली मांस, गेंहू, चावल, मक्का, मुरब्बे आचार, चटनी, खटाई, सिरका, तली हुई खाद्य सामग्री चटपटी खाद्य सामग्री, मिर्च मसाले, नमक एवं तेल आदि आते हैं।

मानव शरीर में रक्त यदि 80प्रतिशत क्षारमय एवं 20 प्रतिशत अम्लीय हो तो उसे शुध्द रक्त कहा जाता है, तथा उसी व्यक्ति के शरीर को "निरोगी" कहा जाता है। जब प्रतिदिन भोजन में एक हिस्सा अम्लधर्मी और चार हिस्सा क्षारधर्मी खाद्य पदार्थ का सेवन किया जाये तो उक्त प्रतिशत सुन्तलित भोजन का मानते है। आहार में क्षारधर्मी तत्त्वों की कमी से रक्तादि धातु में निर्बल, निःसत्व होकर शरीर रोगक्रान्ता हो जाता है। रक्त में क्षारतत्त्व द्वारा टूटे हुये तन्तुओं की मरम्मत होती है। कोशिकाऐं नवजीवन प्राप्त कर स्वस्थ होती है। रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। श्वेत कणों की शक्ति बढती है। अम्ल तत्व की वृध्दि से हड्डियाँ कमजोर हो जाती है।

इसी प्रकार यदि क्षारतत्त्व की आहार में कमी हो तो मधुमेह, नेत्र रोग, बुखार, माइग्रेन, एसीडिटी, चर्मरोग, ,गैस, कब्ज, आदि रोग उत्पन्न होते है।

अम्लीय प्रभाव बढ़ाने वाले तत्त्वः–क्लोरीन, आयोडीन, गंधक, फॉस्फोरस, सल्फर, लैक्टिक, और यूरिक एसिड आदि।

क्षारीय प्रभाव बढ़ाने वाले तत्त्व–सोडियम, पोटेशियम, कैल्सियम, लोहा, तांबा, मेग्नेशियम, और मेगनीज वाले आहार खाद्य सेवन में क्षारीय तत्त्व बढाते हैं। सार संक्षेप यह है कि संतुलित आहार के पौष्टिक तत्त्वों से शारीरिक विकास एवं मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। क्षारीय आहार द्रव्यों में उक्त चार भाग क्षारीय एवं 1 भाग अम्लीय आहार द्रव्यों के सेवन से शरीर स्वस्थ बना रहता हैं।

6.5 मिताहार के कार्य एवं लाभ

आहार की वह मात्रा जो क्षुधा के अनुरूप कम मात्रा में सेवन की जाये जिस सेवित आहार द्रव्यों की मात्रा का सुपाच्य आसानी से हो जाये वह मिताहार की श्रेणी में आता है।

मिताहार के कार्य एवं लाभः–

1. शरीर को स्वस्थ रखता है।
2. मिताहार शारीरिक एवं मानसिक विकास में महत्त्वपूर्ण मदद करता है।
3. मिताहार से नई स्वस्थ कोशिकाओं का निर्माण होता है।
4. मिताहार से निश्चित तापमान शरीर का बना रहता है।
5. क्षीण एवं रूग्ण कोशिकाओं की मरम्मत होती है।
6. विजातीय द्रव्यों का शरीर से निष्कासन होने में सहायक है।
7. शरीर में शक्ति स्फूर्ति सजगता बढ़ती है।
8. मिताहार से मोटापा नहीं बढता है।
9. संतर्पणजन्य रोग नहीं होते है।
10. मिताहार से पाचन प्रणाली सुधरती है।
11. आहार नाल स्वस्थ होती है।
12. जिनके घरों में नोकर –चाकर या मशीनों से गृहकार्य साफ–सफाई होती है उनके लिये मिताहार रामबाण होता है।

6.6 तालिकाऐं

3 से 5 वर्ष के बालकों की एक दिन की आहार तालिका

समय	*आहार व मात्रा*
प्रातः 6 बजे	200 से 250 ग्राम दूध, 2-3 मठ्री या बिस्कुट
7 बजे	150-200 ग्राम दूध में पकाकर दलिया या खिचड़ी, 1 सैंडविच, 1 उबला अण्डा
10 बजे	50-100 ग्राम फलों का रस, स्टफ पराठा, पोहे, अंकुरित अनाज
दोपहर 1 बजे	चावल, 1-2 रोटी, दाल या कढ़ी, सब्जी (हरी, पंनीर की, आलू, टमाटर), सलाद (टमाटर, गाजर, खीरा, ककड़ी), 15-20 ग्राम दही रायता
3 बजे	200-250 ग्राम टमाटर/सब्जियों का सूप
5 बजे	250 ग्राम दूध, मौसम का फल, 50-100 ग्राम मठरी, 15-20 ग्राम भुनी मूँगफली या चना खीर
रात्रि 8 बजे	1-2 रोटी, 20-30 ग्राम दाल, 40 ग्राम मिश्रित सब्जी, दूध से बनी मिठाई

संतुलित आहार तालिका
13 से 18 वर्ष के लड़के व लड़कियों के लिए

	लड़के				लड़कियाँ	
	13 से 15 वर्ष		16 से 18 वर्ष		13 से 18 वर्ष	
खाद्य पदार्थ	शाकाहारी ग्राम	मांसाहारी ग्राम	शाकाहारी ग्राम	मांसाहारी ग्राम	शाकाहारी ग्राम	मांसाहारी ग्राम
अनाज	430	430	450	450	410	410
दालें	40	20	40	20	40	20
हरे पत्तेदार सब्जियाँ	100	40	40	40	100	100
जड़ वाली सब्जियाँ	50	50	60	60	50	50
अन्य सब्जियाँ	60	60	60	60	40	40
फल	30	30	30	30	30	30
दूध	150	100	250	200	250	200
घी, तेल	35	40	45	50	35	40
माँस मछली	-	30	-	30	-	30
अण्डे (या एक नग)	-	30	-	30	-	30
शक्कर, गुड़	30	30	40	40	30	30
मूँगफली	20	20	30	30	30	30

नोट – मूँगफली के स्थान पर 30 ग्राम घी,, तेल लिया जा सकता है।

60 वर्ष से अधिक आयु के लिए संतुलित आहार

खाद्य सामग्री	वृद्ध (Male)	वृद्धा (Female)
अन्न	320 ग्राम	220 ग्राम
दाल	70 ग्राम	55 ग्राम
हरी पत्तेदार सब्जी	100 ग्राम	125 ग्राम
अन्य सब्जी	75 ग्राम	75 ग्राम
कंद मूल	75 ग्राम	50 ग्राम
फल	75 ग्राम	50 ग्राम
वसा और तेल	30 ग्राम	30 ग्राम
शर्करा और गुड़	30 ग्राम	30 ग्राम
दूध	600 मिली.	600 मिली.

6.7 संतुलित एवं मिताहार को प्रभावित करने वाले दस तत्त्व

1. आयु – शिशुअवस्था
   – किशोरावस्था
   – यौवनावस्था
   – प्रौढ़ावस्था
2. अवस्था जन्य – गर्भिणी / प्रसवोपरान्त / शिशु आदि।
3. लिंग – स्त्री–पुरूष, बालक–बालिका
4. पाचन क्षमता – तीव्र कोष्ठ, मृदु कोष्ठ, मध्यकोष्ठ
5. भौगोलिक स्थिति – मौसम एवं जल वायु
6. वात पित्त, एवं कफ –प्रकृति के अनुसार
7. शारीरिक संगठन(बनावट)
8. कार्य करने का प्रकार
9. पारिवारिक वातावरण एवं रोग
10. प्रकृति सात्विक, राजसिक, एवं तामसिक

6.8 सारांश

संतुलित आहार के अन्तर्गत प्रतिदिन सामान्यतः 2500 से 3000 कैलोरी की औसतन आवश्यकता होती है। यहां पर विशेष बात यह ध्यान देने की है कि एक व्यक्ति जिसके लिये आहार तालिका संतुलित हो सकती है वही आहार तालिका दूसरे व्यक्ति के लिए असंतुलित भी हो सकती है, क्योंकि संतुलित आहार आयु, लिंग, जलवायु शारीरिक बनावट, व्यवसाय, पाचन क्षमता, गर्भिणी, शिशु, वृद्ध आदि की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भिन्न भिन्न प्रकार से निर्धारित की जाती है। प्रत्येक स्त्री पुरूष द्वारा जो भी आहार का सेवन किया जाता है, उनकी पृथक् –पृथक् रूचि, प्रकृति तथा शारीरिक आवश्यकताऐं भी पृथक–पृथक प्रकार की होती है। आनूप्रदेश में रहने वालो में गरिष्ठ एवं पौष्टिक आहार तो जांगल देश अर्थात जहां गरमी ज्यादा पडती है जैसे राजस्थान आदि में हल्का सुपाच्य एवं तरलीय आहार द्रव्यों की आवश्यकता होती है। जिस भी आहार के सेवन से शारीरिक क्रिया एवं मानसिक संतुष्टि, शांति ,शारीरिक विकास, रोग प्रतिरोधक क्षमता में अभिवृध्दि, पर्याप्त उर्जा एवं शक्ति प्रदान करने वाला, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला पौष्टिक, हल्का, सुपाच्य, आहार मिताहार की श्रेणी में आता है।

6.9 शब्दावली

- आहार नाल – महास्त्रोत, मुख से लेकर गुदा तक की नलिका
- इक्षु – गन्ना
- इन्सुलिन – अग्नाशय की बीटा सेल में निर्माण होने वाला तत्त्व
- एन्जाइम– भोजन को पचाने वाले तत्त्व
- द्रव्य – तरलीय
- बथुआ – हरे पत्तों का छोटा पौधा जिसकी सब्जी बनती है एवं उससे लोह तत्त्व बढता है।

- ईसीजी – इलैक्ट्रिक कार्डियोग्राम
- रिकेट्स – (फक्क रोग) बच्चों में होने वाला हड्डियों की कमजोरी का रोग जिसके कारण बच्चा चल नहीं पाता।
- आनूप देश – जहां जल की अधिकता हो। (शीतल प्रदेश)
- जांगल देश – जहां उष्णता अधिक हो (गरम प्रदेश)

6.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. संतुलित आहार की परिभाषा दीजिए?
2. मिताहार से क्या अभिप्राय है?
3. अम्लीय धर्मी आहार द्रव्य कौन से है?
4. क्षारीय धर्मी आहार द्रव्य कौन से है?

6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आयुर्वेदचिकित्साविज्ञान – वैद्य बनवारी लाल गौड़
- चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काषीनाथ षास्त्री
- आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत
- स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेषकुमार अग्रवाल
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेष जिन्दल
- चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- सद्वृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्शसिंह
- पांतञ्जल योग दर्षन – डॉ. नित्यानन्द षर्मा
- सुश्रुत संहिता – आयुर्वेद रहस्य दीपिका

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक मतानुसार संतुलित आहार के तत्त्व बताईये।
2. प्राकृतिक चिकित्सानुसार संतुलित आहार का वर्णन कीजिए।
3. संतुलित आहार को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 7 ऋतुचर्या – 1

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 ऋतुचर्या की परिभाषा एवं प्रकार
7.4 ऋतुचर्या का विभाजन एवं बलाबल की स्थिति
7.5 आदान एवं विसर्गकाल के प्राकृति भाव
7.6 ऋतुचर्या – वर्षा ऋतु परिचर्या
7.7 षरद ऋतु परिचर्या, हंसोदक एवं यमदृष्ट्रा
7.9 ऋतुहरीतकी एवं ऋतुविपर्यय
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 संदर्भ ग्रंथ
7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

आयुर्वेद के अनुसार समय की एक निश्चित अवधि का काल ऋतु कहलाता है एवं उस ऋतु में की जाने वाली चर्या को हम ऋतुचर्या कहते हैं।

ऋतौः ऋतौचर्या ऋतुचर्या, ऋतुकाल विभागः।

सामान्यतः सम्पूर्ण वर्ष को दो अर्थात् (आचार्य चरक) उत्तरायण एवं दक्षिणायन में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक अयन में दो दो माह की तीन तीन ऋतुयें होती है। प्रत्येक ऋतुओं के लक्षण एवं उन ऋतुओं की चर्या अलग अलग है। आयुवैदोक्त ऋतुचर्या प्रत्येक ऋतु के अनुसारी शरीर के दोषादि की स्थिति के अनुसार प्रयोग में किया जाने वाला आहार एवं विहार है। ऋतुचर्या के पालन करने से शरीरस्थ वात–पित एवं कफ, दोष साम्यावस्था में रहते है । परिणामस्वरूप हम स्वस्थ एवं निरोग रहते है।

प्रस्तुत इकाई में हम ऋतुचर्या परिभाषा आदान एवं विसर्ग काल की छः ऋतुओं का त्रिदोषानुसार संचय प्रकोप एवं प्रशमन का अध्ययन करते हुए विसर्ग काल की तीन ऋतुयें यथा वर्षा, शरद, एवं हेमन्त की ऋतुचर्या के अन्तर्गत ऋतुओं का समय उनके लक्षण, सम्भावित ऋतु जन्य रोग, सेवनीय आहार–विहार, असेवनीय आहार विहार का अध्ययन करेगें। साथ ही शरद ऋतु के अन्तर्गत हंसोदक एवं यमद्रंष्ट्रा के बारे में वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित विवेचन करेगें।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम जान सकेंगे कि –

- आदान काल एवं विसर्ग काल की ऋतुऐं कौन कौन सी होती है।
- आदान काल की ऋतुऐं एवं विसर्ग काल की ऋतुओं का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है। विषेशकर इस इकाई में विसर्ग काल की तीन ऋतुऐं वर्शा ऋतु, षरद ऋतु, हेमन्त ऋतु की परिचर्या के अन्तर्गत आहार एवं विहार का वर्णन किया है।
- विशेषरूप से शरद ऋतु के अन्तर्गत हंसोदक एवं यमदंष्टा, ऋतुविर्यय एवं ऋतुसंधि का वर्णन किया है।

- ऋतु के अनुसार पंचकर्म द्वारा शोधन एवं कार्याकल्प का वर्णन किया गया है।

7.3 ऋतुचर्या की परिभाषा एवं प्रकार

ऋतुचर्या की परिभाषा – ''ऋतु के अनुसार सात्म्य (अनुकूल) होने वाले आहार – विहार का पालन करना ही ऋतुचर्या कहलाता है।

एक संवत्सर हिन्दी या अंग्रेजी दोनों में हम यह जानते हैं कि प्रत्येक वर्ष में 12 माह होते हैं। प्रत्येक दो माह की स्वास्थ्य की दृष्टि से एक ऋतु मानी गयी है। इस प्रकार छः कुल ऋतुओं की संख्या छः हुयी। इन छः ऋतुओं में से तीन ऋतुयें एक भाग में तथा शेष तीन ऋतुयें द्वितीय भाग में विभक्त की गई है।

आरोग्यता की दृश्टि से ऋतुचर्या के प्रत्येक समूह में ऋतुचर्या के अन्तर्गत सेवनीय पथ्य आहार एवं विहार तथा इसी प्रकार उसेवनीय अपथ्य आहार तथा विहार (परहेज) का वर्णन किया गया है। आयुर्वेदीय वैद्यक शास्त्र मे कुल ऋतुचर्या के अन्तर्गत छः ऋतुयें यथा (1) वर्षा (2) शरद (3) हेमन्त तथा (4) शिशिर (5) वसन्त (6) ग्रीष्म का उल्लेख किया गया है।

7.4 ऋतुचर्या का विभाजन एवं बलावल की स्थिति

सर्वप्रथम ऋतुचर्या को काल के अनुसार दो भागों में बांटा गया है।

(अ) काल के अनुसार विभाजन

1 आदान काल 2 विसर्ग काल

(ब) अयन के अनुसार विभाजन

भारतीय स्वास्थ्य चितंन की दृश्टि से आरोग्यता के संदर्भ में ''सूर्य सिद्धान्त'' के अनुसार तीन तीन ऋतुओं के समूह को मिलाकर दो अयन होते हैं।

1 दक्षिणायन

2 उत्तरायण।

इस प्रकार दो समूहों में विभक्त किया गया है।

(स) गुणों के अनुसार

(1) सौम्य काल (षीत काल)

(2) आग्नेय काल (उश्णकाल)

ऋतुचर्या के अन्तर्गत आदान काल एवं विसर्ग काल का क्रमशः उत्तरायण एवं दक्षिणायन में समावेश किया गया है।

(द) आदान एवं विसर्ग काल के लक्षण तथा शारीरिक बल

आदान काल या उत्तरायण के अन्तर्गत (1) शिशिर (2) वसन्त

(3) ग्रीष्म तीन ऋतुयें मानी गयी है। इस प्रकार शेष तीन ऋतुयें 4 वर्षा 5 शरद 6 हेमन्त ऋतु को विसर्ग काल या दक्षिणायन के अन्तर्गत माना गया है।

1 आदान काल या उत्तरायण का लक्षण –

आदान काल की तीन ऋतुयें यथा 1 शिशिर 2 वसन्त

3 ग्रीष्म को क्रमशः उत्तरोत्तर (एक के बाद एक) आग्नेय कहा जाता है। इस आदान काल में सूर्य एवं वायु का प्रभाव तेज होता है। इसे अतिरूक्ष काल कहा जाता है।

सूर्य की तेज किरणों के साथ वायु योगवाही (साथ में मिल जाने वाला) होने के कारण में रूक्षता बढ़ती है। सूर्य की तीव्र रश्मियों पृथ्वी के जीव एवं वनस्पतियों के स्नेह को सोख लेती है। जिसके परिणास्वरूप पृथ्वी के पदार्थों (जीव एवं वनस्पतियों) के जलीयाशं एवं स्नेह का शोषण होता है एवं रूक्षता बढ़ने से इस काल में क्रमशः शिशिर, वसन्त एवं

ग्रीश्मऋतु का आगमन होता है। आदान काल की ऋतुओं के अन्तर्गत सभी वनस्पतियों के अन्तर्गत षड्रसों मे से कटु–तिक्त, कषाय ये तीनों रसों की प्रधानता होती है। ''सूर्य की उत्तर दिशा में गति को उत्तरायण कहते हैं जिसमें सूर्य के द्वारा गर्मी से प्राणियों के सौम्यांश का ग्रहण कर लिये जाने के कारण बल शक्ति क्षीण होती है।

दक्षिणायन या विसर्ग काल का लक्षण –

दक्षिणायन के अन्तर्गत वायु में रूक्षता कम होती है। चन्द्रमा के विशेष प्रभावशाली होने के कारण शीतलता रहती है। विसर्गकाल के अन्तर्गत चन्द्रमा सौम्य एवं शीतल तथा बलवान होने के कारण सृष्टि के समस्त जीवन एवं वनस्पतियों (द्रव्यों) को संतृप्त करता है। इसे शीतकाल अर्थात् सौम्य काल भी कहते हैं। विसर्ग काल के अन्तर्गत सूर्य की किरणें सौम्य होने से चन्द्र किरणों का प्रभाव बढ़ने से वातावरा मे शीतलता एवं स्निगधता बढती है। विसर्ग काल में तीन ऋतुयें (1) वर्शा (2) शरद एवं (3) हेमन्त का समावेश होता है। उक्त ये तीन ऋतुयें उत्तरोत्तर क्रमशः बलवान होती है एवं स्निग्ध रसों की वृद्धि होती है।

विसर्ग काल के अन्तर्गत मेघ, वायु, वर्षा से पृथ्वी तृप्त रहने के कारण तीन स्निग्ध रस 1 मधुर 2 अम्ल तथा 3 लवण रस की उत्पत्ति एवं वृद्धि होती है।

''सूर्य की दक्षिण दिशा में गति को दक्षिणायन कहते हैं। चन्द्रमा की शीतलता से सौम्याशं प्राणियों में बढ़कर बल/शक्ति बढती है।

(र) काल के अनुसार मनुष्यों के बलाबल की स्थिति –

- विसर्ग काल की प्रथम ऋतु वर्षा एवं आदान काल की अंतिम ऋतु ग्रीष्म के अन्तर्गत मनुष्य सहित समस्त प्राणियों मे शारीरिक बल दुर्बल होता है।
- इसी प्रकार विसर्ग काल की मध्य ऋतु अर्थात शरद ऋतु तथा आदान काल की मध्य ऋतु अर्थात वसन्त ऋतु में मनुष्य सहित समस्त प्राणियों में शारीरिक बल ''मध्यम'' होता है।
- विसर्ग काल के अन्त में ऋतु अर्थात हेमन्त एवं आदान काल की आरंभ की ऋतु ''शिशिर '' मे मनुष्य सहित समस्त प्राणियों में शारीरिक बल अधिक होता है।

7.5 आदान एवं विसर्ग काल के प्राकृतिक भाव

	प्राकृतिक भाव	आदान काल	विसर्ग काल
1	सूर्य	उत्तरायण	दक्षिणायन
2	स्वभाव	आग्नेय	सौम्य
3	बल	क्रमषः बल की कमी	क्रमशः बल की वृद्धि
4	वायु	तीव्र एवं रूक्ष	अरूक्ष
5	स्नेहांश	शोषण एवं ह्रास	वृद्धि एवं पोशण
6	ऋतुयें	शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म	वर्षा, शरद, हेमन्त
7	रस	तिक्त कशाय, कट की वृद्धि	अम्ल, लवण, मधुर की वृद्धि

दोषों के संचय प्रकोप शमन के अनुसार

ऋतुचर्या की दृष्टि से दोषों का संचय, प्रकोप तथा शमन निम्नानुसार होता है।

क्र.सं	दोष	संचय	प्रकोप	शमन
1	वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद
2	पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त

3	कफ	शिशिर	वसन्त	ग्रीष्म

7.6 वर्षा ऋतु परिचर्या

इस ऋतुचर्या भाग एक के अन्तर्गत हम विसंग काल की तीन ऋतुयें (1) वर्षा (2) शरद (3) हेमन्त ऋतु का अध्ययन करेगें।

विसर्ग काल की ऋतुओं का वर्णन

प्रथम ऋतु वर्षा ऋतु है। विसर्ग काल की उक्त तीनों ऋतुओं के अन्तर्गत सामान्यतः सूर्य दक्षिणायन होता है। क्रमशः प्राणियों में बल की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती है। शीतलता होने से रोम छिद्र बंद रहते है। पसीना निर्माण में अग्नि व्यय नहीं होती । परिणामस्वरूप त्वचा स्थितभ्राजक चित्त के सक्रिय नहीं होने से जठराग्नि प्रवर होकर सप्तधातु पोषण का कार्य करती है।

1 वर्षा ऋतुचर्या

(1) ऋतु परिचय

समय श्रावण – भाद्रपद

सामान्यतः जुलाई एवं अगस्त

वर्षा ऋतु के प्रारंभ को प्रावट् ऋतु भी कहते है। वर्षा ऋतु मे चारों और हरियाली एवं मेशाच्छन्न आकाश रहता है। पशु कीटादि के मल मूत्रादि के संसर्ग से वर्षा का जल मलिन हो जाने से जल प्रदूषित हो जाता है। वर्षा ऋतु में त्रिदोषजन्य रोग तथा ग्रीष्म काल में संचित वायु का प्रकोप इस ऋतु में पाचन प्रणाली करते हुये रोगोत्पत्ति होने से होती है। इस ऋतु में आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार पश्चिमी वायु बहती है। बिजलियाँ चमकती है। भंयकर बिजली की चमक के साथ गर्जना होती है तथा कम, अधिक, वर्षा होती है। इस ऋतु में वातनाशक उपचार करें।

संभावित रोग – पाचन शक्ति का कम होना, शारीरिक कमजोरी, रक्त विकार, वायु दोष, जोड़ों का दर्द, सूजन, त्वचा विकार, दाद खाज खुजली, मलेरिया (विषम ज्वर) अन्य वायरस एवं जीवाणुजन्य रोग होने की संभावना रहती है।

(2) प्रयोग करें (आहार)

- इस मधुर, अम्ल, लवण रस का सेवन
- पुराने शाली एवं साठी चावल एवं जौ का सेवन
- मन्दोस्ता जल एवं दुग्ध पान का सेवन
- तैल, घृत एवं मांसरस का प्रयोग करें।
- पुराने आसन अरिष्टका केवल दिन में सेवन करें।
- जल एवं भोजन एवं शहद मिलाकर सेवन करें।
- जल को उबालकर सेवन करें।
- अम्ल – चिकनाई, नमक वाला भोजन हितकर है।
- घी एवं दूध का प्रयोग भोजन के साथ करें।
- छाछ में बनायी गयी बाजरा या मक्का की राबड़ी का सेवन करें।
- कद्दू, परवल, करेला, लोकी, तुरई, जीरा, मैंथी, लहसून का सेवन करें।
- वर्षा काल मे अग्निवर्धक एवं वातनाशक द्रव्यों का सेवन करें।

- काला नमक, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य चित्रक एवं सोंठ मिलाकर पानी पीवें।
- सैंधव नमक के साथ हरीतकी का सेवन करें।

(3) प्रयोग करें (विहार)

- स्नेहन, स्वेदन एवं काल कर्म एवं योग तथा मात्रा बस्तियों का प्रयोग करें।
- स्नान करके सुगंधित माला धारण करें।
- शुभ एवं स्वच्छ वस्त्रधारण करें।
- वस्त्रों को धूप निकलने पर धूप में रखें।

(4) प्रयोग नहीं करें (आहार)

- रूक्ष, शीत आहार का सेवन नहीं करें।
- वर्षा या नदी के तालाब का जल सेवन नहीं करें।
- नये अन्न, एवं शीतल जल का प्रयोग नहीं करें।
- अतिद्रव आहार एवं उदमन्थ (सत्तू) का सेवन नहीं करें।
- बासी भोजन , दही, मांस एवं मछली का सेवन नहीं करें।

(5) प्रयोग नहीं करें (विहार)

- व्यायाम एवं मैथुन अधिक नहीं (यथाशक्ति) करें।
- दिन में शयन तथा रात्रिजागरण नहीं करें।
- सीधी वायु ओस एवं सूर्य की किरणों (धूप) का सेवन नहीं करें।
- शीत, वर्षा, मच्छर, छिपकली एवं चूहों युक्त स्थान में निवास नहीं करें।
- अधिक पैदल नहीं चलें।
- वर्षा से बचने हेतु छाते का उपयोग करें
- ओस में एवं खुले में नहीं सोवें।
- नदी के तट पर निवास नहीं करें।

आचार्य चरक के अनुसार 'उदमन्थ' दिवास्वनमवष्यायं नदीजलम्।
व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत्।।(चरक सू.6/35–36)

7.7 शरद ऋतु परिचर्या

(1) ऋतु परिचय
समय आश्रित एवं कार्तिक
सामान्यतः सितम्बर एवं अक्टूबर
शरद ऋतु का लक्षण – इस ऋतु में सूर्य पीत वर्ण एवं उष्ण होता है। आकाश श्वेत मेघों से आच्छादित एवं निर्मल होता है। तालाबों में कमल खिले रहते हैं तथा हंसादि पक्षी विचरण करते है। पृथ्वी वरूण, सप्तपर्ण, विजयसार के वक्षों से सुशोभायमान रहती है।
शरद ऋतु में नदी एवं तालाब का पानी स्वच्छ निर्मल एवं शान्त रहता है वातावरण एवं आकाश स्वच्छ होता है साथ ही सूर्य की सीधी किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं।
(2) शरद ऋतु जन्य रोग –
वर्षा के उपरान्त बादलों के छंट जाने से व आकाश के साफ हो जाने से सूर्य की गर्मी से पित्त का प्रकोप होता है। अतः पित्त प्रधान रोग जैसे ज्वर (बुखार) नकसीर शरीर में जलन,

शिरः शूल, चक्कर आना, अम्लपित्त (एसिडिटी) व त्वचा के विकार, अधिक प्यास, कब्ज अजीर्ण, अरूचि, आदि रोग होने की संभावना होती है।

(3) शरद ऋतु जन्य संभावित रोग होने के कारण एवं निवारण

वर्षाऋतु में वात विकार से बचने हेतु चूंकि वायु शीत गुण प्रधान होता है अतः उष्ण खान पान का सेवन अधिक किया जाता है। जब वर्षा ऋतु में पित्तदोष का संचय होता रहता है, किन्तु शरद ऋतु में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के होने से संचित पित कुपित होकर पित्त दोष जन्य अनेक उक्त संभावित व्याधियों को विशेषकर रक्तदुष्टि जन्य रोगों की उत्पत्ति करता है। यथा ''वर्षासु चीयते फ्ति शरत्काले प्रकुप्यति।' अतः इस ऋतु में तिक्त द्रव्यों का सेवन, घृत सेवन, विरेचन कर्म एवं रक्तमोक्षण लाभदायक होता है।

(4) शरद ऋतु एवं हंसोदक (अंशुदक)

स्वास्थ्य की दृष्टि से यह ऋतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसलिये हमारे ऋषि मुनियों ने ''सौ षरद ऋतुओं (शतायु) के बराबर जीने की अभिलाशा व्यक्त की है। यथा ''जीवेम शरदः शतम्।

आयुर्वेद के आचार्य चरक ने चरक संहिता में ''हसोदक'' का वर्णन करते हुये इसे ''अमृत'' के समान स्वास्थ्यवर्धक माना है।

यथा –

दिवा सूर्यांशु संतप्तं निशिचन्द्रशुं शीतलम्।
कालेन पक्वं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम्।।
हंसोदकमितिख्यातं शारदं विमलं शुचि।
स्नानपानावगाहेशु शस्यते तद्यथामृतम्।। (चरक सूत्र 6/46–47)

तात्पर्य यह है कि दिन में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से गरम तथा रात्रि में चन्द्रमा की सौम्य – शीतल किरणों से ठंडा होने वाला, काल के अनुसार पका हुआ, दोष रहित तथा अगस्त्य नक्षत्र के प्रभाव से जो जल ''विष रहित'' शुद्ध है, उसे ''हंसोदक'' कहते हैं। भाव यह भी हैं कि हंस शुद्ध जल में विचरण करते हैं तथा शुद्ध जल का पान (पीते) करते है, इस कारण भी ऐसे शरद ऋतु के निर्मल एवं पवित्र जल को ''हंसोदक'' कहते है। आचार्य भाव प्रकाश ने दिन में सूर्य की किरणों से गरम तथा रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से शीतल (ठंडे) को जल ''अंशुदक'' नाम से वर्णन किया है।

''अगस्त्य तारा'' के उदय होने से तड़ाग (तालाब) एवं सरिता (नदी) का जल न तो अभिश्यन्दीकारक (मारी) तथा न ही रूक्ष होता है अपितु अगस्त्य तारे के प्रभाव से निर्विश होकर ''अमृत तुल्य'' हितकर होता है।

(5) यमदृंष्ट्रा एवं कार्तिक तथा मार्गशीर्ष

आचार्य शार्ङगधर ने वर्णन किया है कि कार्तिक मास के अंतिम आठ दिन तथा मार्गशीर्ष माह के प्रथम आठ दिन इस प्रकार ये सोलह दिन (यम की दाढ़) यमदंष्ट्रा कहलाते हैं। यदि इन सोलह दिनों में व्यक्ति अधिक भोजन करता है तो वह निष्चित रूप से रोगी होकर यमराज को प्राप्त हो जायेगा। अतः इन दिनों में स्वल्प (प्रमिताशन) आहार करने वाला व्यक्ति ही स्वस्थ रहता है।

यथाः – कार्तिकस्य दिनान्यष्टावग्रहणस्य च।
यमदंष्ट्रा समाख्यातः स्वल्पभुक्तोहि जीवितः।।
शार्ङ्धर.सं 2/30

(6) शरद ऋतुजन्य प्रयोग करें (आहार)

- रस, मधुर, तिक्त कसाय
- गुण शीत एवं लघु
- हंसोदक का प्रयोग
- आंवला दक्षा अंगूर का सेवन करें।
- दूध एवं गन्ने तथा इससे बने पदार्थों का सेवन करें।
- शालि एवं साठी चावल, यव, मूंग, जौ, गेहूँ
- मीठा, हल्का, शीतल एवं तीखे रस वाले द्रव्यों का सेवन
- करेला, परवल, तुरई, मैथी, लोकी, पालक, मूली, सिंघाड़ा, गाजर गोभी आदि।
- टमाटर व फलों का रस, सूखे मेवे एवं नारियल का प्रयोग हितकर है।
- गेघृत का सेवन विशेष रूप से किया जाना उचित है।
- छिलके वाली दालें (मूंग, उडद) एवं गर्म मसालों से रहित शाक सब्जी का सेवन
- नीबू का रस गर्म जल में प्रायः पीना हितकर है।
- पित्त कारक पदार्थ जैसे पिप्पली, मिर्च, लहसून, तक (छाछ), बैंगन, खिचडी, दही, सरसों का तेल, मद्य (दारू), तीक्ष्ण कटू एवं शुष्क पदार्थों का सेवन नहीं करें।

(7) विहार

- हल्के एवं स्वच्छ वस्त्र धारण
- खस की माला एवं चन्दनादि का लेप करना
- चन्द्रमा की सौम्य किरणों का सेवन
- जलाशयों में तैरना एवं स्नान करना
- तैल की मालिश एवं व्यायाम नियमित करना
- जिन्हें व्यायाम में तकलीफ हो ऐसे दुर्बल व्यक्ति प्रायः भ्रमण करें।

(8) प्रयोग न करें (आहार)

- अधिक भोजन
- तीक्ष्ण एवं अम्ल पदार्थों का सेवन
- अधिक तैल (तरी) एवं वसा का प्रयोग
- मद्यपान, दही एवं क्षार का सेवन
- मैदा से बने आहार द्रव्यों का सेवन नहीं करें
- गरम तीखा, भारी, तेज मसालेदार व तले हुए खाद्यान्नों का प्रयोग नहीं करें
- चर्बी (वसायुक्त) दही एवं मछली के मांस का सेवन अहितकर है।
- डालडा घी से निर्मित आहार सामग्री सेवन नहीं करें
- दही एवं खीरा एक साथ तथा अधिक मात्रा में प्रयोग नहीं करें
- अमरूद को खाली पेट अधिक मात्रा में न खावें।

(9) प्रयोग न करें (विहार)

- धूप का सेवन नहीं करें।

- दिवास्वप्न एवं रात्रि जागरण।
- पूर्वी वायु एवं ओस का सेवन।
- मूंगफली या मक्का के भुट्टे खाकर तुरन्त जल नही पीवें।
- अति मैथुन नहीं करें।
- क्रोध नहीं करें
- धूप में नहीं चलें।

7.8 हेमन्त ऋतु का परिचर्या

हेमन्त ऋतुचर्या

(1) ऋतु परिचय

समय – मार्गशीर्ष – पोष

सामान्यतः नवम्बर एवं दिसम्बर

ऋतु के लक्षण – हेमन्त ऋतु में शीत एवं रूक्ष हवायें चलती है। सम्पूर्ण वातावरण धूल एवं धूम से आच्छादित रहता है।

शारीरिक स्थिति – शीत वायु के स्पर्श होने से त्वचा स्थित भ्राजक पित्त की अग्नि अन्दर संचित होने के परिणामस्वरूप जाठराग्नि को अतिरिक्त प्रदीप्त कर देती है।

जिससे पाचन शक्ति बढ़ती है। अतः भारी, गरिष्ठ तथा गुरू आहार को भी जठराग्नि पचा देती है।

(2) प्रयोग करें (आहार)

- इस ऋतु में चिकनाई युक्त, मीठा–भारी भोजन का सेवन
- घी तैल युक्त तथा गरम भोजन का सेवन
- शक्तिवर्धनार्थ इच्छित आहार का सेवन
- सुखे मेवे तथा इससे बने पदार्थों का सेवन
- विभिन्न प्रकार के मैथी, गोंद, मोगर के लड्डूओं का सेवन
- पुष्टिकारक एवं बलवर्धक आयुर्वेदीय रस–रसायनों यथा, च्यवनप्राश, ब्रह्मरसायन, अश्वगंधापाक, क्रोचपाक, धात्रीरसायन, हरीतकी रसायन आदि पौष्टिक पाकों का सेवन
- नवीन धान्य तथा चावल, गेहूँ आदि का सेवन
- इक्षु, उड़द, तिल एवं इनसे बने हुये आहार द्रव्यों का सेवन

(3) प्रयोग करें (विहार)

- आतप सेवन (धूप का सेवन) करें।
- व्यायाम एवं मालिश (अभ्यंज) करें।
- शिरोअम्यंग, स्वेदन, धूमपान तथा अंजन करें।
- ऊनी वस्त्रों का प्रयोग तथा उश्णगृह में निवास करें।
- शिर, कान, नाक तथा पैरों के तलवों पर विशेष मालिश करें।

- शरीर पर अगूरू का लेप करें एवं अगूरू का लेप किये हुयी सुन्दर पुष्ट स्त्री के साथ मर्यादापूर्वक आलिङ्ग्न एवं इच्छानुसार मैथुन (सहवास) करें।

(4)प्रयोग नहीं करें (आहार)

- लघु एवं शीतल तथा अल्प मात्रा में आहार नहीं करें।
- वातवर्धक हल्का आहार नहीं करें।
- भूखें पेट एवं अधिक उपवास आदि नहीं करें।
- सन्तू (उदमन्थ) का प्रयोग नहीं करें।

(5) प्रयोग नही करें (विहार)

- शीतल वायु का सेवन नहीं करें।
- दिन में शयन (दिवास्वप्न) नहीं करें।
- नंगे एवं खुले पाव नहीं रहें।
- हल्के पतले वस्त्र नहीं पहने।

7.9 ऋतु हरीतकी एवं ऋतुविपर्यय

ऋतुचर्या की छः ऋतुओं में दोषानुसार आचार्य भावप्रकाष ने हरड़ (हरीतकी) का सेवन विभिन्न निर्धारित अनुपान के साथ सेवन करने से यह शत्रू के समान सभी रोगों का नाश करने में सक्षम होती हैं। अतः प्रत्येक ऋतु में निम्न अनुपातों के साथ सेवन करने से समस्त रोगों का नाश करने में सक्षम होने के कारण इसे ''ऋतु हरीतकी'' कहा जाता है। वैसे भी हरीतकी को मनुष्यों में माता के समान हितकारी कहा गया है। यथा – ''हरीतकी मनुयाणां मातेव हितकारिणी''।

विसर्ग काल

ऋतु – अनुपात

1 वर्षा – सैंधव

2 शरद – शर्करा

3 हेमन्त – शुण्ठी

आदान काल

4 शिशिर – पिप्पली (कणा)

5 वसन्त – मधु

6 ग्रीष्म – गुड़

ऋतुचर्या एवं ऋतुविपर्यम –

भारतीय वैद्यक शास्त्र में ऋतुचर्या के अन्तर्गत वात–पित्त कफ इन त्रिदोषों के समान गुणधर्म वाले आहार विहार का सेवन करने से ये बढ़ते हैं तथा इनके विपरीत आहार – विहार के सेवन से ये प्रकुपित दोष सामान्य अवस्था में रहते हैं।

अतः जिस ऋतु में जिस जिस दोषों की अभिवृद्धि होती है, उन उन ऋतुओं में उन उन दोषों के विरूद्ध गुणधर्म वाले आहार विहार का सेवन स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है, जिसे ''ऋतुविपर्यम'' कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न–

1 ऋतुचर्या की परिभाषा बताइये?

2 आदान काल की तीन ऋतुओं के नाम बताइये?
3 विसर्ग काल की तीन ऋतुओं के नाम बतायें?
4 उत्तरायण – दक्षिणायन से क्या अभिप्राय है?
5 ऋतुओं के अनुसार दोषों का संचय प्रकोप शमन बताइये?
6 हंसोदक एवं यमदृंष्ट्रा की ऋतु बताइये?
7 हेमन्त ऋतु में हरीतकी का अनुपान क्या है?
8 विसर्ग काल की श्रेष्ठ ऋतु कौनसी है?

7.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आदान काल एवं विसर्ग काल की छः ऋतुओं के बारे में संक्षेप में विवेचन किया गया। साथी ही ऋतुचर्या के अन्तर्गत वर्षा, शरद एवं हेमन्त ऋतु काल, लक्षण, रोग, पथ्य–अपथ्य, हंसोदक, यमदृंष्ट्रा एवं ऋतुविपर्यय का वर्णन किया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार विहार तथा पंचकर्मानुसार त्रिदोषज संचय–प्रकोप एवं प्रशमन की स्थिति से अवगत कराते हुये पंचकर्म द्वारा कायाकल्प हेतु संक्षेपतः संकेत किया है।

7.11 शब्दावली

- संवत्सर – एक वर्ष
- प्रावट ऋतु – वर्षा ऋतु का प्रारंभ
- भ्राजक पित्त – त्वचा में स्थित अग्नि जो स्वेद का निर्माण करती है।
- यमदृंष्ट्रा – यम की दाढ़
- आतप सेवन – धूप का सेवन
- ऋतु हरीतकी – ऋतु के अनुसार विशेष अनुपान के साथ सेवन की गयी हरेड़
- अभ्यंग – मालिश करना
- अंजन – आँख में सूरमा लगाना
- उदमन्थ – शर्करा एवं जल मिश्रित सत्तू

7.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेशकुमार अग्रवाल
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेश जिन्दल
- चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- आयुर्वेदचिकित्साविज्ञान – वैद्य बनवारी लाल गौड़
- सद्‌वृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्षसिंह
- पांतञ्जल योग दर्शन– डॉ. नित्यानन्द शर्मा

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1 स्वास्थ्य की दृष्टि से ऋतुचर्या का महत्त्व क्या है, विस्तार से वर्णन कीजिये?
2 विसर्गकाल की ऋतुओं के सेवनीय – असेवनीय आहार विहारों का वर्णन करें?
3 विसर्ग काल में षारीरिक बलाबल की स्थिति एवं ऋतुविपर्यय का वर्णन कीजिए?

इकाई–8 ऋतुचर्या –2

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 शिशिर ऋतुचर्या
8.4 वसन्त ऋतुचर्या
8.5 ग्रीष्म ऋतुचर्या
8.6 ऋतुचर्या एवं आदर्श जीवनचर्या
8.7 ऋतुसंधि एवं ऋतुहरीतकी
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में हम ऋतुचर्या के अन्तर्गत आदान काल की तीन ऋतुओं का अध्ययन करेगें। सर्वप्रथम शिशिर ऋतु, द्वितीय वसन्त ऋतु एवं तृतीय ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करेगें। आदान काल की ऋतुओं में सामान्यतः सूर्य अन्तरायण होता है तथा वायु तीव्र एवं रूक्ष होती है। साथ ही ऋतु का स्वभाव उत्तरोत्तर ''आग्नेय'' होने के कारण प्राणियों के शरीर के स्नेहांश का शोषण एवं ह्राय होता है।

आदानकाल की ऋतुओं के अन्तर्गत तिक्त–कक्षाय एवं कटू रस की वृद्धि होती है। शारीरिक बाल उत्तरोत्तर कम/क्षीण होता जाता है। वात दोष का संचय एवं प्रकोप क्रमशः ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में, शिशिर ऋतु में कफ का संचय एवं ग्रीष्म ऋतु में शमन होता है।

आदान काल की प्रथम ऋतु शिशिर की ऋतुचर्या

आदान काल का परिचय

''आदानं पुनराग्नेयं'' सूर्य के उत्तरामयणकाल को आग्नेय माना गया है। हमारे देश की भौगोलिक स्थिति कुछ ऐसी है कि भारत में अन्य देशो की अपेक्षा यहाँ सूर्य की किरणों का प्रमाव विशेष प्रकार से कुछ ऐसे पड़ता है कि यहाँ पर वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म इन छः ऋतुओं का विभाजन एक साथ संभव एवं सार्थक हो सका है।

सूर्य उत्तरी गोलार्ध में पड़ने के कारण भारतवर्ष सूर्य से अधिक दूर होने के कारण चन्द्रमा का बलपूर्ण होने से वह शीतल किरणों के माध्यम से सृष्टि के प्राणियों को तृप्त करने लगता है। इसलिये सूर्य के दक्षिणायन काल को विसर्ग तथा सौम्य कहा जाता है।

इसके ठीक विपरित सूर्य दक्षिणी गोलार्ध में पड़ने के कारण भारतवर्ष सूर्य से अधिक नजदीक होने के कारण चन्द्रमा का बल क्षीण होने लगता है एवं सूर्य की तीक्ष्ण–रूक्ष किरणों के माध्यम से सृष्टि के प्राणियों के सौम्यांश का अवशोषण करने लगता है। इसलिये सूर्य के उत्तरायण काल को आदान तथा आग्नेय काल कहा जाता है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से दिन, रात्रि, ऋतु आदि का प्रभाव संसार के सभी पदार्थों पर पड़ता है जिससे लोगों की आकृति बल में परिवर्तन भी होता है। जोकि परिवर्तन होता है उसका मूल कारण पृथ्वी–सूर्य–चन्द्रमा और वायु की गतिः विशेष ही मानी जाती है। वस्तुतः ये गतियाँ पृथ्वी की ही होती है। पृथ्वी सदैव अपनी धूरी पर घूमती रहती है जिससे दिन एवं रात्रि होती है। इसी प्रकार पृथ्वी जब सूर्य के चारों और घूमती है तो ऋतु अयन और वर्ष के

निर्माण होता है। सामान्यतः पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने में साढ़े तीन सौ पैंसठ दिन लग जाते हैं। इस प्रकार पृथ्वी के द्वारा सूर्य की परिक्रमा में लगने वाले काल को एक संवत्सर अर्थात् एक वर्ष कहा जाता है। आदान काल की ऋतुओं में क्रमशः पृथ्वी का जो मार्ग सूर्य के जितना समीप रहता है वह उतना ही अधिक सूर्यकिरणों के प्रभाववशः उष्ण (गरम) होता है। पृथ्वी पर सूर्य की किरणों का आदान–काल में प्रभाव अधिक होने से वनस्पतियों तथा प्राणियों के सौम्यांश का धीरे से अवशोषण होने लगता है। सूर्य की किरणें ज्यों–ज्यों तीव्र होती है, त्यों त्यों कफ का नाश एवं वायु की वृद्धि होती है तथा गरमी तेज पड़ने लगती है।

परिणामस्वरूप क्रमशः तिक्त के साथ एवं कटु रस की वृद्धि होती है। आचार्यों ने रसोत्पत्ति के क्रम में कहा कि वायु तथा आकाश माहभूत की प्रधानता से तिक्तरस, तथा वायु तथा पृथ्वी की प्रधानता के कषाय रस, और वायु तथा अग्नि की प्रधानता से कटुरस की उत्पत्ति होती है। आदान काल में शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म ये तीन उत्तरोत्तर ऋतुऐं आती है।

आचार्य वाग्भट्ट ने ऋतुसंधि का वर्णन करते हुये कहा कि ''असात्म्यता हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्'' अर्थात् शिशिर ऋतु की समाप्ति के 7 दिन एवं बसन्त ऋतु के प्रारंभ के 7 दिन में इस प्रकार कुल चौदह दिनों की ऋतुसंधि काल में सहसा नियमों को त्याग एवं परिशीलन करने से असात्म्यज रोग अर्थात् मौसमी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है। अतः सहसा की जगह पूर्ण त्याग एवं क्रमशः धीरे–धारे सेवन करने से स्वाथ्स्यानुवर्तन लाभ होता है।

8.3 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत निम्नांनुसार विषय का वर्णन किया जा रहा है

- शिशिर ऋतुचर्या, ऋतु परिचय एवं आहार विहार तथा असेवनीय आहार विहार
- वसन्त ऋतुचर्या परिचय एवं आहार विहार तथा असेवनीय आहार विहार
- ग्रीष्म ऋतुचर्या परिचय एवं आहार विहार तथा असेवनीय आहार विहार
- ऋतुचर्या एवं जीवनचर्या का स्वास्थ्य की दृष्टि से आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन
- ऋतुसंधि एवं ऋतुहरीतकी का स्वास्थ्य की दृष्टि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन

8.3 शिशिर ऋतुचर्या

(समय – माघ–फागुन सामान्यतः जनवरी एवं फरवरी)

शिशिर ऋतु के अन्तर्गत हेमन्त ऋतु के समान ही ऋतुचर्या का पालन करने का विधान है, यथा 'हेमन्तशिशिरे तुल्ये'' ।

1. ऋतु का लक्षण

शिशिर ऋतु के सभी लक्षण एवं चर्या सामान्यतः हेमन्त ऋतु के समान ही है। इस ऋतु में वायु तथा वर्षा से आच्छादित आकाश रहता है। शीत भी हेमन्त ऋतु होती है। अक्सर ''कोहरा'' इसी ऋतु में अधिक पड़ता है। भूमि पके हुये घासों से पीतवर्ण की हो जाती है। वायु तथा कफ से विकार उत्पन्न होते हैं। शीतला पवन चलती है। आदान काल की ऋतु होने से वायु खक्ष एवं शीत प्रधान होती है।

2. प्रयोग करें (आहार)

    - इस ऋतु में चिकनाई युक्त, मीठा–भारी भोजन का सेवन

- घी तैल युक्त तथा गरम भोजन का सेवन
- शक्तिवर्धनार्थ इच्छित आहार का सेवन
- सुखे मेवे तथा इससे बने पदार्थों का सेवन
- विभिन्न प्रकार के मैथी, गोंद, मोगर के लड्डूओं का सेवन
- पुष्टिकारक एवं बलवर्धक आयुर्वेदीय रस–रसायनों यथा, च्यवनप्राश, ब्रह्मरसायन, अश्वगंधापाक, क्रोचपाक, धात्रीरसायन, हरीतकी रसायन आदि पौष्टिक पाकों का सेवन
- नवीन धान्य तथा चावल, गेहूँ आदि का सेवन
- इक्षु, उड़द, तिल एवं इनसे बने हुये आहार द्रव्यों का सेवन

- हरड़ एवं पिप्पली का सेवन समान मात्रा में करें।
- दूध का सेवन विशेष रूप से करें।
- सुगन्धित चटनी, पकोड़ी, बढ़िया भोजन, अदरक, हींग, सैंधव लवण, घृतयुक्त स्निग्ध भोजन शिशिर ऋतु में सेवन लाभकारी होता है।

3. प्रयोग करें विहार –

- आतप सेवन (धूप का सेवन) करें।
- व्यायाम एवं मालिश (अभ्यंग) करें।
- शिरोअम्यंग, स्वेदन, धूमपान तथा अंजन करें।
- ऊनी वस्त्रों का प्रयोग तथा उष्णगृह में निवास करें।
- शिर, कान, नाक तथा पैरों के तलवों पर विशेष मालिश करें।
- शरीर पर अगूरू का लेप करें एवं अगूरू का लेप किये हुयी सुन्दर पुष्ट स्त्री के साथ मर्यादापूर्वक आलिड़्गन एवं इच्छानुसार मैथुन (सहवास) करें।
- तेल मालिश करें।
- धूप का सेवन करें।
- गरमपानी से स्नान करें।
- ऊनी एवं गहरे रंग के कपड़े पहनें।

4. प्रयोग नहीं करें (आहार)

- लघु एवं शीतल तथा अल्प मात्रा में आहार नहीं करें।
- वातवर्धक हल्का आहार नहीं करें।
- भूखें पेट एवं अधिक उपवास आदि नहीं करें।
- सन्तू (उदमन्थ) का प्रयोग नहीं करें।
- अधिक जल मिले पदार्थ सत्तू आदि का प्रयोग नहीं करें।
- पतला भोजन तथा शर्बत एवं अन्य शीतल पेय वर्जित हैं।
- कटु, तिक्त एवं कसाय रस मुक्त आहार का अधिक सेवन नहीं करें।

5. प्रयोग नहीं करें (विहार)

- शीतल वायु का सेवन नहीं करें।
- दिन में शयन (दिवास्वप्न) नहीं करें।
- नंगे एवं खुले पाव नहीं रहें।
- हल्के पतले वस्त्र नहीं पहने।
- शीत, वर्शा एवं शीतलहर तथा कोहरे से बचें।
- कोहरे के समय यात्रा नहीं करें।
- आपातकाल में यात्रा करनी पड़े तो विशेष सावधानीपूर्वक चलायें।
- ''सर्व हिमोक्तं शिशिरे'' अर्थात् हेमन्त ऋतु में भी जो पदार्थ आहार एवं विहार जन्य असेवनीय बताये गये हैं उन्हें इस ऋतु में भी असेवनीय मानना चाहियें।

8.4 वसन्त ऋतुचर्या

समय चैत्र–वैषाख
(सामान्यतः मार्च एवं अप्रेल)

वसन्त ऋतु का लक्षण – इस ऋतु में सभी दिशायें रमणीय एवं नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित होती है। हल्की शीतल, मन्द एवं सुगन्धित पवन तथा हरित–पीत सुशोभित प्रकृति के सौन्दर्य के कारण ही इसे ''ऋतुराज'' कहा जाता है। वातावरण निर्मल एवं स्वच्छ रहता है। सूर्य की किरणें तेज होती जाती है।

शारीरिक स्थिति – हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में संचित हुआ कफ सूर्य की किरणों से पिघलकर द्रव बनकर शरीर की अग्नि को कमजोर करता हुआ कफजन्य रोगों को उत्पन्न करता है। अतः वसन्त ऋतु में शारीरिक दृष्टि से कफनाशक उपचार करना चाहिये। ''वसन्ते भ्रमणे पथ्ये'' अर्थात् वसन्त ऋतु में प्रायः एवं सायंकाल श्वेत वस्त्र धारण कर भ्रमण (घूमना) करना चाहिये जिससे कफ का नाश तथा रक्त संचार सुसंचरित होता है।

संभावित रोग – खांसी, श्वास, बदन दर्द, अरूचि, भारीपन, भूख में कमी, कब्ज एवं कफ जन्य विकार आदि।

प्रयोग करें (आहार)

- इस – कटु, तिक्त एवं कषाय रस प्रधान आहार का सेवन करें।
- हल्के – लघु गुण युक्त आहार का सेवन करें।
- साठी चावल, यव, मूंग, परवल, करेला, निम्ब पत्र (नीम) आदि तिक्त रस वाली सब्जियों का सेवन करें।
- मधु (शहद) का सेवन । जल में डालकर करें।
- मधु के साथ हरीतकी का सेवन करें।
- सौंठ, विजयसार, चन्दनादि से बना क्वाथ पीयें।
- एक वर्ष पुराना जौ, गेहूँ व चावल का उपयोग करें।
- ज्वार, मक्का आदि रूखे धानों का आहार श्रेष्ठ हैं, इनका सेवन करें।
- मूली, घीया, गाजर, बथुआ, चौलाई, सरसों, मैथी पत्ता पालक, धनिया का सेवन करें।

प्रयोग विहार

- तीक्ष्ण नस्य का प्रयोग
- व्यायाम, तीक्ष्ण धूम्रपान, तीक्ष्ण अंजल, तीक्ष्ण गण्डूश का प्रयोग।
- अगुरू, कस्तूरी, केसर का उत्सादन करके कोष्ण जल से स्नान कर स्त्री सम्भोग यथा शक्ति करें।
- बाग बगीचों में प्रायः सायं भ्रमण करें।
- शरीर संशोधनार्थ वमन, तीव्र नस्य, जलनेति तथा कुंजल क्रिया करें।
- परिश्रम–व्यायाम एवं ऊबटन आदि का प्रयोग करें।

प्रयोग नहीं करें (आहार)

- मधुर, अम्ल, स्निग्ध तथा गरिष्ठ गुरू आहार अर्थात् देर से पचने वाले पदार्थों का सेवन नहीं करें।
- शीत द्रव्य, अरबी, कचालू, उदड़ का सेवन नहीं करें।
- ''न नक्तं दधि भुञ्जीत'' रात्रि मे ंदही का सेवन नहीं करें।
- नये अन्न शीतल तथा चिकनाई युक्त, भारी, खट्टे एवं मीठे द्रव्य, आलू , नया गुड, भैंस का दूध व सिंघाड़े का सेवन नहीं करें।

प्रयोग न करें (विहार)

- दिन में शयन नहीं करें।
- एक स्थान पर लम्बे समय तक नहीं बैठें।

8.5 ग्रीष्म ऋतुचर्या

समय – जेठ–आशाढ

(सामान्यतः मई एवं जून)

ऋतु के लक्षण – सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से वातावरण एवं भूमि गर्म रहती है। नैऋत्य (दक्षिण–पश्चिम) कोण से कष्टकारी गर्ग एवं तीक्ष्ण वायु बहती है।

शारीरिक स्थिति –सूर्य की तीक्ष्ण, प्रचण्ड एवं गर्म किरणों के द्वारा प्राणियों के शरीर का सार (स्नेहाशं) को खींचता रहता है अतः गर्मी के दुष्प्रभाव से निवारणार्थ शीतल आहार विहार जन्य उपचार करते हैं।

संभावित रोग –रूखापन तथा कमजोरी होती है। अंशुघात (लू लगना) हैजा, खसरा, चेचक, उल्टी–दस्त, ज्वर, नक्सीर, दाह, प्यास, पीलिया (कामला) एनिमिया (पांडू–रक्त की कमी) आदि रोग की संभावना बनी रहती है।

प्रयोग करें आहार

- रस मधुर
- गुण–शीत द्रव–लघु एवं स्निग्ध आहार।
- शालि चावल, जौ, मूंग, मसूर का सेवन।
- दूध, पना, दही की लस्सी, छाछ, फलों का रस, सत्तू (उदमन्थ) का सेवन
- नारंगी, अनार, नीबू एवं गन्ने का रस, खरबूजा, तरबूज, शहतूत, आदि रस दार फलों का सेवन

- नारियल का पानी एवं जलजीरे का प्रयोग हितकर है।
- ब्रह्ममहूर्त में उठकर पानी पीना चाहिये।
- बार बार थोड़ी, थोड़ी मात्रा में पानी पीना चाहिये।
- प्याज, पुदीना एवं धनिये का सेवन करें।
- ऋतु की उग्रता शान्त करने हेतु गुड़ के साथ हरीतकी का सेवन करना चाहिये।
  प्रयोग करें विहार
- शीतल वायु एवं जल (स्नान) का प्रयोग करें।
- दिन में थोड़ा विश्राम या शयन करना (दिवास्वप्न) हितकर है।
- हल्के या श्वेत वर्ण के सूती वस्त्र धारण करें।
- दिन में शीतल स्नान पर निवास करें।
- रात्रि में चन्दन एवं कपूर का लेप करके खुले स्थान पर शयन करें।
- शीतल झरनों एवं पुष्पों का सेवन करना।
- शीतला जल से धुला, सुगंधित केवड़े, खस की टाट्टियों से आच्छादित घर, सुहाने वृक्षों की छाया में रमण करें।
- शिरः प्रदेश के सूती कपड़ों से ढाककर तीक्ष्ण धूप या लू से बचावें।
  प्रयोग नहीं करें (आहार)
- भारी (गुरूण) आहार का सेवन नहीं करें।
- गरम, तीखे, रूखे, गुण वाले तथा नमक प्रधान द्रव्यों का सेवन नहीं करें।
- मांस, तले हुए पदार्थ तेज मसालों से बने पदार्थ तथा मैदा या बैसन से बने हुए आहार का सेवन नहीं करें।
- मद्यपान (मदिरा) का सेवन नहीं करें।
- प्यास को नहीं रोके
- कटू –अम्ल लवण रस का सेवन नहीं करें।
  प्रयोग नहीं करें (विहार)
- धूप से बचे तथा परिश्रम एवं व्यायाम कम करें।
- सहवास से बचना चाहिये। विशेष परिस्थितियों में पन्द्रह दिन या माह में एक बार संभोग करें।
- कृत्रिम धागों से निर्मित टेरी कोट, पोलिस्टर ऊनी वस्त्रों को नहीं पहनना चाहिये।
- प्रदूषित जल एवं प्रदूषित स्थान से बचें।
- भय, क्रोध, उग्र–तीक्ष्ण वायु का सेवन से बचें।
- धूप तथा शिर को बिना ढ़ेक यथासंभव यात्रा नहीं करें।

.ऋतु एवं त्रिदोष का पंचकर्मानुसार शोधन

दोष प्रकोप	**ऋतु**	**पंचकर्मशोधन विधि**
वात दोष	वर्षा ऋतु	वस्ति कर्म
पित्त दोष	शरद् ऋतु	विरेचन कर्म

कफ दोष	वसन्त ऋतु	वमन कर्म

8.6 ऋतुचर्या एवं आदर्श जीवनचर्या

ऋतुचर्या का पालन करने के साथ साथ आदर्श जीवनचर्या का पालन स्वास्थ्य के प्राप्ति हेतु परमावश्यक है। रोगोत्पत्ति में मिथ्याहार विहार एवं प्रज्ञापराध को विशेष कारण माना है। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से 1 आहार चर्या में (पोषणकारी तत्त्व) 2 विहार (शारीरिक चर्या) और 3 सद्वृन्त के अन्तर्गत (मानस चर्या) का उल्लेख है।

1 आहारचर्या – सम्यक्–सुपाच्य ऋतु के अनुसार सेवनीय आहार द्वारा शरीर का बल वर्ण तथा रस रक्त मांस–मेद–अस्थि–मज्जा शुक नाम की सात धातुओं को ऊर्जा प्रदान करता है एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। आहार के शरीपयोगी आठ सिद्धान्त है। 1 प्रकृति 2 करण 3 संयोग 4 राशि 5 देश 6 काल 7उपयोग संस्था तथा 8 उपयोक्ता।

आहार का हल्का, भारीपन, रूखा, स्निगध आदि प्रकार के व्यक्ति आवश्यतानुसार निर्धारित किया जाता है। आहार को जल, अग्नि, मन्थन, देश, काल, और भावना के द्वारा संस्कारित करते हुए उसे गुणानुसंधारित किया जाता है। इसी क्रम में आहार के अन्तर्गत एक, दो या अधिक द्रव्यों का परस्पर मिलाने से विशेष गुण की उत्पत्ति होती है। आहार का ऋतुचर्या के अनुसार सेवन दिनचर्या के अन्तर्गत करते हैं। साथ ही प्रातःकाल एवं सायंकाल का आहार भी पाचन शक्ति के अनुसार क्रमशः गुरू एवं लघु किया जाता है।

वस्तुतः आहार की गुणवत्ता एवं पोशकता को बढ़ाने के लिये शरीर के दोष–धातु एवं मलों की प्राकृत समावस्था बनी रहे इस हेतु ऋतुचर्याजन्य आदर्श जीवनचर्या में आहार की महती भूमिका है।

आहार के व्यावहारिक नियमों के अन्तर्गत उष्ण भोजन जो कि स्वादिष्ट एवं रूचिकर होता है। जिससे अग्निप्रदीप्त होती है तथा कोष्ठस्थ श्लेष्मा का नाश होता है । इसी प्रकार स्निग्ध भोजन द्वारा स्वाद की अभिवृद्धि, इन्द्रियों का पोषण, बल एवं वर्ण की शुद्धि होती है। मात्रावत आहार द्वारा सुखपूर्णक मलमूत्र का विसर्जन होता है तथा जठराग्नि का संरक्षण होता है। आहार का सेवन मानसिक सकारात्मक भावों के साथ करने से श्रेष्ठ लाभ मिलता है।

इसी प्रकार विहार का दैनन्दिनी जीवनचर्या में विशेष महत्त्व है। विहार से तात्पर्य दिनचर्या–ऋतुचर्या एवं सद्वृत्त के नियमानुसार बाह्योपयोगी कर्म का विहार के अन्तर्गत समावेश किया गया है।

आदर्श जीवनचर्या के महत्त्वपूर्ण 22 सिद्धान्त –

1 दैनिक जागरण – शय्यात्याग के उपरान्त प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ब्रह्ममुहूर्त्त में जागरण करना चाहिये। ब्राह्ममूहूर्त्त में जागरण करने से सकारात्मक जीवन शैली प्रारंभ होती है। शुद्ध वातावरण रहता है। अनेक रोगों का नाश होता है।

2 ऊषा पान – रात्रि में ताम्बे के पात्र मे रखा हुआ जल का सेवन करने का ऊषा पान कहते है। सम्यक् मलशुद्धि एवं आपान विसर्जन तथा त्वक् विहार, कील –मुंहासे से आदि दूर होते हैं।

3 मल त्याग – प्रातः ऊषा पान के पश्चात मल विजर्सन करके मुख्य प्रक्षालन करना चाहिये। दांतों को मींचकर मल विसर्जन करने से दांत – दाढ़ मजबूत होते है।

4 मंजन (दातौन) – सुविधानुसार दातौन एवं मंजन का प्रयोग करने से दांतों में चिपके जीवाणु एवं मैल दूर होते हैं। तिक्त अर्थात् कड़वा रस जैसे नीम, कषाय रस अर्थात् कसैला जैसे बबूल की दातौन श्रेष्ठ एवं जीवाणु नाशक होती हैं।

5 जिव्हा शोधन – दातौन के पश्चात् जीभी करने से जिव्हा पर संचित मैल दूर होता है एवं जिव्हा तथा मुख शुद्धि होती है।

6 अंजन – इसका प्रयोग दृष्टि विकास एवं नेत्रों की सुरक्षा हेतु करते हैं। सप्ताह में एक बार ''रसांजन'' का प्रयोग करने से दृष्टि तेजोमय एवं स्वच्छ होती है।

7 धूम्रवर्तिसेवन – नासारन्ध्रों को शुद्ध रखने के लिए आयुर्वेद शास्त्र में धूम्रवर्ति सेवन का दिनचर्या में उल्लेख किया है। इससे श्वसन वह संस्थान स्वस्थ होता है। परिणामस्वरूप – प्रतिश्याय पीनस, शिरःशूल, तुडिकेरी, स्वर भेद आदि रोग नहीं होते हैं।

8 नस्य – पंचकर्म विज्ञान के अन्तर्गत शोधन की प्रक्रिया में नस्यकर्म को माना है। नस्य क्रिया अर्थात नाक में षड्बिन्दू अथवा अणुतेल की बूंदें डालना। इससे आंख, नाक, कान सहित ज्ञानेन्द्रियों का पोषण होता है तथा असमय बाल सफेद नहीं होते हैं।

9 मुख शुद्धिः – मुख में सुगन्ध एवं रस (स्वाद) की सम्यक् अनुभूति हेतु इसका विशेष महत्त्व है। जायफल, सुपारी, लवंग, इलायची और सौंफ आदि के सेवन से मुखशुद्धि होती है।

10 तेलगड्ष – मुँह मे तिल के तेल या औषधि सिद्ध तेल को हल्का गुणगुणा भरकर बैठना, गडूंस कहलाता है। इससे हनु (जबड़ा), होठों का फटना, दंत विकार आदि दूर होते हैं। रसना द्वारा रस ज्ञान में वृद्धि होती है।

11 शिरोअम्भंग – इस प्रक्रिया के तहर शिरः प्रदेश में तैल की मालिश की जाती है। जिससे मुख की त्वचा सुन्दर तथा कोमल होती है। चक्षु एवं कान के रोग दूर होते हैं। नींद अच्छी आती है एवं बालों को पोषण मिलता है।

12 कर्णपूरण – अर्थात् कान में तिल के तेल की दो दो बूंदें डालें। इससे वातजन्य कर्ण रोग, मन्मास्तम्भ,बहरापन आदि रोग दूर होते हैं।

13 शरीर मर्दन – शरीर की त्वचा के ऊपर स्नान से पूर्व विभिन्न प्रकार के तलों से अभ्यगं (मालिश) करते हैं। इससे त्वचा स्निग्ध एवं मुलायम तथा आकर्षक होती है। त्वचा शीत एवं उष्ण सहन करने के सक्षम बनती है। वातनाड़ियां स्वस्थ होती है। त्वचा सुन्दर दिखती है।

14 पादाअम्यंग – दोनों पैरों के तलवों में प्रतिदिन मालिश करने का पाद अभ्यंग कहते हैं। पैरों की कलिका करने से पादस्फूटन (विर्जाक) नहीं होता। गृघसी आदि रोग नहीं होते हैं तथा पैरों में स्वच्छता बनी रहती है। पाद अभ्यंग नेत्रज्योति भी बढ़ती है।

15 स्नान – ऋतु के अनुसार जल से स्नान करते है। स्नान से पसीने की दुर्गन्ध दूर होती है। थकान एवं आलस्य दूर होता है तथा शरीर में ऊर्जा एवं शक्ति बढ़ती है।

16 शुद्ध वस्त्रधारण – शुद्ध वस्त्रों का धारण करने से शरीर में आकर्षण, आयु में तथा श्री (लक्ष्मी) की वृद्धि होती है एवं दरिद्रता का नाश होता है।

17 सुगंध मालाधारण – सुगंधित पुष्पों की माला पहनने से सुखद अनुभूति तथा आयु में वृद्धि होती है एवं मन प्रसन्न रहता हैं

18 आभूषण धारण – भारतीय परम्परानुसार आभूषण रत्न आदि धारण करने से शारीरिक एवं मानसिक संतोष प्राप्त होता है। व्यक्तित्त्व बढ़ता है। आभूषण सौन्दर्यवर्धक होता है।

19 केश, श्मश्रु, नखकर्तनः – एक पक्ष मे ंदो या तीन बार केश तथा नखों का कर्तन करने से मल दूर होता है। शरीर हल्का होता है। व्यक्तित्त्व में विकास होता है।

20 पादत्राण – पैरों की सुरक्षा हेतु पैरों की वृद्धि करने के लिये पदवेष धारण करने से दृष्टि में विकास तथा आगन्तुज आकस्मिक आघातज रोगों से बचा जा सकता है।

21 छत्रधारण – धूल–धूप, वर्षा, लू, तथा तीव्र वायु से हमारे शरीर की रक्षा हेतु ऋतु के अनुसार छत्र धारण (छाता) करना भी आवश्यकतानुसार लाभदायक होता है।

22 रात्रिचर्या – इसके अन्तर्गत प्रदिन दिनभर के व्यस्तकर्मों के उपरान्त रात्रि में नियमानुसार हल्का सुपाच्य आहार सेवन करते हुये निश्चित समय शयन का क्रम बनाना चाहिये। रात्रिचर्या के अन्तर्गत पलंग की ऊचांई, स्वच्छ चद्दर आदि का ध्यान रखते हुये खाद्योपरान्त शयन करना चाहिये। मच्छरों से सुरक्षा वायु का आवागमन, शयन स्थान की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखते हैं। उत्तर दिशा की ओर सिर रखकर शयन करने से गहरी निंद्रा नहीं आती एवं चिड़चिड़ापन बना रहता है तथा बूरे स्वप्न भी आने लगते हैं। प्रातः जागरण पर स्फूर्ति की बजाय कमजोरी एवं थकावट नींद पूरी नहीं होने के कारण बनी रहती है। अतः उत्तर दिशा में सिर रखकर नहीं सोवें।

अतः शारीरिक स्वास्थ्य के संवर्धन एवं विकारों को रोकने हतु वैज्ञानिक दृष्टि से आहार विहार के नियम ऋतुचर्या के नाम से जाने जाते हैं, जिनका पालन अनुकरणीय एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है।

8.7 ऋतुसंधि एवं ऋतुहरीतकी

आचार्य वाग्भट्ट ने ऋतुसंधि का विशेष वर्णन किया है।

स्वास्थ्य रक्षा हेतु ऋतुचर्या के अनुसार आहार–विहार तथा अपथ्यजन्य आहार–विहार का निर्देष आयुर्वेद शास्त्र में चरक संहित के सूत्र स्थान अध्याय 6 के अन्तर्गत ''तस्याशितीयाध्याय'' में वर्णन किया गया है। वर्ष में दो दो माह की 6 ऋतुऐं होती है। प्रथम ऋतु का अन्तिम सप्ताह एवं आने वाली ऋतु का प्रथम सप्ताह इस प्रकार दो सप्ताहों अर्थात चौदह दिनों की अवधि को ऋतुसंधि कहते हैं। विषेश बात यह है कि ऋतु संधिकाल में पूर्वऋतु के अनुसार अपनाये गये आहार एवं विहार को क्रमशः छोड़ते हैं तथा आने वाली ऋतु के अनुसार आहार विहार को क्रमशः अपनाते हैं। इस प्रकार ऋतु के बदलाव से होने वाले मौसमी रोगों से बचने के लिये ऋतु संधि की परिचर्या का पालन करने से आरोग्य बना रहता है।

आदानकाल में ऋतु हरीतकी का वर्णन

आरोग्य प्राप्ति हेतु आदान काल की तीनों ऋतुओं में ''हरीतकी'' (हरड़े) का सेवन विभिन्न अनुपान के साथ करने से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। विशेष अनुपान के साथ हरड़े सेवन से जटिल रोग भी दूर होकर स्वास्थ्य की प्राप्ति होती हैं। कहा भी गया है कि ''कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी' अर्थात् हरीतकी कभी भी विकार (कुपित) उत्पन्न नहीं करती। हरीतकी सेवनोपरान्त उदर मे लाभ ही होता है। ऋतुहरीतकी के अन्तर्गत शिशिर ऋतु में कणा अर्थात् पिप्पली के साथ, वसन्त ऋतु में मधु (शहद) के साथ तथा ग्रीष्म ऋतु के अन्तर्गत गुड के अनुपान के साथ सेवन से समस्त रोगों का नाश करने में ऋतु हरीतकी का विशेष उपयोग सिद्ध है।

अभ्यास प्रश्न

1 आदान काल की तीन ऋतुओं के नामों का उल्लेख करें।
2 उत्तरायण की ऋतुओं में त्रिदोषों का वर्णन करें?
3 आदान काल की ''ऋतुहरीतकी'' के अनुपान का वर्णन करें।
4 छत्र धारण से क्या तात्पर्य है?
5 पादत्राण से क्या अभिप्राय है।
6 ऋतु संधि का वर्णन किस आचार्य ने किया है?

8.8 सारांश

इस इकाई में आदान काल की तीन ऋतुओं 1 शिशिर 2 वसन्त एवं 3 ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया गया है।

तीनों ही ऋतुओं का समय, ऋतुओं का लक्षण एवं ऋतु के अनुसार प्रयोग में लिये जाने वाले प्रयोग में नहीं लिये जाने वाले आहार तथा विहारों का वर्णन किया गया है। आदान काल के अन्तर्गत माघ–फाल्गुन, चैत्र–वैशाख, ज्येष्ठ–आशाढ माह की ऋतुयें आती है। जिसके अन्तर्गत सूर्य उत्तरायण तथा आग्नेय होता है। इन तीनों ऋतुओं में क्रमशः चन्द्रमा का बल क्षीण एवं सूर्य का बल अव्याहत (पूर्ण) होता है। साथ ही वायु भी ''अति रूक्ष'' होती जाती है। सूर्य एवं वायु दोनों संसार के प्राणियों के सौम्याशं का शोषण करते हैं। रूक्षता द्वारा इन तीनों रसों यथा– तिल, कषाय, एवं कटु रस की वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप मनुष्य को आदान काल में यथाक्रम दौर्बलय की प्राप्ति होती है। पंचकर्म चिकित्सा पद्धति के अनुसार वर्षाऋतु में वातदोश निवारणार्थ ''वस्ति कर्म'' तथा कफ दोष निवारणार्थ ऋतु में ''वमनकर्म''

कराये जाने का संकेत किया है। ऋतुचर्या के साथ साथ दैनिक जीवनचर्या के इक्कीस सिद्धान्तों का वैज्ञानिक महत्त्व का वर्णन किया है। 'ऋतुजन्य रोगों (मौसमी बीमारियों) एलर्जी आदि से बचने हेतु ऋतुसंधि का परिचर्या का वर्णन करते हुये अन्त में आदान काल उपयोगी ''ऋतुहरीतकी'' के अनुपान का उल्लेख किया है।

8.9 शब्दावली

- नैऋत्य – दक्षिण–पष्चिम कोण
- अंषुघात – लू लगना
- दिवास्वप्न – दिन में षयन करना
- वस्ति कर्म – गुदमार्ग संषोधित हेतु द्रव्य के प्रयोग की क्रिया
- विरेचन – मुखमार्ग से दी जाने वाली दस्तावर औशधी

- वमन – मुखमार्ग से कफ दोश को निकलने वाली उल्टी प्रक्रिया
- ऊशःपान – ताम्ब्र पात्र में रात्रिपर्यन्त रखे जल का प्रायः पान करना
- कर्ण पूरण – कान में डालने वाली औशध
- ऋतु संधि – चल रही ऋतु के आखिरी 7 दिन तथा आने वाली ऋतु के प्रथम 7 दिन अर्थात् दो सप्ताह (14 दिनों) की अवधि।

8.10 संदर्भ ग्रथ सूची

- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ. राकेश जिन्दल
- चरक संहिता – श्री सत्यनारायण शास्त्री
- स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. रामहर्ष सिंह
- स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेशकुमार अग्रवाल
- पांतञ्जल योग दर्शन – डॉ. नित्यानन्द शर्मा

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1 उत्तरायण की ऋतुओं का विस्तार से वर्णन करें?

2 आदान काल की ऋतुओं का पथ्य–अपथ्यजन्य आहार विहार का वर्णन करें?

3 आदर्श जीवनचर्या का विस्तार से वर्णन कीजिए?

4 आदान काल में त्रिदोषानुसार पंचकर्म का वर्णन कीजिए?

इकाई 9 स्वास्थ्य एवं व्याधि की अवधारणा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 स्वास्थ्य की अवधारणा
9.4 व्याधि का विवेचना एंव अवधारणा
9.5 व्याधि की अवधारणा के अन्तर्गत अष्ट विधा परीक्षा
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 सन्दर्भ ग्रंथ
9.9 निबंधात्ममक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

"स्वास्थ्य हमारा जन्मसिद्व अधिकार है" स्वास्थरूपी अधिकार को पाने के लिये किसी अस्पताल या औषधि का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं बल्कि स्वस्थ रहना पूरी तरह से हमारे अपने हाथ में है। स्वास्थ्य के नियमों से दूर रहने के कारण आज प्रतिस्पर्धा के इस वैश्विक महौल में हम प्रकृति से दूर होकर आज की मौतिक एंव साामजिक वैश्विक परिस्थितियों में हम अपने आपको स्वस्थ नहीं रख पा रहे हैं। इस इकाई के अन्तर्गत हमने स्वास्थ्य एंव व्यधि की अवधारणा के उन सिंद्वातों का अध्ययन किया गया है। जिससे हम यदि उनका पालन करते है तो अपने आपको रोग मुक्त कर स्वस्थ रखना कोई कठिन काम नही है।

स्वास्थ्य का तात्पर्य ही स्वस्थ अर्थात अपने में स्थित होने से है। अपने अन्दर ही स्वास्थ्य का राज छिपा रखा है। जबकि हमारी शक्तियाँ स्वास्थ्य को ढूढने में बाहर लग रही है। आज के तनावपूर्ण शोरगुल के वातावरण में सब चक्कर लगा रहें है। हमारी उर्जा शक्ति बाहर बह रही है। जबकि स्वास्थ्य की सारी परम्परा अन्दर से शुरू होती है। प्रज्ञाअपराध आदि से बचते हुये आनन्द से जीने के लिये सदाचार सदवृत्तों का नियम, संयम, तप, यम, नियम, आदि शरीर में भीतरी यंत्र से शरीर के कार्य सम्पादित करते हुये उसे स्वस्थ रखते हैं।

सभी रोगों का मूल कारण आज के इस भौतिक जगत में हम मानसिक तनाव एंव विजातिय द्रव्यों का शरीर में बढना है। शरीर के समस्त शारिरिक अंगों के अवयवों जैसे जैसे हृदय, फुफ्फस पाचक रसों के स्त्राव, एंव त्वचा का कार्य, वृक्कों का कार्य, एवं रक्तशुद्वि आदि। का नियंत्रण नाडी संस्थान के द्वारा मस्तिष्क से होता है। अतः सदवृत्त सदाचार एंव स्वास्थ्य के नियमों, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रिचर्या, एंव आहार एंव निद्रा के नियमों के द्वारा पालन करते हुये स्वस्थ रह सकते हैं।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम अध्ययन करेगें कि

- स्वास्थ्य क्या है स्वास्थ्य के उद्देश्य क्या है– स्वास्थ्य का क्षेत्र क्या है।

- तीन धारणायें क्या है, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रिचर्या, आहार एंव निद्रा के धारणीय एंव अधारणीय वर्गो का वर्णन करणीय अकरणीय कर्म क्या है–
- व्याधिकी अवधारणा, परिभाषा व्याध्यिों के मूलभूत तीन कारण परीक्षा, नाडी, परीक्षा ,विधि आदि का वर्णन किया जा रहा है।

9.3 स्वास्थ्य की अवधारणा

स्वास्थ्यः– स्वास्थ्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। स्व =अपने में, स्थ=स्थित होना। अर्थात स्वास्थ्य एक ऐसा विज्ञान है जो व्यक्ति के अन्दर ही स्थित रहता है। आयुर्वेद के महान आचार्य चक्रपाणिजी ने कहा है कि उसे स्वस्थ व्यक्ति कहते है जो विकार रहित अवस्था में स्थित हो । अर्थात् स्वस्थ व्याक्ति के भाव को ही स्वास्थ्य कहा जाता है। अग्रेजी में Healthy "स्वस्थ"और Healh को "स्वास्थ्य" कहते है।

"स्वस्थ्स्य भावः स्वास्थ्य" स्वस्थ का सकारात्मक भाव ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत ही स्वस्थवृत्त का पालन आवश्यक है। स्वस्थकृत क्या है। इसे हम आगे अध्ययन कर जान पायेगें। स्वास्थ्य सम्बंधित जो भी करणीय कार्य एंव नियम है। वे सभी स्वास्थवृत्त के अन्तर्गत आते हैं।

स्वमिन् स्थाने स्वमिन कर्मणि स्वसु
रूपे स्थीयते यत् वृत्तं स्वस्थवृतम्।

"जिसको करने से आहार –विहार दोष धातु मल अपने अपने स्थान पर रहते हुये अपने–अपने नियत कार्य को करें तथा उनका स्वरूप प्राकृतिक रहें, इन सभी का पालन करना स्वस्थवृत्त है।

(1) आचार्य सुश्रुत के अनुसार

स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणः– आचार्य सुश्रुत कहते है ंकि जिस व्यक्ति के शारीरिक (वात पित एंव कफ) तथा मानसिक दोष रज और तम समान अवस्था में हो तो (हीन या अतिमात्राा में नहीं हो) अग्नि (तेरह प्रकार की)समान हो, धातुये सात रस, रक्त, मांस, मेद अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि सम प्रकार में हो, जिसके पुरीष, मूत्र, एंव सवेद की क्रियायें ठीक प्रकार से हो तथा आत्मा , इन्द्रियाँ, और मन जिसका प्रसन्नावस्था में हो आुयर्वेदानुसार उस व्यक्ति को स्वस्थ पुरूष कहते है।

समदोषः **समाग्निश्च** समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यमिधीयतेः। (आचार्य सुश्रुत)

(2) आचार्य चरक के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण

स्वस्थ व्यक्ति के प्ररिप्रेक्ष्य में आयुर्वेद के काय चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञ (ऋषि) आचार्य चरक कहते है कि :–

सममांसप्रमाणस्तु समसंहननों नरः।
दृढ़ेन्द्रियों विकाराणां न बलेन अभिभूयते।।
क्षुप्तिपिपासातपसह शीतव्यायाम संसह।
समपक्ता समजरः सममास चयोमतः।।

(i) अर्थात्– जिस व्यक्ति की मांस धातु सम प्रमाण में हो
(ii) शारीरिक गठन समप्रमाण में हो।

(iii) जिसकी इन्द्रियों थकान रहित सुदृढ हो।
(iv) रोगों का बल जिसको पराजित ना कर सकें।
(v) जिसका व्याधिक्ष समत्व बल बढा हुआ हों।
(vi) जिसका शरीर भूख ,प्यास, धूप, शक्ति को सहन कर सकें।
(vii) जिसका शरीर व्यायाम को सहन कर सके।
(viii) पाचन शक्ति आर्थात जाठराग्नि समावस्था में कार्य करती हो।
(ix) निश्चित कालानुसार ही जिसका बुढापा आये। जिसमें मांसादि की चय उपचय क्रियायें में समान होती हो। ऐसे उक्त दस लक्षणों वाले व्यक्ति को आचार्य चरक ने स्वस्थ माना है।

(3) आचार्य कश्यप के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण

आयुर्वेद शास्त्र के ही एक अन्य आचार्य कश्यप ने भी स्वस्थ व्यक्ति के सदर्भ में खिल्ल स्थान अध्याय पाचं के 6–7–8 श्लोक मे कुछ इस प्रकार उल्लेख किया हैं।

" अन्नाभिलाषों भुत्तस्य परिपाकः सुखेन च।
सृष्टविष्मूत्रवातत्वं शरीरय तु लाघवं ।
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधकम।
बलवर्णायुंषांलाभः सौमनस्य समाग्निता।
विद्यादारोग्य लिङ्गानि विपरीते विपर्ययम "।।(आचार्य कश्यप)

स्वस्थ्य व्यक्ति के लक्षण निम्नानुसार है–

1. भोजन करने की इच्छा अर्थात् भूख समय पर लगती हो
2. भोजन सुखपूर्वक पचता हो।
3. मलमूत्र और वायु के निष्कासन उचित रूप में होते है।
4. शरीर में हल्कापन एंव स्फुर्ति रहती हो।
5. इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हो
6. मन की सदैव प्रसन्न स्थिति हो
7. सूख पूर्वक रात्रि में शयन करता हो
8. सूखपूर्वक बहम्चर्य मूर्हूत में जागरण उठता करता हो।
9. बल ,वर्ण एंव आयु का लाभ मिलता हो।
10. जिसकी पाचकाग्नि की समानता हो।

ये उक्त दस लक्षण स्वस्थ व्यक्ति के होते है।

हमेशा स्वस्थ बने रहने के उपाय निम्न है–

(1) नरो हिताहार विहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त :।
दातासमः सत्यपरः क्षमावान् आप्तोपसेवी च भवत्य रोगः।। (आचार्य चरक)

1. जो व्यक्ति हितकर आहार का सेवन करने वाला हो।
2. जो व्यक्ति हितकर विहार का सेवन करने वाला हो।
3. सोच विचार कर (समीक्षाकर) कार्य करें।
4. सांसरिक विषयों में लिप्त ना हो।
5. त्यागमय प्रवृत्ति वाला हो।
6. समस्थिति समभाव में रहने वाला हो।
7. दान प्रवृति वाला हो।

8. सत्य बालने वाला हो।
9. क्षमावान हो।
10. महापुरूषों के वचनों का पालन करने वाला हो।
11. उक्त दस प्रकार के स्वभाव वाला वह व्यक्ति रोगी नहीं होता अर्थात् हमेशा स्वस्थ रहता है।

(V) आचार्य भाव प्रकाश के अनुसार स्वस्थ व्यत्ति के लक्षण :–

दिनचर्यां निषचर्याः ऋतुचर्यां यथेदितम।
आचारन् पुरूषः स्वस्थः सदा निष्ठति नान्यथा।।
अर्थात् सदाचारी पुरूष को दिनचर्या, रात्रिचर्या
एंव ऋतूचर्या का पालन करना चाहिये।
इनका पालन करने वाला व्यक्ति हमेशा स्वस्थ रहता है।

(VI) W.H.O. के अुनसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणः–

विश्व स्वास्थ्य ंसगठन की स्वास्थ्य की परिभाषाः–

" Health is a state of Complete Physical, mental & social well being and not merely an absence of disease or infirmity. (W.H.O. 1948)

स्वास्थ्य के उदेश्यः–

01. प्रयोजनं चास्य स्वस्थ्य स्वास्थ्य रक्षणं
02. आतुरस्य विकार प्रशमनं चा।।

अर्थात तात्पर्य है कि –

01. स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण करना
02. एंव रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना।

स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत चाहें वह आयुर्वेद हो या आधुनिक चिकित्सा विज्ञान हो दोनों में ही स्वास्थ्य रक्षा एंव चिकित्सा दोनो पहलूओं पर ही ध्यान देने हेतु कार्य किया जा रहा है।

धर्माथकाममोक्षंणा आरोग्यं मूलमम्।
रोगस्त्स्यापहर्तारः श्रेष्यसो जीवितस्य चः।।

चार पुरूषार्थो धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष की प्राप्ति में आरोग्य सर्वोपरि है। बिना किसी आरोग्य के अर्थात् स्वस्थ जीवन के धर्म (धारणा करने योग्य) अर्थ (धन) काम (इच्छा) एंव मोक्ष (मुत्ति) प्राप्ति सम्भव नहीं है।

सर्वमेवं परित्यं शरीरमुनपालयेत।
शरीरस्य प्रणस्टस्य सर्ववमेंव विनष्यति।
तदभावें हि भावनां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।

अर्थात जो व्यक्ति को सभी कार्य छोडकर सर्वप्रथम शरीर का पालन अर्थात स्वास्थ्य को संरक्षण करना चाहिए। क्योंकि यदि शरीर नष्टता को प्राप्त हो जाये तो सब कुछ व्यर्थ है। स्वस्थ रहने पर ही अन्य भव है कि यदि स्वस्थता नहीं है तो कुछ कार्य सम्भव नहीं है।

षष्टिकान् शाली मुद्गान सैन्धवामलकयवान्।
अन्तरीक्षं पयः सर्पि जग्ड्लः मधुचाभ्यसत्।।
तच्च नित्यं पयः प्रयुज्जीत् स्वास्थयं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणां अनुत्पत्तिकरं च यत्।।

अर्थात इन वस्तुओं के नित्य सेवन करने, यथा सम्भव उपभोग करने से रोगों की उत्पति नहीं होती है जैसे– चावल ,मूंग, सैन्धल लवण, आंवला, यव, अन्तरीक्ष जल, दुग्ध, जाड0ल मांस मांसाहारी, शहद, इनका सेवन हितकारी संरक्षण में उपयोगी है।

"Dimensions of Health.

(i) Physical Dimension
(ii) Mental Dimension
(iii) Social Dimension
(iv) Spiritual Dimension
  A- Social Economical Dimension
  B- Vocational Dimension
  C- Emotional Dimension
  D- Philosophical Dimension
  E- Cultural Dimension
  F- Environmental Dimension
  G- Educational Dimension etc.
  H- Nutritional Dimension
  I- Curative Dimension

Concept of well being

A- Standard of living
B- Level of Living
C- Quality of life

स्वास्थ्य का दशविध क्षेत्रः–

01- दिनचर्या
02- ऋतुचर्या
03- रात्रिचर्या
04- आहार विहार
05- वेगों का धारण एवं अधारण करना
06- निद्रा
07- ब्रह्मचर्य धारण
08- यम नियम पालन
09- पथ्य एवं अपथ्य
10- अष्टांग योग पालन आदि।

मानव शरीर का आरोग्यता एंव निरोगता त्रिदोषों पर आधारित है। वातपित की प्रधानता दनकी सम्यक मात्रा आरोग्यदायक तथा इनकी न्यून या अधिक मात्राा में रोग कारक होती है। इन दोनों की प्रधानता, वायु, ऋतु, दिन, रात्रि, आहार– विहार की अवस्था पर अधारित है।

- दिन के प्रारम्भ में कफ की प्रधानता
- भोजन के मध्य में पित्त की प्रधानता
- शाम के अन्त में वायु की प्रधानता।
- रात्रि के प्रारम्भ में कफ की प्रधानता
- रात्रि के मध्य में पित्त की प्रधानता।
- रात्रि के अन्त में वायु की प्रधानता।
- भोजन क`पाचक के समय में कफ की॒पधानता।
- भोजन के मध्य में पित्त की ॒पधानता।
- भोजन के अन्त में वायु की प्रधानता।
- वय के पारम्भ बाल्यावस्था में कफ की प्रधानता
- वय के मध्य में (युवावस्था) पित्त की प्रधानता।
- वय के अन्त में (प्रौढावस्था) वायु की प्रधानता रहती है।

स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण करना इस हेतु किये जाने वाले सारे उपाय सदवृत्त एंव स्वास्थ्य का आधार है। इसके अन्तर्गत निम्न सारें उपायों एवं तीन परिचर्याओं का विशेष पालन करना आवश्यक है।

(अ) तीन परिचर्यायें

01. दिनचर्याः— प्रातः काल में जल्दी बह्मचर्य मूर्हत से लेकर सायं काल तक की जाने वाली चर्याः।
02. रात्रि चर्या — संध्याकालीन एवं शयन करने तक की परिचर्या
03. ऋतुचर्या ऋतू के अनुसार आहर विहार करना ऋतुचर्या है।

(ब) तीन इच्छाये होती है—

(क) प्राण एष्णा
(ख) धन एष्णा
(ग) धन एष्णा

01. प्राण एष्णा :— प्राणों की रक्षा के लिये, स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य संरक्षण के लिये मनुष्य के द्वारा सदाचार एंव स्वस्थवृत्त के नियमों का पालन करना तदनरूप जीवन निर्वाह करना तथा प्राणों को अर्थात् स्वास्थ्य को बनाये रखना।
02. धन एष्णा :— सामाजिक कार्य, व्यक्तिगत कार्य हेतु भौतिक जगत में जीवन के संचालन के लिये , ारीति— रिवाज, पालननार्थ धन की आवश्यकता होती है। अतः कृषि करना, नौकरी करना, व्यवसाय करना, आदि काम करना धन के एष्णा में कहलाते है।
03. परलोक एष्णा :— स्वस्थ जीवन एंव धन की प्राप्ति के बाद तीसरी अंतिम परलोक एष्णा होती है। यम, नियम का पालन करना, पापों, से बचना एंव पुण्य कार्य करना कथनी एंव करनी में पवित्रता, परोपकार के काम करना ,दान देना, दूसरों का सहयोग करना, दूसरें के दुःख में अपने सूख का त्याग करना आदि परलोक

एष्णा है। अतः प्रत्येक इपने मनुष्य की मन, बुद्दि, शक्ति से युक्त इस लोक में एंव परलोक में कल्याण चाहने की उक्त तीन एष्णा होती है।

आदर्श दिनचर्याः–

01. जागरण स्वस्थ व्यक्ति को प्रातःकाल ब्रह्म मूहूत पूजा – जप – तप एंव प्रवित्र कार्य करने से सकरात्मक स्वच्छ वायुमण्डल की तरगें मन एंव शरीर को आन्दित करती है।
02. मुखप्रच्छालन– बिस्तर को छोडने के बाद ताजगी हेतु मुँह को धोना चाहिए।
    अंजन– नेत्रों को स्वस्थ रखने के लिये पांच क्रियायें
    (i) तर्पण
    (ii) पुटपाक
    (iii) सेक
    (iv) आश्च्योतन
    (v) सौवीराजन (श्रेष्ठ अंजन) करना चाहिये।
03. अंजन को करना चाहिए

उषा पानः– तांबें के पात्र में रखा रात्रि भर का जल प्रातः काल एक से तीन गिलास पीना चाहिए इससे शैाचालय क्रिया समयक, तथा आंतो की मलविसर्जन क्रिया समान्य होती है। मलाशय स्वस्थ्या होता है चेहेर पर चमक आती है।

धम्रपानः–तीन प्रकार की धुम्रवर्ति के द्वारा धुम्रपान करना चाहिए।

01. प्रायोगिकी 02. स्नैहिकि 03. शिरौ वैरेचनीकि इससे सिर के रोग, आंख–नाक–दांत– केश, छींक अतिनिद्रा, ज्ञानेन्द्रियों के रोग दूर हो जाते है कफ दोष शांत हो जाता है। हदय में हल्कापन आता है।
02. नस्यः– नाक में स्नेह तेल लगाने पर नस्य कहते है। यह मर्श एंव प्रतिमर्श दो प्रकार का होता है नस्य नेत्र , नाक , कान, सिर, एंव दाढी, केश(बालों) के करोग को दूर करता हैं। शिर की संधियॉ मजबूत होती है। स्वर स्पष्ट गम्भीर एंव मजबूत होता है।
03. शौचक्रियाः– मल के त्याग की अनियमितता होनी चाहिए इससे कब्ज दूर होती है। रात्रि के भोजन का पाचन ठीक होता है। नीदं अच्छी आती है। और संतुलित स्वभाव बनता है। गैस कब्ज को दूर होकर कार्यो में सम्यक प्रवति होती है। मलमूत्र के वेगों को नही रोकना चाहिए।
04. दन्तधावनः– शौचोपरात दांतो की सफाई को दन्तधावन कहते है। बबूल, करवीर, आक, नीम, अर्जून की लकडी की दातौन करनी चाहिए। दातौन से मुह की दुर्गन्ध, दांत, समूडें, आदि स्वस्थ हो जाते है।
05. जिहवा मिलेखनः– दंत धावनोपरात जीभ साफ करना चाहिए स्वाद का सम्यक ज्ञान, मूखगत, रोग इसेस दूर होते हैं।आहार में रसों के प्रति स्वाद की प्रति बढती है।
06. गण्डूस धारणः–औषधि सिद्व द्रव्यों क`जल या ताजा ठंडा पानी को मुख में भरकर बैठना गण्डष कहलाता है। तथा गरारें पानी की तरह किया जाता है। कवल कहते हैं। तिल का तेल भी उपयोग में मुह से कर सकते है।
    - दांत मजबूत ,दन्तहर्ष(गरम ठंडा लगना) गले का सूखना, होटो का फटना दूर हो जाते है।

- सिर पर तेल का लगानाः– सिरदर्द बालों का टूटना, बालो का लम्बे होना, बाल काले एवं चमकीले होते हैं। स्मरण शक्ति, बुद्वि निर्मल होती है एवं गहरी निद्रा आती हैं।
- कर्ण पुरण – कान में प्रतिदिन तेल डालने से कर्णबाधिर्य, बहरापन, या उँचा सुनना आदि रोग दूर हो जाते है।
- अभ्यंगः– शरीर मे तेल की मालिश करने से त्वचा कातिदा एवं कोमल होती है। वात रोग दूर होते हैं। झुर्रियों दूर होती है। नेत्रज्योति दुर होती है।
- व्यायामः– शरीर में स्थिरता, बल प्राप्ति स्फूर्ति प्रकूपित कफ सहित दोष शान्त एवं पाचन शक्ति में अभिवृद्वि होती है।
- स्नान– थकावट , पसीना, एंव दुर्गन्ध, बुरे सपने आना आदि दूर होते है। जीवन शक्ति कामोत्तेजना शक्ति, चमक, ओज तेज बढाने वाला होता हे।
- वस्त्र धारण– स्वच्छ वस्त्र पहने इससे शरीर आकर्षण युक्त एंव सुन्दर दिखता है। प्रसन्नता आती है व्यक्तित्त्व में निखार आता है।
- सुगधित द्रव्य का लेप एंव माला को धारण करनाः– इससें पसीना दुर्गन्ध दूर होकर मन प्रसन्न होता है। ओज की वृद्वि होती है।
- क्षोरकर्मः– स्नान से पूर्व क्षौरकर्म केश एंव दाढी बनाना नख कर्तन करने से सुन्दरता ,मन प्रसन्न एवं शरीर प्रवित्र होता है।
- पदवेश पहननाः–जूते चप्पल पहनने से नेत्र एवं त्वचा को लाभ होता हे। बलवर्ण पराक्रम आयु बढती है।
- भोजन–उचित मात्रा, उचित समय, पाचन शक्ति के अनुरूप करना चाहिये।
- शिष्टाचार– यम एंव नियमों का पालन करना स्वाध्याय, योगासन, प्राणायाम, का अभ्यास समायोजित स्थान पर नियमित करना चाहिये।
- रात्रिचर्याः– इसमें आहार एंव निद्रा का ही समावेश हैे। तीन उपस्तम्भों में आहार निद्रा एंव ब्रह्मचर्य को माना गया है।
- रात्रिचर्या के तीन भाग है–
  01. सांयकालीन चर्या– पूजा, वंदना, आरती आदि।
  02. रात्रिकालीन चर्या– रात्रि में हल्का एंव सूपाच्य मिताहार का सेवन करना।
  03. शयन करना– प्रसन्न मन से आराध्य का ध्यान करना तनाव को दूर कर शयन करना।

रात्रिचर्या (निशाचया) के बिन्दुः–

- आहार एकदम हल्का सुपाच्य हो।
- सोने से दो घंटे पूर्व खा लिया हो।
- भोजन के बाद हल्का पैदल भ्रमण हो।
- स्वाध्याय अध्ययन के समय प्रकाश पर्याप्त हो।

- मन प्रसन्न साहित्य लोकन एंव पठन तथा मनन करे।
- मैथून (संभोग) स्वपत्नी के साथ ही करे।
- प्रतिदिन मैथून नही करे।
- ऋतुमति स्त्री के साथ नहीं करें।
- रूग्णा एंव सक्रमण रोग से पीडित होने पर भी सहवास नहीं करें।
- दुश्चिरित्र कामेच्छा में कमी एवं पर पुरू,ष प्रेमी के साथ संभोग नही करें।
- परस्त्री, हीन जा,ति अविवाहित, के साथ सभोग नहीं करे।
- प्रतः संध्या,पतिप्रदा, पूर्णिमा, अमावस्या, पवित्र त्यौहारों में प्रवित्र स्थानों में संभोग नहीं करें।
- प्रवित्र वृक्षों के नीचे, पवित्र नदी नाले एंव तालाब के किनारें ,श्मशानघाट, एंव सार्वजनिक स्थानों, पर सहवास नही करें।
- मल मूत्र के त्रीव वेग होने पर ,थकावट होने पर, उपवास में एंव दोनों की परस्पर इच्छा नही होने पर संभोग नहीं करे।

  निद्राः– मन की वह स्थिति जिसके उसका साक्षात सम्पर्क ज्ञानेन्द्रियों,, एंव कर्मेन्द्रियों, से नही रहें।केवल श्वास प्रश्वास, रक्त संचार, हदय गति एवं पाचन प्रक्रिया चलती है। अच्छे स्वास्थ्य हेतु निद्रा आवश्यक है।

अवस्था	समय
बालक की नींद	20 घंटा
साधारण स्वस्थ व्यक्ति	6–8 घंटा
वृद्वावस्था में	4–6 घंटा
रोंगी भोगी योगी की निद्रा	8 , 6, 4 घंटे

निद्रा स्थान, स्वच्छ, हवादार, बिछावट, सुगन्धित करना चाहियें द्रव्य , रूचि अनुसार संगीत, मन शांत सिर उतर दिशा में नही होना चाहिये।

ऋतुचर्याः– आदान काल – शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म।

विसर्ग काल – वर्षा, शरद, हेमन्त

ऋतु के अनुसार आहार विहार का पालन करना चाहिये।

विशेषकर ऋतुसंधि का ध्यान रखना ,निर्धारित चर्या की पालना करना चाहिए।

अधारणीय धारणीय वेगः– अधारणीय वेग 13,पकार के होते हैं। इनको रोकना नही चाहिए। इनको रोकने से मुत्राशय, पेट, शिर, लिंग, आंख, नाक, कान, आदि में दर्द एंव अकडन जकडन आ जाती हैं।

01.मूत्र	08 जुम्मा (जमाई)
पुरीष	क्षुधा भूख
शुक्र	पिपास (प्यास)
अपानवायु	आंसू (अश्रु)
क्षवयु छीक	निद्रा नींद आना
डकार	13 कलम (परिश्रम से उत्पन्न श्वास का वेग)

धारणी वेगः–अच्छा मनुष्य बनने के लिये इनका धारण (नियंत्रण) करें।

01. कुकर्मो, पापकर्मो, अववेकपूर्ण इच्छाओं का नियंत्रण करना।
02. लालच, भय, क्रोध, शौक, ईर्ष्या, हंकार करना एवं निर्लज्जता आदि पर नियंत्रण करना।
03. कटुशब्द, गाली गलौच करना परस्त्रीगमन पर नियंत्रण आदि।

- स्वास्थ्य सम्बन्धी सदाचार हेतु कर्म।
- देवता, गौ, ब्रांह्मण, गुरूजन, वृद्व पुरूष की पूजा करना
- हवन , उपासना, करना,
- संध्यावंदन करना
- तन एवं मन की स्वच्छता रखना
- अष्टांग योग में यम नियम का पालन करना।
- स्वच्छ वस्त्र पहनाना
- बालों में कंघी लगाना।
- मर्श / प्रतिमर्श नाक में तेल लगाना करना
- दिनचर्या एवं रात्रिचर्या, का पालन करना।
- गरीब ,वृद्व एंव बालको की सहायता करना
- दान करना यथा शक्ति सामथर्या के अनुसार
- परोपकार एंव पुण्य करना।
- सहानुभूति करना।
- अतिथियों की पूजा करना।
- पिण्डों को पिण्डदान पर्तण करना।
- सभी प्राणियों से सहानुभूति रखना।
- प्रसन्न आनन्दित रहना।

ये कर्म को नहीं करे।

1. झूठ परत्री गमन, परधन पर आसक्ति
2. शत्रुता, पापकर्म
3. इर्ष्या, अपशब्द
4. परनिद्रा, बडों का अपमान करना
5. गंदे बिस्तर एवं गंदे वस्त्र को धारण करना।
6. सामाजिक स्थानों पर वेगों को`निकालना।
7. नाक में अगुलियों को डालना।
8. विकृत चेष्टायें करना।
9. अश्लील हरकते करना।
10. हिंसक पशुओं के पास जाना।
11. बिना स्नान, पूजा करना, भोजन करना आदि।
12. मांसाहार का सेवन करना।
13. पशु पक्षियों को अकारण ही मारना
14. श्मशाम में घूमना।
15. अश्लील साहित्यों का पढना एवं अश्लील चित्र देखना।

16. चिन्ता करना उदण्डता करना आदि।
17. नौकरों के वेतन को राकना।
18. निजि व्यक्तियों पर अविश्वास करना।

9.4 व्याधि की विवेचना एंव अवधारणा

व्याधि की परिभाषाः–स्वास्थ्य की परिभाषा के विपरित लक्षणों को "व्याधि" कहते हैं। आरोग्य का नाम सुख एंव विकार का नाम "दुःख" (व्याधि) हैं। शारिरीक एंव मानसिक दुःख देने वाले हेतु को विकार कहते हैं। जिस कारण से दोष धातुओं का अति या न्यून मात्रा में परस्पर मिलना, शरीर को दुःख पहुँचाना "व्याधि" कहलाती है।

व्याधि के पर्यायः– गद आंतक ,यक्ष्मा, ज्वर, अथवा रोग आदि।

रोगों का निर्धारण करनाः–(1) रोगों के विभिन्न भेद
(2) साध्य एंव असाध्यता
(3) रोगो का सम्पूर्ण ज्ञान

इनके आधार पर रोग विनिश्चय (रोग पहचान) की जाती है।

व्याधि उत्पत्ति के कारणः–(1) मिथ्या आहार विहार
(2) प्रज्ञापराध
(3) परिणाम

व्याधियों के भेदः–

(1) त्रिवध व्याधि

A- आधिभौतिक व्याधि
B- आधिदैविक व्याधि
C- आध्यात्मिक व्याधि

A- आधिभैतिक व्याधि दो प्रकार की होती है।

- ये आगन्तुज होती है।
- संघात/ बलज होती है।
- बाह्य कारणों से होती है।

क–व्यालज – जो जानवरों जैसेः– कुत्ता, बिल्ली, के काटने या आक्रमण करने से, सांप, बिच्छू आदि के कारण होने वाली व्याधियाँ ।

A- 2– शस्त्रज– शस्त्र हथियाार के आघात से उत्पन्न

B- अधिदैविक व्याधि प्राकृतिक कारणों से होती है।

(1) काल बलज अर्थात् ऋतु सम्बन्धित व्याधि
(2) देवकाल सम्भूत– देवता– राक्षसों से उत्पन्न
(3) स्वभाव बलज जैसे– भूख, प्यास, क्रोध निद्रा, वृद्धावस्था, आदि।

C- आध्यात्मिक व्याधियॉः–'

- ➢ मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग
- ➢ आदिबलज – वंशानुगत रोग व्याधियॉ
- ➢ वंशानुगत व्याधियॉ के भेद–
  01. मातृज
  02. पितृज

- अंधापन, पंगु, गूंगापन आदि।
- अनुचित आहार– विहार के रोग

  01. आमाशयोत्थ– कब्ज, अम्लपित्त श्वास आदि ।

  02. शस्त्रज– हथियार चाकू, छूरी, तलवार,, बंदूक के प्रहार से उत्पन्न

व्याधि के अन्यभेदः– (चार प्रकार के है)

01. आगन्तुज रोग
02. मानस रोग
03. शरीर के रोग
04. स्वाभाविक रोग

व्याधि के अन्य भेद दो प्रकार के हाते है।

01. स्वतंत्र रोग
02. परतंत्र रोग

व्याधि के अन्य भेद (सात प्रकार के होते है)

01. आदिबल प्रवृत्त व्याधियॉ
02. जन्मबल प्रवृत्त व्याधियॉ
03. दोषबल प्रवृत्त व्याधियॉ
04. संधात बल प्रवृत्त व्याधियॉ
05. कालबल प्रवृत्त व्याधियॉ
06. देवबल प्रवृत्तव्याधियॉ
07. स्वभाव बल प्रवृन्त व्याधियॉ

अधिष्ठान भेद दो प्रकार के व्याधियॉ होते है–

क. मानसिक व्याधियॉ

ख. शारीरिक व्याधियॉ

कारण भेद व्याधियॉ दो प्रकार की होती है।

(i) सुख साध्य

(ii) कष्ट साध्य

(iii) याप्य

(iv) असाध्य

आक्रमण के भेद से व्याधियॉ तीन प्रकार की होती है।

(i) मृदु आक्रमण जन्य व्याधियॉ

(ii) मध्य आक्रमणजन्य व्याधियॉ

(iii) तीव्र आक्रमणजन्य व्याधियॉ

व्याधि की अवधारणा के अन्तर्गत षडविध कियाकाल

(अ) वात– पित्त और कफ की न्यूनाधिक मात्रा के द्वारा शारीरिक धातु, उपधातु, मलों की दृष्टि से रोगोत्पत्ति तक की छः अवस्थाये ंनिम्नानुसार होती है।

01. संचय
02. प्रकोप
03. प्रसर
04. स्थान संश्रय
05. अभिव्यक्ति

06. भेदावस्था

1. व्याधि संचयावस्था प्रथम कियाकाल अवस्था
   त्रिदोष अपने ही स्थानों पर संचित होते हैं। इकट्ठे होते रहते हैं। इसे प्रथम कियाकाल कहते हैं। संचय काल में ही यदि चिकित्सा की जाये तो व्याधि की उत्तरोंत्तर गम्भीर अवस्था में नहीं आयेगी।
2. व्याधिकी प्रकोपावस्था (द्वितीय कियाकाल)
   दोष अपने स्थान से विरूद्ध आहार–विहार के कारण वृद्वि कर प्रफुपित होते हुये अन्य भागों में तीन प्रकार गति
   क. उर्ध्व ख. अधः ग. (तिर्यक) करते है।
3. व्याधिकी प्रसरावस्था(तृतीय काल)
   दोष प्रकुपित होकर तीनों गति करते हुये उनमें दूध के उफान की तरह अन्य स्थानों में फैल जाते है। इस अवस्था में प्रकुपित एंव प्रसरावस्था के दोषों को यदि चिकित्सा के द्वारा ेशोधन या शमन किया जाये तो वह व्यक्ति रोगमुत्त होकर स्वस्थ हो जाता हैं।
4. स्थान संश्रयावस्था (चतुर्थ कियाकाल)
   विकृत दोष किसी स्थान विशेषकर घूमते हुये फैफडो या धातुओं में पहुॅचकर उन धातुओं(द्रव्यों) को विकृतकर रोगोप्तत्ति करते है। रोगों के पूर्णरूप या अल्प लक्षण इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं।
5. व्यत्तावस्था पंच कियाकाल अवस्था
   इस अवस्था में व्याधि के सभी लक्षण पूर्णतः व्यत्त हो जाते हैं। इसी को रूप /दर्शन कहते हैं।
   जैसे बुखार होना, दस्त लगना, खांसी का आना आदि कार्य।
6. भेदावस्था (षष्ठम् कियाकाल)
   इस अवस्था रोगों के भेद किया जाता है कि रोग ठीक होने वाला है या नही, साध्य या असाध्य श्रेणी का हैं।

त्रिदोषों में वातिक है या पैत्तिक हैं या कफज है, या त्रिदोष है या द्विदोषज हैं।

व्याधियों की अवधारणा के अन्तर्गत निदानपंचक

आतुर के रोग का नाशक करने में तीन महत्वपूर्ण सूत्र है।

आतुरस्य रोगप्रषमजून्।

क. हेतु ज्ञान अर्थात् व्याधियों का कारण

ख. लिंग ज्ञान अर्थात् व्याधि का लक्षण

ग. औषध ज्ञान अर्थात् व्याधि की चिकित्सा

आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि पहले रोग के स्वरूप का ज्ञान करों, फिर औषध आदि की चिकित्सा करो।

रोगमादौ परीक्षेत् ततोअनंतरं औषधम्।

व्याधि क्या है वस्तुतः व्याधि रोगस्तु दोष वैषम्यम दोषों का विषम होना हैं। ये विषय दोष जब द्रव्यों अर्थात धातुओं को दूषित करते हैं। तो रोग उत्पन्न होते हैं।

निदान पंचक में व्याधि के ज्ञान हेतु पांच स्तर होते हैं। जो कि निम्नुसार हैंः–

निदानं पूर्णरूपाणि रूपाण्युपषयस्तथा।

समप्राप्तिश्चैतानि विज्ञानं रोगाणां पच्चधा स्मृतम्। (माधव निदान)

रोगों के ज्ञान का साधन रूपी ये पंचनिदान है।

(i) निदान (भावी रोग ज्ञापक)

(ii) पूर्णरूप (रोग निर्णय में अपेक्षा)

(iii) रूप (सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान)

(iv) उपशय (विशेष ज्ञान प्रप्ति हेतु)

(v) सम्प्राप्ति (दोष की अंशाश कल्पना)

व्याधियों के हेतु का वर्णनः– हेतु, निमित्त , कारण, निदान योनि, प्रत्यय, कर्त्ता मुख प्राकृत ये पर्याय हैं।

जो भी मिथ्या आहार विहार आदि बाह्यके निमित्त कारणोंसे धातुओं में विषमता (क्षय वृद्वि) उत्पन्न करके शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न करें उन सभी को हेतु निदान या व्याधियों का कारण कहते है।

व्याधि होने के तीन महत्वपूर्ण कारण है।

01. असात्येन्द्रियार्थ संयोगः–

अर्थात इन्द्रियॅा से होन वाले हीन एंव मिथ्या या अतियोग करना जैसे नेत्र से तेज चमक देखना (अतियोग) आंखों से नहीं देखना (अयोग)एंव अतिसूक्ष्म देखना, बहुत दूर की वस्तुओं को जोर देकर देखना मिथ्या योग है।कर्मेन्द्रियों का भी हीन योग मिथ्यायोग या अतियोग होता है। जैसे – अधिक चलना अतियोग सर्वदा नहीं चलना (अयोग) नंगे पैर भूमि में , कांटो पर चलना(मिथ्या योग)

02. प्रज्ञापराधः–बुद्वि –स्मृति धैर्य के नष्ट होने पर मनुष्य के द्वारा जो कार्य किया जाता हैं। उसे प्रज्ञापराध कहते हैं। सभी संक्रमक रोग एंव व्यसन जन्य रोग तथा यौन रोगों का कारण भी प्रज्ञापराध ही होता हैं। जो तीन प्रकार का होता हैं।

(i) शारीरिक प्रज्ञापराध

(ii) मानसिक प्रज्ञापराध

(iii) वाचक प्रज्ञापराध

धीधृति स्मृति विभ्रष्टः कर्मयत् कुरूतेअषुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात सर्वदोष प्रकोपणाम त्रिविधं।।

(महर्षि चरक)

03. परिणामः– काल को परिणाम कहते है यथा–कालः पुनः परिणाम उच्चते।। ऋतुचर्या के अन्तर्गत ऋतुओं का हीन योग, मिथ्या योग या अतियोग, ऋतु संधि का पालन नहीं करना। आदि परिणामजन्य व्याधि उत्पादक कारण हैं।

व्याधियॅा के छः सम्प्राप्ति जन्य भेद है।

(i) संख्या सम्प्रादित (रोग की संख्या आठ उदररोग, बीस प्रमेंह आदि)

(ii) विकल्प सम्प्राप्ति (दोषों की अंशाशं परिकल्पना ,क्षयवृद्वि के अनुसार)

(iii) प्राधान्य सम्प्राप्ति (दोषों की स्वतंत्रता एंव परंतत्रता)

(iv) काल सम्प्राप्ति (दोषों का आहार काल, ऋतुजन्य, संचय प्रकोपादि अवस्था)

(v) विधि सम्प्रादित (व्याधियों का प्रकार)

विधि सम्पादित चार प्राकर की होती है।

(I) मृदु साध्य (सुख साध्य)

(II) दारूध साध्य (कृच्छ्रू साध्य)

(III) मृदु असाध्य (याप्य)
(IV) दारूण असाध्य (असाध्य)

व्याधियों के उपद्रवः–

रोंगारम्भक दोष प्रकोप जन्योअन्य विकारः।

जो रोग उत्पन्न करने वाले दोषों के अधिक प्रकोप से जो कि अन्य विकार उत्पन्न होते है। उसे "उपद्रव "कहते हैं।

- जिस दोष से रोग विशेष उत्पन्न होता हैं, उसी दोष से मुख्य रोग के के पश्चात उत्पन्न विकार को "उपद्रव "कहते हैं।
- रोग के होने के उत्तर में (पश्चात् काल में) उत्पन्न हों, रोग के आश्रित हो उसे "उपद्रव "कहते हैं।
- प्रधान रोग के बाद जो उत्पन्न हो उसे "उपद्रव "कहते हैं।

9.5 व्याधि की अवधारणा के अन्तर्गत अष्ट विधा परीक्षा

व्याधियॉ को जानने के लिये आठ प्रकार की परीक्षा की जाती है। उसे अष्टविध परीक्षा कहते है। यथाः–

(I) नाड़ी
(II) मूत्र
(III) मल
(IV) जिह्वा
(V) शब्द
(VI) स्पर्श
(VII) नैत्र
(VIII) आकृति

नाडी परीक्षा विधि के तीन स्तर है–

(I) चिकित्सक
(II) रोगी सम्बन्धी
(III) परीक्षा सम्बन्धी

01. चिकित्सक सम्बन्धी :–

A- स्थिरचित्त
B- तन्मयता
C- मनबुद्वि की एकाग्रता
D- चिकित्सक पूर्वाभिमूख या उत्तराभिमूख कर बैठें
E- चिकित्सक व्यसन मद्यपान नहीं करें।
F- धन के लोभवश परीक्षण ना करे।
G- कामवासना रहित होकर कम से कम दो मिनट तक नाडी को देखे। इसमें हाथ की तीन अगुलियों के द्वारा तर्जनी, मध्यमा , अनामिका ।

02. रोगी सम्बन्धीः–मलमुत्रादि वेगों का निर्वहण करने के बाद सुखासन में बैठकर या लैटकर भूख प्यास से पीडित ना हो एवं तत्काल भोजन के बाद नाड़ी का परीक्षण नही करे। व्यायाम, स्नान, के तुरन्त बाद नाड़ी का परीक्षण नही करे। मैथुन के

बाद नाड़ी का परीक्षण नहीं करें। काम, क्रोध, शोक, चंचल , मन की नाड़ी का परीक्षण नहीं करें।

03. परीक्षा सम्बन्धीः—खाली पेट आराम से लैटकर या बैठकर स्त्रियों के बाये हाथ की पुरूषों की दायें हाथ की तर्जनी ,मध्य का अनामिका, अगुलियॉ का अगुलियों द्वारा उठाकर पुनः दबाव डालते हुये तीन नाड़ी को देखते हैं।

नाडी के ज्ञान द्वारा दोषों का ज्ञान

वात की नाड़ीः—	वक्रगति की होती हैं सर्प की गति की जैसी चलती हैं।
पित्त की नाड़ी	चपला , त्रीवता, तीव्रा, प्रवृद्व गति मण्डूक के जैसी चलती है मेढक
कफ की नाड़ी	स्थिरा, स्तब्धा, प्रसन्नता हंस, हाथी की गति जैसी चतली हैं।

वातः—	प्राणवायु	मूर्धा, हृदय
	उदानवस्यु	कण्ठ प्रदेश
	समान वायु	नाभि कोष्ठ
	व्यान	सर्वशरीर
	अपान	गुदा

पित्त—	01 . साधक पित्त	हृदय
	02. पाचक पित्त	कोष्ठ
	03. रंजक पित्त	यकृत प्लीहा
	04. भ्राजक पित्त	त्वचा
	05. आलोचक पित्त	नेत्रों में

कफः—

01. बोधक कफ	—	जिव्हो में
02. क्लेदक कफ	—	अमााय में
03. तर्पक कफ	—	हृदय में ,इन्द्रियो में
04. श्लेष्क कफ	—	संधियों में

नाड़ी परीक्षा की विधिः—पुरूष के दायें हाथ एंव स्त्री के बायें हाथ के अगूंठें मूल से नीचे तर्जनी, मध्यमा एंव अनामिका अगुंली परीक्षण कर्ता के दांये हाथ के द्वारा हाथ को 90 डिग्री के कोण पर रखें हुये चिकित्सक के द्वारा ध्यानस्थ होकर हृदय में आने वाले स्पंदन का अनुभव करते हुये वात्रपित्त एंव कफ के खते पांचों भेदों का ज्ञान प्राप्त करे।न्यूनतम दो मिनट अवश्य मन से एकाग्रभावपूर्वक अभ्यास एंव अनुभवों के आधार पर सटिक नाड़ी का परीक्षण करने से रोगों का सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है।

अभ्यास प्रश्न—

1. स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है ?
2. स्वस्थ के लक्षण क्या है ?
3. स्वास्थ्य के दो प्रयोजन क्या है ?
4. अधारणीय वेग कौन कोन से है ?
5. पंच निदान कौन से है ?
6. अष्टविध परीक्षा कौनसी है ?

9.6 सारांश

इस इकाई में हमने स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों जैसे दिनचर्या , आहार विहार, वेगों,का धारण– अधारण, निद्रा, रोगों के कारण, रोगों की परीक्षा विधि, षड्क्रिया काल, पंचनिदान आदि का वर्णन संक्षेप में स्वास्थ्य संवर्धन हेतु जनजागारण में जाग्रति के लिये सरल भाषा में किया गया है। इस इकाई का अध्ययन हम आयुर्वेद एंव हमारी प्रचीन स्वास्थ्य के सिंद्वान्तों की व्यापक वैज्ञानिक सोच के बारें में जानकारी से अवगत होते हुये स्वास्थ्य के क्षैत्र में
पहला सुख निरोगी कार्यों को सिंद्वान्तानुसार सर्वेभवन्तुसुखिनः की प्राप्ति में सहायक होगें।

9.7 शब्दावली

- स्वस्थवृत्त – स्वस्थ एंव सदाचार के नियमों का पालन करना
- साठी चावल – जिसकी फसल साठ दिन के पककर तैयार हो वह चावल
- उषापान – अरात्रि में ताम्बें केब र्तन में रखा हुआ जाल जिसे ब्रह्ममुर्हूत में उठकर पीया जाता है।
- ंनस्य – नाक में तेल लगाना
- दन्तधावन – दातौन करना
- क्षैारकर्म – दाढ़ी बनाना
- पदवेश – जुते –चप्पल
- क्षवथु – छीक आना
- अश्रु – आंख के आंसू
- वंशानुगत – जन्म से हुये रोग मधुमेह रोग, हदय रोग आदि।
- जन्मजात रोग – अंधापन, पंगू गूंगा ,बहरा , आदि।
- आगन्तुज रोग – बाह्य कारण आघात, चोट, शस्त्रादि से उत्पन्न होने वाले रोग।
- दारूण असाध्य – वे रोग जो कि निश्चित रूप से ठीक नहीं हो सकें।
- आलोचकपित्त – नेत्रों में रहने वाला पित्त

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आयुर्वेद बोधः – डॉ. श्रीमति विमला शर्मा
- आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान– डॉ. श्रीमति विमला शर्मा
- स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेश कुमार अग्रवाल
- योगासन एंव योगसाधना – डॉ. सत्यपाल

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य का विवेचन करते हुये इसकी अवधारणा का आज के परिवेश में वर्णन किजिएं।
2. व्याधि का विवेचन तथा अवधारणा को लिखियें।
3. अधारणीय एंव धारणीय वेगों का स्वास्थ्य पर प्रभाव का वर्णन कीजिये।
4. दिनचर्या रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का उल्लेख कीजिये।
5. षडक्रियाकाल, निदानपंचक, एंव नाडी की परीक्षा को विस्तार से वर्णित कीजिये।

इकाई 10 योगचिकित्सा की अवधारणा एवं सिद्वान्त

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 योग चिकित्सा की अवधारणा एवं सिद्वान्त
10.4 अष्टांगयोग, पंचक्लेष, हठयोग, मोक्ष, त्रिविधनाड़ियाँ
10.5 पंचकोश, त्रिगुणमय एवं योगी भाव, प्राणायाम, योगासनों का महत्त्व सिद्वान्त एवं सावधानियां
10.6 योग के सप्तसाधन, सिद्विकरभाव एवं नैष्ठिकी चिकित्सा
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न
10.10 संदर्भ ग्रंथ
10.11 निबन्धात्मक प्रष्न

10.1 प्रस्तावना

आज नेनो टेक्नोलोजी सम्पूर्ण विष्वभर में प्रचलित हो रही है। तकनीक, सुरक्षा, वाहन, मीडिया, परिवहन एवं स्वास्थ्यय क्षेत्र में "नेनो टेक्नोलोजी" का विष्वभर में तेजी से विकास हो रहा है। नेनो अर्थात सूक्ष्म से सूक्ष्मतम। प्राणायाम, योगासन भी कोषिकाओां से सुक्ष्म स्तर पर अर्थात् मालिक्योलस्तर पर कार्य करता है। इसलिये ये भी नैनो मेडिसन की तरह कार्य करते है।

आज अन्तर्राशटीय योग दिवस 21 जून की धूम के बाद से ही विष्व भर मेंयोंग का प्रचार–प्रसार तीव्रगति से स्वास्थ्य के क्षेत्र में हो रहा है। अतः भारतीय ऋशि परम्परा का योग अन्तराश्ट्रीय आकर्शण का विषय बना हुआ है। योग सार्वदैशिक जनकल्याणकारी पद्वति है। आध्यात्मिकता से हटकर केवल योग का स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रचलन बढ रहा है। मानसिक तनाव से मुक्ति पाने में शारीरिक सौष्ठव बनाने में तथा कुछ कुछ आध्यात्मिक विकास हेतु योग का स्वास्थ्य की दृष्टि से चिकित्सा में उपयोग हो रहा है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम योग चिकित्सा की अवधारणा एवं सिद्वान्तों का अध्ययन करेगें।

योग विज्ञान की अवधारणा एवं इतिहास

अष्टांग योग –यमनियमों सहित संमीकावर्णन, पंचक्लेष, योग के विभिन्न मार्ग, हठयोग, मोक्ष, त्रिविध नाडियां, पंचकोण, त्रिगुण मय भाव योंगीभाव, सावधानियां, प्राणायाम सिद्वान्त सावघानियां योग के सप्तसाधन, सिद्विकर भाव, नैश्टिकी चिकित्सा।

10.3 योग विज्ञान की अवधारणा, इतिहास एवं सिद्धान्त

मानव शरीर जीवन के सभी चारों पुरूषार्थों रूपी साध्य की प्राप्ति में आरोग्य मय शरीर इसका एक मात्र साधन है। प्राचीन समय से आज तक विकास के विभिन्न स्तरों पर

मानवीय सुखों का विशेष ध्यान रखा गया है। भारतीय स्वास्थ्य चिन्तकों, मनीषियों ने चारों वेद, संहितायें, पुराण उपनिषद, शड्दर्शन, सांख्य दर्शन आदि में सतत स्वास्थ्यानुसंधान करते हुये शरीर, के परस्पर सम्बन्धों के सिद्वान्त प्रतिपादित किये है। आज के वातावरण में स्वास्थ्य भौतिक मानसिक एवं सामाजिक सम्पन्नता का विषय है। शरीर मन एवं आत्मा तीनों पूर्ण रूप से सम्पन्नता का विषय है। शरीर मन एवं आत्मा तीनों पूर्ण रूप से विकार रहित हो तो उसे सम्यक् स्वस्थ कहा जाता है।

मानव जन्म से पूर्व, जन्म की सूक्ष्मता तथा जन्म के बाद वृद्वि एवं विकास के जो भी कर्म करता है वह सब योग ही है। योग का उद्देश्य क्रिया योग है। अर्थात स्वः में स्थित रहने का पूर्ण विज्ञान स्वा अर्थात समाधि में स्थित होना। इस हेतु तीन बिन्दुओं की आवश्यकता है, वह है तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

शरीर को सम्यक स्वास्थय की प्राप्ति एक प्रकार का तप है जो कि तन एवं मन से की जाने वाली साधना है। मन का निग्रह करना, मन को नियंत्रण में रखना ''स्वाध्याय (आत्मज्ञान)'' तथा आत्मा को तम के आवरण से रहित करना ''ईश्वर प्रणिधान'' है।

क्रिया योगों से सतत् अभ्यास से शरीर एवं वैराग्य दोनों की प्रवृति होती है, तत्पश्चात् मन की शुद्वि पवित्रता प्राप्त होती है एवं धीरे–धीरे मन निर्विकार होकर समाधि की ओर बढता है।

अष्टांग योग के अनुसार अन्तिम स्थिति समाधि की प्राप्ति है यम एवं नियमों का ''महाव्रत'' किया जाता है। जो जाति देश, काल एवं समय की सीमा से परे है। पांच महाव्रतों अहिंसा आदि की, पांच नियमों शौच संतोषादि द्वारा पालन करने से मन शुद्व एवं पवित्र होता हैं। साथ ही मन नियंत्रण में आने से चित्त शांत होता है। चित्त के शांत होने से सांसारिक वृत्तियाँ उठना, इच्छायें जागना, मायाजाल के भंवर में फंसना आदि बंद हो जाता है। यहि योग है "योगस्य चित्त वृत्ति निरोधः"।

योग का इतिहास– मानव के अस्तित्त्व के साथ ही योग विज्ञान का अस्तित्त्व प्रारम्भा हो जाता है। हमारी मान्यताओं से अनुसार ज्ञान का प्रारम्भिक स्त्रोत ईश्वर एवं गुरू से उद्गम होता है। ईश्वर अनादि एवं अजन्मा है उसी रूप में योग का प्रवाह भी सृष्टि के आरम्भ काल से प्रवाह मान है।

हठयोग की ज्योत्सना टीका के अनुसार–

योगीश्वर भगवान शिवः–

भगवान शिव सृष्टि में योग के उत्पतिकर्त्ता हैं उन्होंने योग का ज्ञान सर्वप्रथम पार्वती जी को प्रथम शिष्यों के रूप में दिया । वही ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथ ने सुना तत्पश्चात् उनके शिष्यों ने सिद्वों एव ंनाथों की परम्परानुसार संसार में फैलाया।

भगवद्गीता के अनुसार– योगेश्वर भगवान कृष्ण के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में मैने सर्वप्रथम योग का उपदेश विवस्वान् अर्थात् सूर्य को दिया। उन्होंने अपने योग का उपदेश विव्स्वान अर्थात् सूर्य को दिया। उन्होंने अपने पुत्र मनु को दिया। मनु ने उनके पुत्र इक्ष्वाकु को इस प्रकार योग राजाओं में प्रसारित हुआ सभी जगह फैल गया।

याज्ञवल्कय स्मृति के अनुसार–

योग के मुल उपदेषक हिरण्यगर्भ भगवान को मानते है।

इनकी अवतार परम्परा में महर्षि पतंजलि को माना गया है।

श्रुति परम्परा के अनुसार :–योग विद्या का उद्भव भगवान शिव द्वारा हुआ। इन्हें आदि गुरू, योगी या आदियोगी नाम से जानते हैं। सर्वप्रथम भगवान शिव ने हजारों साल पहले पूर्व

हिमालय में "क्रांति सरोवर" नामक झील के किनारे योग का गूढ ज्ञान सप्तऋषियों को दिया था। इन सप्तऋषियों ने यह ज्ञान भ्रमण करते हुए एशिया, मध्यपूर्व, उत्तरी अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका सहित सम्पूर्ण विश्व के भागों में योगविद्या को प्रसारित किया। अगस्त्य मुनि एवं सप्तऋषियों ने योगविद्या को योग संस्कृति के रूप में विश्व में फैलाकर इसे व्यापक रूप दिया।

सिंधु एवं सरस्वती घाटी सभ्यता में भी 2700 ई.पू. योग का व्यापक स्वरूप प्राप्त होता है। इस सम्भता में योग के अनेक चित्र, आकृतियां मुहर, जीवाश्म अवशेषों में योग का प्रमाण मिलता है। वैदिक एवं उपनिषद् परम्परा में योग का वर्णन मिलता है।

योग का स्वरूप एवं उसका तत्कालिन उद्देश्य निम्नप्रकार है–

(1)	प्राचीन उपनिषद	600 ई.पू.	परमात्म प्राप्ति हेतु
	भगवद्गीता	500 ई.पू.	निश्काम कर्म योग
	पातंजलयोग सूत्र	300 ई.पू.	चित्तवृन्ति,निरोध, समाधि प्राप्ति
	हठयोग	1300 ई.पू.	क्रियायोग से राजयोग

मध्यकालीन योग	200–1800 ई.पू.	धार्मिक विचारों की साधना पद्वति
आधुनिक योग	1800 ई.पू. के बाद	सामाजिक विकास एवं स्वास्थ्य संरक्षण हेतु

- श्री अरविन्दो स्वामी विवेकानन्द,
- महर्षि महेश योगी, वी. के, एस. अययंगर
- जे. कृष्णमूर्ति, आचार्य शिवानन्द

योग की व्युत्पन्नि – संस्कृत शब्द " युजिर योगे" से योग शब्द घना है। युज धातु में घञ प्रत्यय लगाने से योग शब्द बना है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार तीन अर्थों में योग का भाव समाहित है।

(1) युज समाधौ – समाधि
(2) युजिर योगे – जोड
(3) युज संयम के – सांमजस्य

योग की परिभाषा –

(क) योगः कर्मसु कौशलम् (गीता 2/50)
कार्य में कुशलता का नाम योग है।

(ख) संयोग–वियोग योग संज्ञितम् (गीता 9/23)
जीवात्मा का परमात्मा से मिलने का नाम योग है।

(ग) समत्वं योगमुच्यते (गीता 2/48)
संसारिक द्वन्दों में समभाव रहना ही योग है।

(घ) योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। (पतंजलि योग सूत्र 1–2)
चित्त की वृत्तियों का निरोध होना ही योग है।

(ड़) तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमन्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।।
कठोपनिषद् 2/3/10–13

अर्थात् जब पांचो ज्ञानेन्द्रियों एवं बुद्धि तथा मन स्थिर हो जावें तत्त्व इस स्थिति को योगी ''परमगति'' कहते है। इसके योगी इच्छा रहित हो जाता है।

पातन्जल योग दर्शन – इसमें चार पाद जिनके 195 सूत्रों को वर्णन किया है।

1. समाधिपाद – 51 सूत्र
2. साधनपाद – 55 सूत्र
3. विभूतिपाद – 55 सूत्र
4. कैवल्यपाद – 34 सूत्र

इसमें अष्टांगयोग, चित्त की वृत्तियाँ, समाधि, क्रिया योग, पंचक्लेष, दृश्य–दृष्टा, प्रकृति पुरूष, धारणा, ध्यान, समाधि, संयम एवं कैवल्य सिद्वि प्राप्ति का वर्णन है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः –

चित्त – मन, बुद्वि एवं अहंकार

चित्तवृत्तियां – ये पांच होती है।

1. प्रमाण – प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आप्तोपदेष
2. विपर्यय – मिथ्या ज्ञान
3. विकल्प – वस्तु के अभाव का ज्ञान
4. निद्रा – अभाव जैसा प्रतीत हो
5. स्मृति – अनुभव सिद्व ज्ञान

–अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध होता है।

–किसी स्थिति का बार – बार यत्न करना अभ्यास है।

–वैराग्यः–दृश्टामुश्रृ विकविशयवितृश्णस्य वषीकार संज्ञा वैराग्यम कहलाता है।

(1/15)

देखे एवं सुने विशयों से चित्त को दूर हटाकर आत्मतत्त्व मे समाहित कर एकाग्र करना वैराग्य कहलाता है।

10.4 अष्टांग योग पंचक्लेष, हठयोग, मोक्ष एवं त्रिविध नाड़ियाँ

अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा चित्त की वृत्तियों के निरोध के लिये अश्टांयोग का क्रमंषः अभ्यास एवं प्रयत्न करना चाहिये।

यथा – "यमनियमासन प्राणायोम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाध्योडश्टावड़गनि"(2/29)

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

1. यम – ये पांच प्रकार के होते हैं।

(i) अंहिसा
(ii) सत्य
(iii) अस्तेय

(iv) ब्रह्मचर्य

(v) अपरिग्रह

(i) अंहिसा :– शरीर, वाणी मन से काम, क्रोध, लोभ, मोह मयादि द्वारा किसी प्राणी को मनसा–वाचा–कर्मणा पीड़ा हानि नहीं पहुचाना इसे अंहिसा कहते हैं।

(ii) सत्य : – हमेशा अपरिवर्तनशील, यथार्थ ज्ञान ही सत्य है जैसा देखा, सुना, पढ़ा एवं सीखा वैसा ही मन एवं वाणी में रखना।

(iii) स्तेय – स्तेय – चोरी करना ।
अस्तेयः चोरी नहीं करना।
दूसरों के पदार्थों का बिना अनुमति के नहीं लेना, वाणी एवं मन से भी लेने की इच्छा नहीं रखना अस्तेय है।

(iv) ब्रह्मचर्य :– मन, वचन एवं षरीर से गुप्त इन्द्रियाँ (जनेन्द्रिय) पर संयम रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है। वीर्यनाष नहीं करना, जितेन्द्रिय रहना "उपस्थेन्द्रिय" के संयम का नाम "ब्रहम्चर्य" है।

(v) अपरिग्रह – धन, सम्पत्ति , भोग सामग्री आदि का आवष्यकताओं की पूर्ति हेतु इनका अनावष्यक संचय नहीं करना। न्यूनतम आवष्यकता से अधिक वस्तुओं का घर में इकठ्ठा नहीं करना।

2. **पांच नियम अष्टांग योग के अनुसार :–**

1. शौच
2. संतोष
3. तप
4. स्वाध्याय
5. ईष्वर प्रणिधान

1. शौच – (शुद्धता) शरीर को अन्दर एवं बाहर से शूद्व एवं पवित्र रखना, तन एवं मन की शुद्वि।
2. संतोष :– स्वयोग्यतानुसार प्राप्त फार्म में प्रसन्न्ता रखना।
अनावश्यक तृष्णा को छोड देना संतोष है।
3. तप : – तन एवं मन से की जाने वाली साधना तप है। सुख – दुख भूख प्यास, सर्दी–गर्मी मान–अपमान आरिद्वन्दों में शांति एवं धैर्यपूर्वक सहन करना। शरीर प्राण इन्द्रियों और मन के उचित अभ्यास को तप कहते है।
4. स्वाध्याय : – वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और अध्यात्म सम्बन्धी ज्ञान के स्त्रोंतो साहित्यों शास्त्रों का अध्ययन करना। प्रणव (ऊँ) एवं गायत्री मंत्र का जप करना।
5. ईश्वर प्रणिधान :– मनसा, वाचा, कर्मणा सभी को कर्मों एवं उनके फलों को ईश्वर के प्रति समर्पित करना।

उक्त पांच नियमों में से "तप – स्वाध्याय एवं ईष्वर प्रणिधान इन तीनों को संयुक्त रूप से" क्रियायोग कहा जाता है।

3. आसन :–

"स्थिरसुखामासनम्" 2/46.

1. दीर्घकालीन स्थिरता हो
2. सुखानुभूति (आरामदायक) हो

आसन सिद्वि :–

"प्रयत्न शैथिल्यानन्त्य समापत्तिम्याम्"।

प्रारम्भ में आसन करने पर मांसपेशियों में पीड़ा होती है किन्तु लगातार अभ्यास करने से पीडा नहीं होती अपितु स्थिर एवं सुख की प्राप्ति होती है। प्रयत्न शैशिल्य एवं अनन्त समापत्ति ये दोनों आसन सिद्वि के लक्षण है।

आसनों के प्रकार :– बैठकर, खडें होकर, पीठ के बल, पेट के बल, मरोडकर पांच प्रकार के होते है।

1. जो शारीरिक अभ्यास की स्थिति स्थिर एवं सुखदायी हो वह आसन है।
2. बिना पीडा के अधिक समय तक बैठना वह आसन है।
3. चेष्टाओं को त्यागकर, परमात्मा में मन लगाना ही आसन सिद्वि है।
4. आसन सिद्वि पश्चात् सर्दी–गर्मी आदि छन्दों का प्रकार नही होती है।
5. संधियो, ग्रंथियों एवं नाडियों पर सुप्रभाव पडता है।
6. आसनों से सतत नियमित अभ्यास से शारीरिक स्वास्थय एवं मानसिक शान्ति की प्राप्ति होती है।

4. प्राणायाम :– तस्मिन सति ष्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।
आसन से स्थिर होन पर श्वास – प्रश्वास की गति को रोकना ही प्राणायाम है।
"दीर्ध सूक्ष्म" :– श्वास की सामान्य गति को दीर्घ एवं सूक्ष्म करना प्राणायाम है।

प्राणायाम के चार प्रकार –

1. बाह्य वृत्ति – रेचक
2. आग्यन्तर वृत्ति – पूरक
3. स्तम्भ वृत्ति (कुम्भक)
4. बह्य आम्यान्तर विशमाक्षेपी (पुरक एवं रेचक)
   क. बाह्य विष्य – नासिका एवं भ्रूमध्य
   ब. आम्यन्तर विषय – हृदय एवं शट् चक्र

त्रिविध श्वासक्रियाः–

1. पूरक – श्वासलेना
2. रेचक – श्वास छोडना
3. कुम्भक – श्वास रोकना
4. आम्यान्तर कुम्भक – श्वास अन्दर लेकर अन्दर ही रोकना
   बाहय कुम्भक – श्वास बाहर निकालकर बाहर ही रोकना।

श्वासगति क्रम प्राणायाम – पूरक कुम्भक रेचक अभ्यास
1 : 4 : 2

त्रिबन्ध – 1. मूलबंध – मुलाधार के स्नायुओं को सिकोडकर उपर की ओर खींच लेना।
2.जालन्धर बंध – ठूड्डी कंठ कूप में लगाकर रखना।

उड्डियान बंध – पेट की मांसपेशियों को अधिकाधिक उपर एवं अन्दर की ओर दबाकर रोकना।

प्राणायाम का महत्त्व– 1. नस नाडियाँ पुष्ट होती है।

2. बुद्वि तेज एवं आयु में वृद्वि होती है।
3. क्रोध, द्वेष आदिभावनाओं पर नियंत्रण होता है।

5. प्रत्याहार – स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार। । पतंजली योग दर्शन 2/54
    - अर्थात् इन्द्रियों को अपने विशयों से हटाकर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार कहलाता है।
    - विशयों से विमुख होना ही प्रत्याहार है।
    - इन्द्रियों के विषयों रूप, रस, गन्ध, स्पर्ष, षब्द, काम, क्रोघ, लोभ, मोह, अंहकार से हटकर अन्तर्मुखी होना।
    - इन्द्रियों का वशीकरण करना ही प्रत्योतर है।
    - प्रत्याहार से साधना मार्ग प्रषस्त होकर खुल जाता है।
    - प्रत्याहार सिद्व होने पर इन्द्रियों पर पूर्व अधिकार हो जाता है।
6. धारणा :–देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

पतंजलि योग दर्शन (3/1)

चित्त को बाह्य या आभ्यान्तर देश में समाहित करना

- चित्त को शरीर के बाहर या भीतर बोधे रखना।
- बाह्य धारणा में चित्त को ऊँ, सूर्य, चन्द्रमा, मूर्ति बाह्य वस्तु पर ठहराना।
- आभ्यान्तर धारणों में – चित्त मूलाधार नाभि प्रदेश, हृदय प्रदेश, ब्रह्म रन्ध्र पर ठहराना।
- धारणा अभ्यास की चार मुद्रायें –
    1. अगोचरी मुद्रा
    2. मुचरी मुद्रा
    3. चाचरी मुद्रा
    4. साम्भवी मुद्रा – ध्यान के आसन में बैठकर दृश्टि को दोनों भ्रौं के मध्य स्थिर करना
- धारणा ध्यान की पूर्व अवस्था है।
- धारणा हेतु मन को चक्रों पर स्थिर करने का सततृ अभ्यास करना होता है।
- धारणा मानसिक एकाग्रता का अचूक साधन है।

7. ध्यान : – "तंत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्"।।

योग दर्शन 3/2

- धारणा का उसी स्थान पर लगाये रखना ध्यान है।
- मन को धारणा देश में सतत लगाये रहना ध्यान हैं।
- शांति एवं अलौकिक आनन्द ध्यान द्वारा प्राप्त होना है।
- मन का विषय रहित होना भी ध्यान है।

ध्यान के तीन प्रकार –

1. स्थूल ध्यान – किसी वस्तु या इष्टदेव की मूर्ति पर ध्यान करना।

2. ज्योतिर्मय ध्यान – चमकती हुयी दीप्तिवान वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना।
3. सूक्ष्म ध्यान – निराकार ब्रह्म का ध्यान करना।

8. समाधि :– तदेवार्थमात्रनिभासंस्वरूपशून्यमिव समाधि।।

- ध्यान करते करते ध्येयविशय अर्थात् लक्ष्य को स्वरूप दिखे और साधक स्वयं को स्वरूप को भूल जाये वह समाधि है।
- जब ध्यान का स्वरूप षून्य जैसा हो जाये वह समाधि है। (योग दर्शन 3/3)
- ध्यान की पूर्णता से ध्याता, धृति और ध्येय लुप्त होने की स्थिति समाधि है।
- परमात्मा से पूर्ण एकाकार होना समाधि है।
- सविकल्पक समाधि – इसमें ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञानरूपी त्रिपुरी देते भाव में रहते हुये भी ब्रह्म स्वरूप भाव विभोर होता है।
- निविकल्प समाधि – इसमें ध्याता, ध्यान ध्येय रूपी त्रिपुरी रहित होकर अखण्ड ब्रहमाकार हो जाता है।
- जीवात्मा का परमात्मा से एकीकरण ही निविकल्प समाधि है।
- समाधि के आनन्द को वाणी में वर्णित नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार अष्टांग योग को निम्न तीन भागों मे विभक्त किया गया है।

(1) बहिरंग योग –	1. यम	.	Social Ethics
	2. नियम		.Personal Ethics
	3. आसन	.	Postural Practices
	4. प्राणायाम	.	Respiratory Practices
(2) प्रत्याहार योग –	Sensorial Practices		
(3) अन्तरंग योग –	धारणा	.	Concentration
	ध्यान	.	Meditation
	समाधि	.	Realisation

पंचक्लेष–
1. अविद्या
2. अस्मिता
3. राग
4. द्वेष
5. अभिनिवेश

– मोक्षो रजस्तमोऽभावात् बलवत कर्म संक्षयात्।

अर्थात् मन से जब रज एवं तम का अभाव हो जाता है तथा बलवान कर्मों का क्षय हो जाता है उसे मोक्ष कहते है।

योग के विर्भिन्न मार्ग –
1. ज्ञानयोग
2. कर्मयोग
3. भक्ति योग

4. लय योग
5. राजयोग
6. हठयोग
7. मंत्रयोग
8. कुण्डलिनि योग

सभी योगों में राजयोग "सर्वश्रेष्ठ योग" है। पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योंग है। व्यावहारिक दृष्टि से राजयोग का स्वरूप मान सकते है। है जिसका स्वामी विवेकानन्द ने भी विस्तार से वर्णन किया है।

– रजस एवं रेतस के योग को भी योगाचार्यों ने कहा है।

हठयोग का अभिप्राय :–

शब्द		ग्रह	प्राण	नासारन्ध्र	नाडी	गुण
ह	–	सूर्य	प्राण	दक्षिण	पिंगला	उष्ण
ठ	–	चन्द्रमा	अपान	बांयी	इड़ा	शीतल

(1) सूर्य चन्द्र का संयोग,
(2) प्राण एवं अपान का संयोग
(3) इड़ा एवं पिगंला को संयोग
(4) उशण एवं षीतलता का संयोग

उक्त चारों के संयोग को हठयोग कहते है।

आचार्य चरक योग की अवधारणा के बारे में कहते है कि जब आत्मा का मन से , मन का इन्द्रियों से , इन्द्रियों का अपने अपने विशय (षब्द, स्पर्ष, रूप, रस, गंधादि) से संयोग होता है तब सुख या दुःख की प्रवृति होती है।

इसके विपरीत जब मन आत्मा में स्थिर भाव से रहता है तो सुख एवं दुःख प्रतीत नहीं महसूस होती, अपितु सुख एवं दुख की प्रवृत्ति हो जाती है। ''योग'' को जानने वाले ऋशि महर्शि इसी स्थिति को योग कहतें है।

यथा – आत्मेन्द्रियमनाऽर्थानां सन्निकर्शात् प्रवर्तते।
सुखदुःख मनारम्भादात्मस्थो मनसि स्थिरे।।
निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते।
सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृशयो विदुः।।
(चरक शरीर स्थान 1/138, 139)

योग द्वारा मोक्ष प्राप्ति–

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।
मोक्षे निवृन्तिनिःशेषा योगो मोक्ष प्रवर्तकः।।
(चरक शारीर स्थान 1/140)

- अर्थात् योग एवं मोक्ष में सभी प्रकार की वेदना में समाप्त हो जाती हे।
- मोक्ष होने पर वेदनाओं का समूल नाष हो जाता है।
- योग द्वारा मानव मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त होता हैं

- योग ही मोक्ष प्रवर्तक (दिलाने वाला) है ऐसा आचार्य चरकने उल्लेख किया है।।

त्रिविध नाड़ियाँ–

1. इड़ा नाडी – सुषुम्ना को आवृत्त वाम भाग में स्थित है।
   – वामनासिका तक स्थान है।
   – नीचें की ओर मुखवाली है।
   – इसके देवता चन्द्रमा है।
   – आठ कला युक्त होती है।
   – यमुनास्वरूपिणि कहा है।
   – तमोगुणमयी माना है।
   – शीतल स्वभाव वाली है।
2. पिंगला नाडी – सुषुम्ना के क्षिण भाग में स्थित है।
   – दक्षिण नासिका द्वार तक स्थान है।
   – उपर की ओर मुख वाली है।
   – इसके देवता सूर्य है।
   – 12 कला युक्त होती है।
   – इसे वज्रा भी कहा है।
   – सरस्वती स्वरूपिनि है।
   – रजोगुणमयी माना है।
   – उष्ण स्वभाव वाली हैं।
3. सुषुम्नानाडी – इड़ा एवं पिगंला के मध्य होती है।
   – मूलाधार से ब्रह्म रन्ध्र तक होती है
   – षट चक्र रूपी छः स्थान है
   – इसका देवता अग्नि है
   – मेरूदण्ड के अग्रभाग से उत्पत्ति मानी है

- कुण्डलिनि शक्ति का महापथ यहां से प्रारम्भ होता है। इसे गंगा स्वरूप भी माना है। यह सत्त्व गुण प्रधान है।
- त्रिवेणी – इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना का नाम
- मुक्त त्रिवेणी – जहां इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना निकलती है।
- युक्त त्रिवेणी – आज्ञा चक्र जहां ये तीनों मिलती है।

10.5 पंचकोश

अन्नमय कोश – स्थूल शरीर अन्नमय

प्राणमय कोश – सूक्ष्म होने से पंचप्राण यथा प्राण उदानादि

मनोमय कोश – सूक्ष्म होने से अणु स्वरूप ज्ञान का कारण

विज्ञानमय कोश – मनोमय शरीर में व्यापतबुद्धी स्वरूप

आनन्द मय कोश– विज्ञान मय कोश में व्याप्त आनन्द, प्रमोद खंत ब्रहमस्वरूप है।

त्रिगुणमय मानसिक भाव –

(1) सात्त्विक भाव – क्षमा वीर्य
श्रृद्धा दान

धैर्य दया
उत्साह सुख एवं आनन्द प्राप्ति
(2) राजसिक भाव –चंचलता सांसरिक कर्म प्रवृत्ति
चिन्ता दुःख एवं षोक प्राप्ति
(3) तामसिक भाव –निद्रा आलस्य
तन्द्रा दीनता
लोभ भ्रम
मोह दुःख एवं कश्ट प्राप्ति, भय

योगी भाव का सिद्वान्त :

1. केवल नियतकर्म का सिद्वान्त
2. फल की इच्छा का अभाव
3. आसक्ति का अभाव
4. समत्व बुद्वि
5. सर्वत्रसमान व्यवहार
6. काम्य संकल्पों का भी त्याग
7. कर्मों का ईष्वरार्पण एवं षरणागति भाव
8. ईश्वर एवं जीव का एक्य ज्ञान तत्वमसि

योग का महत्त्व :–

- मनसिक तनाव दूर करने के लिये
- षरीर एवं मन के रोग दूर करने के लिये
- दवा रहित औशधि के रूप में
- शारीरिक सौश्ठव के लिये
- शारीरिक सुन्दरता के लिये
- आध्यात्मिक विकास के लिये
- कम संसाधनों कम स्थान में योग कर सकते हैं
- शरीर के आन्तरिक अंगों का व्यायाम
- रक्त संचार में आंक्सीजन की वृद्वि
- शरीर लचीला बनता है
- रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- शरीर रोग मुक्त होता है।
- जीवनशैली जन्य रोग जैसे– मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, तनाव आदि दूर होता हैं।
- अन्तःस्त्रावी ग्रथियाँ जागृत होती है।
- मन में शांति आनन्द का अनुभव होता है।

व्यक्ति चरित्रवान, बलवान, गुणवान और रूपवान बनता है।

योग की सैद्वान्तिक पृष्ठभूमि (द्वैतवाद) :–

- वेदान्त सृष्टि उत्पत्ति में एकतत्त्व को मानता है।
- न्याय वैशेषिक एवं जैन दर्षन "बहुतत्त्ववाद" को मानते है।
- प्रकृति एवं पुरूष दोनों मूल तत्त्व है।

- प्रकृति एवं पुरूष अनादि एवं अनन्त तथा नित्य है।
- सृष्टि निर्माण हेतु पुरूश चेतन एवं प्रकृति जड़ की आवष्यकता होती है।

योग की सैद्वान्तिक पृष्ठभूमि (त्रिगुणवाद)–

- प्रकृति ''जड़तत्त्व प्रधान'' तथा ''सतत् परिणामषील'' है।
- मूल अवस्था में से सत्त्व, रज एवं तम से युक्त रहती है।
- प्रकृति लिंगमात्र महत्तत्व बुद्वि (महत) वाली होती है।
- महत् से त्रिगुणात्मक अहंकार की उत्पत्ति होती है।
- सात्त्विक अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पांच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन उत्पन्न होता है।
- तामस अहंकार से पंचतन्मात्रा षब्द, स्पर्ष, रूप, रस और गंध उत्पन्न होती हैं।
- पंच तन्मात्राओं से क्रमषः पंच महाभूत आकाष, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी का निर्माण होता है।
- बुद्वि, अहंकार एंव मन तथा सत्व, रज और तम मे त्रिगुणमय है।

(1) प्रकृति विकास कम :–

- महत्, बुद्वि या चित्त
- सात्त्विक अहंकार
- पंच ज्ञानेन्द्रिय + पंच कर्मेन्द्रिय + मन की उत्पत्ति

(2) महत् –

- पंचतन्मात्रा
- पंचमहाभूत
- स्थूल जगत की उत्पत्ति

योगासनों का सिद्वान्त –

- स्थान – स्वच्छ – शान्त – एकान्त – समतल हो
- समय – प्रातः या सांयकाल, खाली पेट हो
- आसनी – विद्युत का कुचालक कम्बल, दरी आदि बिछा हुआ हो
- वेशभूषा – कम, हल्के वस्त्र मौसम के अनुसार स्वच्छ हों
- श्वास का नियम – आगे झुकने पर रेचक, पीछे झूकने पर पूरक किया करें।
- आहार – सात्विक, सुपाच्य, व्यसन रहित हो
  – सुस्निग्ध, मधुर भोजन, पुष्टि कारक हो
- अपच्य आहार – तला–भूना, तेज मिर्च मसाला वाला आहार, प्यास, लहसुन आदि
- ब्रहमचर्य – यम – नियम के सिद्वान्तों का पालन करें

- विश्राम – आसनों के मध्य विश्राम यथा षवासन, मकरासन या षिथिलासन करें
- कोष्ठ शुद्वि – आसन पूर्व कब्जीयत दूर करें
- शुद्वता – मल मूत्रादि विसर्जनोपरान्त करें
- चित्त – तनाव रहित, शांत, एवं क्रोधरहित हो
- आसन पश्चात् – मूत्र विसर्जन अवश्य करना चाहिए

विशेष सावधानियाँ –

- कान बहते हो
- नेत्रों में लालिमा हो
- उच्चव्यान B.P.High हो (उक्त तीनों शीर्षासन नहीं करें)
- महिलायें ऋतुकाल (महावारी) में 4–5 दिन आसन नहीं करें।
- हर्निया वाले आगे झुकने के आसन नहीं करें।
- कमर दर्द एवं गर्दन दर्द वाले भी आगे नहीं झूकें।
- जटिल रोगों मे आसन नहीं करें।
- गर्भधारण के 4 माह बाद, आसन नहीं करें।
- महिलायें मयूरासन नहीं करें।

प्राणायाम योगासन का महत्त्व सिद्वान्त एवं सावधानियाँ –

1. बैठने पर रीढ सीधी हो।
2. कुर्सी पर बैठकर भी कर सकते है।
3. चलते फिरते अखबार पढते प्राणायाम नहीं करे।
4. शुद्व स्थान पर बैठकर करें
5. ब्रह्मचर्य का पालन करें।

प्राणायाम से महत्त्वपूर्ण लाभ निम्नानुसार हैं :–

- पाचन तंत्र स्वस्थ : होता है।
- ह्रदय – फुफ्फुस, एवं मस्तिष्क रोग दूर होते हैं।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्वि होती है।
- दीर्घायु – स्मरण शक्ति में वृद्वि होती है।
- मोटापा – स्थूलता दूर होती है।
- रक्त वाहनियाँ, नाडियाँ शुद्व होती है
- मन की चंचलता दूर एवं एकाग्रता में वृद्वि होती है
- विजातीय द्रव्य नष्ट होते हैं
- सकारात्मक सोच में वृद्वि होती है।
- त्रिदोषों का प्रकोप समाप्त होता है।
- शड्चक्रों का भेदन, षोधन एवं जागरण होता है।
- योवन में स्थिरता
- एलर्जी एवं जीवन शैली के रोग दूर होते हैं।
- आध्यात्मिक शक्ति जागृत होती है।

मन में षांति एवं आनन्द की प्राप्ति होती है।
हार्ट ब्लोकेज दूर होते हैं।
थकान दूर एवं गहरी निद्रा आती है।
शरीर एवं मन का संतुलन होता हैं।

- यथा सम्भव फलों का रस एवं सलाद लेवें।
- प्राणायाम अभ्यास में चेहरा तनाव रहित हो।
- प्राणायाम में प्रसन्न चेहरा हो, मुखाकृति सहज हो।
- ग्रीवा, कटि, वक्ष, सीधा रखकर बैठें।
- गर्भवती, भूख से पीड़ित एवं ज्वर वालो प्राणायाम नहीं करें।
- श्वास सदा नासिका से लेवें
- प्रदूशण युक्त स्थान पर नहीं करें
- गुरू की देखरेख में करें।
- ष्वास गहरी लम्बी बहुत धीरे – धीरे लेवें।
- मांसाहार का सेवन नहीं करें
- योग एवं आसनों से षारीरिक सौश्ठवता आती है।
- मेरूदण्ड में लचकता आती है।
- विजातीय द्रव्यों का निश्कासन होता हैं।
- अन्तः स्त्रावी ग्रंथियँ सुचारू कार्य करती है।
- मन स्थिर एवं एकाग्र होता है।
- सात्विक एवं सकारात्मक भाव बढते है।
- शारीरिक मानसिक बौद्विक एवं आत्मिक विकास होता है।
- श्वसन तंत्र मजबुत होता है।
- रक्त परिसंचरण तंत्र स्वस्थ होता है।
- पाचन तंत्र में पाचन षक्ति बढती है।
- अस्थि तंत्र मजबुत सुसंगठित होता है।
- नाड़ी तंत्र स्वस्थ होता है।
- भावनाओं का संतुलन बना रहता है।
- शारीरिक संतुलन होता बना रहता है।
- आत्मा – इन्द्रिया एवं मन प्रसन्न होता है।

योगासनों से स्थिरता , आरोग्य एवं अंगो में लघुता आती है।
ध्यानात्मक आसनों से ध्यान बढ़ता है।
संवर्धनात्मक आसनों से शरीर मे दृढ़ता एवंलघुता आती है।
शैथिल्यकर आसनों से शरीर एवं मन में शान्ति तथा विश्राम मिलता है।

10.6 योग के सप्त साधनों का वर्णन

क्र. सं.	साधन	कर्म
1	शट्कर्म	षोधन
2	आसन	दृढ़ता
3	मुद्रा	स्थैर्य
4	प्रत्याहार	धैर्य
5	प्राणायाम	लाघव
6	ध्यान	प्रत्यक्ष
7	समाधि	निर्लिप्त

योगासनों के सिद्विकर भाव –

1. शरीर में कृशता
2. मुख प्रसन्न
3. माधुर्य वाणी
4. निर्मल नेत्र
5. अरोग्यता
6. ब्रहमचर्य प्राप्ति
7. अग्नि दीपन
8. नाड़ी षुद्वि
9. तन एवं मन की षुद्वता
10. लचीलापन

नैष्ठिकी (मोक्षदायिनी) चिकित्सा :–

- निष्ठादुःखों से त्रैकालिक मुक्ति
- भूत–भविश्य एवं वर्तमान में दुः,खों की निवृत्ति के उपाय
- उपधा – तृशणा रहित चिकित्सा
- तृष्णा सभी रोगों का मूलकारण है।
- तृष्णा सभी रोगों का समूल नाष की उपधा है।
- उपधा (नैष्ठिकी) से रज तम का नाष होता है।
- सांसारिक बंधनों से मुक्ति मिलती है।
- यह मोक्ष प्रदान करने वाली चिकित्सा है।

योग के आधार भूत सिद्वान्त :–

1. शरीर
2. मन
3. भावना
4. ऊर्जा

योग द्वारा मनुष्य के शरीर मन, भावना एवं ऊर्जा के इन चार आधारभूत तथ्य्रों पर कार्य विशेष प्रभाव होता है।

- कर्मयोग द्वारा शरीर
- ज्ञानयोग द्वारा मन
- भक्ति योग द्वारा भावना

- क्रियायोग द्वारा ऊर्जा

इस प्रकार भगवदगीता के अनुसार ज्ञान, भक्ति एवं कर्म योग का प्रत्येक व्यक्ति के शरीर, मन, भावना, एवं ऊर्जा के स्तर पर योग द्वारा स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिये यौगिक अभ्यास जैसे –यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, बंध एवं मुद्रायें, शटकर्म, युक्ताहार–विहार, मंत्र , जप आदि क्रियाओं का साधनाओं के द्वारा अभ्यास करते हुये षरीर शोधन कार्य एवं रोग निवारणार्थ उपयोग किया जाता है।

योग द्वारा शरीर, मन, भावना, ऊर्जा, आत्म संयम तथा मानव एवं प्रकृति के मध्य शांति एवं सामंन्जस्य के लिये उपयोग किया जाता है।

10.7 सारांश

इस इकाई में हमने योग चिकित्सा की अवधारणा एवं सिद्वान्तों का अध्ययन किया, साथ ही अश्टांगयोग द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति एवं समाधि का विशद् वर्णन किया है।

त्रिविधनाड़ियाँ, पंचकोश, त्रिगुण भाव एवं योगासन तथा प्राणायाम के लाभ, सिद्वान्त एवं सावधानियों का अध्ययन उपरोक्त प्रकार से श्ठि किया है। योग के सप्तसाधन तथा योग के सिद्विकर भाव एवं से मोक्षदायिनी चिकित्सा अर्थात् नैतिकी चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

10.8 शब्दावली

- अस्तेय – चोरी नहीं करना
- अपरिग्रह – संग्रह नहीं करना
- मूलबंध – गुदा मींचकर चकर उपर खींचना
- जालन्धर बंध – ठुड्डी को कंठ कूप में लगाना
- शाम्भवी – ध्यान की मुद्रा जिसमें गर्दन थोड़ी उपर, एवं दृष्टि भ्रूमध्य में होती है।
- हकार – सूर्य नाड़ी
- ठकार – चन्द्र नाडी
- आसनी – योगासन जिस दरी, कम्बल पर किये जायें उसे आसनी कहते है।
- पंचतन्मात्रा – अत्य सूक्ष्म रूप में पंचमहाभूत
- उपधा – तृष्णा
- नैष्ठिकी – दुखों को नाश करने की विद्या

10.10 सन्दर्भ ग्रंथ

- चिकित्सा विज्ञान एवं पंचकर्म – डॉ. श्रीमती विमला षर्मा
- चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काशीनाथ शास्त्री
- पांतञ्जल योग दर्शन – डॉ. नित्यानन्द शर्मा
- आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत

- योग वशिष्ठ – वासुदेव लक्ष्मण षास्त्री
- प्राणायाम – स्वामी कुवलयानन्द
- आयुर्वेद प्रबोध – डॉ. श्रीमती विमला षर्मा
- हठ योग प्रदीपिका – डॉ. पीताम्बर झा

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.योगचिकित्सा का इतिहास एवं सिद्वान्तों का वर्णन कीजिये ?
2.अष्टांयोग एवं मोक्ष का विस्तार से वर्णन किजिये ?
3.योगियों के भाव, योग के सिद्वान्त, प्राणायाम एवं योगासन के लाभ लिखिये ?
4.उपधा रहित चिकित्सा एवं नैश्ठिकी चिकित्सा से क्या अभिप्राय है, विस्तार से वर्णन किजिये ?

इकाई 11 योग चिकित्सा की परिसीमायें

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 योग चिकित्सा की परिसीमायें
11.4 अष्टायोग में अष्ट सिद्वियॉ का स्वरूप (स्वामी चरण दास जी के अनुसार)
10.5 हठयोग सिद्वि के भाव
11.6 योग चिकित्सान्तर्गत सूर्यनमस्कार
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
11.10 सन्दर्भ ग्रंथ
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

आज के इस भौतिकवादी यांत्रिक एवं आणविक युग की चकाचौध के युग में मानव समयाभाव के चलते अमर्यादित असंतुलित , तनावपूर्ण दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं जीवन जी रहा है। दु:ख का विषय यह है कि भौतिक तथा कथित सुखों की तलाश में जानते हुये भी व्यक्ति तन– मन धन का दुरूपयोग कर बदले में रोग प्राप्त कर रहा है।

योग विलासी संस्कृति, अब्रह्मचर्य, प्रज्ञापराध, दूषित एवं मिलावटी आहार–विहार, कीटनाशक रसायनों से उत्पादित आहार सामग्री, इलेक्ट्रिोनिक उपकरणों से उत्पन्न आणविक किरणों के दुष्प्रभावों , भ्रमक विज्ञापन आदि के कारण मनुष्य चिड़चिड़ा होकर तनावग्रस्त एवं बीमार हो रहा है।

योग एक दर्शन है, जीवन विज्ञान है। विश्व को दी जाने वाली भारतीय संस्कृति की अमूल्य कल्याणकारी देन है। जो प्रकृति के पुरूष में (जड़एवं चेतन)जीवात्मा एवं परमात्मा में, मन तथा शरीर में, सांसरिक द्वन्दों में एकता, शांत तथा सामजस्य योग विज्ञान के अभ्यास द्वारा संभव है।

जब सारी सृष्टि में एकात्मा, पूर्णता का भाव रखते है। जीव मात्र के कल्याण की कामना करते है। साथ–साथ प्रार्थना –मंत्र बालते है, तो मन मिलते है, दिल मिलते हैं, तो फिर मतभेद नहीं हो सकते हैं, अतः योगा जाति, धर्म, क्षेत्र, राष्ट्र, की सीमाओं से परे सर्वत्र एवं नित्य तथा सर्वकालिक विद्या है। जिसकी सीमायें अपरिसीमित है। भूण्डल से लेकर अंतरिक्ष मय जगत आकाश की समस्त सृष्टियों तक योग की अपार व्यापक परिसीमायें हैं।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्न विषयों का अध्ययन कर हम जान सकेगे कि योग की परिसीमायें कहॉ तक है। अष्ट सिद्वियॉ एवं अष्टऐश्वर्या, योग सिद्वि के समस्त भाव रोगों के शमन हेतु

योग चिकित्सा, ध्यान एवं विधि नियम योग चिकित्सा में सूर्यमनस्कार, तथा अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस आदि का अध्ययन इस इकाई में किया जा रहा है।

11.3 योग चिकित्सा की परिसीमायें

योग का वास्तविक उद्देश्य तो (1) जीवात्मा का परमात्मा से मिलन था। (2) ब्रह्म की प्राप्ति। (3) आत्मा का स्वरूप –ज्ञान तथा (4) उसी आत्मसत्ता में स्वस्थ शरीर के माध्यम से समाधिस्थ होना। (5) चित्त की वृतियों का निरोध करते हुये (7) पूर्ण तत्त्व परमात्मा की प्राप्ति करना।

लेकिन आज मनुष्य योग के इस आध्यात्मिक पहलू से हट गया है। पातञ्जल योग दर्शन में शरीर को यम– नियम का पालन करते हुये आसनों के द्वारा स्वास्थ्य शरीर बनाना तथा सुसंगठित मन की शांति एवं आनन्द हेतु प्राणायाम का अभ्यास करना है। गीता के त्रिविध में उपदेश यथा ज्ञान –भक्तिकर्म तथा क्रियायोग का क्रमशः मन, भावना, शरीर एवं उर्जा के द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करते हुये पूर्णतावादी दृष्टिकोण का अपनाकर विश्व कल्याण हेतु प्रयासरत होना है।

योग का जनसामान्य में उपयोग

(i) योग की परिसीमायें अनन्त है।
(ii) योग को सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता है।
(iii) योग विश्व की समस्त जातियों से परें है।
(iv) योग विश्व ही क्या सम्पूर्ण सृष्टि का विषय है।
(v) योग जहॉ तक कि सृष्टि–ब्रह्माण है। सभी जगह पर इसकी सत्ता है।
(vi) योग समय सीमा में बाधा नहीं जा सकता है।
(vii) योग में पूर्व में भी था, आज भी है, तथा आगें भी रहेगा।
(viii) योग सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक जीवन साधना की विद्या है।
(ix) योग पुर्णता प्राप्त करने की कला है।
(x) योग के द्वारा मानव एवं प्रकृति में स्नेह बढता है।
(xi) योग शरीर एवं मन में सामजस्य बिठाता है।
(xii) योग के द्वारा जीवन शैली में परिवर्तन होते हैं, जिससें हमारा स्वास्थ्य सुधरता है।
(xiii) योग से मन के अन्दर शरीर में भीतर जागरूकता पैदा करता है।
(xiv) योग व्यायाम मात्र ही नहीं अपितु आध्यात्मिक उत्कर्श की साधना रूपी विद्या भी है।
(xv) योग के द्वारा स्वास्थ्य को प्रोत्साहन मिलता हैं।
(xvi) योग के द्वारा हम बीमारियों की रोकथाम करते है।
(xvii) योग के द्वारा हम स्वस्थ जीवन की शैली का प्रबधंन करते हैं।
(xviii) योग के द्वारा पूर्ण आत्मा की स्वतंत्रता जीव को प्राप्त होती है।
(xix) योग के द्वारा स्वास्थ्य एवं आनन्द की प्राप्ति होती है।
(xx) योग द्वारा इन्द्रियॉ प्रसन्न रहती है।
(xxi) योग द्वारा जाठराग्नि प्रदीप्त रहती है।
(xxii) योग के द्वारा पाचन पणाली स्वस्थ रहती है।
(xxiii) योग द्वारा शरीर एवं मन का सतुलन बनता रहता है।

(xxiv) योग द्वारा कुछ ना कुछ अवश्य कर लाभ प्राप्त कर सकते है।
(xxv) योग से जीवन शैली जन्य मोटापा, मधुमेह एवं हृदय आदि रोग दूर होते हैं।
(xxvi) योग के द्वारा मानव शरीर के सभी अंगावयवों, स्त्रोतसों एवं आशयों पर प्रभाव पडता है।

यह स्पष्ट है कि योग के द्वारा पांच भौतिक शरीर के अन्तर्गत सात धातुओं पर उनकी आरोग्यता हेतु प्रभाव पड़ता है, लेकिन ''अस्थि वह तंत्र'' एक ऐसा संस्थान है जहाँ सीधें सीधे योग के द्वारा विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नही होता है। उदाहरण के लिये– किसी व्यक्ति की दुर्घटना के दौरान हाथ पैरों में फैक्चर (अस्थि– संधात) हो जाये तो उसे एक बार तो चिकित्सालय ले ही जाना पडेगा। चिकित्सकीय शल्यउपचार पटबन्धन आदि कराना ही श्रेष्ठ है। ऐसे में दुर्घटना पीडित व्यक्ति को यदि कपालभांति कराने लग जाये तो हम नहीं समझ सकते है कि उसकी आत्यायिक (इमरजेन्सी) परिस्थिति ठीक हो जायेगी।अतः योग का वात पित्त एवं कफ इन त्रिदोषों पर निश्चय रूप से प्रभाव होकर शरीर स्वस्थ करने में महती भूमिका हे। सप्त धातुओं में योग के द्वारा कोशिका के जीव द्रव्य पर नेनोटेक्नोलेजी के तहत रस, रत्त,मांस, मेद, भज्जा, एवं शुक्रादि सभी धातुओं पर योग का स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोग निवारण दोनों प्रकार से पूरा पूरा लाभ मिलता है। जहॉ तक अस्थि वह स्त्रोरस या अस्थि धातु का प्रश्न है। वहॉ पर सीधे तौर पर तो नहीं पर किन्तु आशांश की कल्पनानुसार लम्बे समय बाद इस धातु पर भी आंशिक ही सही, लेकिन प्रभाव तो स्वास्थ्यानूकुल पड़ता ही है।

योग विज्ञान के प्रमुख निम्न क्षेत्र जहॉ योग की भूमिका को स्वीकारोक्ति मिली हुयी है।
(i) शिक्षण संस्थानों के सभी स्तरों पर सभी क्षेत्रों में योग की उपयोगिता
(ii) भारतीय चिकित्सा पद्वतियाँ जैसे – आयुर्वेद –नेचुरोपैथी,सिद्ध एवं यूनानी चिकित्सा आदि।
(iii) खेल में शारीरिक सौष्ठव एवं प्रतिस्पर्धा में विजय हेतु योग की उपादेयता।
(iv) औद्योगिक संस्थानों के सभी स्तरों में कार्यदक्षता बढ़ाने हेतु।

- मनोचिकित्सा के स्तरों में
- शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में।
- सुसंस्कारित नागरिक बनानें के क्षेत्र में।
- राजनेताओं एवं पन्द्रह वर्ष के स्वास्थ्य समायोजन के क्षेत्र में।
- भ्रष्टाचार राकने के क्षेंत्र में।
- आत्मानुशासन के क्षेत्र में।
- सामाजिक एवं धार्मिक अनुशासन के क्षेत्र में।
- चिकित्सा पर बढ रहे आर्थिक बजट को कम करने के क्षेत्र में।
- वैश्विक शांति के क्षेत्र में।
- परोपकार के क्षेंत्र में।
- व्यक्तिगत जीवन के सर्वागींण विकास के क्षेंत्र में।
- शारीरिक एवं मन के सौन्दर्य संवर्धन हेतु।
- समुदायिक स्वास्थ्य प्रबन्धन हेतु।

- आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के स्वास्थ्य हेतु।
- मोक्ष एवं कैवल्य प्राप्ति के क्षेत्र में।
- प्रकृति एवं पुरूष में सामजस्य हेतु।
- बीमारियों को राकने हेतु(शिक्षा के सभी क्षेत्रों में)
- बीमारियों को रोकने हेतु (समाज के सभी क्षेंत्रों में)
- आध्यात्मिकता के क्षेंत्र में। मानव जीवन सफल बनाने के क्षेत्रों में

अतः योग की अपनी कोई सीमा नही है। अंष्टागयोग के द्वारा सम्यक् स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये महर्षि पांतञ्जलि शारीरिक – मानसिक एवं आत्मिक शुद्वि हेतु इन आठ सोपानों (1) यम (ii) नियम(iii)आसन (iv) प्राणायाम (v) प्रत्याहार (vi)धारणा (vii)ध्यान एवं समाधि का वर्णन किया।

यम नियमों का पालन करने से शरीर को सांसारिक द्वन्द परेशान नहीं करते। द्वन्दहीन शरीर में प्राणों का संचालन स्वुच्छानुसार किया जा सकता है।जब प्राण स्वाभाविक इच्छानुसार गति करता है तो बुंद्वि स्थिर हो जाती है तथा बुद्वि के स्थिर होने पर विवेक ज्ञान प्राप्त होता है। बुंद्वि से विवेक की प्राप्ति होने पर मन के निग्रह अर्थात् वश में करने की योग्यता आ जाती है। मन के वशीकरण उपरान्त ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियॉ भी स्वतः संयम में आ जाती है। जिससे प्रत्याहार की स्थिति उत्पन्न होती है। "प्रत्याहार "की स्थिति में " अंहकार का भाव" समाप्त हो जाता है। तथा चित्त अर्थात् मन– बुद्वि – अंहकार शांत होने लगता है।शांत चित्त के द्वारा धारणा ध्यान एवं समाधि की प्राप्ति होती है। इन तीनों को "संयम योग" कहा जाता है। जिससे शांति – आनन्द एवं कैवल्य की साक्षात् अनुभुमि होकर परमात्मा साक्षात्कार होता है।

संयम से भूत एवं भविष्य सदृष्ट होकर उनका ज्ञान / अभ्यास होता है। श्रद्वापुर्वक मन, वचन, एवं कर्म से यमों का नियमों के द्वारा पालन करना चाहिए।शरीर का षटकर्मो, यथाः –नेती,धोती, कुंजल, नौली, त्राटक तथा कपालभाति की क्रियाओं को करने से शरीर का प्राकृतिक शोधन एवं विकास होता है। प्राणायाम के द्वारा ''स्थिरता'' तथा प्रत्याहार द्वारा मन का निग्रह हेतु धारणा फिर ध्यान एवं अन्त में ध्यान की गहराई के अनुरूप ही सम्यक समाधि की प्राप्ति होती है। जड शरीर की सम्यक शुद्वि होने बाद चित्त (मन, बुद्वि,अंहकार) की शुद्वि होने पर सम्यक स्वास्थ्य (मोक्ष, निर्वाण, परमपद) अर्थात कैवल्य को प्राप्त किया जा सकता है। यही योग का आत्मानुशासन एवं श्रेष्ठ प्रबन्धन है जो कि मोक्ष (कैवल्य) की ओर प्रेरित करता है।

11.4 अष्टांयोग में अष्ट सिद्वियॉ का स्वरूप (स्वामी चरण दास जी के अनुसार)

(i) अणिमा
(ii) महिमा
(iii) लघिमा
(iv) गरिमा
(v) प्राप्ति
(vi) पराकाम्य

(vii) इशिता
(viii) वशीकरण

01. अणिमाः— साधक को सूक्ष्म अणुरूपम में आभास होता है।
02. महिमाः— हर जगह व्यक्तित्त्व की व्यापक सत्ता का होना।
03. लघिमाः— फूलवत वह हल्का हो गया है ऐसी प्रतीति होने लगती है।
04. गरिमाः— शरीर का भार बढने की प्रतीति।
05. प्राप्तिः— सब प्राप्त कर सकता हूँ।
06. परकाम्यः— अजेय एवं शक्तिशाली बन गया हूॅ।
07. इशिताः— जिसे चाहे उसे अपने आदेशों पर चला सकता हूँ।
08. वशीकरणः— पूरा संसार मेरे अधीन है ऐसी सिद्धी प्राप्त होती है।

योगियों की अलौकिक अष्टऐश्वर्य युक्त शक्ति (आचार्य —चरक के अनुसार)

आवेषश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः किया।
दृष्टिः श्रोत स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्।।

(i) आवेशश्चेतस — (स्वेच्छा से मन को बारे में शरीर में प्रवेश करना)
(ii) ज्ञानम अर्थानाम् — (सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों का त्रैकालिक ज्ञान)
(iii) छन्दतःक्रिया — (अलौकित अप्रत्याशित कार्य करने की शक्ति)
(iv) दृष्टि : — (दिव्य दृष्टि का होना)
(v) श्रोतम् — (दिव्य श्रवण शक्ति को हेना)
(vi) स्मृति— (अलौकिक स्मरण शक्ति को होना)
(vii) कान्ति (दिव्य कांति युक्त शरीर का होना)
(viii) इष्टतश्चाप्यदर्शनम (इच्छानुसार गायब एवं प्रकट होने की शक्ति का`होना)

इस प्रकार के योग के सतत अभ्यास से अष्ट सिद्वियॉ एवं अष्टऐश्वर्य प्राप्त हो सकते है।

11.5 हठयोग सिद्वि के भाव

(i) उचित आहार विहार
(ii) उचित एवं शांत गहरी निद्रा
(iii) उचित साधना रूपी चेष्टा (क्रिया में)
(iv) योग में विश्वास श्रद्वा होना
(v) वीर्य शक्ति का संरक्षण करना
(vi) स्मृति (स्मरण शक्ति) बनाये रखना
(vii) समाधि स्थ होने की साधना
(viii) प्रज्ञा (ज्ञान) का सतत् प्रवाह

अन्य छः भाव (निम्नानुसार)

01. उत्साह
02. साहस
03. धैर्य
04. तत्त्वज्ञान
05. निश्चय 06 जनसामान्य का परित्याग करना

योग प्रतिबन्धक भाव

01. अतिसार
02. अल्पाहार
03. अतिनिद्रा
04. अतिजागरण
05. रात्रि जागरण
06. दिवास्पन

योग प्रतीबन्धक अन्तराय भावः–

व्याधि
स्त्यान (मन नही लगना)
संशय
प्रमाद(अनियंत्रित मन)
आलस्य
अविरति (सांसरिक मोह)
भ्रान्तिदर्शन (मिथ्या ज्ञान)
अलब्ध भूमिकत्व (ध्यान ना लगना)
अनवस्थितत्त्व (ध्यान का भंग हो जाना)
योग प्रतिबन्धक सहभुव भाव–

(i) दुःखम
(ii) दौर्मनस्य
(iii) अंगमेजसत्व (शरीर में अस्थिरता)
(iv) श्वास लेना (अंदर लेना)
(v) प्रश्वास (बाहर छोड़ना)

अन्य सहभुव भाव़

01. अधिक आहार
02. अधिक प्रयास
03. प्रजल्य (अधिक वार्तालाप)
04. नियमग्रह (नियमों के चिपके रहना)
05. सामान्य व्यक्तियों की ंसंगति (जनसंड़ग्)
06. लालच

उक्त सभी भाव योगाभ्यास का नाश करने वाले है।

ध्यान विधि एवं ध्यान नियमः धारणा ध्यान की नीव है। ज्यौ–ज्यौं धारणा का पक्का होने लगता है त्यों त्यों ध्यान की लगने लगता है। नाभिचक्र ,भूमध्य या हृदयादि में ध्येय रूपी परमात्मा में एकाग्रता को ध्यान की संज्ञा दी है। ध्यान के समय मन की ब्रह्मा के आनन्दमय ज्योतिमर्य एवं शांतिस्वरूप में अवस्थित हो जाना ध्यान है। ध्यान के बिना जीवन अधूरा है। आनन्दमय एवं शांतिमय जीवन हेतु ध्यान सहायक होता है।

01. ध्यान से पूर्व प्राणायाम अवश्य करना चाहिये।जिससे कि मन पूर्ण शांत एवं एकाग्रता हो जाये।?
02. ध्यान से पूर्व तीन मिनट कपालभांति के द्वारा शोधन क्रिया तथा न्यूनतम पांच. मिनट अनुलोम– विलोम प्राणायामक रने से मन निर्विषय होने लगता है, ध्यान

करने वाले का मूलाधार चक्र जाग्रत होकर ऊर्ध्वागामी होकर आज्ञाचक्र में स्थित होकर औंकार स्वरूप में जाकर मन एकाग्र हो जाता है।

03. ध्यान करते समय यदि फिर भी अन्य कोई समसामयिक या नकारात्मक विचार आ जाये तो उन्हें आने दे, मूल विषय पर ध्यान को सर्वोपरि रखतें हुये महत्त्व देवें।

04. अनासक्त भाव में रहकर विवेक एवं वैराग्य के साथ परमात्मा का शुभकार्य है। ऐसा मानते हुये साधना में उपधा रहित निष्काम एवं फल की अपेक्षा रहित ध्यान करना चाहिये।

05. सुख प्राप्ति एवं सुखात्मक बुद्वि रहने पर ईश्वर प्रणिधान अर्थात है

गोविन्द "त्वदीयं वस्तु गोविन्दम्, तुभ्यमेव समर्पयेत्"

यह सब कुछ तेरा है यह तुझे अर्पित है।

ऐसा भाव आना चाहिये। बिना ईश्वर प्रणिधान के ध्यान एवं समाधि तक पुहॅचना सर्वथा असम्भव है। ध्यान लगाने की क्रिया का प्रयास हो सकता है परन्तु प्राप्ति असंभव है उसके लिये साधना की आवश्यकता होती है।

06. परमात्मा ने भौंहे, आँख, नाक, कान, ओष्ठ, कान, हृदय, वक्ष, सहित समस्त अंगावयवों की आकृति औंकारमय बनायी है। अतः औंकार का ध्यान, जप, सवोतम है। शरीर रूपी पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में सभी औंकारमय है। वेदों में गायत्री मंत्र का जप औंकारपूर्वक किया जाने का विधान है।

07. ध्यान में प्राण के साथ प्रणव को उदगीथ के उपासना से सिद्व करते हैं। सभी ज्ञानेन्द्रियॉ, द्वन्दमय संदोष कारक है, जैसे कान, अच्छा– बुरा दोनो सूनता है। नासिका सूगन्ध–दुगन्ध दोनों ही प्रकार को सूघंती है। आंखे शुभ – अशुभ दोनों को देखती है , जिह्वा भक्ष्य अभक्ष्य दोनों का भक्षण करती है। वाणी– मधुर कटु दोनों प्रकार की होती है। यहॉ तक कि मन में सुविचार एवं कुविचार दोनों ही आते है। एकमात्र " प्राण "ही ऐसा श्रेष्ठ तत्त्व है जो कि पूर्णतया निर्दोष है। अतः सच्चिदानंद के साक्षात्कार हेतु" प्राणतत्त्व" प्रणवमंत्र औंकार की उपासना, गीथ प्राणायाम के साथ करनी चाहिये।

08. प्रतिदिन एक घण्टा जब ध्यान एवं उपासना हम चाहे जिस पूजा पद्वति को मानने वाले हो अवश्य करना चाहिये। इससें स्वस्थ्य की प्राप्ति एवं जीवन संतुलित रहता है।

09. ध्यान एक ऐसा विषय है जिसको भौगोलिक सीमा में हम बांध नहीं सकते। विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में शांति– एकाग्रता– स्ववस्थ शरीर – संतुलित जीवन जीने हेतु ध्यान की क्रियायें करता हुआ परम शक्ति परमात्मा का साक्षात्कार करने की साधना कर सकता है।

ध्यान विधिः–

सर्वप्रथम सुखासन, स्वस्तिकासन पद्मासन किसी भी सुखानूभुत आसन में बैठते है। रीढ सीधी कमर सीधी, आंखें कोमलता से बंद कर श्वास गति लम्बी एवं गहरी तथाा अत्यन्त धीमी। मन का आहार विचार है। अतः मन को विचारों से शून्य करना ही ध्यान की अवस्था है। मन को एकाग्र करते हुये प्रणव अपने ईष्ट का स्मरण करना एवं उसी अवस्था में उसका साक्षात्कार कर आनन्द का प्राप्त करना है, वस्तुतः मन को विचारों से रहित करने से ही उत्तरोत्तर ध्यान एवं समाधि की स्थिति प्राप्त होती है। ध्यान हटाने पर ही वापस

चेतना, जाग्रति लाते हुये दोनों हाथों की हथेलियों का परस्पर घर्षण करते हुये चेहरों पर आंखों पर स्पर्श करावें।ध्यान की स्थिति में षड्चक्रों की मानसिक यात्रा एवं प्राणों के द्वारा **मूलाधार**– स्वाधिष्ठान, –मणिपुर–अनाहत– विशुद्व एवं आज्ञाचक्र, , सहस्रार चक्रतक प्राणतत्त्व को ले जाना एवं उप चक्रो को स्वस्थ करना, जागृत करना आदि है। मन से भावनात्मक क्रिया की जा सकती है। लेकिन अन्त में एकमात्र परमात्मा का साक्षात्कार रूपी ध्यान आवश्यक है। आंखों को स्पर्श के बाद से धीरे धीरें कोमलतापूर्वक आंखों को खोलकर वातावरण के सम्पर्क में लाना चाहिये। मन में पुनः शान्ति, हल्कापन एवं ताजगी महसूस करें। यह साधारण ध्यान विधि है।

"रोगों के शमन हेतु योग चिकित्सा"।।

रोग	–	योग चिकित्सा के आसन एवं प्राणायाम्।
पाचन के लिये	–	पश्चिमोत्तनासन, मयूरासन, त्रिकोणासन, अर्धमत्स्येंद्रासन
कब्ज रोग	–	पवनमुक्तासन, चक्रासन, अर्धमत्स्येदासन, पादहस्तासन।
गैस रोग	–	पवनमुक्तासन, धनुरासन, चक्रासन, जानुशिरासन।
नैत्र रोग	–	सर्वागांसन, वृक्षासन, मयुरासन, उष्ट्रासन।
आमवात	–	पश्चिमोतानासन, मत्स्येन्द्रांसन, शीर्षासन ।
उदरकृमि (कीडे)	–	मत्स्येन्दासन, वृश्चिकासन, नौकासन, चक्रासन आदि।
अम्लपित्त एसिडिटी	–	शलभासन, नाडी शोधन प्राणायाम।
मेदो रोंग	–	मयूरासन, जानुसिरासन , सर्वागांसन, शलभासन आदि।
पाइल्स (अर्श)	–	सर्वागांसन, पश्चिमोत्तनासन, गौमुखासन, अश्विनी मुद्रा ।
आलस्य त्याग	–	ताडासन, त्रिकोणासन, शीर्षासन, सर्वागासन।
थकावट दूर करने हेतु	–	शवासन, दण्डासन, मकरासन, योगनिद्रा।
झुर्रियों दूर करने हेतु	–	शीर्षासन, सर्वागासन, विपरीतकरणी, योगमुद्रा ।
उच्च रक्तचाप	–	शशाकासन, भ्रमरी, प्राणायाम।
हीन रक्तचाप	–	वक्रासन, भात्रिका पाडीशेधन, सूर्यनमस्कार करना आदि।
श्वास(दमा)	–	श्वासन , सर्वागासन, शीर्षासन, भुंजगासन, कपालमाति, मास्त्रिका
मधुमेह	–	सूर्यनमस्कार , टलासन, सर्वागासन, पश्चिमोत्तानासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, वक्रासन
कमरदर्द	–	त्रिकोणासन, उत्कासन, गौमुखासन, भुंजगासन, चक्रासन, शंशकासन।
मेरूदण्ड के रोंग	–	हलासन, धनुरासन, उष्ट्रासन, चक्रासन, , पश्चिमोत्तनासन , वक्रासन आदि।
खांसी (कफ)	–	शीर्षासन, पादहस्तसन, उष्ट्रासन कपालभांतिक्रिया, ।
सयटिका	–	शलभासन, भुंजगासन, गरूड़ासन, धनुरासन, वज्रासन, गौमुखासन।
मानसिक तनाव	–	शवासन, वज्रसन, सर्वागांसान, शीर्षासन, मकरासन, शंशाकासन आदि।

योग चिकित्सा की वैज्ञानिकता–

संसार में कोई भी व्यक्ति दु:ख एवं अहितायु को प्राप्त नहीं करना चाहता। हर व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है। सभी ''रोग मुक्त जीवन चाहते हैं।'' कोई भी "रोगमुक्त जीवन " जीना नहीं चाहता है। शरीर को साधना ही धर्म का साधन है। योग द्वारा शरीर की उपेक्षा नहीं अपितु शरीर को सशक्त एवं लचीला बनानें पर जोर दिया जाता है। भौतिक संसाधनों एवं तृष्णाओं के चक्कर में मनुष्य इतना फंस रहा है, कि कभी कभी तो यह संदेह भी होने लगता है कि वह इन भौतिक सुख सुविधाओं को भोग भी पायेगा या नहीं। आखिर भौतिक सुख सुविधाओं को भी भेगने के लिये, उनके उपयोग के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है।

शरीर के अन्दर की शक्ति बढाने का काम योगासन के द्वारा किया जाता है। योगासन करते समय अपने अपने शरीर को आगे झुकाता है। साधक स्वशरीर को तानता है। शरीर को ढ़ीला करता है। शरीर को मरोड़ता है। इन सभी शारिरीक क्रियाओं के द्वाराा स्क्तनलिंक साफ होती है। वे शुद्व होकर विकार रहित होती है परिणामस्वरूप सम्पूर्ण शरीर में शुद्व रक्त पहुचाने में आसानी होती है साथ ही अशुद्व रक्त को पुनः शुद्विकरण हेतु हृदय में वापस लाने में सुविधा होती है।

शरीर में जहॉ जहॉ "प्राणतत्त्व" युक्त शुद्व रक्त संचरित होता है। वे अंग सक्रिय पुष्ट एवं रोगमुक्त होते है। योगासन, प्राणायाम, एवं सूर्यनमस्कार से रक्तनलिकायें शुद्व होती है। फुफ्फस के वायुकोशों में अधिक मात्रा में " प्राणतत्त्व "अर्थात ऑक्सीजन जाती है। जिससे कोशिकाओं के "जीवद्रव्य " का पोषण होता है।साथ ही शरीर से विकारयुक्त कार्बनडाइआक्साइड विजातीय रूप में बाहर निकलती है।

सारे रोगों की जड पेट अर्थात् मन्दाग्नि है। इससे''पाचन शक्ति'' कमजोर हो जाती है। ''रोगा सर्वेडपि मन्दग्नौः''। अतः योगाचिकित्सा के द्वारा पाचन संस्थान ठीक रहता है। पाचक स्त्राव आवश्यकतानुसार स्त्रवित होते है। भूख समय पर लगती है। भोजन का पाचन ठीक रहता है। शरीर को पोषक तत्त्वों की पूर्ति होकर उर्जा शक्ति प्राप्त होती है।

योग चिकित्सा द्वारा मेरूदण्ड में लचक पैदा की जा सकती देती है। मेरूदण्ड की लचक से षडचक्र उद्दीप्त होते है। सुषम्ना नाडी इड़ा एवं पिंगला सहित सक्रिय होकर मस्तिष्क में स्थित नाडी मण्डल को पोषण देते हुये स्वस्थ रखती है।

जब शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी शांत होगा, तभी भीतर की शक्तियॉ जागेगी। चक्र खुलेगे, एवं मन एकाग्र होगा। कार्य करने में कुशलता आयेगी। जिससे कि मन प्रसन्न होगा। मन की यहीप्रसन्नता तो आनन्द का स्वरूप है। आनन्द ही परमात्मा का दूसरा नाम है। जीवात्मा परमात्मा बन जाये उसी साधन का नाम होता है योग।।

आज योग के प्राणतत्त्व पर क्रिया करने के कारण उसें ''नैनों मेंडिसन'' कहा जाने लगा है। प्राण तत्त्व आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक चिकित्सा है। हम जानते हे कि प्राणायामक का प्रायोगिक करने पर फुफ्फसों को आयतन को सामान्य से दस गुना बढाया जा सकता हैं। ऑक्सीजन की शरीर में वृद्वि की जाती है। जिससें रक्तशोधन की रासायनिक प्रक्रिया में वृद्वि होती है। शरीर का प्रत्येक कोशिका को आवश्यकतानुसार प्राणतत्त्व आक्सीजन प्राप्त हो जाता है। इसी आक्सीजन के द्वारा जारूण की प्रक्रिया के फलस्वरूप प्राप्त उर्जा (ए.टी. पी.)के द्वारा उचित पोषण होकर सभी अंग अवयव स्वस्थ होते है। योग चिकित्सा में प्राणायाम के द्वारा कोशिकाओं एवं अंगों में होने वाले क्षरण ''नेक्रोसिस'' या ''डिजेनेरेशन'' को रोका जाता है। अतः प्राणायाम श्रेष्ठ ऑक्सीडेन्ट माना जाता है।

11.6 योग चिकित्सान्तर्गत सूर्यनमस्कार

योग की परिसीमाओं में सूर्यनमस्कार को किसी एक देश से बांधा नही जा सकता है। सूर्य नमस्कार बारह आसनों का पुञ्ज है। जिसमें शरीर के सभी प्रकार के मूमेन्ट (गतियॉ) समाहित होते है। पूरक रेचक के साथ इन आसनों को करने से प्राणायाम का भी इसमें समावेश हो जाता है। मंत्रों के साथ करने से सकारात्मक भाव पैदा होता है। एवं मन एकाग्र होता है।

इस इकाई में इस विषय को इसलिये भी समाहित किया जा रहा है कि वास्तव में सूर्यनमस्कार वह प्रक्रिया नही कि जिसमें सूर्य की आराधना–उपासना पूजा आदि की जाती है। यह तो शारीरिक सौष्ठव एवं मानसिक शांति प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण शरीर की व्यायाम पद्वति है।आज के भागमभाग के समय में समयाभाव के कारण यदि सूर्यनमस्कार पद्वति को भी अपनाया जाये तो इसमें आयु, प्रज्ञा, बल एवं वीर्य ओजगुण की प्राप्ति होगी। कोई व्यक्ति किसी भी देश का व्यक्ति क्यों न हो वह सूर्य की ताकत शक्ति को पहचाने बिना नही रह सकता । सूर्य किसी भी धर्म– जाति–मजहब विशेष का नहीं है। हम सूर्यनमस्कार कि पद्वति के द्वारा जिसकी की पूजा अर्चना पद्धति को मानते हो उसका ध्यान करते है। उसका स्मरण, उनके आप्त वाक्य दोहराकर बारह आसन कर सकते है। इन बारह आसनों का स्थितयों का इस इकाई में वर्णन नही कर केवल सूर्यनमस्कार के 12 आसनों का वैज्ञानिक चिकित्सकों कि दृष्टि से विभिन्न संस्थानों पर होने वाले प्रभाव– लाभों का संक्षेप में वर्णन निम्नानुसार किया जा रहा है।

(i) श्वसन वह संस्थान–Respiratory System, पूरक रेचक करने से फुफ्फुसों में ताजी स्वच्छ आक्सीजन प्राप्त होती है। हस्तउतानासन में ऐसा ही होता है।

(ii) रक्त परिसंचरण संस्थान–Circulatory System सूर्य नमस्कार को पद्धति से रक्त प्रवाह बढता है। रक्त के माध्यम से प्राणवायु कोशिकाओं तक सुचारू पहुॅचने से हृदय सहित सभी अंग अवयव स्वस्थ रहते है।

(iii) पाचन संस्थान–Digestive System खिंचाव , तनाव, एवं शरीर को ढीला छोड़ने से पाचन शक्ति मजबूत होती है। हस्तपदासन में उदर के अगांवयवों जैसे कि यकृत, वृक्क, पित्ताशय, गर्भाशय, सभी की मालिश जैसी क्रिया होती है। जिससे कि पाचन तंत्र सही रहता है।

(iv) अश्वसंचालन की स्थिति में खिचावं होने से जननांग अर्थात् पुरूष तथा महिलाओं के स्वस्थ होते है।

(v) पर्वतासन– इस स्थिति में भुजायें, पैर की स्नायुएवं पेशियाँ मजबूत होती है। मेरूदण्ड मजबूत होता है। वेरीकोज वेन Vericos Veins)शिराशोथ दूर होने में सहायक है।

साष्टांग नमस्कारासन– इससे वक्ष का विकास, सीना चौडा होता है, कंधे एवं भुजायें मजबूत होती है। मणिपुर चक्र में उद्दीपन होता है। जिससे वक्ष स्थल एवं उदर प्रदेश स्वस्थ रहता है।

भुजगांसन– वक्ष एवं उदर पर गतिशील प्रभाव होने से श्वास, दमा, गुर्दे, की बीमारी यकृत की अनेक बीमारियाँ दूर होती है। यकृत(लीवर) में पोषक, तत्त्वों की रासायनिक प्रक्रिया सम्यक् होती है।

पुनः अश्वसंचालनआसन, पश्चिमोतानासन, (पादहस्तासन) ताडासन, नमस्कारासन, आदि पूर्ववृत क्रियाओं के पूर्ववत लाभ प्राप्त होते है।

सूर्य नमस्कार द्वारा शरीर एवं मन में लचीलापन का विकास होता है। मानसिक संतंलन प्रांप्त होता है। नकारात्मक भाव समाप्त हो जाते है। आत्म हत्या करना तो दूर इसका विचार भी मन में नहीं आता है।नकारात्मक भाव समाप्त हो जाते है।

उत्सर्जन संस्थान–भुजगांसन, अश्वसंचालासन, से उत्सर्जन संस्थान स्वस्थ होत`है।

स्नायुमण्डल मेरूदण्ड सीधा होकर उसमें लचीलापन आने के कारण से मस्तिष्क की नाडियाँ कियाशील होकर पाडी जन्य रोगों को दूर करने में सहायक होती है।

अन्तः स्त्रावी ग्रथियों पर (पीयूषिका ग्रथिं) Pituitary Thyroid Gland) (PancriesGland) अधिवृक्क ग्रथिं (Adrinal Gland) अग्नाशय जननांग ग्रथि (Reproductive Gland) सभी प्रकार की सकारात्मक प्रभाव पडता है।

शरीर सुसंगठित एवं मजबूत होता है। मोटापे का विनाश हो जाता है। अतः सूर्यनमस्कार एक योग की वैज्ञानिक चिकित्सा है पद्वति है जो कि ये पद्वति सम्पूर्ण विश्व में जहॉ भी व्यक्ति इसका अभ्यास करें वह इससे शारीरिक, मानसिक, बौद्विक, आत्मिक, एवं आध्यात्मिक, उन्नति प्राप्त कर स्वास्थ्य का संरक्षण तथा व्याधियॅा, का विनाश कर करते हुए लाभ प्राप्त कर सकता है। इससे शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता तथा शांति आनन्द प्राप्त होता है।

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस परिचय

इस इकाई में आज के युगानुसार संदर्भ में ''अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस'' का भी संक्षिप्त स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्णन किया जा रहा है। वास्तव में योग का कोई सीमायें नहीं होती। आज योग द्वारा चिकित्सा 21 जून 2015 के बाद से को अन्तर्राष्ट्रीय योगदिवस के साथ विश्व व्यापी बन गयी है। योग चिकित्सान्तर्गत पंचयमों का पालन कर सम्पूर्ण विश्व में हम शान्ति का भाव उत्पन्न कर सकते है।

27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में 69 वें सत्र में भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विश्व समुदाय से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आह्वान किया। 11 दिसम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 193 सदस्यों ने रिकार्ड 177 के समर्थक देशों के साथ 21 जून को '' अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस'' मनाने का संकल्प सर्वसम्मति से अनुमोदित कर दिया। 21 जून वर्ष का सबसे बड़ा दिन होता है, इसलिये विकास की दृष्टि से इसदिन को ''योग दिवस'' के रूप में माना है। भारत में प्रत्येक पंचायत स्तर से नीचे 21 जून 2015 को सामूहिक योगाभ्यास निर्धारित प्रोटोकॉल के अनुसार सम्पन्न हुये।

स्वास्थ्य से सम्बन्धी अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुये "केन्द्रिय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद "एवं भारत सरकार के ''आयुष योग " मंत्रालय के द्वारा विश्व में पहली बार 21 जून 2015 को अर्न्तराष्टीय योग दिवस को 33 मिनट के "कामन प्रोटोकाल" के तहत पहली बार मनाया गया।

इस सामूहिक योग अभ्यास की सार्वकालिक, सार्वभौमिक ऋग्वेद की प्रार्थना से इसे प्रारम्भ किया गया है। जो कि निम्न प्रकार से है–

ऊ संगच्छध्वं, संवदध्वं , सं वो मंनासि जानताम्।
दवा भागं यथा पूर्वे, सन्जानाना उपासते।। (ऋग्वेद)

अर्थात हम साथ गमन करें साथ –साथ चलें और

हम साथ –साथ एक सुर में बोले,
हम सब अपने मन कों समचित्त बनायें जैसा कि यह पूर्व में था।
आइये, ईश्वरत्व को अपनी अपनी उपासना में झलकनें दें।

शिथली करण के तीन अभ्यास – ग्रीवाचालन, कटि एवं घुटना संचालन
खड़े होकर किये जोन वाले पांच आसन है–

1. ताडासन – शरीर में स्थायित्व एवं लम्बाई बढ़ाने में सहायक
2. वृक्षासन – शरीर संतुलन, पैरों की मांसपेशियां मजबूत होती है।
3. पादहस्तासन – मेरूदण्ड लचीला, कब्ज नाशक, योनि दोष निवारण हेतु
4. अर्धचक्रासन – मेरूदण्ड लचीला, सवाईकल स्पोनोडोाइटिस में श्रेष्ठ
5. त्रिकोणासन – पिण्डली, जंघा, कटि की मांसपेशिया सुदृढ़ होती है।

बैटकर किये जाने वाले चार आसन है।

1. भद्रासन – घूटनों का दर्द, मासिक धर्म के समय पेट दर्द से मुक्ति
2. अर्धउष्टासन – कब्ज, पीठ दर्द, मेरूदण्ड लचीला
3. शंशकासन – तनाव क्रोध एवं कब्ज को दूर कर पीठ दर्द से मुक्ति
4. वक्रासन – वक्रासन मधुमेह नाशक, लचीलापन बढ़ता ।

पेट के बल किराये जाने वाले तीन आसन है।

01- भुंजगासन – तनाव, पीठ दर्द, श्वास दमा एवं मोटापा दूर करता है।
02- शलभासन – साइटिका, कमर के नीचे का दर्द दूर करता है।
03- मकरासन – तनाव, चिन्ता पीठ कमर का दर्द दूर करता है।

पीठ के बल किये जाने वाले आसन निम्न है।

01. स्तुबंधासन – अवसाद, चिन्ता, कब्ज आदि दूर होते है।
02. पवनमुक्तासन – कब्ज, अपानवायु ठीक करता है।
03. शवासन – तनाव से मुक्त, मन एवं शरीर को विश्राम

कपालभांतिक्रिया नाडी शोधन या अनुलोभ विलोम एवं भ्रमरी प्राणायाम , शाम्भवी मुद्रा में ध्यान, संकल्प एवं विश्व के कल्याण हेतु शांतिपाठ करना आदि।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस उपयोगिता निम्नानुसार है–

1. योग एवं स्वास्थ्य।
2. सामंजस्य एवं शान्ति के लिये योग करना।
3. सम्भावनाओं को सम्भव करने के लिये योग।
4. प्रकृति एवं मानव में सामजस्य करने के लिये योग
5. सम्पूर्ण विश्व का कल्याण एवं आरोग्य प्राप्ति हेतु योग करना।
6. बीमारियों की रोकथाम हेतु योग करना।
7. स्वास्थ्य के संरक्षण हेतु योग।
8. पूर्ण आरोग्यता प्राप्ति के लिये योग।
9. पूर्ण स्वतंत्रता हेतु योग।
10. पूर्ण स्वाध्याय एवं स्वास्थ्य हेतु योग
11. पूर्ण स्वतंत्रता एवं सांसरिक द्वन्दो में समाजस्थ्य करने हेतु योग।
12. स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के लिये योग।
13. योग द्वारा।

योग के आधार चार स्तम्भ चार प्रकार के है–

(i) शरीर (कर्मयोग)
(ii) मन (ज्ञानयोग)
(iii) भावना (भक्ति योग)
(iv) उर्जा क्रिया योग
(v) इन चारों स्त्रों पर योग का प्रभाव पडता है।

अभ्यास प्रश्न–

1. योग की आठ सिद्वियाँ कौनसी है?
2. आट ऐश्वर्यों का वर्ण कीजिये?
3. ध्यान के नियम बताइये?
4. सूर्यनमस्कार के पांच प्रकार के लाभ बताओ?
5. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का उद्देश्य बताइये?

11.7 सारांश

प्राचीन भारतीय परम्परागत योगचिकित्सा का आध्यात्म के साथ साथ स्वास्थ्य प्राप्ति में योगदान में हेतु इसका परिसीमायें ,अष्टसिद्वियॉ, हटयोग सिद्विकर भाव ध्यान विधि एवं नियम, रोगों, की चिकित्साऐं हेतु योगासन, योग चिकित्सा की वैज्ञानिकता, योग चिकित्सा में सूर्य नमस्कार एवं अन्तर्राष्टीय योग दिवस योगदिवस का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इस वग्रन के अन्तर्गत हम सार रूप में अध्ययन कर पाये कि समग्र आरोग्य की प्राप्ति में आत्मिक विकास एवं आध्यात्मिक लक्ष्य को प्प्राप्त करते हुये सृष्टि क अन्य जीवधारियों प्रकृति आदि के साथ समाजस्य करते हुये विश्व को शातिमय एवं निरोग बनानें के लिये प्रयास में योग की सराहनीयमहत्त्वपूर्ण भूमिका के द्वारा समभव है। जो कि व्यक्ति से प्रारम्भ होकर परिवार– समाज – राष्ट्र एवं विश्व में सभी के लिये कल्याणकारी है।

11.8 शब्दावली

- सांसरिक द्वन्द – दिनचर्या शुभ, अशुभ जड – चेतन, दिन – रात, लाभ हानि, यश–अपयश आदि
- अपरिसीमित – व्यापक एवं विशाल जिसकी कोई सीमा ना हो।
- अष्ट ऐश्वर्य शक्तियॉ – योग के सतत अभ्यास से प्राप्त आठ विशेष
- श्ल्यापचार – आधासज दुर्घटना की द्वारा चिकित्सा
- संयम योग – धारणा, ध्यान, समाणि का संयुक्तानाम
- वशीकरण दुसरें को वश में कर उसके जैसा वैसा ही करना
- इष्टश्चातदर्शनम् – इच्छानुसार गायब एवं प्रकट होना।
- चेष्टा – क्रिया करना
- प्रश्वास – रेचक श्वास को बाहर निकालना
- जनसड.ग् – सामान्य लोगों के साथ में रहना
- मणिपुर – नाभि में स्थित चक्र का नाम

- अनाहत – हदय स्थित चक्र का नाम
- ओज – सप्त धातुओं का सार भाग
- संगच्छध्वम् – साथ साथ चलें/ गमन करना
- कल्याण – मंगल (दूसरों) का भला करना

11.9 सन्दर्भ ग्रंथ

- प्रार्थना ऊँ संगच्छध्वम्– ऋग्वेद – 10.191.2
- पूर्ववत योग विज्ञान का परिचय –ओ. एन. तिवाडी
- चिकित्सा विज्ञान एवं पंचकर्म – डॉ. श्रीमती विमला शर्मा
- चरक संहिता ''पिद्योतनी'' – पं. काशीनाथ षास्त्री

- आयुर्वेद दीपिका – टीका चक्रपाणिकृत
- योग वशिष्ठ – वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री
- प्राणायाम – स्वामी कुवलयानन्द
- आयुर्वेद प्रबोध – डॉ. श्रीमती विमला शर्मा
- हठ योग प्रदीपिका – डॉ. पीताम्बर झा
- अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस गाइड लाइन – केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद् आयुश मंत्रालय (CCRYN)

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक प्ररिप्रेक्ष्य में योग की परिसीमायें बताइये?
2. योग सिद्वि के भाव एवं बाधक कारणों का वर्णन कीजिये?
3. योग चिकित्सा के द्वारा रोग निवारण का वर्णन कीजिये?
4. योग चिकित्सा में सूर्यनमस्कार पद्वति के वैज्ञानिक लाभ बताइये?
5. अर्न्तराष्ट्रीय योग दिवस का परिचय देते हुये इसका विशद वर्णन कीजिये?

इकाई – 12 उच्च रक्त चाप एवं निम्न रक्त चाप लक्षण कारण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 उच्च रक्त चाप
12.3.1 उच्च रक्त चाप की अवधारणा एवं परिभाषा
12.3.2 उच्च रक्त चाप के प्रकार
12.3.3 उच्च रक्त चाप के लक्षण एवं कारण
12.3.4 उच्च रक्त चाप के संभावित दुश्परिणाम
12.4 निम्न रक्त चाप
12.4.1 निम्न रक्त चाप के लक्षण
12.4.2 निम्न रक्त चाप के कारण
12.5 योग चिकित्सा
12.5.1 उच्च रक्त चाप का यौगिक चिकित्सा
12.5.2 निम्न रक्त चाप का यौगिक चिकित्सा
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना –

पूर्व की इकाइयों में आपने अध्ययन किया कि स्वस्थ जीवन हेतु स्वस्थवृत का प्रयोजन जैसे दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, संतुलित आहार एवं मिताहार की प्रमुख भूमिका होती है। दैनिक जीवन में स्वस्थवृत के पालन से व्यक्ति निरोग एवं स्वस्थ्य बना रहता है। जीवन चर्या अस्त–व्यस्त होने से व्यक्ति विभिन्न प्रकार की व्याधियों का शिकार हो जाता है। इसके साथ ही आपने योग चिकित्सा की अवधारणा सिद्धांत एवं उसकी परिसीमाएँ को भी भलीभांति पूर्वक अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हृदय एवं रक्त परिसंचरण संस्थान से संबंधित रोग–उच्च रक्त चाप एवं निम्न रक्त चाप के विभिन्न पहलुओं जैसे कारण, लक्षण, एवं योग चिकित्सा आदि के विषय में विस्तार से अध्ययन कर पायेंगे।

हमें विश्वास है कि उपरोक्त अध्ययन से आप इन रोगों के विषय में एवं इसके यौगिक चिकित्सा से संबंधित उपयोगी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाऐंगे कि–

- उच्च रक्त चाप की अवधारणा
- उच्च रक्त चाप के प्रमुख लक्षण एवं कारण
- उच्च रक्त चाप के संभावित दुष्परिणाम
- निम्न रक्त चाप की अवधारणा, कारण एवं लक्षण
- उच्च रक्त चाप के प्रबंधन हेतु उपयुक्त योगाभ्यास
- निम्न रक्त चाप के प्रबंधन हेतु उपयुक्त योगाभ्यास

12.3 उच्च रक्त चाप (Hypertension)

सर्वप्रथम उच्च रक्त चाप को समझने हेतु रक्त चाप या दाब (Blood pressure) पर संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक समझते हैं ताकि इस रोग की अवधारणा आपको अच्छी प्रकार से समझ में आ सके।

रक्त चाप (Blood pressure) : शरीर के सभी कियाओं को सुचारू रूप से चलने के लिए शरीर के प्रत्येक भाग में रक्त, धमनियों द्वारा निरन्तर पहॅुचकर उसे पोषण देता रहता है तथा चयापचय किया द्वारा उत्पन्न विजातिय द्रव को भी शरीर से निष्काषित करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। हृदय द्वारा रक्त पम्प होकर शरीर के विभिन्न भागों में धमनियों द्वारा निरंतर पहॅुचता रहता है। हृदय पम्प की तरह संकुचित एवं प्रसारित होकर रक्त को रक्त नलिकाओं में आगे बढाते रहता है। हृदय द्वारा संकुचित होकर रक्त को धमनियों में आगे बढ़ाने की प्रकिया ही 'रक्त दाब' या 'रक्त चाप' (Blood pressure) कहलाता है। यह एक स्वभाविक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हमारा शरीर नियमित सामान्य रूप से कार्य करते रहता है। विशेष शारीरिक एवं मानसिक परिस्थितियों में रक्त दाब प्राकृतिक रूप से बढ़ने लगता है तथा यह परिस्थितियॉ दूर होने पर रक्त दाब अपने आप सामान्य हो जाता है। निम्न परिस्थितियों में रक्त दाब बढ़ सकता है–

कोध, मानसिक आवेग, भय, घबराहट, अत्यधिक उमंग या जोश में, तीव्र शारीरिक व्यायाम, तनाव के समय आदि। अब आप रक्त दाब की अवधारणा समझ गये होंगे।

12.3.1 उच्च रक्त चाप की अवधारणा एवं परिभाषा

जब व्यक्ति यह कहता है कि हमें 'ब्लड प्रेशर' है तो इसका अर्थ यह है कि उसका रक्त दाब सामान्य से अधिक है एवं यह स्थायी रूप से बना रहता है। कभी–कभी तो उच्च रक्त चाप के दौरे भी आ सकते हैं जिसका परिणाम भयंकर भी हो सकता है। यह रोग नियंत्रित नहीं होने से शरीर के अन्य अंगों जैसे हृदय, गुर्दा, मस्तिष्क, दृष्टि क्षमता, आदि पर भी विपरीत प्रभाव डालता है। उच्च रक्त चाप धीरे–धीरे प्रकट होने वाला रोग है यह एकाएक उत्पन्न नहीं होता है। इसे 'साइलेंट किलर' भी कहा जाता है।

शरीर की धमनियॉ जब स्वस्थ अर्थात् प्रयाप्त लचीली एवं उसके छिद्र खुले होते हैं तब रक्त को स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ाने हेतु हृदय को अत्यधिक दबाव डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। रक्त स्वाभाविक गति से हृदय के द्वारा पम्प होकर धमनियों के

द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुँच कर उसे पोषण प्रदान करता रहता है। परन्तु जब धमनियों की लचीलापन कम होने पर एवं उसके आंतरिक छिद्रों के संकरापन के कारण हृदय को अध्यधिक दबाव के साथ रक्त को धमनियों में धकेलना पड़ता है, तो इसे ही उच्च रक्त चाप (Hypertension) कहते हैं। इससे हृदय की कार्य प्रणाली पर अस्वाभाविक रूप से प्रभाव पड़ता है तथा उसकी कार्य क्षमता धीरे–धीरे प्रभावित होने लगती है।

वर्तमान में यह रोग हमारे देश एवं विश्व में तीव्र गति से बढ़ रहा है। जिसका प्रमुख कारण अप्राकृतिक जीवन शैली, अनियमित आहार–विहार, तनाव आदि को माना जाता है।

ब्रिटिश हापरटेंशन सोसायटि (British Hypertension Society) ने रक्च चाप की निम्नलिखित श्रेणी बनाई है–

वर्ग	सिसटोलिक रक्त चाप (mm Hg) (Systolic Blood Pressure)	डॉयसटोलिक रक्त चाप (mm Hg) (Diastolic Blood Pressure)
रक्तचाप (Blood Pressure)		
समभाव्य (Optimal)	< 120	< 80
सामान्य (Normal)	< 130	< 85
उच्च सामान्य (High normal)	130-139	85-89
उच्च रक्त चाप (High blood pressure)		
श्रेणी–1 (Mild)	140-159	90-99
श्रेणी–2 (Moderate)	160-179	100-109
श्रेणी–3 (Severe)	≥ 180	≥110
पृथक सिसटोलिक उच्च रक्त चाप		
श्रेणी–1	140-159	<90
श्रेणी–2	≥ 160	<90

अभ्यास प्रश्न – A

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

(क) हृदय हमारे शरीर में..........................की तरह कार्य करता है।

(ख) क्रोध के समय रक्त चाप.......................... जाता है।

(ग) रक्त दाब सामान्य होने के लिए रक्त धमनियों में पर्याप्त ....होना आवश्यक है।

(घ) ब्रिटिश हाइपरटेंशन सोसायटी के अनुसार उच्च रक्त चाप का श्रेणी प्रथम अर्थात् मध्यम.............................है।

(ड.) रक्त दाब की मापक इकाई ....है।

12.3.2 उच्च रक्त चाप के प्रकार –

95 प्रतिशत से अधिक उच्च रक्त चाप के रोगी में इसके प्रमुख कारण का पता नहीं चल पाता है। इस प्रकार के उच्च रक्त चाप को अनिवार्य उच्च रक्त चाप (Essential hypertension) कहा जाता है। इस प्रकार के उच्च रक्त चाप के कारणों को चिकित्सा विज्ञान अभी तक ठीक प्रकार नहीं समझ पाया है। विभिन्न प्रकार के चिकित्सा शोध में इसका सम्भाव्य कारण गुर्दा, परिधिय रक्त नलिका अवरोध एवं अनुकम्पीय तंत्रिका तंत्र आदि की असामान्यता एवं अन्य कारण जैसे कुछ खास भौगोलिक क्षेत्र में पाये जाने वाले मानव जाति, अनुवांशिक कारक, पर्यावरण आदि माना गया है।

द्वितीयक उच्च रक्त चाप (Secondary hypertension) लगभग 5 प्रतिशत रोगी में विशिष्ट रोग के रूप में माना गया है। यहॉ रक्त चाप की असमानता का कारण सोडियम लवण की असामान्य जमावट और/या रक्त नलिकाओं का संकुचन आदि माना गया है।

12.3.3 उच्च रक्त चाप के लक्षण एवं कारण –

उच्च रक्त चाप के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

- सर के पिछले हिस्से में दर्द, विशेषकर सुबह के समय
- हृदय का तीव्र धड़कना, जिसे आसानी से महसुस कर सकते हैं
- भय या चिन्ताग्रस्त होना
- सर चकराना
- सर में खालीपन या शून्यता महसुस होना।
- शारीरिक एवं मानसिक थकान, उर्जा की कमी
- उदासिनता, विषाद, चिन्ता
- चिडचिड़ापन, भावनात्मक उद्वेग
- असहज महसुस करना एवं उसे व्यक्त न कर पाना

उच्च रक्त चाप की तीव्र अवस्था में निम्न लक्षण दिखाई देते हैं–

- सरदर्द,
- सांस फूलना
- धड़कन बढ़ना
- दृष्टि में गड़बड़ी
- भूख की कमी
- अनिद्रा
- छाती में खिंचावट महसुस होना
- चक्कर आना
- घबराहट

- ➢ याद्दास्त एवं एकाग्रता की कमी
- ➢ भावावेग में उत्तेजित होना,
- ➢ बात–बात में चिड़चिड़ाहट एवं क्रोध
- ➢ कभी–कभी नाक से खून आ जाना

यहाँ आप उच्च रक्त चाप के लक्षणों से भली प्रकार से अवगत हुए हैं। अब इसके कारणों की चर्चा करेंगे।

उच्च रक्त चाप के प्रमुख कारण–वास्तव में उच्च रक्त चाप अपने आप में एक रोग नहीं है बल्कि इसके पीछे का कारण यह संकेत करता है कि कहीं न कहीं हमारे आंतरिक वातावरण के कुप्रबंधन, शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर में असंतुलन का आभाव है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसके निम्नलिखित कारण माना गया है–

वंशानुगत, उम्र, धूम्रपान, अत्यधिक वसायुक्त भोजन, निष्क्रिय जीवन शैली, व्यक्तित्व आदि। अब आप इन कारणों की व्याख्या से इसे समझ सकेंगे की किस प्रकार यह कारण उच्च रक्त चाप के लिए उत्तरदायी है।

1. वंशानुगत (Heredity) – यदि माता–पिता दोनों उच्च रक्त चाप से पीड़ित हैं तो उनके संतान में अन्य व्यक्ति के तुलना में उच्च रक्त चाप की संभावना 40 से 50 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। यदि माता–पिता में से किसी एक उच्च रक्त चाप से पीड़ित हों तो 30 प्रतिशत तक उसके संतान में अन्य व्यक्ति की तुलना में उच्च रक्त चाप होने की संभावना बढ़ जाएगी।

   इस प्रकार आपने देखा की वंशानुगत कारण भी उच्च रक्त चाप को प्रभावित करता है। परन्तु यदि वातावरण, व्यवहार एवं जीवन शैली में समुचित परिवर्तन किया जाय तो इन संभावनाओं को कम से कम किया जा सकता है।
2. उम्र (Age) – 40 से 60 उम्र समूह में उच्च रक्त चाप होने की संभावना अधिक होती है। आज युवावर्ग में भी उच्च रक्त चाप बढ़ रही है। अधिकांश व्यक्ति में उम्र बढ़ने के साथ रक्त चाप भी बढ़ता है। अधिक उम्र में कुछ अन्य कारण भी इस रोग को उत्पन्न कर सकता है। बुढ़ापे में शारीरिक क्षमता में कमी एवं जीवनी शक्ति का ह्रास, शारीरिक क्रिया में व्यतिरेक भी इस रोग को बढ़ावा देता है। यह रोग आज अधिकांशतः वयस्कों में देखा जाता है। बुढ़ापे में रक्त धमनियों की लचीलापन में कमी के कारण रक्त चाप बढ़ने की संभावना बढ़ जाती है।
3. धूम्रपान (Smoking) – अब यह अविवादित हो गया है कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। फेफड़े का कैंसर एवं इससे संबंधित अन्य रोग की संभावना भी धूम्रपान से बढ़ जाता है। साथ ही धूम्रपान हृदय की धमनियों को सक्त बना देती है तथा परिधिय रक्त नलिकाओं के क्षय होने की दर को भी बढ़ा देती है परिणामस्वरूप परिधिय अवरोध बढ़ जाता है। इस प्रकार यह देखा गया है कि धूम्रपान करने वाले व्यक्ति में उच्च रक्त चाप की संभावना धूम्रपान नहीं करने वाले व्यक्ति से कई गुणा अधिक होता है।

4. कोलेस्टेरॉल एवं उच्च वसायुक्त भोजन (Cholesterol and high fat diet) – कोलेस्टेरॉल एवं रक्त वसा की अधिकता अधिकांशतः रक्त नलिका संबंधी रोगों की संभावना को बढ़ा देता है। रक्त नलिका के रोगग्रस्त होने से उच्च रक्त चाप की संभावना बढ़ जाती है इसलिए हम लोगों को सामान्य रक्त चाप की स्थिति में वसायुक्त भोजन कम कर देना चाहिए ताकि अधिकतम स्वास्थ्य बना रहे। अत्यधिक वसा रक्त नलिकाओं के दिवारों में जमकर उसे सक्त बना देती है जिससे रक्त संचार में अवरोध बढ़ने लगता है।
5. निष्क्रिय जीवनशैली (Sedentary lifestyle) – बढ़ते हुए शहरीकरण एवं यांत्रिकता के कारण शारीरिक श्रम एवं व्यायाम में कमी आयी है। आधुनिक तकनीक के कारण आज हम लोग मोटर वाहन, टेलीविजन, सिनेमा, कम्प्युटर के साथ अधिक समय बिताते हैं। घर एवं कार्यस्थल में भी शारीरिक गतिविधि कम होती जा रही है। भोग विलास की वस्तुएँ आज लोगों की आवश्यकता बनती जा रही है। उपरोक्त कारणों से हम दिनों–दिन शारीरिक श्रम से दूर होते जा रहे हैं।

इस प्रकार शारीरिक निष्क्रियता वाले व्यक्ति जैसे अधिकारी, पदाधिकारी, व्यापार से जुड़े कुछ अधिकारियों में उच्च रक्त चाप होने की संभावना अधिक रहती है। शोध अध्ययन बताते हैं कि शारीरिक व्यायाम की कमी से शरीर में स्थूलता, कमजोरी एवं उच्च रक्त चाप की संभावना बढ़ जाती है खास कर जब यह मानसिक तनाव से जुड़ा हो।

6. व्यक्तित्व, तनाव एवं मनोभाव (Personality, Stress & Emotions) – शोध अध्ययन से यह विदित होता है कि स्थिर मानसिक एवं संवेगात्मक तनाव शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता को कमजोर बना देता है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सक का यह मानना है कि व्यक्तित्व का प्रकार अनिवार्य उच्च रक्त चाप से संबंधित है। जो व्यक्ति दूसरे से सौहार्दपूर्ण संबंध एवं स्वअनुशासित होते हैं उनमें उच्च रक्त चाप होने की संभावना कम होती है जबकि जो व्यक्ति अधिक उत्तेजित, प्रतिस्पर्धी, महत्वाकांक्षी एवं तनावपूर्ण जीवनशैली के होते हैं उनमें उच्च रक्त चाप की संभावना बढ़ जाती है।

हम अपने व्यक्तित्व की प्रकृति के अनुसार ही आंतरिक मनोभाव, मानसिक तनाव एवं वातावरणजन्य परिस्थितियों के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। इस प्रकार आंतरिक या बाह्य उद्दीपक इस बात पर निर्भर करता है कि हम उसके साथ किस प्रकार की अनुक्रिया करते हैं। कोई भी परिस्थिति या कारक कितना तनाव उत्पन्न कर सकता है यह हमारे मनोवृत्ति के उपर निर्भर करता है। यदि हम आंतरिक रूप से सबल एवं मानसिक रूप से परिपक्व हैं तो किसी भी परिस्थिति को, जो कि तनाव को बढ़ा सकता है, के साथ भली प्रकार सामंजस्य स्थापित कर उसे दूर कर सकते हैं। जबकि व्यक्तित्व का नकारात्मक पहलू के कारण हम तनावग्रस्त हो जाते हैं। इस प्रकार यह तनाव हमारे उर्जा का क्षय कर हमें कमजोर एवं रोगग्रस्त बना देता है।

इसके अतिरिक्त अन्य कारक भी द्वितीयक उच्च रक्त चाप (Secondary hypertension) के कारण माने जाते हैं–

- अल्कोहल का सेवन
- मोटापा

- गर्भकाल में भी रक्त चाप बढ़ने की संभावना रहती है
- कुछ गुर्दा रोग जैसे रेनल वेसक्युलर रोग, पेरेनकाईमल रेनल रोग, ग्लोमेरूलोनेफ्राइटिस, पॉलिसिसटिक गुर्दा रोग आदि में
- अन्तःस्त्रावी ग्रंथि से संबंधित रोग जैसे कोण्स सिण्ड्रोम, हाइपरथॉराडिज्म, एक्रोमिगेली, कुसींगस सिण्ड्रोम, थाइरोटॉक्सिकोसिस आदि में भी उच्च रक्त चाप होने की संभावना रहती है
- कुछ दवा जैसे गर्भनिरोधक गोलियॉ जिसमें एस्ट्रोजन, एनाबोलिक स्टेरॉइड, कॉरटिकोस्टेरॉइड, नॉन स्टेरॉइडल ऐन्टी इन्फलामेटरी ड्रग्स आदि के विपरीत प्रभाव से भी रक्त चाप बढ़ने की संभावना रहती है
- महाधमनी के संकुचन के कारण
- अधिक मानसिक श्रम एवं तनावपूर्ण दिनचर्या
- नाकारात्मक एवं प्रतिस्पर्धात्मक जीवनशैली
- मानसिक तनाव, चिन्ता, क्रोध, असहिष्णुता, उॅची महत्वाकॉक्षाएॅ
- अत्यधिक मांसाहार
- नमक का अधिक प्रयोग

यहॉ हमने उच्च रक्त चाप खास कर द्वितीय उच्च रक्त चाप के प्रमुख कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाला। अनिवार्य उच्च रक्त चाप का कोई प्रमुख कारण ज्ञात नहीं माना जाता है।

अभ्यास प्रश्न – B

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

(क) उच्च रक्त चाप..........................उम्र वर्गो में अधिक देखा जाता है।

(ख) धुम्रपान हमारे धमनियों को ....बना देती है।

(ग) निष्क्रिय जीवन शैली से ....की संभावना बढ़ जाती है।

(घ) उच्च रक्त चाप में याददास्त एवं एकाग्रता में...........................आने लगती है।

(ग) अत्यधिक वसायुक्त भोजन से ....होने की संभावना रहती है।

12.3.4 उच्च रक्त चाप के संभावित दुष्परिणाम–

उच्च रक्त चाप का खतरा केवल इतना ही नहीं है, कि इसमें रक्त चाप अत्यधिक बढ़ जाता है बल्कि कई अन्य दुष्परिणाम भी सामने आते हैं, जहॉ रक्त नलिकाएॅ शरीर के सभी हिस्से में रक्त संचारित करती है, जब रक्त धमनियॉ संकुचित होती है तो इन अंगों में रक्त प्रवाह पर्याप्त नहीं होने के कारण वहॉ आक्सीजन की आपूर्ति एवं चयापचयी अनुपयोगी या विशाक्त पदार्थ का निष्कासन भी कम हो जाता है। साथ ही साथ उतक का क्षय दर भी बढ़ जाता है। इससे शारीरिक अंगों की सुचारू कार्यप्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क, हृदय, गुर्दा, दृष्टि आदि पर उच्च रक्त चाप का घातक प्रभाव पड़ता है। कुछ घातक प्रभाव इस प्रकार हैं–

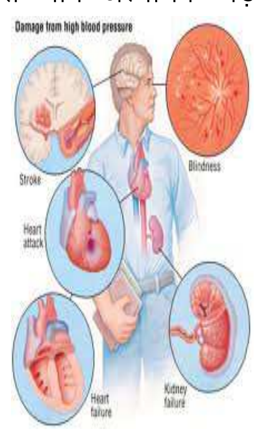

1. हृदय (Heart) : उच्च रक्त चाप के कारण हृदय अत्यधिक तनावपूर्ण एवं उसकी पेशियॉ थकान की स्थिति में पहॅुच जाती है साथ ही इसका आकार भी बढ़ जाता है। आंतरिक

घटक जैसे वाल्व आदि क्षतिग्रस्त होने लगते हैं जिससे हृदय की कार्य प्रणाली दुर्बल होने लगता है। हृदयाघात की अत्यधिक संभावना रहती है।

2. मस्तिष्क (Brain) : मस्तिष्क में रक्त प्रवाह कम होने से इसकी उच्चतम कार्यक्षमता प्रभावित होती है। इसका शुरूआती परिणाम सरदर्द, चक्कर आना आदि तथा बाद में संवेगात्मक असंतुलन, याद्दास्त एवं एकाग्रता में गिरावट के साथ–साथ मस्तिष्क की संरचानात्मक बदलाव, रक्त धमनिकाओं का फटना (Stroke) जिसके परिणामस्वरूप पक्षाघात एवं मृत्यु भी हो सकती है।

3. दृष्टि (Eyes) : उच्च रक्त चाप से दृष्टि क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जैसे धुधला दिखाई देना, आगे इससे दृष्टिहीनता भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त दृष्टि से संबंधित अन्य दोष भी होने की संभावना रहती है।

4. गुर्दा (Kidneys) : उच्च रक्त चाप के परिणामस्वरूप गुर्दा की कार्य प्रणाली पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है जिससे इसकी कार्य क्षमता घटती है और चयापचयिक विषाक्त पदार्थ रक्त से ठीक प्रकार छन नहीं पाता है एवं रक्त की विषाक्तता बढ़ने लगती है जिससे व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न – C

खाली जगहों को भरें–

(क) उच्च रक्त चाप से......................की पेशियॉ तनावपूर्ण एवं थकान की स्थिति में पहुॅच जाता है।

(ख) हृदयाघात का एक कारण ....भी हो सकता है।

(ग) पक्षाघात एवं स्ट्रोक ....का दुष्परिणाम हो सकता है।

(घ) उच्च रक्त चाप से मस्तिष्क की कार्यक्षमता, याददास्त एवं एकाग्रता............. ....होने लगती है।

(ङ.) गुर्दा ठीक से कार्य नहीं करने से ....पदार्थ रक्त में बढ़ने लगता है।

12.4 निम्न रक्त चाप (Hypotension or low blood pressure)

निम्न रक्त चाप शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसे स्थिति की ओर संकेत करता है जहॉ शरीर का रक्त दाब सामान्य स्तर से कम हो जाता है। यह स्थिति कुछ उम्र की सामान्य घटना है। उच्च रक्त चाप की तरह ही निम्न रक्त चाप को सही–सही परिभाषित करना कठिन होगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति अलग–अलग होती है तथा विभिन्न परिस्थिति में वे भिन्न–भिन्न तरह से प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। प्रधानतः दो मुख्य परिस्थितियों में निम्न रक्त चाप की स्थिति उत्पन्न होती है–

1. प्रथम अवस्था वह है जहॉ नियमित शारीरिक जॉच के दौरान यह प्रकट होता है। इसके अलावा स्वस्थ युवा में यदि रक्त दाब 100/60 mmHg या इससे कम पाया जाय। इस अवस्था में चिकित्सक रक्त दाब की माप रोगी को खड़ा

कर या लिटाकर करते हैं एवं दोनों शारीरिक स्थिति में मापी गई रक्त दाब की तुलना की जाती है। दोनों की शारीरिक स्थितियों में यदि किसी प्रकार का अंतर पाया जाता है तो यह अंतर स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomic nervous system) की अस्थिरता की ओर संकेत करता है एवं शरीर के सामान्य एवं तनाव पूर्ण स्थिति में इसकी सामंजस्य स्थापित करने में अक्षम होने की ओर संकेत करता है। वह व्यक्ति जिसमें शारीरिक रूप से खड़े एवं लेटने की स्थिति में रक्त दाब बराबर या सामान हो, जिसमें रक्त दाब सामान्य सीमा के निम्न स्तर पर हों तथा इससे किसी प्रकार की कोई कठिनाई न हों तो वह व्यक्ति भाग्यशाली होगा क्योंकि यह निम्न रक्त चाप उसके शरीर के आंतरिक अंगों पर कम से कम तनाव या दाब डालेगा जिससे वह लम्बे समय तक स्वस्थ बना रहेगा।

2. द्वितीय अवस्था वह है जहॉ व्यक्ति तब निम्न रक्त चाप के लक्षण प्रदर्शित करते हैं जब वह प्रायः लेटने या बैठने के बाद एकाएक उठकर खड़ा होता है। ऐसे स्थिति में जो लक्षण दिखाई देते हैं वह है— कमजोरी महसुस होना, सर खाली—खाली लगना, जी मितलाना, उदर के उपरी भाग में क्षीणता महसुस होना, मूर्छा, बेहोशी आना आदि। ये लक्षण प्रायः कुछ सैकेण्ड या मिनट तक रहता है, कभी—कभी यह देर तक भी रहता है। उपरोक्त तथ्यों से आप निम्न रक्त चाप के संबंध में भली प्रकार अवगत हो गये होंगे।

12.4.1 निम्न रक्त चाप के लक्षण

निम्न रक्त चाप के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं—

- प्रायः लेटने या बैठने के तुरत बाद खड़े होने पर कमजोरी या थकान महसुस होना।
- सर में खालीपन लगना
- जी मितलाना
- उदर के उपरी हिस्सों में क्षीणता महसुस होना
- मूर्छा, बेहाशी आदि।

12.4.2 निम्न रक्त चाप के कारण

यौगिक दृष्टि से निम्न रक्त चाप का प्रमुख कारण स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का असंतुलन माना जाता है जो कि मानसिक तनाव या उद्वेग एवं अनियमित जीवनचर्या का परिणाम है। इस प्रकार निम्न प्राण शक्ति शरीर के कार्य प्रणाली पर विपरीत प्रभाव डालता है।

शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से यदि देखें तो मूर्छा या बेहोशी का दो मूख्य कारण है। ये दोनों कारण त्वचा एवं उदर में स्थिर रक्त वाहिनियों के रिफलेक्स परिधिय वेसोडाइलेसन (रक्त वाहिनयों का आवश्यकता से अधिक फैल जाना) है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर के निचले भाग का रक्त पर्याप्त मात्रा में हृदय में नहीं पहुॅच पाने से मस्तिष्क में रक्त की आपूर्ति कम हो जाता है। इसके अलावा अन्य कारण भी माने गये हैं—

- वैसोवेगल दौरा पड़ना : जो मुख्यतः संवेगात्मक असंतुलन जैसे भय, आश्चर्य प्रकट करना आदि के कारण होता है। दर्द, भोजन की कमी, गर्म वातावरण, एक ही शारीरिक स्थिति में लम्बे समय तक खड़ा रहना भी इसके कारण हो सकते हैं। इस

दौरे के समय व्यक्ति निस्तेज हो जाता है, रक्त दाब एवं हृदय गति मंद हो जाती है। ऐसे स्थिति में उस व्यक्ति को किसी भी आरामदायक स्थिति में लिटा देना चाहिए ताकि रक्त प्रवाह मस्तिष्क की ओर सुचारू हो सके। ऐसी स्थिति में कुछ समय छोड़ने के पश्चात् दौरा अपने आप समाप्त हो जाता है।

- पोस्चरल निम्न रक्त चाप : इस प्रकार का निम्न रक्त चाप वृद्ध लोगों में, जो कि रोगों से पीड़ित हैं या स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं, में देखा जाता है। कुछ दवा के विपरीत प्रभाव का असर भी इस रूप में हो सकता है। इस प्रकार के निम्न रक्तचाप प्रायः एकाएक खड़े होने या लम्बे समय तक एक ही स्थिति में खड़े रहने, अत्यधिक गर्म वातावरण के कारण भी हो सकता है। इस कारण सैनिक परेड के दौरान लम्बे समय तक एक ही स्थिति में खड़े रहने के कारण प्रायः बेहोश हो जाते हैं।

  उच्च रक्त चाप के रोगी में भी कभी–कभी आवश्यकता से अधिक मात्रा में एण्टीहाइपरटेंसीव दवा लेने के कारण भी निम्न रक्त चाप के यह लक्षण प्रकट हो सकता है। लम्बी बीमारी के कारण कमजोर होने की स्थिति में भी निम्न रक्त चाप के लक्षण देखे जाते हैं। कुछ व्यक्ति में रक्त दाब 210/110 mmHg या 160/110 mmHg तक बढे होने के बावजूद भी निम्न रक्त चाप के लक्षण देखे गये हैं। जबकि सामान्य रक्त दाब 120/80 mmHg माना गया है। इसका कारण यह है कि उस व्यक्ति का शरीर बढ़े हुए रक्त दाब के प्रति समायोजित हो चुका है। यह स्थिति प्रायः रक्त धमनियों के सक्त होने की स्थिति में होता है।

  निम्न रक्त चाप के कुछ प्रमुख कारण और भी हैं जैसे–कुछ हृदय रोग, रक्ताल्पता आदि। ऐसे रोगी जो इस प्रकार के लक्षण से पीड़ित हों उसे कुशल चिकित्सक के मार्गदर्शन में जॉच करवाना चाहिए। अतः उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह आशा करते हैं कि आप निम्न रक्त चाप के कारण को भी भली प्रकार समझ पाएंगे।

अभ्यास प्रश्न -D

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(क) निम्न रक्त चाप में रक्त दाब सामान्य से.....................हो जाता है।

(ख) निम्न रक्त चाप का संबंध मुख्यतः................तंत्रिका तंत्र से है।

(ग) मूर्छा या बेहोशी.................का लक्षण है।

(ध) रक्त वाहिनियों के अत्यधिक फैल जाने से ....की संभावना रहती है।

(ड.) लम्बे समय तक एक ही शारीरिक स्थिति में खड़े रहने के कारण ....लक्षण हो सकता है।

12.5 योग चिकित्सा

योग चिकित्सा का उद्देश्य रोग को जड़ से समाप्त करना है। योग चिकित्सा में आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि के अभ्यास के साथ–साथ जीवन शैली में आमूलचूक परिवर्तन करना भी आवश्यक समझा जाता है। इन अभ्यासों के माध्यम से रोगी अपने जीवन के नये–नये आयामों से जुड़ कर वातावरण के प्रति नई दृष्टिकोण पैदा कर अपने जीवन का पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्संरचना करने में सक्षम होता है इस प्रकार व्यक्ति मानसिक विकारों से

छुटकारा पाकर निरोग जीवन प्राप्त करता है। योग मनोकायिक रोग, जिसमें की मानसिक विकृति शारीरिक रोग के रूप में उभरता है, को दूर करने में सक्षम है।

योग शारीरिक रोग निरोधक क्षमता बढ़ाने में मदद करता है साथ ही भावनात्मक संतुलन एवं प्राण प्रवाह को भी सुचारू कर मन में जमें रोग के जड़मूल कारण को दूर करता है। आसन एवं प्राणायाम स्वरोगोपचार (Self healing) की क्रिया को बढ़ाता है। वर्तमान समय में बढ़ते औद्योगीकरण एवं अत्यंत अस्त–व्यस्त जीवनशैली के कारण मनुष्य चिन्ता, द्वन्द, अकेलापन, संदेह आदि मनोविकारों से महामारी की तरह से ग्रसित होता जा रहा है। मानसिक तनाव दैनिक जीवन में अंतरंग तक पैठ कर चुका है। इन सब मानसिक विकारों का प्रमुख कारण आध्यात्मिक वास्तविकता से पूर्णतः अनजान एवं अनभिग्य होना है। आध्यात्मिक दृष्टि हमें जीवन के गहरे अर्थ से अवगत कराने में मदद करता है।

12.5.1 उच्च रक्त चाप का यौगिक चिकित्सा

उच्च रक्त चाप के प्रबंधन में योगाभ्यास निम्न प्रकार से सहायक सिद्ध हो सकता है–

1. योग विश्रांतिकारक अभ्यास : इसके अंतर्गत शवासन, योगनिद्रा आदि का अभ्यास आता है। यह मानसिक तनाव एवं अवरोध को दूर करने में सहायक इस अभ्यास में रोगी के अतिसंवदेनशीलता एवं पूर्वाग्रह को कम कर स्वसंकेतन द्वारा मानसिक तनाव एवं अन्य अवरोध को दूर करने में सहायक होता है। साथ ही अपने जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है। जीवन के प्रति नाकारात्मक धारणा को दूर कर वास्तविक, व्यवहारिक एवं सकारात्मक दृष्टि विकसित करने में अपने प्रति सजगता की भूमिका होती है। इस प्रकार योगविश्रांति कारक अभ्यास का उद्देश्य जीवन के प्रति सजगता एवं सकारात्मकता विकसित करना है।

   शोध निष्कर्ष बताता है कि शवासन के अभ्यास से हृदय गति, श्वसन दर न्यूनतम स्तर पर आ जाता है जबकि परिधिय रक्त संचार अपने उच्च स्तर पर होता है। इस प्रकार निष्कर्षतः शवासन एवं अन्य यौगिक विश्रांतिकारक अभ्यास से शारीरिक विश्रांति, रक्त दाब का कम होना एवं परिधिय रक्त दाब अवरोध कम होता है जो उच्च रक्त चाप को दूर करने में सहायक माना जाता है।
2. योगासन : योगासन का अर्थ है ''शरीर की स्थिर एवं सुखपूर्वक स्थिति''। यह स्थिर एवं गत्यात्मक दोनों प्रकार के होते हैं। आसन की संरचना इस प्रकार है कि यह शरीर एवं मन को शक्तिशाली एवं शांत बना सके। यहॉ दूसरे व्यायाम की तरह अत्यंत तनाव एवं मांसपेशी को विकसित करने की कोई अवधारणा नहीं है। आसन का उद्देश्य शारीरिक विश्रांति, प्राण प्रवाह का संतुलन एवं ध्यानाभ्यास हेतु शारीरिक एवं मानसिक तैयारी है। आसनाभ्यास के समय मानसिक एकाग्रता एवं श्वसन क्रिया के प्रति सजगता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह क्रिया शारीरिक एवं मानसिक संतुलन बनाये रखने में सहायक है। जबकि उच्च क्षमता वाले शारीरिक व्यायाम शरीर में अत्यधिक तनाव पैदा कर उर्जा का क्षय करता है तथा थकान भी पैदा करता है। आसन शारीरिक क्षमता एवं शक्ति में अभिवृद्धि करता है जैसे की आसनाभ्यास से लेक्टिक अम्ल की बढ़ी हुई मात्रा कम होता है। साथ ही शरीर को विश्रांति प्रदान कर आक्सीजन स्तर को बढ़ावा देता है। जिससे लेक्टिक अम्ल का बनना कम हो जाता है।

जब गत्यात्मक आसन की स्थिति को कुछ समय के लिए स्थिर किया जाता है तो शरीर उस स्थिति में अपने आपको पुनः व्यवस्थित होता है। इसके साथ ही शारीरिक अंगों की मालिस एवं विश्रांति होती है। आसनाभ्यास से मानसिक एवं संवेगात्मक तनाव भी दूर होता है।

3. प्राणायाम का प्रभाव : प्राण को जीवनी शक्ति भी माना जाता है जो कि समस्त ब्रह्माण्ड में संव्याप्त है। प्राण वायु को प्राण का मुख्य स्त्रोत माना जाता है। प्राण शरीर एवं मन के बीच की कड़ी भी है। अतः प्राण का नियमन एवं नियंत्रण उच्च रक्त चाप के नियंत्रण में सहायक हो सकता है।

श्वसन क्रिया एवं हृदय गति आपस में संबंधित है। जब श्वसन दर तेज होता है तो हृदय गति भी तीव्र हो जाती है। जबकि श्वसन दर धीमी होने से हृदय गति भी धीमी हो जाती है। अतः श्वास पर नियंत्रण हृदय पर भी प्रभाव डालता है जो कि उच्च रक्त चाप को दूर करने में सहायक हो सकता है।

स्वामी कुवल्यानंद ने सर्वप्रथम कैवल्यधाम में अपने शोध निष्कर्ष में पाया कि प्राणायाम चयापचय दर (Metabolic rate) को शिथिल करता है। क्योंकि इस अभ्यास से शारीरिक उत्तक स्तर पर ऑक्सीजन की उपलब्धता एवं उपयोगिता बढ़ जाता है। इस प्रकार प्रत्येक श्वास के साथ ऑक्सीजन की खपत एवं कार्बनडाइऑक्साइड का निष्कासन बढ़ जाता है जो यह प्रदर्षित करता है कि सभी शारीरिक जीव कोष बेहतर कार्य कर रहा है तथा शारीरिक शोधन क्रिया भी भली प्रकार हो रहा है। कुलमिलाकर, सामान्य ऑक्सीजन मांग में कमी एवं इसकी उपयोगिता स्तर में वृद्धि निम्न चयापचय अवस्था (Hypometabolic state) की ओर संकेत करता है जो कि रक्त दाब को कम करने का कारण है।

सामान्यतः श्वसन तथा हृदय परिसंचरण तंत्र का कार्य स्वायत्त है। तंत्रिका तंत्र रक्त दाब एवं रक्त की रासायनिक संगठन को बहुत ही नजदीक से निरीक्षण करता है। संवेदनशील बैरोरिसेप्टर एवं किमोरिसेप्टर किसी प्रकार के बदलाव का संकेत यदि मस्तिष्क को भेजता है तो मस्तिष्क परानुकम्पी एवं अनुकम्पी तंत्रिकातंत्र (Parasympathetic and Sympathetic nervous system) के माध्यम से अपना निर्देश भेजकर हृदय एवं फेफड़े के कार्य को या तो धीमा करता है या उत्तेजित कर देता है जिससे कि परिधिय अवरोध व्यवस्थित रह सके। दर्द, अप्रिय उत्प्रेरक, परिधिय रक्त दाब कम होने पर, रक्त ऑक्सीजन की मात्रा घटने पर तथा तनाव की स्थिति में श्वसन दर, हृदय गति एवं रक्त दाब प्रायः बढ़ जाता है। जबकि गर्म वातावरण, प्रिय उत्प्रेरक, मालिस, उष्ण जल स्नान, अधिकांश आसनाभ्यास के समय, धमनियों में ऑक्सीजन की बढ़ी मात्रा के समय (प्राणायाम) एवं विश्रांति के समय हृदय गति, रक्त दाब एवं श्वसन दर में कमी आती है। अतः आपने देखा की प्राणायाम के अभ्यास से रक्त ऑक्सीजन स्तर में वृद्धि रक्त दाब में तीव्र गति से कमी होता है। कुछ प्राणायाम जैसे उज्जायी एवं नाड़ीशोधन बढ़े हुए रक्त दाब को तेजी से कम करता है क्योंकि इस अभ्यास से अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र की क्रियाशीलता सीधे कम होता है। इस प्रकार प्राणायाम का मुख्य शरीरक्रियात्मक प्रभाव निम्न है–

- अनुकम्पी उत्तेजना को कम करता है तथा मन को शिथिल एवं शांत बनाये रखता है।
- रक्त ऑक्सीजन स्तर में वृद्धि कर उत्तक स्तर पर इसकी उपयोगिता को बढ़ावा देता है जिससे गहरी विश्रांति एवं उर्जा प्राप्त होता है।

- रक्त कार्बनडाइऑक्साइड में धीमी गति से वृद्धि तंत्रिका तंत्र को बढ़े हुए कार्बनडाइऑक्साइड के प्रति समायोजन एवं शक्ति''ााली बनाता है। इस प्रकार प्राणायाम मात्र श्वसन व्यायाम नहीं है बल्कि यह को''ाकीय स्तर पर आधारभूत चयापचयी क्रिया एवं तंत्रिका तंत्र को भी प्रभावित करता है। उच्च रक्त चाप के उपचार में निम्नलिखित प्राणायाम उपयोगी हो सकता है–

(क) उज्जायी प्राणायाम : यह शरीर में उर्जा प्रवाह को स्थिर एवं नियमित करता है।

(ख) नाड़ी शोधन प्राणायाम : यह उर्जा प्रवाह को संतुलित बनाता है।

उज्जायी प्राणायाम गले में उपस्थित रक्त दाब सूचक केरोटिड साइनस को सीधे प्रभावित करता है। जब इस सूचक पर दाब डाला जाता है तो यह केरोटिड साइनस हृदय गति को कम कर रक्त दाब को प्रकारान्तर से कम कर देता है। उज्जायी प्राणायाम के अभ्यास में इस रक्त दाब सूचक पर धीरे–धीरे दबाव डाला जाता है परिणामस्वरूप रक्त दाब स्तर कम हो जाता है जो शिथिलीकरण से संबंधित है। गले के इस विशेष क्षेत्र में कई परानुकम्पी स्नायु गुच्छ होता है जिसकी सक्रियता से स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में पुनःसंतुलन आता है तथा रक्त दाब में कमी आती है। रक्त दाब में स्थिरता, मस्तिष्क के मेडुला केन्द्र में उपस्थित स्नायु केन्द्र को विश्रांति पहुॅचा कर ही प्राप्त किया जा सकता है। यह केन्द्र रक्त वाहिनी के आंतरिक व्यास के आकार को नियंत्रित करती है। रक्त वाहिनियों के संकुचन कम होने से रक्त प्रवाह सूचारू रूप होते रहता है।

इस प्रकार कई शोध निष्कर्ष यह संकेत करता है कि योगासन एवं प्राणायाम उच्च रक्त चाप के उपचार में कारगर है। साथ ही एण्टीहाइपरटेनसिव ड्रग्स अर्थात् उच्च रक्त चाप को नियंत्रित करने वाली दवा की मात्रा को कम करता है। योग उपचार रोग लक्षण को तेजी से कम करता है परन्तु रोग के समूल ना''ा में अधिक समय की मांग करता है।

ध्यान का प्रभाव : ध्यान शारीरिक एवं मानसिक विश्रांति को बढ़ावा देता है। यहॉ ध्यानाभ्यासियों की सजगता बाहरी या बहिर्मुखी से अंतर्मुखी हो जाती है जिससे वह बाह्य वातावरण में मौजूद उत्प्रेरक, तनाव आदि से कम से कम प्रभावित होता है। मन में चल रहे विचारों के अम्बार भी धीरे–धीरे कम होकर मानसिक शोधन, पुनर्गठन होता है जिससे व्यक्ति बाहरी उत्प्रेरक के प्रति संतुलित अनुक्रिया करता है। शोध निष्कर्ष यह बताता है कि ध्यान की गहराई में मस्तिष्क से अल्फा तथा थिटा तरंगें तक विर्सजित होने लगती है। यह तरंग गहरी विश्रांति की ओर संकेत करता है। मस्तिष्क की क्रियाकलाप कम से कम हो जाती है तथा पूर्ण विश्रांति की अवस्था में पहुॅच जाता है। हृदय गति एवं श्वसन दर भी कम होकर शरीर को गहरी विश्रांति की ओर ले जाता है। इस अवस्था में शारीरिक रक्त वाहिनियों में फैलाव के कारण शारीरिक अंगों को पर्याप्त ऑक्सीजन युक्त रक्त मिलता है जिससे शारीरिक अंगों की मरम्मत एवं पुनर्जीवन को बढ़ावा मिलता है। रक्त लेक्टिक अम्ल एवं अन्य विषाक्त पदार्थ रक्त में तेजी से कम होकर जीवनी शक्ति की अभिवृद्धि करता है। शोध निष्कर्ष यह बताते हैं कि नियमित ध्यानाभ्यास से शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर निम्न प्रभाव पड़ता है–

- तंत्रिकातंत्र पुनःसंतुलित एवं स्वस्थिर कार्य करता है।
- यह गहरी विश्रांति प्रदान करता है जिससे उच्च रक्त चाप में क्षतिग्रस्त शारीरिक उत्तकों को पुनर्निर्मित होने में मदद मिलता है।

- सिखने समझने, स्मरण रखने एवं ज्ञान ग्राह्यता बढ़ती है।
- मानसिक स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है।
- तनाव एवं अन्य व्याधियों से जुझने एवं इससे बाहर आने की सामर्थ्य बढ़ता है।

कोशिकीय स्तर पर क्रियाशीलता कम हो जाती है अर्थात् कोि"ाकीय चयापचय स्तर में कमी आती है। ऑक्सीजन एवं कार्बनडाइऑक्साइड की खपत एवं निष्कासन में भी कमी आती है। आनंद एवं अन्य (1961,1970) ने अपने शोध परिणाम में पाया कि ध्यान के समय शारीरिक ऑक्सीजन मांग में 50 से 70 प्रतिशत तक की गिरावट आती है। अन्य शोध में वैलेस एवं बेन्सन ने पाया कि निद्रा की तुलना में ध्यानाभ्यास अधिक शारीरिक एवं मानसिक विश्रांति प्रदान करती है। अतः ध्यान उर्जा संरक्षण में निद्रा से अधिक समर्थ एवं सार्थक तकनीक है। एक अन्य शोध में इन्होंने पाया कि ध्यानाभ्यास से रक्त दाब में सार्थक कमी आती है। अन्य शोध निष्कर्ष भी यह बताते हैं कि दवा की तुलना में ध्यान एवं योगाभ्यास रक्त दाब कम करने में अधिक समर्थ है। अतः ध्यान शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर प्राकृतिक रूप से होने वाली सुधार की क्रिया को बढ़ाने में मदद करता है।

उच्च रक्त चाप के प्रबंधन हेतु उपयुक्त योगाभ्यास इस प्रकार है–

1. आसन :
    - संधिसंचालन का अभ्यास (इसके अन्तर्गत शरीर के सभी संधियों का संचालन एवं मालिस किया जाता है। इस अभ्यास हेतु स्वामी सत्यानंद सरस्वती द्वारा लिखित ''आसन, प्राणायाम, मुद्रा–बंध'' नामक पुस्तक का अवलोकन किया जा सकता है।
    - वज्रासन : भोजन के उपरान्त
    - शवासन : श्वसन के प्रति सजग रहकर प्रत्येक आसन के बीच में इसका अभ्यास किया जाना चाहिए।
    - सूर्यनमस्कार : क्षमतानुसार (योगाभ्यास प्रारंभ करने के दूसरे सप्ताह से इसका अभ्यास किया जाना चाहिए)।

नोट : विपरीत शारीरिक आसन जैसे शीर्षासन, सर्वांगासन, विपरीतकरणीआसन आदि का अभ्यास उच्च रक्त चाप के रोगियों के लिए वर्जित माना गया है।

1. प्राणायाम :
    - सर्वप्रथम उदर एवं वक्ष श्वसन का अभ्यास करना चाहिए।
    - उज्जायी प्राणायाम – शुरूआत पॉच चक्र से करना चाहिए तथा धीरे–धीरे इसकी संख्या बढ़ानी चाहिए।
    - भ्रामरी प्राणायाम – शुरूआत 10 चक्र से करना चाहिए तथा धीरे–धीरे इसकी संख्या बढ़ानी चाहिए।
    - सीत्कारी प्राणायाम –शुरूआत पॉच चक्र से करना चाहिए तथा धीरे–धीरे इसकी संख्या बढ़ानी चाहिए।
    - नाड़ी शोधन प्राणायाम – शुरूआत पॉच चक्र से करना चाहिए तथा धीरे–धीरे इसकी संख्या बढ़ानी चाहिए।

2. शिथिलीकरण अभ्यास – इसके अंतर्गत मुख्यतः शवासन एवं योगनिद्रा का अभ्यास आता है।

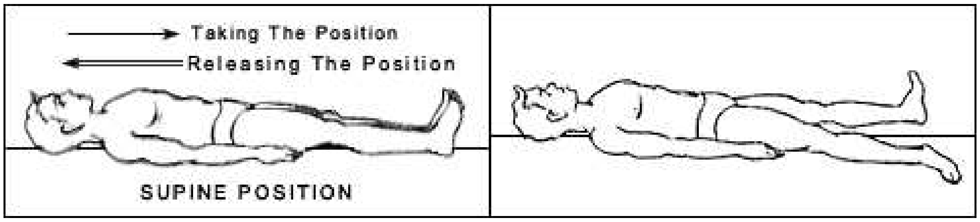

उपरोक्त योगाभ्यास किसी कुशल योग प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में करना चाहिए।

3. अन्य सामान्य निर्देश – रक्त दाब का नियमित जॉच करवाना चाहिए। आहार में फल, ताजी सब्जियॉ, साबूत आनाज का प्रयोग करना चाहिए। अत्यधिक सर्करा, नमक, वसायुक्त भोजन से बचना चाहिए। नमक का प्रयोग कम से कम या हो सके तो छोड़ देना चाहिए। मैदा एवं इससे निर्मित भोज्य पदार्थ से बचना चाहिए। धूम्रपान, मांसाहार, मद्यपान का प्रयोग नहीं करना चाहिए। मोटापा पर नियंत्रण करना चाहिए और सुबह की ताजी हवा में टहलने का कम बनाना चाहिए।

अतः उपरोक्त विस्तृत वर्णन से आप उच्च रक्त चाप के प्रबंधन से भली प्रकार परिचित हो गये होंगें।

अभ्यास प्रश्न – E

1. योग चिकित्सा का मूख्य उद्‌देश्य क्या है?
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–
   (क) शवासन एक ....आसन है।
   (ख) प्राणायाम तंत्रिकातंत्र को ....बनाता है।
   (ग) प्राणायाम के अभ्यास से अनुकम्पी तंत्रिकातंत्र के कियाशीलता.................हो जाता है।
   (घ) ध्यानाभ्यास रक्त दाब को ....करता है।
   (ड.) ऑक्सीजन की शारीरिक मांग....................में कम हो जाता है।

12.5.2 निम्न रक्त चाप का यौगिक चिकित्सा –

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में निम्न रक्त चाप का कोई विश्वसनीय उपचार नहीं है क्योंकि यह अपने आप में रोग न होकर किसी अन्य रोग के लक्षण या कमजोरी है। अतः इस प्रमुख कारण का पता लगाकर तथा कमजोरी को दूर कर इसे दूर किया जा सकता है। इसके बावजुद भी कभी–कभी यह लक्षण प्रकट होते रहता है इसे उपयुक्त योगाभ्यास द्वारा दूर किया जा सकता है।

योगाभ्यास के अन्तर्गत सूर्यनमस्कार, नाड़ीशोधन प्राणायाम एवं भस्त्रिका प्राणायाम आदि के अभ्यास द्वारा इसका समुचित प्रबंधन किया जा सकता है। बेहत्तर परिणाम के लिए दिन में दो बार योगाभ्यास करने की आवश्यकता होगी। सुबह में आसन एवं प्राणायाम का अभ्यास, रात्रि में भोजन के पहले हल्के आसन एवं शयन से पूर्व नाड़ी शोधन प्राणायाम एवं योगनिद्रा का अभ्यास उपयुक्त माना गया है।

योगाभ्यास की शुरूआत संधि संचालन के अभ्यास, नाड़ी शोधन एवं भस्त्रिका प्राणायाम से करना चाहिए। यह अभ्यास शारीरिक कमजोरी को दूर कर धीरे–धीरे शरीर को उर्जावान

बनाता है तथा साथ ही स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के असंतुलन के पीछे के कारण को दूर करता है।

कुछ सप्ताह के बाद सूर्यनमस्कार एवं अन्य गत्यात्मक आसन जैसे पश्चिमोतान आसन, धनुरासन, अर्द्धमत्सेन्द्र आसन आदि भी अभ्यास में जोड़ा जा सकता है। धीरे–धीरे कुछ समय उपरान्त अन्य शक्तिदायक आसन जैसे मयुरासन, योगमुद्रा, चक्रासन आदि के अभ्यास भी किया जा सकता है ताकि शरीर का अनुकूलन बढ़ता जाय। भस्त्रिका प्राणायाम के अभ्यास कमजोर एवं असंतुलित तंत्रिका तंत्र को शक्तिशाली एवं संतुलित बनाता है। सूर्यभेदन प्राणायाम का अभ्यास भी विशेषज्ञ के परामर्श के अनुसार कर सकते हैं। देर तक एक ही शारीरिक स्थिति में खड़े रहने से हमेशा बचना चाहिए। उपरोक्त सभी योगाभ्यास विशेषज्ञ योग शिक्षक के निर्देशन में ही सीखना चाहिए। इस प्रकार निम्न रक्त चाप के लक्षण के ग्रसित रोगी धीरे–धीरे नियमित योगाभ्यास से निश्चित ही मुक्त होकर स्वस्थ जीवन का आनंद ले सकते हैं। अतः यहॉ आप निम्न रक्त चाप के यौगिक उपचार को

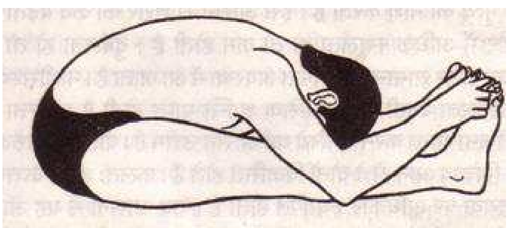

(पादपश्चिमोत्तानासन या उग्रासन)

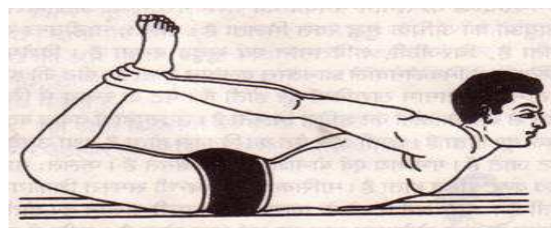

(धनुरासन)

ठीक प्रकार से समझ गये होंगे।

अभ्यास प्रश्न – F

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

(क) निम्न रक्त चाप, रोग ....का संकेत है।

(ख) भस्त्रिका प्राणायाम स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को ....बनाता है।

(ग) एक ही शारीरिक अवस्था में लम्बे समय तक खड़े रहने से ....के लक्षण प्रकट हो सकता है।

12.6 सारांश

उच्च रक्त चाप एवं निम्न रक्त चाप हृदय एवं रक्त परिवहन तंत्र से संबंधित रोग है। उच्च रक्त चाप के रोगी का रक्त चाप सामान्य स्तर से अधिक एवं स्थायी रूप से बढ़ जाता है। यों तो यह हमारे कुछ शारीरिक एवं मानसिक क्रिया कलाप के समय अस्थाई रूप से बढ़ता है एवं पुनः सामान्य भी हो जाता है। परन्तु उच्च रक्त चाप में स्थायी रूप से बढ़ जाता है। यदि समय से इसका उपचार न हो तो यह शरीर के अन्य अंगों जैसे मस्तिष्क, दृष्टि, गुर्दा आदि पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। यह रोग आधुनिक जीवनशैली या विकृत रहन–सहन से उपजा हुआ माना जाता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में इस रोग का नियंत्रण केवल नियमित एण्टीहाइपरटेन्सीव दवा का सेवन करने से होता है किन्तु स्थायी रूप से रोग से छुटकारा पाना मुश्किल है। अतः योग उपचार जैसे आसन, शिथिलिकरण का अभ्यास, प्राणायाम, योगनिद्रा एवं ध्यान के साथ–साथ आहार एवं जीवनशैली में परिवर्तन कर इससे पूर्णरूपेण छुटकारा पाया जा सकता है।

निम्न रक्त चाप अपने आप में कोई गम्भीर रोग नहीं है बल्कि कुछ रोग के लक्षण या शारीरिक कमजोरी के लक्षण माने जाते हैं। इसके अलावा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का असंतुलन भी एक कारण हो सकता है। अतः उपयुक्त आहार–बिहार एवं योगाभ्यास जैसे सूर्यनमस्कार, आसन, प्राणायाम आदि के द्वारा स्थायी रूप से इस पर नियंत्रण किया जा सकता है।

12.7 शब्दावली

हाइपोमेटाबोलिक (निम्न चयापचय) : शरीर की वह विशेष स्थिति जहॉ सभी शारीरिक क्रियाकलाप निम्न स्तर पर होने के कारण शारीरिक ऑक्सीजन, उर्जा आदि की आवश्यकता न्यून हो जाती है। शरीर एवं मस्तिष्क भी न्यूनतम उर्जा ग्रहण करता है।

हाइपरटेंशन (उच्च रक्त चाप) : नियमित एवं स्थायी रूप से धमनियों में रक्त दाब का बढ़ा होना।

लेक्टेट या लेक्टिक अम्ल : एक प्रकार का जैव रसायन जो पेशियों के द्वारा ग्लाइकोजेन के ऑक्सीकरण की क्रिया द्वारा उत्पन्न होता है।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र : तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो शरीर के आंतरिक वातावरण का स्वतः नियंत्रण करता है। इच्छाशक्ति के बल से इसे प्रभावित किया जा सकता है।

परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो शारीरिक विश्राम एवं सामान्य शारीरिक गतिविधि को बनाये रखने में सहायक होता है।

अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो शरीर को तनाव की अवस्था में जुझने या पलायन हेतु तैयार करता है।

परिधिय अवरोध : परिधिय रक्त वाहिनियों में रक्त प्रवाह के समय उत्पन्न अवरोध। यह अवरोध रक्त वाहिनियों के संकुचनशीलता के अंश पर निर्भर करता है।

मनोकायिक रोग : मानसिक तनाव से उत्पन्न रोग।

सिस्टॉल : हृदय पेशी के सक्रिय संकुचन के समय रक्त वाहिनियों का संकुचित होना।

डायस्टोल : हृदय पेशी के फैलाव की अवधि।

केरोटिड साइनस : केरोटिड धमनी का वह फैला हुआ हिस्सा जो रक्त दाब के परिवर्तित होते ही सक्रिय होकर मस्तिष्क को संदेश भेजता है।

मस्तिष्क तरंग : मस्तिष्क के क्रियाकलाप के समय उत्पन्न विद्युत तरंग, जिसे इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राम द्वारा मापा जाता है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न A (क) – पम्प
(ख) – बढ़
(ग) – लचीला
(घ) – 140–159 / 90–99 mmHg
(ड.) – mmHg

अभ्यास प्रश्न B (क) – 40–60 वर्ष
(ख) – सक्त या कठोर
(ग) – स्थूलता, उच्च रक्त चाप
(घ) – कमी

(ड.) – रक्त नलिका संबंधि रोग

अभ्यास प्रश्न C (क) – हृदय
(ख) – उच्च रक्त चाप
(ग) – उच्च रक्त चाप
(घ) – कम
(ड.) – विषाक्त पदार्थ

अभ्यास प्रश्न D (क) – कम
(ख) – स्वायत्त तंत्रिका तंत्र
(ग) – निम्न रक्त चाप
(घ) – निम्न रक्त चाप
(ड.) – मुर्छा

अभ्यास प्रश्न E (क) – शिथिलिकारक
(ख) – शक्तिशाली
(ग) – कम
(घ) – कम
(ड.) – ध्यान

अभ्यास प्रश्न F (क) – लक्षण या शारीरिक कमजोरी
(ख) – संतुलित एवं मजबूत
(ग) – निम्न रक्त चाप

12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Dr. Swami Shankardevananda (2003) The effect of yoga on Hypertension, Yoga publication trust, Munger, India.
2. Vinekar Kuvalayananda (1963) Yogic therapy – Its Basic Principles and Method, Minitry of Health, Gov. of India, New Delhi.
3. R.K. Wallace (1970) The Physiological effect of Transcedental Meditation, PhD. Thesis, Dept of Psychology, University of California, Los Angeles.
4. R.K. Wallace, H. Benson, A.F. Wilson (Sept. 1971) A Wakeful Hypometaolic Physiolgic State; American Journal of Physiology, vol, 2221, No. 3, pp 795-799.
5. H. Benson & R. K. Wallace (Oct.1972) Decreased blood pressure in subjects who practice meditation; Circulation, vol XLV & XLVI, (Supplement 11) Abstract of the 45th Scientific Sessions.
6. डॉ0 राकेश जिन्दल (2005) प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0)

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. रक्त चाप से आप क्या समझते हैं? उच्च रक्त चाप के कारण एवं लक्षण पर प्रकाश डालिए।
2. उच्च रक्त चाप के प्रबंधन में योग किस प्रकार उपयोगी हो सकता है स्पष्ट करें।
3. निम्न रक्त चाप को परिभाषित करते हुए इसके समुचित योग उपचार का नमुना तैयार कीजिए।
4. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें

   (क) आसन का शरीर क्रिया पर प्रभाव

   (ख) ध्यान का उच्च रक्त चाप पर प्रभाव

   (ग) प्राणायाम एवं शिथिलिकरण अभ्यास का उच्च रक्त चाप पर प्रभाव।

इकाई – 13 मोटापा एवं मधुमेह लक्षण कारण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 मोटापा
13.3.1 मोटापा की अवधारणा
13.3.2 मोटापा के संभावित लक्षण एवं दुष्परिणाम
13.3.3 मोटापा के प्रमुख कारण
13.3.4 मोटापा का क्लीनिकल निदान एवं परीक्षण
13.3.5 मोटापा का यौगिक चिकित्सा
13.4 मधुमेह
13.4.1 मधुमेह की अवधारणा एवं प्रकार
13.4.2 मधुमेह के लक्षण
13.4.3 मधुमेह के कारण
13.4.4 मधुमेह से उत्पन्न संभावित दुष्परिणाम
13.4.5 मधुमेह का यौगिक चिकित्सा
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

ठससे पूर्व की इकाई में आपने जाना की उच्च रक्त चाप आधुनिक जीवन शैली की देन एक घातक रोग है। यदि समय रहते इसका उचित प्रबंधन नहीं किया गया तो यह शरीर के अन्य महत्वपूर्ण अंगों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। साथ ही साथ निम्न रक्त चाप कोई रोग न होकर मात्र कुछ रोग के लक्षण है। उच्च रक्त चाप एवं निम्न रक्त चाप के प्रबंधन में योग चिकित्सा की अहम भूमिका पर भी विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत इकाई में सबसे पहले हम मोटापा के विविध पहलुओं जैसे कारण, लक्षण, दुष्परिणाम एवं योग चिकित्सा पर विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। इसके बाद मधुमेह के प्रकार, कारण, लक्षण, दुष्परिणाम एवं योग चिकित्सा का भी विस्तृत विवेचना करेंगे। इसके अतिरिक्त आप इन रोगों के प्रबंधन में कुछ अन्य सुझाव जैसे जीवन शैली से संबंधित उपयुक्त जानकारी से भी परिचित होंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप जान पायेंगे :–

1. मोटापा की अवधारणा
2. मोटापा की पहचान हेतु प्रचलित विभिन्न प्रक्रियाएँ
3. मोटापा के प्रमुख कारण एवं लक्षण
4. मोटापा से उत्पन्न विभिन्न दुष्परिणाम
5. मोटापा का यौगिक चिकित्सा एवं अन्य सुझाव
6. मधुमेह की अवधारणा एवं प्रकार
7. मधुमेह के प्रमुख कारण एवं लक्षण
8. मधुमेह से उत्पन्न दुष्परिणाम
9. मधुमेह के प्रबंधन में योग चिकित्सा की भूमिका
10. मधुमेह के प्रबंधन हेतु अन्य उपयोगी सुझाव

13.3 मोटापा (Obesity)

मोटापा आधुनिक जीवन शैली की देन माना जाता है। यह रोग खास कर ऐसे लोगों में देखा जाता है जो शारीरिक श्रम नहीं करते हैं। आधुनिक समय में जीवन को आसान बनाने वाली विज्ञान एवं तकनीक से उपजी भौतिक सुख–सुविधाओं, अप्राकृतिक खान–पान, रहन–सहन एवं आचार–विचार के कारण व्यक्ति आज मोटापा का शिकार होते जा रहा है। मोटापा के रोगियों की तेजी से बढ़ती संख्या इस बात की ओर संकेत करता है कि हम प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं और हमारे जीवन शैली में नकारात्मक परिवर्तनों का प्रभाव बढ़ रहा है। आज सभी आयु वर्ग जैसे बच्चे, युवक, महिलाएँ तथा प्रौढ़ सभी मोटापे से ग्रस्त देखे जाते हैं।

अत्यधिक वनज या मोटापा से ग्रस्त होने की समस्या आज विश्व की प्रमुख समस्या बन गई है। खासकर शहरी आबादी आज इसके चपेट में तेजी से आ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) के रिपोर्ट के अनुसार 1980 की तुलना में मोटापे से ग्रस्त व्याक्तियों की संख्या दोगुनी हो गई है। आज बहुत से रोगों का कारण मोटापा है जो जीवन की खराब गुणवत्ता व असमय मृत्यु का भी कारण बन गया है। विश्व के लगभग 15 करोड़ वयस्क लोग मोटोपा से ग्रस्त हैं और इनमें से 2.8 मिलियन (28 लाख) के मरने का कारण मोटापा ही है। अतः यहाँ आप मोटापा नामक आधुनिक विकार का संक्षिप्त परिचय से अवलगत हुए। आगे हम मोटापा की अवधारण की चर्चा करेंगे।

13.3.1 मोटापा की अवधारणा

मोटापा शब्द केवल चर्बी के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसका संबंध हड्डियों एवं मांसपेशियों से नहीं है। मोटापा का अर्थ शरीर में अत्यधिक वसा का संचय जिससे शरीर के वजन में अत्यधिक वृद्धि होना है यह स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह जीवन काल को कम कर अन्य स्वास्थ्य समस्याओं को भी जन्म देता है। इससे शरीर के विभिन्न संस्थान जैसे हृदय, श्वसन संस्थान, उत्सर्जन संस्थान आदि पर अत्यधिक भार पड़ता है। परिणामस्वरूप चयापचय संबंधि अनेक गंभीर रोग उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। खासकर हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्त चाप, गठिया, स्नायु रोग आदि शारीरिक व्याधि तथा चुस्ती–फूर्ति में कमी, अवसाद, उदासी आदि मानसिक विकार मोटापा के परिणाम हैं।

मनुष्य के शरीर में चर्बी धारण करने वाली कोशिका एडिपोसाइट्स होती है। मोटे लोगों में इसकी आकार एवं संख्या अधिक होती है। आहार अधिक लेने से इन कोशिकाओं की मोटाई बढ़ जाती है। बढ़े हुए वजन को संभालने के लिए शरीर के सभी अंगों को अत्यधिक कार्य करना पड़ता है। मोटापा बढ़ने से अन्य रोग बढ़ने की संभावना रहती है जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं।

मोटापा का उपचार आवश्यक है क्योंकि मोटापा से ग्रस्त व्यक्ति में जल्दी मौत का खतरा बना रहता है इसलिए इसका उपचार आवश्यक है। एक शोध रिपोर्ट के अनुसार हमारे शरीर के वजन में प्रति 10 किलोग्राम अतिरिक्त वजन हमारी आयु को तीन वर्ष कम कर देता है।

षारीरिक वसा का विभाजन :

मोटापा के कुछ संभावित जटिलताओं जैसे मधुमेह, हृदय रोग आदि को दृष्टि में रखते हुए, शारीरिक ऐडिपोज उतक (वसा संचित करने वाले उतक) के अधिक मात्रा की अपेक्षा शरीर में वसा का विभाजन महत्वपूर्ण हो जाता है। उदर भाग में वसा का संचय (अंतराउदरीय मोटापा), केन्द्रीय या सेव आकार का मोटापा (Central or Apple shaped obesity) कहलाता है। जबकि अंतरात्वकीय (Subcutaneous) वसा का संचय अर्थात् शरीर के सभी हिस्से में वसा का समान रूप से विभाजन, सामान्य या नासपाती–आकार का मोटापा (Generalized or Pear shaped obesity) कहलाता है। उदरीय या सेव आकार का मोटापा अधिकांशतः पुरूषों में देखा जाता है जो कि टाइप–2 मधुमेह, चयापचय सिण्ड्रोम, हृदय रोग से संबंधित माना जाता है। अतः आप उपरोक्त विवरण से मोटापा की अवधारणा को भली प्रकार समझ गये होंगे।

13.3.2 मोटापा के संभावित लक्षण एवं दुष्परिणाम

मोटापा के निम्न लक्षण देखे जाते हैं :–

- वजन बढ़ना
- हल्की मेहनत करने पर हॉफने लगना
- वसा बढ़कर मॉसपेशियों एवं त्वचा के बीच थुलथूलापन बढ़ा देता है
- शरीर में कमजोरी
- शरीर से दुर्गन्ध आना
- अति पसीना, अति भूख–प्यास
- भौतिक एवं सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है
- समाजिक आर्थिक हानि
- सामाजिक मानदण्ड़ों के कारण मोटे व्यक्ति अपने को हीन एवं अलग महसूस करता है। इसी के कारण उसके अन्दर हीन मनोग्रंथियॉ पैदा हो जाती है।
- स्फूर्ति की कमी, मन का उदास रहना, अवसाद, आत्म सम्मान एवं आत्म विश्वास में कमी

यौगिक दृष्टिकोण से मोटापा राजसिक एवं तामसिक प्रवृति के लोगों में अत्यधिक देखा जाता है। राजसिक प्रवृति के लोग स्वभावतः प्रतिस्पर्धी, क्रोधी, लाभी होते हैं। मानसिक कुण्ठा को मुक्त करने हेतु तथा अपूर्ण महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए तेजी से

अधिक मात्रा में खाते हैं। दूसरे प्रकार में तामसिक प्रवृति के लोग जो कि नकारात्मक एवं निरसता के कारण लगातार खाता है। ऐसे व्यक्ति में जड़ता, आलस्य एवं सुस्ती अधिक होती है। जैसे–जैसे शरीर का वजन बढ़ता जाता है वैसे ये शरीर की बेडोल रूप के कारण स्वयं से खिन्न होते जाता है। इस खिन्नता को दूर करने के लिए पहले से भी और अधिक खाने लगता है। यहॉ कुण्ठा जनित निराशा ही अति आहार का कारण है।

मोटापा के दुष्परिणाम :–

मधुमेह, उच्च रक्त चाप, दिल का दौरा, स्ट्रोक या पक्षाघात, उच्च कोलेस्टेरॉल, जोड़ों का दर्द, सांस लेने की समस्याएँ, हर्निया, वेरिकोजवेन, स्तन, पेट, गर्भाशय आदि का कैंसर, हृदय रोग, चर्म रोग, स्टोन आदि मोटापे से जुड़े हुए रोग हैं।

अभ्यास प्रश्न – A

सही विकल्प चुनिए :–

1. मोटापा किस प्रकार का विकार है?
   (क) हार्मोन्स असंतुलन जनित
   (ख) चयापचयिक असंतुलन जनित
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) दोनों में से कोई नहीं
2. मोटापा को किसका देन माना जाता है?
   (क) प्राचीन योग आधारित जीवन शैली
   (ख) आधुनिक आराम तलब जीवन शैली
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. किस प्रकार का मोटापा टाइप–2 मधुमेह से संबंधित है?
   (क) नासपाती आकार का मोटापा
   (ख) सेव आकार का मोटापा
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
   (क) स्फूर्ति की कमी ....का लक्षण है।
   (ख) शरीर में वसा का संचय.................उत्तक में होता है।
   (ग) अनियंत्रित मोटापा...............रोग का कारण भी हो सकता है।

13.3.3 मोटापा के प्रमुख कारण–ग्रहण की गई उर्जा एवं खर्च की गई उर्जा में असंतुलन, जिससे शरीर में अतिरिक्त वसा का संचय होता है। प्रत्येक दिन एक छोटी अतिरिक्त कम मात्रा में ली गई उर्जा जैसे 50–200 किलो कैलोरी भी 4–10 वर्षों में शरीर का लगभग 2–20 किलो ग्राम तक वजन बढ़ा सकता है। सन् 1960 में जहॉ विश्वव्यापी औसत प्रतिव्यक्ति उर्जा की उपलब्धता 2350 किलो कैलोरी था वह सन् 1990 में बढ़कर 2800 किलो कैलोरी हो गया। उर्जा उपलब्धता में वृद्धि तो हुई परन्तु इसके वितरण में अधिक असंतुलन देखा गया। उदाहरणस्वरूप भारत में मात्र 5 प्रतिशत जनसंख्या ही उपलब्ध उर्जा का 40 प्रतिशत भोजन ग्रहण कर लेता है, जो कि अक्सर शहरी आबादी है जिससे मोटापा बढ़ने की संभावना और अधिक बढ़ जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रत्येक व्यक्ति उर्जा

उपलब्धता सन् 1971 में 2450 किलो कैलोरी था जो कि सन् 2000 में बढ़कर 2618 किलो कैलोरी हो गया। यह बढ़ा हुआ भोज्य उर्जा खास कर उच्च उर्जा वाले शर्करा युक्त पेय पदार्थ एवं दो भोजन के बीच ली गई हल्के नास्ते से हुई है। इस प्रकार भोज्य उर्जा की खपत में वृद्धि एवं शारीरिक श्रम में कमी मोटापा का प्रमुख कारण माना जाता है।

जीवन शैली में परिवर्तन, आसानी से उपलब्ध उच्च कैलोरी युक्त भोजन, जंक फूड, फास्ट फूड, बढ़ता हुआ शहरीकरण आदि बढ़ते हुए मोटापा का प्रमुख कारण माना गया है। संक्षेप में मोटापा के प्रमुख कारण बिन्दुबार इस प्रकार है–

- अधिक चर्बी वाले भोजन का प्रयोग, अधिक मात्रा में मीठा, भारी, चिकनाई एवं तला हुआ भोजन का सेवन।
- व्यायाम एवं शारीरिक परिश्रम में कमी
- कुछ दवाईयों के कुप्रभाव
- हार्मोन्स की गड़बड़ी जैसे थायरॉइड ग्रंथि के स्त्राव में असंतुलन
- अनुवांशिक
- स्त्रियों में रजो धर्म समाप्त होने पर भी चर्बी बढ़ने की संभावना रहती है
- बचपन में मोटापे का कारण–खेलकुद की कमी, टेलीविजन, कम्पयूटर के साथ अधिक समय बिताना आदि है।

मोटापे के पीछे मूल रूप से अनेक सांस्कृतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण भी होते हैं। कुछ सीमा तक मोटापे का कारण पैतृक या जातीय प्रकृति भी होती है। भौगोलिक कारणों में जलवायु, वातावरण, ग्रामीण एवं शहरी जीवन के प्रभावों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परा, आदत और सेवकों तथा भौतिक सुख–सुविधा पर निर्भर जीवन एवं शारीरिक श्रम में न्यूनता भी मोटापा में वृद्धि करता है। भूख पर नियंत्रण रखने वाले मस्तिष्क केन्द्रों जैसे हाइपोथेलेमस में व्यतिक्रम और ग्रंथियों के स्त्राव में असंतुलन से मोटापा बढ़ता है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार आत्मसम्मान की कमी तथा आत्म पहचान की समस्या इसका मूल मनोवैज्ञानिक कारण माना गया है। जिससे अकेलेपन की भावना पनपने लगती है और व्यक्ति शरीर को अधिक सुदृढ़ सुरक्षित बनाने के लिए भोजन के प्रति अपनी इच्छा को और अधिक तीव्र कर देता है। मानसिक शांति एवं अपनेपन की गहरी रिक्तता को पूरा करने के लिए वह अधिक आहार लेता है। इस आहार से वह उन कमियों को पूरा करना चाहता है। कुछ लोग पेट भरने के लिए नहीं बल्कि जीभ की चटोरेपन की तृप्ति हेतु कुछ–न–कुछ खाते रहते हैं। कुछ को तो भोजन का व्यसन सा लग जाता है। वस्तुतः ऐसे लोग जीवन की निरसता में तनाव से बचने के लिए खाने का सहारा लेते हैं। ऐसे भी बहुत हैं, जो चिन्ता की वजह से पीड़ित होकर एवं उसी पीड़ा को भूख समझ कर उससे मुक्त होने के लिए अधिक भोजन ग्रहण करने लगते हैं। ये सब तमाम कारण मोटापे में वृद्धि करते हैं।

आधुनिक शोध के आधार पर वैज्ञानिक मानते हैं कि मोटापा शरीर में उपस्थित वसा संचित करने वाली कोशिकाओं की संख्या पर निर्भर होता है ये कोशिकाएँ थैलीनुमा होती है जिसमें चर्बी संचय होती है। जब ये कोशिकाएँ फूलती हैं तब वे हाइपोथेलेमस में उपस्थित भूख केन्द्र को सक्रीय कर देती है इस प्रकार असाध्य क्षुधा की शुरूआत

होती है और पुनः वजन बढ़ने लगता है। थायरॉयड, एड्रीनल, एस्ट्रोजन एवं प्रजनन संबंधि ग्रंथियों के प्रारंभिक असंतुलन के कारण भी व्यक्ति मोटापा के शिकार होते पाये गये हैं।

मानसिक तनाव के कारण न्यूरोएण्डोक्राइन सिस्टम असंतुलित हो जाता है इससे चयापचय क्रिया अनियंत्रित हो जाता है। परिणामस्वरूप वसा की मात्रा कम होने की अपेक्षा बढ़ने लगती है। इस प्रकार अतिआहार की प्रकृति निम्नलिखित दो में से किसी एक अवस्था में ले जाती है–

1. उच्च उर्जा स्तर– इस अवस्था में ग्रहण किये गये भोजन से जितनी मात्रा में उर्जा बनती है, उतनी या उससे कुछ अधिक खर्च होती है।
2. निम्न उर्जा स्तर– इस अवस्था में ग्रहण किये गये भोजन से प्राप्त उर्जा की अपेक्षा खर्ज की जानी वाली उर्जा बहुत कम होती है।

निष्कर्षतः मोटापा के पीछे का प्रमुंख कारण आधुनिक जीवनशैली, एवं भोजन में फास्ट फूड, जंक फूड, मांसाहार, अधिकमात्रा में अल्कोहल युक्त पेय का सेवन, बैठे–बैठे टेलिविजन, कम्पयूटर आदि के साथ अधिक समय बीताना बोतल बंद शीतल पेय पदार्थ, चाय, काफी, फ्रीज के ठंडे पदार्थ जैसे आइसक्रीम, मैदा से तैयार पदार्थ का सेवन, बार–बार कुछ न कुछ खाते रहने की आदत आदि है। उपरोक्त विवरण के आधार पर आशा है की आप मोटापा के प्रमुख कारणों से भली प्रकार परिचित हो गये होंगे।

13.3.4 मोटापा का क्लीनिकल निदान एवं परीक्षण– यहॉ मोटापा का निदान या मूल्यांकन का उद्देश्य है कि इससे ग्रसित व्यक्ति में इस समस्या का मात्रात्मक स्तर का पता लगाना न कि मोटापा के पीछे का कारण ढूॅढ़ना या इसके जटिलताओं एवं प्रबंधन योजना तक पहुॅचाना।

मोटापे का मात्रात्मक स्तर का पता लगाने हेतु ''बॉडी मास इंडेक्स'' (Body Mass Index, BMI) नामक तकनीक का उपयोग किया जाता है। बी.एम.आई. की गणना हेतु व्यक्ति के वजन को किलोग्राम में मापकर प्राप्त संख्या को व्यक्ति की उचाई मीटर में माप कर प्राप्त संख्या का वर्ग निकाल कर प्राप्त वजन को उचाई के वर्ग संख्या से भाग दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त गणितीय मान ही उस व्यक्ति का BMI कहलाता है। उदाहरणस्वरूप मान लिया जाय की किसी वयस्क व्यक्ति का वजन 70 किलोग्राम है तथा उचाई 1.75 मीटर है तो उसका BMI होगा – $70 / 1.75^2 = 22.9\ Kg/m^2$

बी.एम.आई. = व्यक्ति का वजन (किलोग्राम) / व्यक्ति की लम्बाई (मीटर) का वर्ग

BMI = Person's weight in Kg / Square of his/her hight in meter (Kg/m^2)

यह BMI मान के द्वारा मोटापा का मात्रात्मक स्तर अर्थात् मोटापा कितना गम्भीर है, का आकलन किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य तकनीक भी आधुनिक समय में मोटापा के निदान हेतु प्रयोग में लाया जाता है जैसे कि कमर की परिधि (Waist Circumference) माप कर उदरीय मोटापा का आकलन किया जाता है। कमर की परिधि का माप प्रायः नाभी क्षेत्र के स्तर पर नापा जाता है। यदि कमर की परिधिय माप पुरूषों में 102 सेन्टीमीटर से अधिक (>102 cm) एवं महिलाओं में 88 सेन्टीमीटर से अधिक (>88 cm) पाया जाता है तो यह उच्च स्तर के मोटापे से संबंधित चयापचयिक

एवं हृदय संबंधि जटिलताओं या खतरे की ओर संकेत करता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक वसा का प्रतिशत ज्ञात करना मोटापा के आकलन का अत्यधिक सटीक तरीका है । BMI द्वारा मोटापे का मात्रात्मक स्तर ज्ञात करना–

BMI (Kg/m^2)	मोटापे का वर्गीकरण	खतरा का स्तर
18.5-24.9	सामान्य स्तर	न्यून
25.0-29.9	सामान्य से अधिक वनज	मध्यम बढ़ोतरी
>30	मोटापा	
30.0-34.9	प्रथम वर्ग का मोटापा	मध्यम
35.0-39.9	द्वितीय वर्ग का मोटापा	जटिल या उग्र
>40.0	तृतीय वर्ग का मोटापा	अत्यधिक उग्र

यह वर्गीकरण–विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) एवं अंतराष्ट्रीय मोटापा टास्क फोर्स द्वारा किया गया है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित तकनीक के अलावा रोगी की अन्य परीक्षा जैसे रक्त चाप हृदय रोग संबंधि जॉच, मधुमेह की जॉच आदि एवं पूर्व की जानकारी के आधार पर मोटापे की गम्भीरता का पता लगाया जाता है। मोटापा से ग्रस्त व्यक्ति के जीवन एवं कार्य क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का भी परीक्षण आधार माना जा सकता है।

अतः यहॉ आपने मोटापे का कारण एवं उसका निदान, परीक्षण तकनीक का विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त किया। अब आगे हम इसके योग उपचार पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

अभ्यास प्रश्न – B

सही विकल्प चुनिये :–

1. भोजन द्वारा प्राप्त उर्जा के ग्रहण एवं खर्च में असंतुलन से होता है
   (क) हृदय रोग
   (ख) मधुमेह
   (ग) मोटापा
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. इनमें से मोटापे का कारण है
   (क) जंक फूड
   (ख) फास्ट फूड
   (ग) आधुनिक जीवनशैली
   (घ) उपरोक्त सभी
3. बचपन में मोटापे का प्रमुख कारण है
   (क) खेलकुद में कमी
   (ख) टेलिविजन के साथ अधिक समय बिताना
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–
   (क) अधिक मात्रा में चर्बी वाले भोजन के प्रयोग से ....होने की संभावना रहती है।

(ख) मोटापे का एक कारण हार्मोन्स का ....भी हो सकता है।

(ग) भूख का प्रमुख केन्द्र मस्तिष्क के .... में स्थित है।

(घ) मानसिक तनाव से ....सिस्टम असंतुलित हो जाता है।

(ड.) महिलाओं में कमर की परिधि ....से अधिक होने पर मोटोपे का संकेत है।

13.3.5 मोटापा का यौगिक चिकित्सा–जीवनशैली में बदलाव हेतु आजीवन प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। मोटापा को नियंत्रित करने में योगाभ्यास अत्यंत प्रभावकारी है। शोध निष्कर्ष बताते हैं कि यौगिक जीवनशैली अर्थात् योगाभ्यास एवं संतुलित आहार–विहार बिना किसी विपरीत प्रभाव के शारीरिक चयापचय एवं हार्मोन्स स्त्राव को संतुलित कर स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रखता है। संकल्प पूर्वक यदि प्रतिदिन नियमितता के साथ किसी योग्य योग प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में योगाभ्यास किया जाय तो निशचित ही मोटापा को नियंत्रण में लाया जा सकता है।

मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति में इच्छा शक्ति एवं योगाभ्यास के प्रति उसे प्रेरित करने की आवश्यकता होती है। मोटे व्यक्ति को अपने गलत खान–पान एवं जीवनचर्या को छोड कर स्वस्थ जीवनचर्या अपनाने की आवश्यकता है ताकि शक्ति को स्वस्थ एवं रचनात्मक कार्यों की ओर दिशा दी जा सके। योगाभ्यास द्वारा इस उद्देश्य को भली प्रकार पूरा किया जा सकता है।

तनावपूर्ण जीवनशैली वाले राजसिक प्रकृति की अति आहरी मोटे व्यक्ति को योग के विश्रांतिकारक अभ्यास जैसे शवासन, योगनिद्रा आदि से अत्यंत लाभ मिलता है। ऐसे व्यक्ति को भोजन से पूर्व कम से 10–15 मिनट तक विश्रांतिकारक योगाभ्यास करना चाहिए ताकि शारीरिक एवं मानसिक तनाव को दूर कर पाचन संस्थान के क्रियाकलाप को भी सुचारू कर सके। भोजन के समय पूर्ण सजगतापूर्वक भोजन करना चाहिए ताकि आहार की मात्रा का पूरा खयाल रखा जा सके एवं अति आहार से बचा जा सके।

मोटापा के नियंत्रण हेतु योगाभ्यास की रूपरेखा इस प्रकार है :–

1. आसन : यह मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति के उर्जा प्रवाह में आये रूकावट को दूर कर प्राण संचार को मुक्त बनाकर, मानसिक तेजस्विता, स्फूर्ति, सजगता एवं अंतःस्त्रावी ग्रंथियों के स्त्राव को पुनःसंतुलित करने हेतु आवश्यक है। ऐसे व्यक्ति को अत्यधिक उच्च शारीरिक क्षमता वाले आसनों की अपेक्षा बिना थकावट के सरल आसनों से शुरूआत करना चाहिए। जैसे–जैसे शारीरिक शक्ति एवं अनुकूलता बढ़े वैसे–वैसे क्रमशः और आसनों को अभ्यास में शामिल करते जाना चाहिए। अत्यधिक शारीरिक श्रम वाले व्यायाम थकावट एवं उबाउपन पैदा करता है तथा अस्थाई रूप से वजन को शीघ्र ही कम करता है परन्तु योगासन बिना थकावट लाये प्राण संचार को सुचारू बनाकर तथा अंतःस्त्रावी ग्रंथियों को संतुलित कर स्थाई रूप से मोटापा कम करता है। मोटापे के नियंत्रण हेतु आवश्यक आसन इस प्रकार है–

- नौकासंचालन का अभ्यास – इसमें नौकाचालन की तरह दोनों पैर सामने की ओर फैलाकर बैठें। पैरों को एक साथ रखकर नाव चलाने की अंदाज में शरीर को भली प्रकार जितना संभव हो सके आगे–पीछे झुकाते हुए संचालित करें हो सके तो श्वास छोड़ते हुए आगे एवं लेते हुए पीछे की ओर जायें। यह अभ्यास शुरूआत में 15–20 बार दुहरायें। क्रमशः अभ्यास की संख्या बढ़ाते जायें।

- चक्कीचालन का अभ्यास – इसमें पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैंठे हाथों को भी फैलाकर उंगलियों को आपस में फसाकर कमर से सामने से पीछे झुकते हुए हाथों द्वारा घेरे का आकार बनाये। कल्पना करें की आप चक्की चला रहे हैं। यह अभ्यास भी 10–20 बार बायें व दायें ओर से दुहरायें।
- रस्सी खींचनें का अभ्यास – इसमें पैर सामने फैलाकर बैठें। हाथों को बारी–बारी से उपर उठायें और नीचे लायें जैसे कि आप उपर से लटकी हुई रस्सी नीचे की ओर खींच रहे हों। यह अभ्यास भी 10–20 बार करें।
- लकड़ी काटने का अभ्यास – इसमें पैरों के पंजों के बल बैठें। घुटने मुडे हुए दूर–दूर रहना चाहिए। भुजाओं को घुटनों की बीच से सीधे सामने की ओर फैलाकर हाथों की उॅगलियों को आपस में फसायें। अब इस अंदाज में हाथ को उपर ले जायें, मानों आप कुल्हाड़ी से लकड़ी काट रहे हों। हाथों को उपर उठाते हुए श्वास ले तथा नीचे लाते हुए श्वास छोड़ें यह अभ्यास भी 10–20 बार दुहरायें।
- उदराकर्षण अभ्यास – इसमें हाथों को घुटनों पर रखते हुए पंजों के बल उकडू बैठ जायें। जितना संभव हो धड़ को दायीं ओर मोड़ते हुए शरीर के पीछे की ओर देखें, साथ ही साथ बायें घुटने को जमीन पर झकायें। हथेलियॉ घुटने पर रहे। प्रारंभिक स्थिति में लौटकर इसी प्रकार विपरीत दिशा में मोड़कर करें। प्रत्येक दिशा में शरीर को 10–15 बार मोड़े।

उपरोक्त आसनाभ्यास के कुछ सप्ताह तक नियमित अभ्यास के बाद अन्य उच्च आसन जैसे ताड़ासन, कटिचक्रासन, पादहस्तासन, पादउत्तानासन, भुजंगासन, हलासन, धनुरासन, अर्द्धमत्स्येन्द्र आसन, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, उष्ट्रासन, द्रूतहलासन, शशांकभुजंगासन आदि के साथ सूर्यनमस्कार का नियमित अभ्यास मोटापा के लिए अत्यंत लाभदायक है।

2. प्राणायाम – जो प्राणायाम क्षुधा तीव्र करे उसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। भस्त्रिका प्राणायाम चचापचय को बढ़ाकर संचित वसा को कम करता है। नाड़ीशोधन एवं भ्रामरी मानसिक ताजगी एवं स्फूर्ति के पुर्नस्थापन में सहायक है।
3. शिथिलिकरण – योगनिद्रा का सकारात्मक संकल्प के साथ नियमित अभ्यास अत्यंत लाभकारी है। सकारात्मक संकल्प से निश्तेज एवं त्रुटिपूर्ण जीवनशैली को ठीक प्रकार सुघारने में मदद मिलती है।
4. षट्कर्म – नेति एवं कुंजल का अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए। शंखप्रक्षालन का अभ्यास कुशल मार्गदर्शन में सीखकर तत्पश्चात् लघु संखप्रक्षालन सप्ताह में 1–2 बार करते रहना चाहिए। इससे अवरूद्ध एवं निस्तेज पाचन संस्थान, निष्क्रिय यकृत एवं अग्नाशय पुनः क्रियाशील हो जाते हैं। शरीर में लघुता, बढ़ी हुई उर्जा तथा वैचारिक स्पष्टता का पुनः अनुभव किया जा सकता है।

   उपरोक्त योगाभ्यास कुशल योग प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

आहार संबंधी सुझाव – मोटे व्यक्ति को उपवास करने का सुझाव नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसे व्यक्ति उपवास समाप्त होते ही पहले से अधिक मात्रा में खाना प्रारंभ कर देते हैं। उपवास के बजाय प्रतिदिन प्राकृतिक पौष्टिकता से परिपूर्ण सादा भोजन करना चाहिए। दिन एवं रात्रि भोजन के बीच और कुछ भी नहीं खाना चाहिए। अधिक मात्रा में शर्करायुक्त भोज्य पदार्थ, मिठाईयॉ, वसा, दूध तथा दूध से निर्मित पदार्थ, चावल, रिफाइंड निर्मित

आहार से बचें ताकि यकृत, पाचन संस्थान एवं हृदय की क्रियाशीलता को सुचारू बनाये रखा जा सके।

मन को भोजन संबंधित विचारों से अलग कर अन्य कार्यों में व्यस्त रखना चाहिए। तनाव रहित होकर स्वयं को व्यस्त बनाये रखें। दैनिक क्रियाकलापों में सक्रीय रूप से भागीदारी करें एवं हर क्षण का सदुपयोग करें। जैसे–जैसे व्यक्ति में सृजनात्मकता बढ़ती है, धीरे–धीरे भोजन की मात्रा एवं आवश्यकता भी घटने लगती है और जीवन क्रम संतुलित होने लगता है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार है–

- मांसाहार से बचें
- प्रातः एवं सायं खुली हवा में टहलने का क्रम बनायें।
- मोटापा कम करने वाले दवाईयों का बिना सोचे समझे प्रयोग न करें।
- कच्ची सब्जियॉ एवं सलाद का प्रयोग नियमित करें।
- ताजा भोजन ही ग्रहण करें, फ्रिज में रखे हुए भोजन, जंक फूड, फास्ट फूड आदि से बचें।
- तले हुए एवं वसायुक्त पदार्थ का सेवन न करें, अत्यधिक नमकीन एवं मीठा से बचें।

इस प्रकार संकल्पपूर्वक किया गया योगाभ्यास अवश्य ही लाभ पहॅुचाता है। नियमित जीवनचर्या एवं योगाभ्यास मोटापा से मुक्ति दिलाने में सक्षम है। अतः यहॉ आपने मोटापे के नियंत्रण हेतु योग की भूमिका एवं अन्य सुझाव के बारे में जानकारी प्राप्त किया।

अभ्यास प्रश्न – C

सही विकल्प का चयन करें –

1. मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति में अभाव होता है
   (क) इच्छाशक्ति
   (ख) स्फूर्ति
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. आसन मोटे व्यक्ति में उर्जा प्रवाह में आये रूकावट को
   (क) और बढ़ा देता है
   (ख) दूर करता है
   (ग) कुछ भी नहीं करता है
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. भस्त्रिका प्राणायाम चयापचय क्रिया को
   (क) बढ़ाता है
   (ख) घटाता है
   (ग) कोई प्रभाव नहीं डालता है
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. मोटे व्यक्ति को उपवास करने की सलाह
   (क) देना चाहिए

(ख) नहीं देना चाहिए
(ग) सप्ताह में एक बार देना चाहिए
(घ) इनमें से कोई नहीं

5. योग निद्रा का नियमित अभ्यास सहायक है
(क) नकारात्मक संकल्प बढ़ाने में
(ख) भूख को कम करने में
(ग) सकारात्मक संकल्प बढ़ाने में
(घ) इनमें से कोई नहीं

13.4 मधुमेह (Diabetes Mellitus) :

यहाँ आप मधुमेह के विभिन्न पक्षों एवं उसके योगोपचार से परिचित होंगे। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा मधुमेह को जीवन पर्यन्त चलने वाला रोग माना जाता है परन्तु यौगिक जीवनशैली एवं प्राकृतिक आहार–विहार अपनाकर इसको पूर्णतः नियंत्रण में लाया जा सकता है। आज विश्व के विकसित एवं विकासशील देशों में बहुतायत में यह रोग देखा जा सकता है। इसका प्रमुख कारण आधुनिक जीवनशैली, जिसमें तकनीकि से प्राप्त संवृद्धि एवं मानसिक तनाव की मूख्य भूमिका है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अकेले भारत में आज लगभग 4–5 करोड़ लोग इस रोग से पीड़ित हैं तथा दिनों–दिन इसकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि यदि भारतवासी इससे सजग नहीं हुए तो सन् 2020 तक भारत मधुमेह की राजधानी होगी अर्थात् विश्व में सर्वाधिक मधुमेह के रोगी हमारे देश में ही होगा। मधुमेह ऐसा रोग है जिसे प्रारंभ में पहचानना कठिन है खास कर उन लोगों में जो नियमित रूप से स्वास्थ्य परीक्षण नहीं करवाते हैं। यह रोग तब पकड़ में आता है

जब व्यक्ति किसी अन्य स्वास्थ्य समस्याओं को लेकर चिकित्सक के पास जाता है। प्रारंभ में इसके खास लक्षण नहीं दिखते हैं किन्तु आगे चलकर जब इसके दुष्प्रभाव शरीर

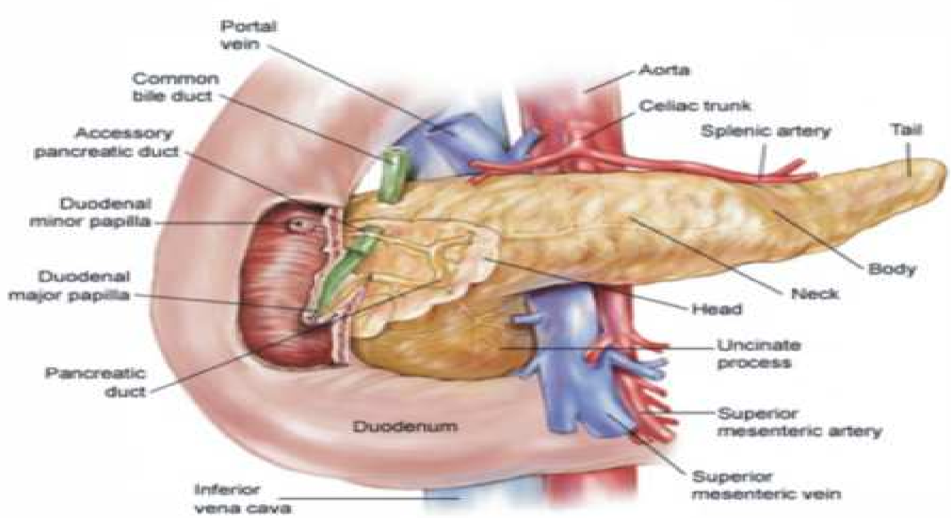

के अन्य भागों पर पड़ता है जैसे की दृष्टि से संबंधित समस्या, थकावट, घाव का जल्द नहीं भरना, बार–बार संक्रमण होना आदि के कारण चिकित्सकीय जॉच होती है तभी यह पहचान में आता है। पहले यह रोग प्रायः 40–45 उम्र के बाद ही देखने में आता था परन्तु आधुनिक खान–पान एवं रहन–सहन के कारण यह रोग युवा पीढ़ी में भी देखा जा सकता है।

13.4.1 मधुमेह की अवधारणा एवं प्रकार :

मधुमेह एक चयापचय संबंधित रोग है। इस रोग में अग्नाशय नामक ग्रंथि के द्वारा निर्मित एवं स्त्रावित इन्सुलिन हार्मोन की मात्रा परिमाणात्मक एवं गुणात्मक रूप से कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर के कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का सही उपयोग नहीं हो पाता है। इस वजह से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ने लगती है। एक सीमा के बाद यह ग्लूकोज मूत्र द्वारा बाहर निकलने लगता है। शर्करायुक्त पदार्थों को कार्बोहाइड्रेट कहा जाता है। कार्बोहाइड्रेट भोजन द्वारा ग्रहण करने पर पाचन क्रिया द्वारा पचाकर मुख्यतः ग्लूकोज में परिवर्तित कर दिया जाता है। यह ग्लूकोज आंतों से अवशोषित होकर यकृत में आता है तथा वहॉ से आवश्यकतानुसार रक्त के माध्यम से पूरे शरीर में प्रसारित कर दिया जाता है। इस क्रिया को इन्सुलिन हार्मोन ही संचाचित करता है। इन्सुलिन की मात्रा एवं गुणवत्ता में असंतुलन ही मधुमेह अर्थात् रक्त में शर्करा की मात्रा में वृद्धि होती है।

मधुमेह के प्रकार –चिकित्सा विज्ञान में मधुमेह दो प्रकार के बताये गये हैं। प्रथम बचपन एवं कम उम्र के लोगों में पाये जाने वाले, जो कि अपेक्षाकृत विरले तथा अधिक घातक माना जाता है। इसे जुविनाइल डायबिटीज कहते हैं। यह दुर्लभ रोग आज के आधुनिक समाज में व्याप्त दुषित खान–पान एवं रहन–सहन के करण बच्चों में बढ़ता जा रहा है। यह रोग अनुवांशिक गड़बड़ी, विषाणु संक्रमण या अत्यधिक कष्टप्रद भावानात्मक पीड़ा एवं मानसिक आघात के कारण भी होता है। इससे इन्सुलिन हार्मोन का स्त्राव अधिकांश या पूर्णरूप से बंद हो जाता है, परिणामस्वरूप रोगी को नियमित रूप से कृत्रिम रूप से इन्सुलिन की सुई लेना पड़ता है। अतः रोगी इन्सुलिन पर निर्भर हो जाता है इसलिए इसे इन्सुलिन पर निर्भर मधुमेह (Insulin dependent diabetes mellitus, IDDM) भी कहा जाता है।

द्वितीय प्रकार है इन्सुलिन पर अनिर्भर मधुमेह (Non-insulin dependent diabetes mellitus, NIDDM) –यह रोग प्रायः उन लोगों में देखा जाता है, जो तनावग्रस्त जीवनशैली, मोटापे से ग्रस्त, शारीरिक रूप से कम क्रियाशील रहते हों जिनके भोजन में शक्कर, शर्करायुक्त तथा वसायुक्त पदार्थ की अधिकता रहता हो। पाचन क्रिया पर पड़ने वाले इस दीर्घकालिक प्रभाव को यकृत एवं अग्नाशय की शर्करा नियंत्रण प्रणाली में क्रमशः विघटन होती रहती है। इससे न केवल इन्सुलिन उत्पादन ही प्रभावित होता है बल्कि सभी शारीरिक उतक इन्सुलिन के प्रभाव के प्रति असंवेदनशील हो जाते हैं। इस स्थिति को इन्सुलिन रेसिसटेन्ट डायबिटीज मेलाइटस भी कहा जाता है। आज अधिकांशतः प्रौढ़ावस्था के लागों में इसी प्रकार के मधुमेह देखा जाता है।

अतः उपरोक्त चर्चा से मधुमेह की अवधारणा एवं चिकित्सा विज्ञान में वर्णित इसके प्रकार से अवगत हुए। आगे हम इसके लक्षण, कारण एवं दुष्परिणाम की चर्चा करेंगे।

अभ्यास प्रश्न –D

सही विकल्प चुनिए –

1. आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मधुमेह को माना जाता है
   (क) क्षणिक रोग
   (ख) दीर्घकालिक रोग
   (ग) जीवन पर्यन्त चलने वाला रोग
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. मधुमेह एक प्रकार का
   (क) हार्मोन की गड़बड़ी से उत्पन्न रोग
   (ख) चयापचयिक रोग
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. मधुमेह किस हार्मोन से संबंधित है
   (क) कॉर्टिसोल
   (ख) थॉयराक्सीन
   (ग) इन्सुलिन
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. मधुमेह में रक्त शर्करा स्तर
   (क) बढ़ जाता है
   (ख) घट जाता है
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
5. इन्सुलिन पर निर्भर मधुमेह प्रायः किस उम्र में देखा जाता है
   (क) प्रौढ़
   (ख) बुढ़ापा
   (ग) बचपन
   (घ) इनमें से कोई नहीं

13.4.2 **मधुमेह के लक्षण**—रक्त में बढ़ी हुई शर्करा की मात्रा जीर्ण अवस्था में मूत्र के साथ बाहर आने लगता है जिससे मूत्र विसर्जन की अधिकता, भूख—प्यास की अधिकता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। मधुमेह के प्रमुख लक्षण बिन्दुवार इस प्रकार हैं—

- मूत्र के साथ शर्करा (ग्लूकोज) का आना
- बार—बार मूत्र त्याग की इच्छा
- मूत्र का अधिक गाढ़ा व चिपचिपा हो जाना
- अधिक भूख लगना
- अधिक प्यास लगना
- त्वचा में रूखापन
- नेत्र ज्योति उत्तरोत्तर कम होना
- थकान एवं दुर्बलता का अनुभव
- साधारण घाव को भी भरने में देर लगना
- शरीर में खुजली होना इत्यादि।

मधुमेह जितना ही तीव्र होगा, उसका लक्षण उसी रफ्तार से तीव्र होता जाता है। शारीरिक कोशिकाएँ ग्लूकोज नहीं मिलने पर या इसके अभाव में उर्जा हेतु वसा को ही ग्रहण करने लगते हैं। परिणामस्वरूप रोगी के रक्त में अम्लता बढ़ती जाती है। रक्त में बढ़ा हुआ अम्ल एवं शरीर में निर्जलीकरण हो जाने पर मधुमेहिक अचेतनता या डायबिटीक कोमा भी आ सकता है। इस स्थिति में यदि उपयुक्त मात्रा में तुरन्त इन्सुलिन नहीं दिया गया तो रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। यहॉ आप मधुमेह के प्रमुख लक्षणों से परिचित हुए आगे इसके कारण पर प्रकाश डालेंगे।

13.4.3 मधुमेह के कारण :

मधुमेह रोग के दो मुख्य कारण माने जाते हैं–

प्रथम जैविक एवं द्वितीय मानसिक।

जैविक कारण के अंतर्गत अनियंत्रित एवं अनियमित जीवनशैली के कारण सम्पूर्ण पाचन क्रिया अस्त–व्यस्त हो जाती है। शारीरिक श्रम का आभाव, मोटापा, अत्यधिक भोजन खासकर मीठा, भारी, चिकने पदार्थों के निरंतर सेवन से जठराग्नि मंद होकर पाचक ग्रंथियों को दुर्बल बना देती है तथा चयापचय क्रिया को अस्त–व्यस्त बना देती है। शारीरिक व्यायाम की कमी आदि जैविक कारण की श्रेणी में आता है। अत्यधिक मीठा, शर्करायुक्त भोज्य पदार्थों का प्रयोग से अग्नाशय को अत्यधिक मात्रा में इन्सुलिन उत्पादन करने हेतु दबाव पड़ता है। लम्बे समय तक यह स्थिति बनी रहे तो अग्नाशय की क्रियाशीलता मंद पड़ जाती है। अधिक रक्त शर्करा के उद्दीपन के बावजूद भी इन्सुलिन का स्त्राव कम हो जाता है। इन्सुलिन की कमी से शर्करा का चयापचय मंद पड़ जाता है तथा शर्करा रक्त में ही अधिक समय तक घुली रहने पर बाध्य हो जाती है। इस अवस्था को उच्च रक्त शर्करा स्तर (High blood sugar level) कहते हैं। परिणामस्वरूप गुर्दे से अधिक शर्करा छनकर मूत्र से बाहर निकलने लगती है। यह शर्करा मूत्र में अपने साथ जल खिंचकर ले जाती है। इससे रोगी को बार–बार मूत्र त्याग करना पड़ता है तथा शरीर में जल की कमी से बारम्बार प्यास लगती है। रोग की इस अवस्था में रोगी की रोग प्रतिरोधक क्षमता दुर्बल हो जाती है। घाव ठीक प्रकार नहीं भरते तथा दृष्टिदोष उत्पन्न होने लगता है।

मधुमेह की द्वितीय कारण मानसिक तनाव से संबंधित है। मानसिक तनाव की अधिकता के कारण अधिवृक्क ग्रंथि (Adrenal glands) उत्तेजित हो जाती है फलस्वरूप इस ग्रंथि से कार्टिकोएस्टीरॉयड हार्मोन का स्त्राव बढ़ जाता है। इसे तनाव हार्मोन भी कहा जाता है, जो लगातार रक्त प्रवाह में घुलता रहता है। यह हार्मोन शरीर के रक्त प्रवाह में ग्लूकोज छोड़ने के लिए एक शक्तिशाली उत्प्रेरक का कार्य करता है। इस अधिक ग्लूकोज को कोशिकाओं के भीतर पहुॅचने हेतु अधिक इन्सुलिन की आवश्यकता पड़ती है। इससे अग्नाशय पर दबाव बढ़ जाता है। इस प्रक्रिया के कारण इस ग्रंथि की कार्यक्षमता कमजोर पड़ जाती है तथा मधुमेह के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। तनाव से उत्पन्न यह स्थिति जैविक कारणों की तुलना में अधिक खतरनाक होती है।

13.4.4 मधुमेह से उत्पन्न संभावित दुष्परिणाम :

मधुमेह ऐसा रोग है जिसके दुष्प्रभाव इस प्रकार हैं –

- गुर्दे या यकृत की खराबी
- तंत्रिका तंत्र एवं स्नायविक विकृतियॉ
- दृष्टि दोष

- मधुमेही मुर्च्छा
- नपुंसकता आदि

रक्त शर्करा को कोशिकाओं के भीतर पहुॅचाने हेतु इन्सुलिन की आवश्यकता होती है। इसके बिना हमारे शारीरिक उतक ग्लूकोज ग्रहण नहीं कर सकते। इन्सुलिन की अप्रयाप्त मात्रा या कमी से शर्करा रक्त प्रभाव में प्रवाहित होती रहती है, फिर भी इसका उपयोग नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में शारीरिक कोशिकाएॅ ग्लूकोज के बदले वसा का उर्जा स्त्रोत के रूप में प्रयोग करना शुरू करती है। यकृत से भी अधिक मात्रा में वसा एवं वसायुक्त पदार्थों का उत्सर्जन होने लगता है यह वसा रक्त नलिकाओं के भीतर जमने लगती है। इससे हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, अंधापन, नपुंसकता, गुर्दे की खराबी, धमनियों का कड़ापन आदि समस्याएॅ पनपने लगती हैं। मस्तिष्क तथा अन्य तंत्रिकाओं पर चयापचय असंतुलित होने से स्नायविक कमजोरी, अंगों का सुस्त होना, लकवा आदि लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। प्रतिरक्षा प्रणाली के कमजोर पड़ने से संक्रमण, फोड़े–फुंसियॉ, खुजली, घावों का न भरना, घावों में पीव पड़ कर लम्बे समय तक रिसना, अंगों का सड़ना आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कभी–कभी तो रक्त में अम्लों की मात्रा बढ़ने से गहरी बेहोशी (डायबिटिक कोमा) तथा अचानक मृत्यु का भी खतरा बना रहता है।

अभ्यास प्रश्न – E

सही विकल्प चुनिए :

1. मधुमेह का प्रमुख कारण है
   (क) बार–बार मूत्र त्याग की इच्छा
   (ख) मूत्र के साथ शर्करा का आना
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. रक्त में बढ़ी हुई शर्करा की मात्रा के कारण रोगी में
   (क) मूत्र विसर्जन की अधिकता
   (ख) अधिक प्यास
   (ग) मूत्र के साथ शर्करा का आना
   (घ) उपरोक्त सभी
3. डायबिटिक कोमा का प्रमुख कारण है
   (क) रक्त में छार का बढ़ना
   (ख) रक्त की अम्लता का बढ़ना
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. अधिक मीठा एवं शर्करायुक्त भोजन की सेवन से संभावना रहती है
   (क) कैंसर की
   (ख) गठिया की
   (ग) मधुमेह की
   (घ) इनमें से कोई नहीं
5. तनाव की स्थिति में रक्त में किस हार्मोन की अधिकता होती है
   (क) एस्ट्रोजन

(ख) प्रोजेस्टेरॉन
(ग) कार्टिकोएस्टीरॉड हार्मोन
(घ) इनमें से कोई नहीं

13.4.5 मधुमेह का यौगिक चिकित्सा :

आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में मधुमेह का अबतक कोई कारगर उपचार नहीं मिला है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान केवल आहार नियंत्रण, नियमित रूप से एन्टीडायबिटीक पील्स, इन्सुलिन तथा अन्य दवा के प्रयोग तक ही सीमित रह गया है। इससे मधुमेह को समूल नष्ट नहीं किया जा सकता है, बल्कि इन दवाओं के दुष्परिणाम ही सामने आने लगते हैं।
योग एक ऐसा प्राचीन विद्या है जो आध्यात्मिक उत्थान के साथ–साथ जीवन के प्रत्येक आयाम अर्थात्, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक स्वास्थ्य के लिए भी कारगर है। हाल के वर्षों में चिकित्सा विज्ञान एवं योग की सार्थकता पर अनेक शोध कार्य सम्पन्न हुए हैं तथा अनेक शोधकार्य अभी भी किया जा रहा है। पूर्व में हुए शोध निष्कर्ष यह बताते हैं कि योग चिकित्सा न केवल मधुमेह के लिए बल्कि अन्य शारीरिक एवं मानसिक रोग में अत्यंत कारगर सिद्ध हुआ है। यौगिक क्रियाओं द्वारा शरीर की आंतरिक जैव रसायनों के उत्पादन प्रक्रिया को पुनः सक्रीय कर शरीर संरचना को संतुलित किया जा सकता है।

चिकित्सा क्षेत्र में हुए शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि मधुमेह के रोगी जो नियमित योगाभ्यास करते थे, उनके रक्त ग्लूकोज को कम करने हेतु इन्सुलिन पर निर्भरता से मुक्त हो जाते हैं या इन्सुलिन बहुत कम मात्रा में लेने की आवश्यकता पड़ती है।

योगाभ्यास अस्त–व्यस्त खान–पान एवं रहन–सहन पर आधारित दिनचर्या एवं शारीरिक अकर्मण्यता को स्वीकार नहीं करता है। चिकित्सक द्वारा सीधे ग्लूकोज कम करने वाले दवा, इन्सुलिन लेने की सलाह एवं विलासितापूर्ण अप्राकृतिक जीवनशैली को बदलने की सलाह न देना रोग को बढ़ाने का ही कारण है। केवल दवा ही स्वास्थवर्द्धक परिस्थिति उत्पन्न नहीं करती, योग चिकित्सा का उद्देश्य रोग के मूल कारणों के साथ ही उनके लक्षणों को भी दूर करना है। योगाभ्यास शरीर की पुनरूज्जीवन क्षमता को प्रेरित कर जीवन के सम्पूर्ण आंतरिक पुनर्गठन करने के सिद्धांत पर आधारित है। योगाभ्यास निम्न प्रकार मधुमेह की समस्या को दूर करने का कार्य करता है। प्रथम तो यह अग्नाशय में उपस्थित बीटा–कोशिकाओं जो की इन्सुलिन का उत्पादन एवं स्त्राव करती है को पुनरूज्जीवित करने में सहायक है। यह बीटा–कोशिका अप्राकृतिक जीवनशैली के कारण समय से पूर्व ही अपनी क्षमता खो चुकी होती है। इन कोशिकाओं का पुनरूज्जीवन का अर्थ है कि इन्सुलिन का जैव उत्पादन क्षमता में सुधार तथा इस उत्पादन का रक्त शर्करा के साथ बेहतर संतुलन, ताकि रक्त शर्करा का स्तर नियमित रूप से सामान्य बना रहे। द्वितीय, योगाभ्यास शरीर की सभी अन्य कोशिकाओं, खास कर मांसपेशियों तथा वसा कोशिकाओं को स्व–उत्पादित इन्सुलिन के प्रति संवेदनशील बना देता है।

नियमित योगाभ्यास से यह देखा गया है कि मांसपेशिय तथा शारीरिक अन्य कोशिकाओं के अवरोध धीरे–धीरे दूर होने लगते हैं तथा उनमें ग्लूकोज को पुनःग्रहण करने की क्षमता विकसित होने लगती है। सूर्यनमस्कार का अभ्यास अत्यंत कारगर तरीके से चयापचय किया को पुनः संतुलित करती है। योग के सरल आसन मांसपेशियों तथा संधि जोड़ों से अम्ल तथा अवरोध को दूर करता है तथा उच्च आसन आंतरिक अंगों एवं पाचन क्रिया को सकिय बनाता है।

मधुमेह रोगियों हेतु योगाभ्यास कार्यक्रम : वैसे तो प्रत्येक रोगी की दशा एवं प्रकृति भिन्न–भिन्न होती है। अतः रोगी को कुशल योग चिकित्सक की मार्गदर्शन में योगाभ्यास की शुरूआत करना चाहिए, परन्तु यहॉ सामान्य अभ्यास की रूपरेखा बताया जा रहा है–

आसन : योगाभ्यास का आरंभ पवनमुक्तासन भाग–प्रथम, जिसके अंतर्गत शरीर के समस्त संधियों का व्यायाम आता है। (विस्तृत विवरण हेतु स्वामी सत्यानंद सरस्वती रचित ''आसन, प्राणायाम, मुद्रा–बंध'' बिहार योग विद्यालय की पुस्तक देखें) वज्रासन तथा बीच–बीच में शवासन में लेटकर उदर श्वसन का अभ्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् नौकाचालन, सायकिल चालन, चक्कीचालन, रस्सीखींचना, उदराकर्षण, नौकासन, पादसंचालन, झुलन–लुढ़कन आसन, सूर्यनमस्कार–क्षमतानुसार, सुप्त वज्रासन, शशांकासन, शशांकभुजंगासन, सर्वांगासन, हलासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, शलभासन, धनुरासन, मण्डूकासन, आदि उच्च आसनों का क्रमशः अभ्यास करना चाहिए।

शिथिलीकरण : प्रारंभ शवासन से करना चाहिए। प्रत्येक उच्च आसनों के बीच–बीच में शवासन का अभ्यास कुछ समय के लिए करना चाहिए ताकि श्वसन एवं हृदय गति सामान्य हो सके, अंत में 30–45 मिनट तक योग निद्रा का अभ्यास करना उपयुक्त एवं लाभकारी है। योग निद्रा ऑक्सीजन की शारीरिक मांग को कम कर इसके अनावश्यक क्षय को रोकता है। बढ़े हुए रक्तचाप को निम्न करता है। अनुकम्पी तंत्रिकातंत्र के अति–सक्रियता को कम करता है परिणामस्वरूप शरीर में कुछ हार्मोन के स्त्राव प्रभावित होता है। अम्ल उत्पादन को कम करता है एवं उसे बाहर करने में सहायक है। मस्तिष्क तरंगों को मंद करता है एवं अल्फा स्तर तक लाता है। शिथिलता तथा सजगता का विकास होता है। हृदयगति एवं श्वसन दर मंद होने लगता है। कार्बनडायऑक्साइड के उत्पादन को भी कम करता है। इस प्रकार इसका अभ्यास अति लाभकारी है।

प्राणायाम : नाड़ीशोधन, भस्त्रिका, उज्जायी एवं भ्रामरी

प्रारंभ में बिना कुम्भक एवं बंध का अभ्यास करना चाहिए। जैसे–जैसे शारीरिक क्षमता का विकास हो वैसे–वैसे प्राणायाम में कुम्भक एवं तीनों बंध–उड्डियान, जालंधर एवं मूलबंध का भी अभ्यास जोड़ा जा सकता है।

शोधन क्रिया (षट्कर्म) : प्रारंभ में कपालभाति एवं कुंजल का अभ्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् एक बार कुशल मार्गदर्शन में पूर्ण शंखप्रक्षालन एवं योग प्रशिक्षक के मार्गदर्शन के अनुसार बीच–बीच में लघु–शंखप्रक्षालन का अभ्यास करना चाहिए। नौलि एवं उड्डियान बंध भी लाभदायक होगा। यह अभ्यास शरीर से विषाक्त पदार्थ को बाहर कर शरीर का शोधन करता है।

ध्यान : अजपाजप एवं सोह्म साधना का अभ्यास अत्यंत लाभकारी होगा। प्रारंभ में यह अभ्यास किसी कुशल मार्गदर्शन में सिखकर, फिर स्वयं अभ्यास करते रहना चाहिए।

अन्य उपयोगी सावधानियॉ :

- आहार–मधुमेह के रोगी को सभी प्रकार के मीठा पदार्थ, घी, अत्यधिक मीठे फल, मैदा से तैयार खाद्य पदार्थ, संरक्षित डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ, धूम्रपान, तम्बाकू, अल्कोहल का सेवन बिल्कुल वर्जित माना गया है। भोजन सात्विक, शाकाहारी एवं अत्यंत सुपाच्य होना चाहिए। चावल, आलू, मसाले, दूध या दूध से बनी खाद्य पदार्थ कम मात्रा में सेवन करना चाहिए। चोकर युक्त आटे की रोटी एवं हरी

पत्तेदार सब्जियॉ हल्की उबली हुई अवस्था में लेनी चाहिए। सलाद का सेवन भी नियमित करना चाहिए।

- व्यायाम– नियमित खुली हवा में सुबह शाम टहलना भी स्वास्थ्प्रद माना गया है।
- रक्त एवं मूत्र शर्करा का नियमित अंतराल पर जॉच कराते रहना चाहिए तथा चिकित्सक के निर्देशानुसार इन्सुलिन की मात्रा कम करते जाना चाहिए।
- योगाभ्यास एवं भोजन की नियमित्ता कम से कम छः महीने तक जारी रखना चाहिए इससे मधुमेह रोग पुनः लौटने की संभावना कम हो जाती है।

मधुमेह एक दु:साध्य रोग है किन्तु नियमित योगाभ्यास एवं प्राकृतिक जीवनशैली से इसको नियंत्रित करके इससे छुटकारा पाया जा सकता है। इस प्रकार उपयुक्त पथ्य आहार एवं नियमित योगाभ्यास के द्वारा मधुमेह से मुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ एवं निरोग जीवन का आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न – F

सही विकल्प चुनिए–

1. आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मधुमेह का उपचार है
   (क) एण्टीडायबिटिक दवा
   (ख) इन्सुलिन
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. योग चिकित्सा का उद्देश्य है
   (क) मात्र मधुमेह के लक्षण को कम करना
   (ख) लक्षण एवं मूल कारण को दूर करना
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. योगभ्यास मधुमेह के रोगी में
   (क) अग्नाशय की बीटा कोशिका को पुनरूजीवित करने में सहायक है
   (ख) शरीर की कोशिकाओं को इन्सुलिन के प्रति संवेदनशील बनाने में सहायक है
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. मधुमेह रोग के लिए उपयुक्त आसन है
   (क) अर्द्धमत्स्येन्द्रासन
   (ख) मण्डूकासन
   (ग) योगमुद्रासन
   (घ) उपरोक्त सभी
5. मधुमेह के रोगी का आहार होना चाहिए
   (क) अत्यधिक शर्करायुक्त
   (ख) निम्न शर्करायुक्त
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं

13.5 सारांश

मोटापा एवं मधुमेह दोनों ही समस्या चयापचयिक एवं हार्मोन के असंतुलन से उत्पन्न माना गया है। आधुनिक अप्राकृतिक जीवनशैली इन दोनों रोग का प्रमुख कारण माना जाता है। आज विश्व इन दोनों स्वास्थ्य समस्याओं से पीड़ित है तथा रोगियों की संख्या दिनो–दिन बढ़ती जा रही है। मोटापा यदि अनियंत्रित होता है तो यह कई अन्य रोग जैसे मधुमेह, गठिया, उच्च रक्त चाप, हृदय रोग आदि रोगों को जन्म देता है। समय रहते यदि आहार–विहार पर ध्यान दिया जाय तो इसे पूर्णतः नियंत्रण में लाया जा सकता है। योगाभ्यास एवं प्राकृतिक जीवनचर्या को अपनाकर मोटापा से बचा जा सकता है तथा यदि मोटापा के शिकार व्यक्ति इसे अपनाये तो उससे छुटकारा भी पाया जा सकता है।

मधुमेह भी अप्राकृति जीवनशैली से उत्पन्न रोग माना जाता है। इसे गुप्त हत्यारा रोग या ''साइलेंट कीलर'' माना जाता है क्योंकि शुरूआत में इसके कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। जब व्यक्ति इसके दुष्प्रभाव जैसे घाव का न भरना, दृष्टि दोष, अति मूत्र त्याग, अति प्यास आदि लक्षणों को लेकर चिकित्सक से मिलता है तो मधुमेह प्रकाश में आता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इन्सुलिन एवं अन्य दवाओं के द्वारा इसे अस्थायी रूप से नियंत्रित किया जाता है तथा जीवन पर्यन्त इन दवाओं पर रोगी निर्भर हो जाता है। योग चिकित्सा में योगाभ्यास एवं प्राकृतिक जीवनशैली को अपनाकर हार्मोन स्त्रावित करने वाली कोशिका को पुनरूजीवित किया जाता है।

13.6 शब्दावली

इन्सुलिन– अग्नाशय के आंतरिक भाग में स्थित बीटा–कोशिकाओं द्वारा स्त्रावित हार्मोन। यह रक्त में शर्करा के स्तर को सामान्य बनाये रखकर कार्बोहाइड्रेट के चयापचय को नियमित बनाये रखता है। इसके बिना भोजन द्वारा ग्रहण की गई शर्करा का उपयोग शरीर नहीं कर पाता है।

उत्तक – कोशिकाओं का समूह जिससे शरीर के विभिन्न अंग बनते हैं।

अंतःस्त्रावी ग्रंथि – ग्रंथियों का ऐसा समूह, जिनसे रक्त प्रवाह में सीधे हार्मोन स्त्रावित होते हैं। ये ग्रंथियॉ शरीर में आंतरिक रसायनिक वातावरण का प्रमुख नियंत्रक है।

कोलेस्टेरॉल – शरीर द्वारा उत्पादित एक कार्बनिक पदार्थ जिसे हम लोग वसायुक्त भोजन के माध्यम से ग्रहण करते हैं। साधारणतः यह पित्त, मस्तिष्क, रक्त तथा जन्तु उत्तक में पाया जाता है।

ग्लूकोज – कार्बोहाइड्रेट का मुख्य प्रकार है। शरीर में इसका संग्रह यकृत तथा उत्तकों द्वारा ग्लाइकोजन के रूप में किया जाता है।

चयापचय– शरीर में विभिन्न पदार्थों के निर्माण एवं क्षय की संयुक्त प्रक्रिया।

अग्नाशय – एक प्रकार का ग्रंथिय रचना जो पाचक एन्जाइम्स स्त्रावित कर आंतों में भेजती है तथा इन्सुलिन को रक्त प्रवाह में भेजती है।

वसा – ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्ल से युक्त एक प्रकार का कार्बनिक पदार्थ। यह जन्तु उत्पाद, वनस्पति तेल तथा मनुष्य एवं पशु में उपस्थित एक अति नरम उत्तक में स्थित प्रमुख पदार्थ है। मानव शरीर में वसा को कार्बोहाइड्रेट में तथा कार्बोहाइड्रेट को वसा में परिवर्तित करने की क्षमता होती है।

शर्करा – कार्बोहाइड्रेट का बृहद् समूह जो कोशिकाओं के निर्माण एवं रख–रखाव में मदद करता है तथा शरीर द्वारा मांसपेशीय क्रियाकलापों में शक्ति प्रवाहित हेतु उपयोग में लाया जाता है।

हाइपोथेलेमस – मध्य मस्तिष्क का अति महत्वपूर्ण भाग जो आंतरिक अंगों पर नियंत्रण रखने का कार्य करता है। ऐसा माना जाता है कि यह मस्तिष्क एवं अंतःस्त्रावी ग्रंथि दोनों का कार्य करता है तथा शरीर और मन के बीच सक्रीय संबंध बनाये रखने वाला अंग है।
हार्मोन – विभिन्न अंतःस्त्रावी ग्रंथियों द्वारा निर्मित जैव रसायनों का समूह। ये रसायन शारीरिक अंगों के क्रियाकलाप तथा शारीरिक चयापचय को नियंत्रित करते हैं।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – A

1. – (ग), 2.– (ख), 3.– (ख), 4. – (क) – मोटापा, (ख) – एडिपोसाइट्स, (ग) – हृदय रोग, (घ) – भार, (ड.) – मोटापा।

अभ्यास प्रश्न -B

1. – (ग), 2.– (घ), 3.– (ग), 4. – (क) – मोटापा, (ख) – असंतुलन, (ग) – हाइपोथेलेमस, (घ) – न्यूरोएण्डोक्राइन, (ड.) – 88 cm।

अभ्यास प्रश्न - C

1. – (ग), 2.– (ख), 3.– (क), 4. – (ख), 5. – (ग)

अभ्यास प्रश्न - D

1. – (ग), 2.– (ग), 3.– (ग), 4. – (क), 5. – (ग)

अभ्यास प्रश्न - E

1. – (ग), 2.– (घ), 3.– (ख), 4. – (ग), 5. – (ग)

अभ्यास प्रश्न - F

1. – (ग), 2.– (ख), 3.– (ग), 4. – (घ), 5. – (ख)

13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वामी सत्यानंद सरस्वती (2001) दमा, मधुमेह और योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत
2. डॉ. स्वामी कर्मानंद (2008) रोग और योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत
3. प्रो. रामहर्ष सिंह (2006) योग एवं योग चिकित्सा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली भारत
4. Nicholas A. Booh, Nicki R. colledge & Brian R. Walker (ed.) (2006) Davidson’s principles & Practice of medicine, Churchill Living stone Elsevier.

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. मोटापा से आप क्या समझते हैं? मोटापे के कारण एवं लक्षण पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
2. मोटापे के संभावित दुष्परिणाम क्या है? इसके यौगिक प्रबंधन का विस्तार पूर्वक उल्लेख करें।
3. मधुमेह से आप क्या समझते है? मधुमेह के कारण, लक्षण का विस्तृत उल्लेख करें।
4. मधुमेह के प्रकार एवं दुष्परिणाम को बताते हुए इसके प्रबंधन में योग की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

इकाई – 14 संधिवात, कब्ज, अम्लपित्त एवं अल्सर के लक्षण कारण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 संधिवात अवधारणा एवं प्रकार
    14.3.1 संधिवात के कारण एवं लक्षण
    14.3.2 संधिवात का योगोपचार
14.4 कब्ज
    14.4.1 कब्ज के कारण एवं लक्षण
    14.4.2 कब्ज का योगोपचार
14.5 अम्लपित्त
    14.5.1 अम्लपित्त के कारण एवं लक्षण
    14.5.2 अम्लपित्त का योगोपचार
14.6 अल्सर
    14.6.1 अल्सर के कारण एवं लक्षण
    14.6.2 अल्सर का योगोपचार
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने उच्च रक्त चाप, निम्न रक्त चाप, मोटापा एवं मधुमेह रोगों के योगोपचार के विषय में जाना। प्रस्तुत इकाई में हम संधिवात, कब्ज, अम्लपित्त एवं अल्सर से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी एवं इसके यौगिक प्रबंधन की चर्चा करेंगे।

जैसा की आप जानते हैं शरीर को गति प्रदान करनें में संधियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जब तक ये संधियॉ स्वस्थ एवं लचीली बनी रहती है, शारीरिक गतिविधियॉ भली प्रकार होती रहती है। जैसे ही इन संधियों में किसी प्रकार का विकार या आघात उत्पन्न होता है, इसके स्वाभाविक गतिविधि में अवरोध आने लगता है। संधिवात या आर्थ्राइटिस ऐसा रोग है जो इन्हीं संधियों को प्रभावित करती है फलस्वरूप व्यक्ति का दैनिक क्रियाकलाप प्रभावित होने लगता है अर्थात् अपंगता जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः इस रोग से व्यक्ति शारीरिक अपंगता की ओर बढ़ने लगता है जिसका समय रहते

उचित उपचार करना आवश्यक है। आधुनिक चिकित्सा के साथ–साथ योग उपचार एवं प्राकृतिक जीवनचर्या का पालन भलि प्रकार किया जाय तो इसे नियंत्रण में लाना संभव है।

कब्ज, अम्लपित्त एवं अल्सर हमारे पाचन संस्थान से जुड़े हुए रोग हैं। अम्लपित्त एवं अल्सर खास कर हमारे पाचन संस्थान के उपरी हिस्से को प्रभावित करता है जबकि कब्ज पाचन संस्थान के निचले भाग से संबंधित विकार है। अम्लपित्त का उचित प्रबंधन यदि समय रहते नहीं किया जाय तो यह बाद में अल्सर का रूप भी ले सकता है जो अपेक्षाकृत अधिक घातक सिद्ध हो सकता है। कब्ज आजकल आम रोग बनता जा रहा है क्योंकि अनियमित खान–पान एवं अप्राकृतिक जीवनचर्या ही इसका मुख्य कारण माना गया है। आधुनिक चिकित्सा के साथ ही यदि योग उपचार अर्थात् यौगिक जीवनशैली को अपनाया जाय तो इन रोगों से दूर रहना तथा इन्हें नियंत्रण करना संभव होगा। इस इकाई में हम इन्हीं बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे ताकि आप इन रोगों के विषय में इनके योगोपचार से भलि प्रकार परिचित हो सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पाऐंगे कि :–

- संधिवात : अवधारणा, प्रकार, प्रमुख कारण एवं लक्षण
- संधिवात का योगोपचार
- कब्ज : अवधारणा, दुष्परिणाम, कारण एवं लक्षण
- कब्ज का योगोपचार
- अम्लपित्त : कारण, लक्षण
- अम्लपित्त का योगोपचार
- अल्सर : कारण एवं लक्षण
- अल्सर का योगोपचार

14.3 संधिवात (Arthritis) : अवधारणा एवं प्रकार

शरीर के संधियों को मुख्यतः प्रभावित करने वाले इस रोग को आर्थ्राइटिस या संधिवात कहा जाता है। हमारे शरीर में अधिकांश संधियॉ विशेष प्रकार से निर्मित होती है जिसे श्लेषक संधि (Synovial Joint) कहते हैं। श्लेषक संधि में अस्थियों के दोनों सिरे, उपास्थियों अर्थात् कार्टिलेज से निर्मित होती है जो उनके किनारों को पूर्णरूपेण चिकना बनाये रखता है। संधियों के आंतरिक भाग श्लेषक झिल्ली द्वारा आच्छादित होती है जो एक प्रकार का चिकना द्रव्य स्त्रावित करती है जिससे श्लेषक (Synovial Fluid) कहते हैं। यह द्रव ग्रीज जैसा कार्य करता है। श्लेषक संधियों को चारों ओर से अस्थिबंध बांधे रहता है जिससे दोनों अस्थियॉ एक दूसरे के सम्पर्क में रहती है। संधियों के आंतरिक सतह पर उपस्थित श्लेषक झिल्ली नियमित श्लेषक द्रव स्त्रावित करती रहती है जिससे यह हमेशा चिकना बना रहता है। यह श्लेषक द्रव श्लेषक झिल्ली द्वारा रक्त से संश्लेषित होता है एवं शिराओं एवं लसिकाओं द्वारा सोंख लिया जाता है। इस प्रकार श्लेषक द्रव का संचार संधियों एवं उसके उपास्थियों को पोषण प्रदान करते रहता है साथ ही अनुपयोगी उत्सर्जी पदार्थ को वापस बहा ले जाता है। यह क्रिया संधियों की कोशिकाओं को स्वस्थ एवं उसके क्षरण को रोकने हेतु आवश्यक है। इस प्रकार यदि कभी भी इस श्लेषक द्रव के बनने एवं

संचार में किसी भी प्रकार का व्यतिरेक होता है तो संधियों की गतिशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शारीरिक उपापचय क्रिया द्वारा उत्पन्न विषाक्त एवं अम्लीय पदार्थ यदि संधियों में संचित होने लगे तो यह उपस्थित स्नायुतंत्र को उत्तेजित कर देता है साथ ही संधियों में दर्द एवं कड़ापन भी आ जाता है। श्लेषक द्रव की कमी से संधियों में चिकनाई कम होने लगती है तथा कोमल उपास्थियों का क्षय प्रारंभ हो जाता है। इन सब कारणों से संधियों की गतिशीलता बाधित होने लगती है। यह स्थिति यदि लम्बे समय तक बनी रहे, तो इन संधियों के स्वरूप भी नष्ट होने लगता है परिणामस्वरूप इन संधियों में सूजन, लाली, दर्द, कड़ापन आदि बढ़ता जाता है जो रोगी को अपंग एवं निष्क्रिय बना देता है यही स्थिति संधिवात या आर्थ्राइटिस कहलाता है।

यह रोग प्रायः शरीर का वजन ढ़ोने वाले अंगों के संधियों जैसे नितंभ, घुटने, टखने आदि अधिक प्रभवित होते हैं साथ ही छोटी–छोटी संधियॉ जैसे उॅगलियॉ, अंगुठे आदि को भी प्रभावित करती है। संधिवात या आर्थ्राइटिस शारीरिक अपंगता का सबसे बड़ा कारण है। यह एक ऐसा रोग है जो धीरे–धीरे संधियों को पूर्णतः क्षतिग्रस्त कर देता है जिससे संधियों को मोड़ना या हिलाना–डुलाना कठिन हो जाता है।

संधिवात के प्रकार :

विभिन्न प्रकार के लक्षणों के रूप में प्रदर्षित होने वाला यह रोग का मूल कारण एक ही है फिर भी उत्पन्न होने की गति एवं स्थान में भिन्नता के कारण चिकित्सा विज्ञान में इसके कई प्रकार बताये जाते हैं–

1. **एक्यूट संधिवात** : इस प्रकार के संधिवात प्रायः परिस्थितिजन्य कारणों जैसे संक्रमण, सर्दी–जुकाम, खासी, फ्लू, बुखार आदि रोगों में दर्द एवं पीड़ा उत्पन्न हो जाता है, परन्तु जैसी ही ये मूलकारण दूर होते हैं यह संधियों के दर्द भी स्वतः ठीक हो जाता है। संक्रमण के कारण रोगाणुओं द्वारा रक्त में छोड़े गये विषाक्त पदार्थ संधियों में इकठ्ठा होने से दर्द शुरू होता है।
2. **अस्थिक्षय संधिवात् (आस्टियो आर्थ्राइटिस)** : यह अक्सर ऐसे व्यक्ति में देखा जाता है जिसके शरीर का वजन आवश्यकता से अधिक अर्थात् मोटापे के शिकार व्यक्ति में, जो गरिष्ठ भोजन करते हैं तथा कम शारीरिक श्रम करते हैं। यह प्रायः प्रौढ़ावस्था या वृद्धावस्था में अक्सर देखा जाता है। यह विशेषकर उन्हीं संधियों में उभरता है, जहॉ पर कभी चोट लगी हो या फिर जन्मजात विकृति होती है। शरीर का अनावश्यक वजन संधियों पर पड़ने से भी इसके लक्षण दिखाई देते हैं। शरीर में कैल्सियम की अधिकता भी इस रोग का कारण हो सकता है।

Normal & arthritic joints

3. **वातजनित संधिवात (रूमेटाइड आर्थ्राइटिस)** : यह रोग संधियों को अपेक्षाकृत अधिक नुकसान पहुँचाता है तथा तीव्र रोग माना जाता है। अधिकांशतः यह रोग युवकों एवं मध्य आयु के लोगों में देखा जाता है। पुरूष की तुलना में महिलाएँ इस रोग से अधिक प्रभावित होती है। भावनात्मक आघात, तीव्र औषधि, तीक्ष्ण संक्रमण, एंटिबॉडिज आदि संधियों में एकत्रित हो जाना भी इसका कारण माना जाता है। आधुनिक चिकत्सा विज्ञान में ठीक–ठीक इस रोग का कारण ज्ञात नहीं है।
4. **गाउट** : खान–पान में गड़बड़ी इस रोग का मुख्य कारण माना जाता है। यह रोग प्रायः उन लोगों में अधिक होता जो अपने आहार में प्रोटीनयुक्त पदार्थ खासकर मांसाहार का अत्यधिक सेवन करते हैं। प्रोटीन के पाचन के पश्चात् युरिक अम्ल नामक पदार्थ उत्पन्न होता है जो मूत्र के साथ बाहर निकलते रहता है किन्तु गाउट रोग में यह युरिक अम्ल रोगी के शरीर में ही जमा होने लगता है।

अभ्यास प्रश्न – A

सही विकल्प का चयन करें –

1. संधिवात मुख्यतः प्रभावित करता है
   (क) मस्तिष्क को
   (ख) गुर्दा को
   (ग) अस्थि संधियों को
   (घ) उपरोक्त सभी को
2. श्लेषक झिल्ली का मुख्य कार्य है
   (क) रक्त शुद्ध करना
   (ख) श्लेषक द्रव स्त्रावित करना
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) दोनों में से कोई नहीं
3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें
   (क) संधियों में अस्थियों को आपस में बांधने का कार्य ....करता है।
   (ख) संधियों में अस्थियों का सिरा............का बना होता है।
   (ग) अस्थिक्षय संधिवात प्रायः................से ग्रसित लोगों में देखा जाता है।
   (घ) गाउट के शिकार प्रायः ....करने वाले व्यक्ति होते हैं।
   (ड.) एक्यूट आर्थ्राइटिस रोग न होकर अन्य रोगों के ....है।

14.3.1 संधिवात के कारण एवं लक्षण :

यहाँ आप संधिवात के मुख्य कारण एवं लक्षण से परिचित होंगें। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मुख्यतः मानसिक एवं भावनात्मक तनाव, रहन–सहन एवं खान–पान में असंयम ही इस रोग का मुख्य कारण माना जाता है।

- भोजन में अत्यधिक तेल घी, चर्बीदार पदार्थ जैसे मांस आदि, तले खाद्य पदार्थ, डिब्बा बंद एवं कृत्रिम रूप से बने खाद्य पदार्थ, अधिक दूध, चीनी एवं नमक का सेवन इस रोग को बढ़ावा देता है। जीर्ण कब्ज भी इस रोग को बढ़ाता है।
- मानसिक तनाव, कुण्ठा, भय, भावनात्मक अस्थिरता, असुरक्षा, चिन्ता आदि से शरीर में एलर्जी, अंतःस्त्रावी ग्रंथियों के स्त्राव में कमी, रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी, पेशीय तनाव, तंतुशोथ, कब्ज आदि इस रोग को उत्पन्न करता है। इससे संधिवात होने की संभावना बढ़ जाती है।
- शारीरिक श्रम एवं व्यायाम में कमी के कारण शारीरिक संधियॉ एवं स्नायु कड़े हो जाते हैं जिससे शरीर को हिलाने–डुलाने में कठिनाई होती है। दैनिक जीवन में एक ही स्थान पर तथा एक ही शारीरिक स्थिति में बैठे रहकर काम करते रहने से व्यक्ति के पैर, नितंब, मेरूदण्ड, कंधों आदि की पेशियों एवं संधियों के लचीलापन कम होने लगते हैं परिणामस्वरूप इस रोग के लक्षण प्रदर्शित होने लगते हैं।
- इस प्रकार कई प्रकार के यांत्रिक आघात, चयापचयिक असंतुलन, अनुवांशिक कारणों से श्लेषक संधियों में आये गड़बड़ी या इसके क्षय से यह रोग उत्पन्न होने लगता है।

संधिवात के प्रमुख लक्षण : प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं–

- संधियों में दर्द, लालीपन, गर्माहट, सूजन
- संधियों को मोड़ने में कठिनाई होती है खासकर सुबह के समय यह और अधिक रहता है।
- अस्थि संधियों में कैल्सियम आदि पदार्थ जमा हो जाने से कड़ापन, सूजन और दर्द बढ़ जाता है।

आधुनिक चिकित्सा की सीमाऍं :

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान संधिवात के लक्षणों जैसे सूजन, दर्द आदि को कम करने हेतु एस्प्रीन आदि दवा का प्रयोग किया जाता है। यह दवा तत्काल प्रभावी तो है परन्तु लम्बे समय तक इसका सेवन करने से शरीर उन दवाईयों का अभ्यस्त हो जाता है तथा शरीर पर उन दवाइयों का असर कम होने लगता है जिससे दवाओं की मात्रा बढ़ाने की आवश्यकता होने लगती है। फलस्वरूप इसके कुप्रभाव जैसे पेट, गुर्दे, यकृत आदि में गडबड़ी शुरू हो जाती है। इससे चिकित्सक और प्रभावशाली दवा का प्रयोग करते हैं इनमें मुख्यतः इंडोमेथासिन, कॉर्टिकोस्टीरॉयड है। इन दवाओं का कुप्रभाव अत्यधिक होता है। अंततः दवाओं के विफल या प्रभाव कम होने पर शल्य क्रिया द्वारा प्रभावित संधियों को हटा कर कृत्रिम संधि पुनः स्थापित कर दिया जाता है। यह काफी खर्चीला होता है तथा एक निश्चित अवधि के बाद पुनः इसे बदलने की आवश्यकता होती है, परन्तु तब रोगी अवस्था इस आधात सहन करने के योग्य नहीं रह जाती है।

14.3.2 संधिवात का योगोपचार –शोध के परिणाम यह संकेत करता है कि योग उपचार संधिवात के लिए अत्यंत प्रभावी एवं कारगर है। योग चिकित्सा केवल मात्र उपचार ही नहीं बल्कि यह रोगी के सम्पूर्ण जीवनशैली अर्थात् खान–पान, व्यायाम एवं जीवनचर्या को ठीक कर रोग को जड़ मूल से हटाने का सम्पूर्ण विधा है।

यहॉ आप योगोपचार के विधियों से परिचित होंगे। रोगी को सर्वप्रथम कुशल योग चिकित्सक के मार्गदर्शन में यौगिक जीवनशैली को अपनाकर योगाभ्यास सिखना चाहिए। संधिवात का योग उपचार हेतु योगाभ्यास कार्यक्रम इस प्रकार है–

1.आसन : संधिवात से बचाव एवं उसके नियंत्रण हेतु मुख्य आसन इस प्रकार हैं–सूक्ष्म व्यायाम या पवनमुक्तासन भाग–1 (विस्तृत जानकारी हेतु स्वामी सत्यानंद सरस्वती द्वारा रचित 'आसन, प्राणायाम, मुद्रा–बन्ध' नामक पुस्तक देखें) यह अभ्यास शरीर के सभी संधियों को भली प्रकार मालिस कर उसे क्रियाशील बनाता है। नियमित अभ्यास से संधियों का कड़ापन एवं तनाव दूर होकर संधियों के लचीलापन को बढ़ाता है। धीरे–धीरे संधियों का लचीलापन जब बढ़ता जाय तब अन्य उच्च योगासन भी अभ्यास में जोड़ते जाना चाहिए। संधिवात हेतु अन्य उपयोगी योगासन है–ताड़ासन, भुजंगासन, अर्द्धशलभासन, चक्रासन, शशांकासन, मार्जारी आसन, शशांकभुजंगासन, आकर्णधनुरासन आदि। आगे शरीर की क्षमतानुसार सूर्यनमस्कार का अभ्यास भी करना चाहिए यह संधिवात नियंत्रण हेतु प्रभावकारी अभ्यास है।

2.शोधन क्रिया (षटकर्म) : शोधन क्रियाएँ शरीर की विषाक्त पदार्थ को निष्कासित करने में सहायक होता है। संधियों एवं रक्त में मौजूद विषाक्त पदार्थ अम्ल आदि को शरीर से निष्काषित करने में यह अत्यंत उपयोगी क्रिया है। कब्ज को दूर कर संधिवात के नियंत्रण में भी सहायक है। कुंजल एवं लघुशंखप्रक्षालन इस रोग हेतु उपयुक्त शोधन क्रिया है।

कुंजल की विधि : उकडू बैठकर 5–6 गिलास नमकीन कुनकुना पानी पीकर, सीधे खड़े होकर आगे की ओर झुककर दायें हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी को मुँह में डालते हुए जिह्वा के पीछले भाग पर दवाब डालें। हाथ के नाखुन कटे हुए तथा हाथ साफ होना चाहिए। इस प्रकार जिह्वा के पिछले भाग में दबाव डालने से उल्टी या वमन शुरू हो जायेगा तथा पेट का सम्पूर्ण जल तेज बहाव के साथ बाहर आ जाएगा। जब तक जल पूर्णतः बाहर न आ जाय तब तक जिह्वा पर दबाव डालते रहना चाहिए। अभ्यास के पश्चात् शवासन में लेटकर विश्राम करना चाहिए।

लघुशंखप्रक्षालन : उकडू बैठकर क्षमतानुसार दो गिलास नमकीन कुनकुना जल पीकर ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यकभुजंगासन एवं उदराकर्षण की आठ–आठ आवृतियॉ दुहरायें। पुनः दो गिलास जल पीकर उपरोक्त आसनों का अभ्यास करें। इस प्रकार कुल छः से आठ गिलास जल पीकर शौच के लिए जायें। इस अभ्यास के पश्चात् भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

3.प्राणायाम : यह अभ्यास शरीर में प्राण प्रवाह के अवरोध को दूर कर शरीर की जीवनी शक्ति को बढ़ाता है। इस रोग के नियंत्रण हेतु उपयुक्त प्राणायाम है – नाड़ी शोधन एवं भस्त्रिका।

4.ध्यान एवं यौगिक शिथिलीकरण जैसे योग निद्रा शारीरिक एवं मानसिक तनाव को दूर कर व्यक्ति में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक है।

5.आहार संबंधी सुझाव : सात्विक सुपाच्य भोजन शरीर में बन रहे विषाक्त पदार्थ को कम कर शरीर की सफाई में सहायक तथा पोषक पदार्थों की आपूर्ति में भी सहायक है। उबली हुई सब्जियॉ, सभी प्रकार के फल (केले को छोड़कर) चावल, बाजरा, जौ, गेहूँ की चपाती, गिरिदार फल, सुखे मेवे, शहद आदि की सेवन से शरीर से विषाक्त पदार्थ दूर होता है तथा रोग ठीक होता है।

वर्जित आहारः घी, मक्खन, पनीर, मैदा से बने पदार्थ, चीकू, केला, पका पपीता, परवल, कद्दू, टिंडा, टमामर, प्याज, मूली, अदरक, गाजर, खट्टा फल, उड़द दाल, राजमा, बैंगन, गोभी आदि सभी वातकारक खाद्य पदार्थ संधिवात के लिए वर्जित है।

अतिआहार से बचना चाहिए। भोजन हल्का हो तथा दो भोजन के बीच कम से कम पॉच घण्टे का अंतराल होना चाहिए। सप्ताह में एक दिन का उपवास लाभकारी होता है। दर्द एवं सूजन पर गर्म सेक एवं हल्के मालिस लाभप्रद होता है। मानसिक तनाव से बचें। इस प्रकार भोजन एवं जीवनचर्या में बदलाव लाकर योगाभ्यास द्वारा संधिवात पर नियंत्रण करना संभव है।

अभ्यास प्रश्न –B

सही विकल्प का चयन करें –

1. संधिवात के प्रमुख लक्षण हैं
   (क) संधियों में दर्द
   (ख) सूजन
   (ग) लालीपन
   (घ) उपरोक्त सभी
2. संधिवात के प्रमुख कारण हैं
   (क) शारीरिक एवं मानसिक तनाव
   (ख) खान–पान में गड़बड़ी
   (ग) अक्रियाशील जीवनशैली
   (घ) उपरोक्त सभी
3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
   (क)संधिवात हेतु उपयुक्त शोधन क्रिया.................है।
   (ख)दूध एवं दूध से निर्मित पदार्थ संधिवात के लिए ....माना गया है।
   (ग)संधिवात के नियंत्रण में ....भोजन उपयोगी है।
   (घ)भस्त्रिका प्राणायाम शरीर में प्राण प्रवाह को ....बनाता है।

(ड.)सूर्यनमस्कार शारीरिक क्षमता को ....है।

14.4 कब्ज (Constipation)

यहॉ आप कब्ज की समस्या, इसके कारण, लक्षण एवं योग उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। वर्तमान समय में खान–पान एवं जीवनचर्या में आये बदलाव के कारण कब्ज अधिकांश लोगों में एक सामान्य समस्या बन गया है। यह एक ऐसा जीर्ण रोग है, जो पाचन संस्थान के निचले भाग खास कर बड़ी आंत को प्रभावित करता है। इस समस्या में शरीर से ठोस मल का निष्कासन अनियमित एवं अत्यंत धीमा हो जाता है। इस कारण से भोजन पचने के बाद शेष अनपचे अंश बड़ी आंत में जमा हो जाता है। इस प्रकार की स्थिति निरन्तर बनी रहने से आंतों की पेशियॉ कमजोर एवं शिथिल हो जाती है। यह अवशेष पदार्थ यहॉ एकत्र होकर विषाक्त होते जाते हैं, जो शरीर के कोष एवं उतक तक पहॅुच कर शरीर में विषाक्तता उत्पन्न कर सकता है। जीर्ण अवस्था में यह अन्य शारीरिक रोग जैसे गठिया, एपेण्डिसाइटिस, रूमेटिज्म, धमनी काठिन्य, बड़ी आंत के कैंसर आदि का कारण भी हो सकता है।

कब्ज का तात्पर्य है मल का सुखा, कड़ा होना एवं उसके परित्याग में अत्यधिक कठिनाई एवं पीड़ा से है। कब्ज की वजह से मल त्याग में भी अनियमितता आ जाती है। इससे कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। सामान्य व्यक्ति एक नियत समय पर शौच आदि से निवृत हो जाता है, जबकि कब्ज से पीड़ित व्यक्ति में यह समय सुनिश्चित नहीं होता है। मल का सुखा एवं कड़ापन शौच की अवधि को और अधिक बढ़ा देता है। इस कारण व्यक्ति में मानसिक तनाव, असंतोष एवं उत्तेजना पनपती है। यों तो विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों में खान–पान, रहन–सहन, भोजन की गुणवत्ता एवं मात्रा शौच की आवृत्ति एवं अवधि तय करता है परन्तु मलोत्सर्ग में कठिनाई, मल का सूखा एवं कड़ा होना, इसकी आवृति एवं अवधि असामान्य हो जाय तो यह कब्ज माना जाता है। मल का सूखा एवं कड़ापन यह संकेत करता है कि आत्रिक ग्रंथियों, यकृत, अग्नाशय आदि के स्त्राव में कहीं–न–कहीं असंतुलन है या जल अवशोषण में गड़बड़ी हो रहा है।

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार कब्ज दो प्रकार के होते हैं –

1. **सामान्य कब्ज** : इस प्रकार के कब्ज का प्रमुख कारण है–भोजन में रेशेदार पदार्थ की कमी, कम अवशेष छोड़ने वाले आहार जैसे अत्यधिक प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थ आदि का अत्यधिक सेवन। परिणामस्वरूप मल के मलाशय में उतरने में देरी के कारण कब्ज उत्पन्न होता है। आहार में रेशे की कमी एवं कम अवशेषी खाद्य पदार्थ के सेवन से पशियों को उद्दीपन नहीं मिल पाता और वह सुस्त हो जाती है एवं मल को आंतों में ठीक प्रकार से नीचे की ओर नहीं धकेल पाती है। इस प्रकार के कब्ज पर नियंत्रण पाना आसान है। आहार में उच्च रेशेदार भोज्य पदार्थ, तरल पदार्थ की अधिकता आदि से इसको नियंत्रित कर पाना आसान है।
2. **उग्र आइडियोपेथिक कब्ज** : इस प्रकार के कब्ज की शुरूआत प्रायः बचपन या किशोरावस्था में होता है। यहॉ मल श्रोणीय वृहदांत्र (कोलन) तक सामान्य रूप से पहॅुचता है, किन्तु मलोत्सर्ग ठीक प्रकार से नहीं होता है। इसका सही कारण तो ज्ञात नहीं है परन्तु वृहदांत्र में मोटर स्नायविक क्रियाकलाप में आयी कमी भी इसका कारण माना जाता है। इसके अतिरिक्त मलोत्सर्ग में अवरोध का कारण गुदा की बाहरी स्फींटर की अपर्याप्त संकुचनशीलता भी माना गया है। यदि मल त्याग की उपेक्षा की जाय तो कोलन की दीवार शिथिल हो जाती है और इसकी इच्छा भी समाप्त हो जाती है। इस रोग में कोलन का अधिक प्रसार होता है, परन्तु इसकी दीवार की संकुचनशीलता कम हो जाती है। इससे कम मात्रा में मल त्याग होता है तथा अधिकांश मात्रा वहीं बना रहता है।

इस प्रकार यहॉ आप कब्ज की अवधारण एवं प्रकार से अवगत हुए। आगे इसके प्रमुख कारण लक्षण एवं योग प्रबंधन के विषय में चर्चा करेंगे।

अभ्यास प्रश्न – C

सही विकल्प का चयन करें –

1. कब्ज का संबंध है
   (क) पाचन संस्थान के उपरी भाग से
   (ख) निचले भाग से
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. कब्ज एक प्रकार का रोग है

(क) सामान्य
(ख) जीर्ण
(ग) उपरोक्त दोनों
(घ) खतरनाक

3. कब्ज में मल हो जाता है

(क) कड़ा
(ख)सूखा
(ग) उपरोक्त दोनों
(घ) इनमें से कोई नहीं

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

(क) कब्ज ....से उत्पन्न रोग माना जाता है।
(ख) सामान्य कब्ज का कारण रेशेदार खाद्य पदार्थ एवं तरल पदार्थ का ....सेवन है।
(ग) उग्र आइडियोपेथिक कब्ज में .... की संकुचनशीलता कम हो जाती है।

14.4.1 कब्ज के कारण एवं लक्षण :

कब्ज के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

1. **निष्क्रिय जीवनशैली**– कब्ज के शिकार प्रायः ऐसे व्यक्ति होते हैं जो शारीरिक श्रम नहीं करते अर्थात् अधिकांश समय बैठे–बैठे कार्य करते हैं। शारीरिक श्रम नहीं होने से आंतों की पेशियों में कड़ापन अर्थात् उसकी संकुचनशीलता कम होने लगती है। रक्त प्रवाह में भी कमी आने लगती है जिससे पाचन एवं निष्कासन मंद हो जाता है।
2. **आहार संबंधि गलत आदतें**– प्रायः उत्सर्जित मल की मात्रा एवं आवृति व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया गया भोजन पर निर्भर करता है। यदि आहार में पर्याप्त मात्रा में साबुत अनाज, फल, ताजी सब्जियॉ, रेशेदार पदार्थ नहीं हो तो मल कड़ा तथा मात्रा में कम हो जाता है। मैदा से बनीं हुई खाद्य पदार्थ, बिस्किट, केक, फास्ट फूड, ब्रेड, अधिक तला हुआ भोजन, दुग्ध पदार्थ, शर्करायुक्त परिष्कृत खाद्य पदार्थ आदि में रेशे की मात्रा कम एवं प्रोटीन की मात्रा अधिक होता है। इसके पाचन में अधिक उर्जा व्यय होती है तथा इसी वजह से ये भारी व कब्ज उत्पन्न करने वाले होते हैं। इसके अतिरिक्त अति आहार, भोजन में गलत समिश्रण, भोजनकाल की अनियमितता उदरीय पेशीय की कमजोरी भी कब्ज का कारण माना जाता है।
3. **उचित शारीरिक व्यायाम की कमी**– भोजन ग्रहण करने के बाद उसे पचाने हेतु उचित व्यायाम एवं टहलने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में पेशियॉ कमजोर, रक्त प्रवाह में कमी तथा प्राण शक्ति के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।
4. शौच के समय शारीरिक स्थिति भी मलोत्सर्ग की अवधि को प्रभावित करता है। शौच के समय उकडू बैठना सर्वोत्तम स्थिति है। इससे शरीर की अपान वायु सक्रिय होकर आंतो की गतिविधि ठीक रखते हुए मलोत्सर्ग को बढ़ावा देती है। अतः कोमोड टॉयलेट का अधिक उपयोग मलोत्सर्ग के लिए ठीक नहीं माना जाता है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आंत्रिय बीमारी में भी कब्ज की संभावना बनी रहती है जैसे–इरीटेबल बावेल सिण्ड्रोम, क्रॉनिक इंटेसटिनल श्यूडो ऑब्स्ट्रक्सन, कोलोनिक

कारसिनोमा, डायवरटिकुलर रोग, एनोरेक्टल रोग, ट्यूमर बनना, यकृत की कमजोरी, अति अम्लता, कोलन एवं रेक्टम के रोग आदि, कुछ दवा के सेवन से जैसे–लोह सप्लीमेन्ट, ऑपिएट्स, एण्टीकॉलीनरजीक, कैल्सियम एन्टागोनिस्ट, एल्युमिनियम युक्त एण्टाएसिड आदि, कुछ नयुरोलोजिकल कारण जैसे मल्टिपल एस्क्लेरोसिस, पार्किसन, सेरिब्रोवेस्कुलर दुर्घटना, कुछ चयापचय रोग जैसे मधुमेह, हाइपर थाइरॉडिज्म, हाइपरकेलसेमिया एवं अन्य स्थिति जैसे गर्भकाल में, अवसाद, प्रोस्टेट ग्रंथि की अतिवृद्धि आदि।

कब्ज के प्रमुख लक्षण : कब्ज के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं– मल का कड़ा तथा सुखा होना एवं मलोत्सर्जन में पीड़ा होना, सरदर्द, बेचैनी, वायु, भूख की कमी, मितली, श्वास में दुर्गन्ध आना, पेट में भारीपन, मुंह में छाले पड़ना, चक्कर आना, अवसाद, चेहरे पर कील मुहांसे आना, आंख के नीचे छांह या धब्बा पड़ना, वेरिकोज वेन, कमर दर्द, अम्लता, हृदय प्रदेश में जलन, अनिद्रा आदि कब्ज के प्रमुख लक्षण है।

वैज्ञानिक अध्ययन संकेत करता है कि शौच के समय चिंतित होने या अधिक जोर लगाने पर अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र सक्रिय हो जाता है। यह तंत्र आंतों की अवरोधिनी को बंद कर देता है तथा आंतों की दिवार अधिक मात्रा में मल संग्रह हेतु फैल जाती है। अतः उचित ढंग से मल त्याग करने हेतु व्यक्ति शरीर को शिथिल बनाकर परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र को सक्रिय बनाने का प्रयास करना चाहिए। परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र की सक्रीयता आंत की दिवार को संकुचित कर मल को आगे धकेलता है। भोजन में अधिक चिकनाई मल के वेग को कम कर देती है। अतः हमें आहार में चिकनाई की मात्रा कम कर देनी चाहिए।

कब्ज का कारण मानसिक भी हो सकता है। कब्ज मात्र शारीरिक ही नहीं मानसिक रोग भी है। जिस व्यक्ति की विचारधारा एवं जीवनशैली निरूत्साहित, निष्क्रिय एवं अस्त–व्यस्त होता है उसकी पाचन क्रिया धीमी पड़ जाती है एवं वह कब्ज का शिकार हो जाता है। विचारों में अनिश्चितता एवं जिद्दी स्वभाव वाले व्यक्तियों में भी कब्ज की संभावना अधिक रहती है। जिस व्यक्ति का जीवन अनिश्चितताओं से भरा हो एवं जो नई परिस्थितियों के लिए तैयार नहीं होते हैं उनमें कब्ज न्यूरोसिस अर्थात् कब्ज के प्रति भय पाया जाता है। अधिक बौद्धिक कार्य करने वाले व्यक्तियों में भी कब्ज की संभावना रहती है।

कब्ज का संबंध यौगिक दृष्टि से मूलाधार चक्र से है, जो व्यक्ति के सुरक्षा, स्वामित्व आदि पक्षों से संबंधित है। अक्सर मौन रहने वाले तथा भावनाओं को मन में दबा कर रखने की प्रवृति वाले व्यक्ति में असुरक्षा की भाव पैदा होती है। इससे भी कब्ज होने की संभावना बढ़ जाती है।

14.4.2 कब्ज का योगोपचार : कब्ज के उपचार हेतु अनेक प्रकार के विरेचकों का प्रयोग किया जाता है परन्तु इसके नियमित प्रयोग से आंतों की प्राकृतिक एवं स्वभाविक संकुचनशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति इसके आदी हो जाता है। यदि विरेचक का प्रयोग किया जा रहा हो तो इसे धीरे–धीरे त्याग देना चाहिए। प्राकृतिक जीवनशैली एवं योग उपचार इस रोग पर नियंत्रण हेतु प्रभावकारी उपाय है, यह कब्ज का समुल उन्मूलन करने में पूर्णतः सक्षम है।

अतः योगाभ्यास के साथ–साथ उचित आहार–विहार से जीर्ण कब्ज को भी ठीक किया जा सकता है। कब्ज के उपचार हेतु उपयुक्त योगाभ्यास कार्यक्रम इस प्रकार है–

1. **आसन** : प्रारंभ में सूर्यनमस्कार का अभ्यास क्षमतानुसार 6–12 चक्र कुशल योग प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में करना चाहिए तत्पश्चात् ताड़ासन, तिर्यकताड़ासन, कटिचक्रासन, त्रिकोणासन, पादहस्तासन, जानुशिरासन, पश्चिमोतानासन, भुजंगासन,

शलभासन, धनुरासन, चक्रासन, वक्रासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, गोमुखासन, मत्स्यासन, सर्वांगासन, हलासन आदि आसनों का अभ्यास जोड़ते जाना चाहिए। नियमित रूप से भोजन के पश्चात् कम–से–कम 10 मिनट वज्रासन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। सामान्य कब्ज की स्थिति में आसनाभ्यास से पूर्व एक–दो गिलास गुनगुना पानी पीना चाहिए।

2. **प्राणायाम** : भस्त्रिका प्राणायाम की पांच आवृति एवं सूर्यभेदन की दस आवृति से अभ्यास शुरू करना चाहिए।
3. **मुद्रा और बंध** : योग मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, उड्डियान एवं महाबंध का अभ्यास करना चाहिए।
4. **षट्कर्म** : नियमित अंतराल पर लघुशंखप्रक्षालन एवं पूर्णशंखप्रक्षालन का अभ्यास उचित मार्गदर्शन में करना लाभदायक है। इसके अतिरिक्त अग्निसार, नौलि एवं बस्तिक्रिया भी कब्ज के प्रबंधन में उपयोगी है।
5. **शिथिलिकरण एवं ध्यान** : शवासन, योग निद्रा एवं अंतर्मौन का अभ्यास उपयोगी है।
6. **आहार संबंधी सुझाव** : ताजा फल, सब्जियॉं, अधिक मात्रा में सलाद जो रेशे से परिपूर्ण हो, अंकुरित एवं साबुत आनाज, पका अमरूद, सुखे मेवे, अंजीर आदि का प्रयोग लाभदायक है। इसके पाचन के पश्चात् जो अवशेष बचता है, वह आंतों की पेशियों की क्रियाशीलता बढ़ाता है। सुखा भोजन करने से उसे चबाते समय अधिक मात्रा में लार भोजन के साथ मिलकर उसे संतृप्त बना देता है जिससे आंतों को चिकनाहट मिलती है तथा पाचन क्रिया में तीव्रता आती है।
7. **अन्य महत्वपूर्ण सुझाव** :
    - आहार की मात्रा, आवृति एवं गुणवत्ता के अनुसार ही नियमित पेट साफ होना चाहिए। शौच निश्चित समय पर जाने की आदत डालना चाहिए।
    - भोजन के तुरंत बाद लेटना नहीं चाहिए। कुछ देर वज्रासन में अवश्य बैठना चाहिए। थोड़ी देर टहलना भी उपयोगी है खासकर रात्रि भोजन के पश्चात्।
    - नियमित व्यायाम जैसे तैरना, दौड़ना, टहलना आदि के लिए समय निकालना चाहिए।
    - प्रातः संध्या हो सके तो ठंड़े जल से स्नान करना चाहिए।
    - विरेचक दवाओं के सेवन से बचना चाहिए।
    - सामान्य दिनों में अधिक मात्रा में कम से कम आठ से दस गिलास तरल पदार्थ का सेवन करना चाहिए।
    - सुबह उठते ही लगभग एक लिटर तक गुनगुना पानी पीकर शंखप्रक्षालन समूह के आसन करने से पेट जल्दी साफ होता है।

इस प्रकार संकल्प के साथ नियमित योगाभ्यास एवं जीवनशैली में सुधार कर कब्ज को पूर्णतः दूर किया जा सकता है। अतः हमें आशा है कि आप कब्ज के कारण, लक्षण एवं यौगिक उपचार से भली प्रकार अवगत हो गये होंगे।

अभ्यास प्रश्न – D

सही विकल्प का चयन करें –

1. निष्क्रिय जीवनशैली कारण है
   (क) मलेरिया का
   (ख) डेंगू का
   (ग) कब्ज का
   (घ) सभी का
2. कब्ज का प्रमुख कारण है
   (क) भोजन में रेशे की कमी
   (ख) अधिक चिकनाई का प्रयोग
   (ग) उपरोक्त दोनो
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. कब्ज के प्रमुख लक्षण है
   (क) सरदर्द
   (ख) बेचैनी
   (ग) भूख की कमी
   (घ) उपरोक्त सभी
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
   (क) परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र की सक्रियता आंत की संकुचनशीलता एंव सक्रीयता को............देता है।
   (ख) लघु शंखप्रक्षालन का अभ्यास कब्ज को ....करने में सहायक है।
   (ग) कब्ज में विरेचक औषधि का प्रयोग अधिक ....करना चाहिए।
   (घ) भोजन के पश्चात् ....का अभ्यास करना चाहिए।
   (ड.) बस्तिक्रिया ....को दूर करने में सहायक है।

14.5 अम्लपित्त (Hyperacidity)

अम्लपित्त का अर्थ है आमाशय में अत्यधिक अम्ल का बनना। यह रोग पाचन संस्थान के उपरी भाग अर्थात् आमाशय एवं ग्रसनी को प्रभावित करता है।

पाचन संस्थान का स्वस्थ रहना उत्तम स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है क्योंकि स्वस्थ पाचन संस्थान शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का आधार स्तंभ माना गया है। जीवन को सुखपूर्वक व्यतित करने के लिए भोजन का सही पाचन एवं अवशोषण आवश्यक है। किसी प्रकार के रस का आस्वादन भी हम इसी संस्थान के माध्यम से करते हैं। यदि इस पाचन सस्थान की गड़बड़ियों का लम्बे समय तक अनदेखी की जाय तथा इसका दुरूपयोग किया जाय तो अनेक प्रकार के पाचन संबंधि रोग उत्पन्न होने लगते हैं जैसे–अग्निमांधता, अजीर्ण, अल्पअम्लता, अति अम्लता, गैस, पेट का भारीपन, अल्सर आदि।

अम्पपित्त आमाशय में अम्ल की अधिकता से संबंधित है। इस रोग में पाचन प्रणाली उत्तेजित होकर अति क्रियाशील हो जाता है जिससे असमय एवं अधिक मात्रा में अम्ल का स्त्राव होने लगता है। यहॉ तक की पेट खाली होने पर भी जठरभित्ति उत्तेजित हो जाती है तथा अधिक क्रियाशील रहती है। जिससे पेट में ऐंठन, मरोड सी महसूस होती है। यह अवस्था लम्बे समय तक बना रहे तो गम्भीर जठरशोध (गेस्ट्राइटिस) तथा पेप्टिक अल्सर में रूपांतरित हो जाता है।

वर्तमान समय में हमारे आहार–विहार में आये बदलाव, मानसिक तनाव आदि के कारण यह रोग उत्पन्न हुआ माना जाता है। खास कर खाने में अनियमितता, मिर्च मसालों का अधिक प्रयोग, तीखा, खट्टा भोजन का अति सेवन भी इसका कारण माना जाता है। परिणास्वरूप भूख न लगना, जी मिचलाना, खट्टी डकारे आना, वक्ष प्रदेश में जलन होना आदि प्रमुख लक्षण उभरते हैं।

यौगिक दृष्टिकोण से देखें तो उपरी पाचन संस्थान का संचालन पंच प्राणवायु में मुख्यतः प्राण के द्वारा होता है। अतः प्राणवायु के प्रवाह में आये व्यतिरेक भी इस रोग का कारण हो सकता है।

14.5.1 अम्लपित्त के कारण एवं लक्षण :

अम्लपित्त के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

- अधिक तीखा, खट्टा एवं नमकीन भोजन का सेवन
- विरूद्ध आहार अर्थात् दो विपरीत प्रकृति आहार का एक साथ सेवन
- अधिक शराब, चाय, कॉफी का सेवन
- अत्यधिक धूम्रपान
- दर्द निवारक आधुनिक दवाओं का अत्यधिक सेवन
- तनावपूर्ण जीवनशैली, मानसिक दुरवस्था, भावनात्मक द्वन्द
- स्वाद पिण्डों (टेस्ट बड्स) तथा लार ग्रंथियों की उत्तेजना, जिससे पाचन क्रिया लगातार उत्तेजित होते रहता है। असंतुलित भोजन जो मात्र स्वाद के लिए खाया जाता है न कि स्वास्थ्यवर्द्धन के लिए। मात्र स्वाद एवं जिह्वातुष्टि के लिए किया गया भोजन, असंतुलित भोजन जैसे अत्यधिक शक्कर, मिठाईयॉ, अपरिष्कृत खाद्य पदार्थ, तेल–घी युक्त, मसालेदार, तीव्रगंध युक्त पदार्थों का सेवन करने से यह रोग उत्पन्न होता है। अत्यधिक मात्रा में गरिष्ठ भोजन एवं असमय भोजन करने से भी यह रोग हो सकता है।

अम्लपित्त के प्रमुख लक्षण : अपच, थकान, जी मिचलाना, तीखी खट्टी डकार आना, छाती व गले में जलन होना, मुॅह का स्वाद बदल जाना आदि अम्लपित्त के प्रमुख लक्षण हैं।
पेट तथा सिने में जलन –इस प्रकार के दर्द का अनुभव छाती के बीच वाली हड्डी के पीछे होता है। इसका एहसास भोजन के तुरन्त बाद होता है। आरंभ में इस दर्द से हृदय"ूल होने का भ्रम होता है, क्योंकि इसका दौरा भी भोजन के प"चात् ही होता है। इसका कारण है अतिअम्लता। अम्ल की अधिकता से ग्रसन नलिका के पिछले भाग में जलन होने लगती है। इस प्रकार यहॉ आप अम्लपित्त की अवधारणा, कारण एवं लक्षण को भलिप्रकार जाना। आगे हम अम्लपित्त के योगोपचार की चर्चा करेंगे।

अभ्यास प्रश्न – E

सही विकल्पों का चयन कीजिए –

1. अम्ल पित्त एक प्रकार का रोग है
   (क) उपरी पाचन संस्थान से संबंधित
   (ख) निम्न पाचन संस्थान से संबंधित
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं

2. अत्यधिक अम्ल का स्त्राव होना है
   (क) अल्पअम्लता
   (ख) अम्लपित्त
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. अत्यधिक तीखा व खट्टा भोजन के सेवन से होता है
   (क) भगंदर
   (ख) कब्ज
   (ग) अम्लपित्त
   (घ) कैंसर
4. इनमें से अम्लपित्त के कारण हैं
   (क) अत्यधिक सुस्वादु भोजन का सेवन
   (ख) अत्यधिक परिष्कृत भोजन का सेवन
   (ग) विरूद्ध आहार
   (घ) उपरोक्त सभी
5. छाती एवं गले में जलन लक्षण है
   (क) अपच
   (ख) अजीर्ण
   (ग) अम्लपित्त
   (घ) इनमें से कोई नहीं

14.5.2 अम्लपित्त का योगोपचार :

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में अम्लपित्त की रोकथाम हेतु कई प्रकार के एण्टाएसिड का प्रयोग किया जाता है, जो तत्काल तो इस रोग के लक्षणों से राहत देता है परन्तु इसका सेवन बार–बार करना पड़ता है जो स्थाई समाधान नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रशांतक दवाईयॉ भी प्रयोग किया जाता है। यहॉ इसे मात्र शारीरिक व्याधि समझकर इसके निराकरण का प्रयास किया जाता हे। जबकि योग उपचार में रोग के मूलकारण जैसे मानसिक एवं भावनात्मक पक्षों के निराकरण को भी उपचार का आधारभूत अंग माना गया है जिससे इसे नियंत्रित करने में अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिलती है। योगाभ्यास शरीर एवं मन को तनाव से मुक्त कर समग्र स्वास्थ्य प्रदान करता है। योगाभ्यास से स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के क्रियाकलाप को कुछ हद तक चेतन नियंत्रण में रखकर शरीर में भावनाओं के तनाव के प्रभाव कम कर देता है। योगाभ्यास हमें शांत, शिथिल रखने में मदद करता है तथा व्यर्थ की उत्तेजना से बचाता है। इससे सजगता में वृद्धि होती है फलस्वरूप हम भोजन ग्रहण करते समय अपेक्षाकृत अधिक सजग होकर धीरे–धीरे चबा–चबा कर उसे ग्रहण करते हैं। स्वादानुसार न खाकर शरीर की आवश्यकतानुसार भोजन लेते हैं। योग हमें स्वस्थ, शुद्ध एवं सात्विक भोजन ग्रहण करने हेतु प्रेरित करता है जिससे हमारे पाचन संस्थान के साथ–साथ अन्य सभी संस्थान सुचारू एवं संतुलित हो जाता है और इस प्रकार सभी रोग के आने की संभावना बिल्कुल न्यून हो जाता है। अम्लपित्त के प्रबंधन हेतु योगाभ्यास कार्यक्रम इस प्रकार है–

1. **षट्कर्म : कुंजल**— जैसा की पूर्व में चर्चा की जा चुकी है कि कुंजल क्रिया में आमाशय, ग्रसनी आदि की सफाई जल के माध्यम से किया जाता है। यह तत्काल अम्लपित्त के लक्षणों से लाभ पहुँचाता है।
   व्याघ्र क्रिया— पेट में किसी प्रकार का भारीपन या अम्लता बढ़ने पर यह क्रिया भी ठीक कुंजल की भांति किया जा सकता है। यह भी इस रोग की तीव्रता कम करने में अत्यंत उपयोगी है।
2. **आसन** : सरल आसन जैसे पादउत्तानासन, पादचक्रासन, झूलन—लूढ़कन, नौकासन, वज्रासन, शशांकासन, भुजंगासन, पादहस्तासन, शवासन आदि आसन अत्यंत उपयोगी माना गया है। सुबह सूर्योदय के समय सूर्यनमस्कार के 6—12 आवृति पुरा करना चाहिए। ये सभी आसन पहले भली प्रकार कुशल योग विशेषज्ञ की देख—रेख में सिखना चाहिए।
3. **बन्ध एवं मुद्रा** : जालंधर, मूल एवं उड्यिान बंध के साथ प्राणायाम करना चाहिए।
4. **प्राणायाम** : नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास 15—30 मिनट तक करना लाभकारी होगा। इसके साथ ही भ्रामरी एवं शीतकारी प्राणायाम का अभ्यास भी उपयोगी है।
5. **शिथिलिकरण एवं ध्यान** : प्रत्येक दिन नियमित योग निद्रा का अभ्यास करना चाहिए। किसी भी सरल ध्यान का अभ्यास जैसे नाभि प्रदेश में श्वास के प्रति सजग रहने का अभ्यास, पद्मासन या सुखासन में बैठकर करना चाहिए।
6. **आहार संबंधि सावधानियॉ** : सादा एवं सुपाच्य भोजन को ही प्राथमिकता देना चाहिए। वर्जित भोजन में गरिष्ठ, अति तीक्ष्ण, मिर्च मसालेदार, मिठाईयॉ, केक, बिस्कीट, मैदे से तैयार वस्तुऍं, चाउमिन, मैगी अन्य फास्ट फूड, चाय—कॉफी, सभी प्रकार के कोल्डड्रिंक्स, शराब, घूम्रपान आदि आते हैं। इससे भरसक बचना चाहिए। ताजा, पोषक, सुपाच्य, प्राकृतिक भोजन, उबली हुई सब्जियॉ, फल, खिचड़ी, दूध आदि का सेवन लाभदायक है।
7. **अन्य हितकर सुझाव** :
   - दोपहर के समय नीबू का रस लेने से आराम मिलता है।
   - भोजन हमेशा शांत, स्थिर व प्रसन्न मनः स्थिति में ही करना चाहिए।
   - भोजन का निश्चित समय निर्धारित कर लेना चाहिए।
   - भोजन धीरे—धीरे अच्छी प्रकार चबाकर ही खाना चाहिए।
   - दायीं स्वर अर्थात्, दायीं नासिका के चलने पर भोजन ग्रहण करना उपयोगी होता है।
   - इस समय पाचक रसों की स्त्राव की मात्रा बढ़ जाती है।
   - तनावग्रस्त, उत्तेजित एवं उद्वेलित मनः स्थिति में भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा हो तो भोजन से पूर्व कुछ देर तक विश्राम करना चाहिए तत्पश्चात् ही भोजन ग्रहण करना चाहिए।
   - सूर्यास्त से पूर्व या सूर्यास्त तक शाम का भोजन कर लेना चाहिए। देर रात भोजन करने की आदत का त्याग करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त चर्चा से आप अम्लपित्त के प्रबंधन संबंधि सभी जानकारी से अवगत हुए होंगे।

अभ्यास प्रश्न – F

रिक्त स्थानों पूर्ति कीजिए –

1. योग चिकित्सा का मूल उद्देश्य रोग के ....को नष्ट करना है।
2. अम्लपित्त के समाधान हेतु उपयोगी प्राणायाम..............हैं।
3. कुंजल एवं व्याघ्रक्रिया के अभ्यास..............के नियंत्रण हेतु उपयोगी है।
4. भोजनोपरांत ....आसनों का अभ्यास करना चाहिए।
5. अम्लपित्त से पीड़ित व्यक्ति के भोजन में ....का सेवन वर्जित माना गया है।

4.6 अल्सर (Ulcer) :

जैसा कि आप जानते हैं अल्सर रोग पाचन संस्थान से संबंधित है। अल्सर को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में पेप्टिक अल्सर के नाम से भी जाना जाता है। आयुर्वेद में इसे उदर व्रण भी कहते हैं। आमाशय में लम्बे समय तक जलन या अति अम्लता या अम्लपित्त की स्थिति इस रोग को जन्म देता है। यह एक ऐसा रोग है जो प्रायः ग्रासनली (ईसोफेगस) के निचले छोर, आमाशय भित्ती अथवा ग्रसनी (ड्यूडेनम) के प्रथम हिस्से या पायलोरिक वाल्व के ठीक पास किसी भी स्थान में हो सकता है। अक्सर इस रोग से पीड़ित रोगी अपच या पेट में बराबर दर्द की शिकायत करता है। इस रोग की पहचान शुरूआत में कठिन होता है क्योंकि इसके अधिकांश लक्षण अपच के लक्षणों से मिलता–जुलता है। चिकित्सा विज्ञान में इसका निदान बेरियम का घोल पिलाकर एक्सरे द्वारा गैस्ट्रोस्कोपी के माध्यम से किया जाता है। पेप्टिक अल्सर दोनों रूप में हो सकते हैं– तीव्र या जीर्ण अवस्था में। दोनों ही अवस्था में आमाशय या ग्रसनी के मसकुलेरिस म्युकोसा स्तर का क्षय होने लगता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में पेप्टिक अल्सर को दो रूपों में विभाजित किया जाता है–

1. आमाशय का अल्सर या गैस्ट्रिक अल्सर–यह आमाशय की भित्ति में पाया जाता है।
2. ग्रसनी का अल्सर या ड्यूडेनल अल्सर – यह आमाशय के निचले हिस्से से जुड़ी हुई ग्रसनी के प्रथम हिस्से में पाया जाता है। इनके लक्षणों तथा प्रभाव के ढंग में कुछ भिन्नता पाई जाती है।

1.गैस्ट्रिक अल्सर (आमाशय का अल्सर) : जीर्ण गैस्ट्रिक अल्सर का 90 प्रतिशत मामला या तो आमाशय के लेसर कर्व या बॉडी के मध्य भाग में पाया जाता है इस रोग में रोगी अक्सर छाती के मध्य भाग में तीव्र दर्द महसुस करता है। यह दर्द प्रायः भोजन के कुछ देर बाद तेज हो जाता है। पेट के उपरी भाग को दबाने से भी दर्द महसुस होता है। जीर्ण अवस्था में जब इस घाव के उत्तेजना से रक्त स्त्राव होने के कारण रक्त की उल्टियॉ भी हो सकती है। चुॅकि यहॉ दर्द की तीव्रता भोजन के बाद बढ़ जाती है अतः रोगी की भूख भी भयवश समाप्त हो जाता है। समुचित आहार या भूख की कमी से रोगी के शरीर का वजन भी घटने लगता है। शराब का सेवन, धुम्रपान, गरिष्ट मिर्च–मसालेदार भोजन रोग की तीव्रता को और अधिक बढ़ा देता है। इस रोग को मनोकायिक (सायकोसोमेटिक) माना जाता है। व्यक्तित्व के कुछ खास प्रकार जैसे अत्यधिक प्रतिस्पर्द्धी, जीवन में अत्यधिक तनाव वाले व्यक्ति में इसकी सम्भावना अधिक रहती है। ऐसे व्यक्ति की निराशा, कुण्ठा आदि भाव को सहन करने की क्षमता कमजोर होती है तथा व्यक्ति इससे बचने के लिए मद्यपान, धुम्रपान आदि का सहारा लेता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति अक्सर चिंताग्रस्त दिखाई देते हैं। इन्हीं कारणों से रोग उत्पन्न होने की संभावना तथा इस रोग की तीव्रता में वृद्धि होती है।

2.ड्यूडेनल अल्सर (ग्रसनी का अल्सर) : यह रोग ग्रसनी के उपरी हिस्से अर्थात् जहॉ आमाशय के पाचित तथा रस मिला भोजन घोल के रूप में पाइलोरिक वाल्व से होकर पहुॅचता है। इसी हिस्से में अर्थात् ग्रसनी के प्रारंभिक भाग की भित्ति में यह घाव पनपता है। यहॉ रोग से संबंधित पीड़ा या दर्द उदर के मध्य गहराई में महसुस होता है। यह दर्द रोगी को प्रायः खाली पेट अधिक अनुभव होता है तथा भोजन लेने के उपरांत कम पड़ जाता है। यहॉ यह बात ध्यान देने योग्य है कि आमाशयिक अल्सर में दर्द या पीड़ा भोजन लेने से बढ़ता है जबकि ड्य ूडेनल अल्सर में भोजन ग्रहण के पश्चात् कम होने लगता है। अतः यह लक्षण आमाशयिक अल्सर से एकदम विपरीत है। रोगी इस दर्द को कम करने के लिए दिनभर कुछ न कुछ खाता रहता है। परिणामस्वरूप वजन बढ़ने की संभावना बढ़ जाती है। रात भर में पेट खाली हो जाने के कारण रोगी का प्रातः दर्द से नींद जल्द ही टूट जाता है। इसमें प्रातः दूध पीने से जल्द ही आराम मिलता है। दूध प्रायः अम्ल को शांत कर आमाशय एवं ग्रसनी की भित्ति पर शीलत प्रभाव डालता है। उपरोक्त विवेचना से आप अल्सर की अवधारणा एवं प्रकार को भलिभांति समझ गए होंगे।

14.6.1 अल्सर के कारण एवं लक्षण : जैसा की पहले ही बताया जा चुका है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी अब इसके मनोकायिक कारण से सहमत होते दिखते हैं। अत्यधिक चिंता, कुण्ठाग्रस्त या भयभित रहने वाले व्यक्तियों के मस्तिष्क के स्नायु तंत्र में दवाव रहता है। इस प्रकार के लगातार दबाव आवेग को उत्सर्जित कर अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र, जो कि स्वैच्छिक तंत्रिकातंत्र का हिस्सा माना जाता है को उत्तेजित करते रहते हैं इन तंत्रिकाओं के आवेग आमाशय की भित्ती तक पहुॅचकर उससे अम्ल का स्त्राव बढ़ा देता है। इससे आमाशयिक भित्ति की कियाशीलता बढ़ जाती है तथा उसमें तेज ऐंठन उत्पन्न हो जाती है। यह गतिविधि रात–दिन चलती रहती है। यदि पेट खाली हो तो अम्ल की मात्रा बढ़ती चली जाती है तथा अति अम्लता की स्थिति आ जाती है। गरिष्ठ तथा मसालेदार भोजन, शराब, धुम्रपान भी तंत्रिकाओं के आवेग को बढ़ाता है। जिससे बार–बार अपच तथा आमाशयिक भित्ति में क्षोभ व सूजन उत्पन्न होती रहती है। जैसे ही अति तीव्र अम्ल युक्त जठर रस जिसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा पेप्सिन की मात्रा अधिक होती है, इस सूजन या रूग्न भित्ति के सम्पर्क में आता है तो संक्षारक प्रक्रिया से छाले बनने लगते हैं तथा जलन एवं दर्द बढ़ने लगता है। जठर रस में उपस्थित अम्ल की तीव्र संक्षारक प्रक्रिया तथा रूग्न भित्ति की धटी हुई प्रतिरोधक क्षमता दोनों ही एक साथ मिलकर भित्ति की पेशियों और स्तर को क्षय कर घाव उत्पन्न कर देते हैं। अल्सर के प्रमुख कारण बिन्दुवार इस प्रकार हैं–

- धूम्रपान – यह ड्यूडेनल अल्सर की तुलना में गैस्ट्रिक अल्सर के लिए अधिक जिम्मेदार माना जाता है जैसे ही अल्सर पैदा होता है धूम्रपान इसे और अधिक जटिल बना देता है। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं–
- एच. पायलोरी नामक जीवाणु का संक्मण
- कुछ दवा का सेवन जैसे एस्प्रीन, नॉन स्टेरॉयडल एण्टी इन्फ्लामेटरी ड्रग्स आदि
- खाद्य विषाक्तता, इन्फ्लूएन्जा, सेप्टिसेमिया आदि संक्मण
- भावनात्मक तथा मानसिक तनाव
- अत्यधिक चाय–कॉफी का सेवन, अति भोजन की प्रवृति आदि

- मौसम एवं जलवायु जनित तनाव भी कुछ हद तक इसका कारण माना जाता है।
- अनुवांशिक अर्थात् मात–पिता से धरोहर के रूप में भी आ सकता है
- सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण–जैसे गैस्ट्रिक अल्सर प्रायः गरीबों में अधिक पाया जाता है, जबकि ड्यूडेनल अल्सर सभी वर्गों के लोगों में पाया जाता है।
- लिंग भी अल्सर से संबंध रखता है जैसे ड्यूडेनल अल्सर पुरूषों में स्त्रियों की अपेक्षा पॉच गुणा अधिक पाया जाता है। तथा गैस्ट्रिक अल्सर दो गुणा अधिक देखा गया है। कुल मिलाकर अल्सर की गम्भीर अवस्था पुरूषों में स्त्रियों की अपेक्षा दस से बीस गुणा अधिक देखा गया है।

अम्लपेप्सिन बनाम म्यूकोसल अवरोध : प्रायः अल्सर तब पैदा होता है जब उत्तेजक और उत्प्रेरक कारकों के बीच असंतुलन पैदा हो जाता है जैसे अम्ल और पेप्सिन का संक्षारक क्षमता एवं आमाशय और ग्रसनी के म्यूकोसा स्तर जो कि इस अम्ल एवं पेप्सिन के संक्षारक क्षमता से भित्तियों की सुरक्षा करता है। यह म्यूकोसल अवरोध गैस्ट्रिक–म्यूकोसल–बेरियर का कार्य करता है। इस प्रकार आप अल्सर के प्रमुख ज्ञात कारणों से अवगत हो गये होंगे। अब इसके प्रमुख लक्षणों एवं योग उपचार की चर्चा करेंगे।

अल्सर के प्रमुख लक्षण–

- दीर्घकालिन अपच
- भोजन के बाद पेट में पीड़ा खासकर गैस्ट्रिक अल्सर में, सामान्यतः आमाशय के उपरी हिस्से में
- ड्यूडेनल अल्सर में भोजन के निर्धारित समय के बीच या खाली पेट रहने पर पीड़ा बढ़ती है तथा दूध या भोजन लेने के पश्चात् आराम मिलता है। यह दर्द रोगी को सुबह 2–4 बजे के बीच जगा देता है क्योंकि इस समय पेट खाली हो जाता है।
- गैस्ट्रिक अल्सर का दर्द प्रायः भोजन के घण्टे भर बाद शुरू होता है। दोनों ही स्थिति में दर्द एक निश्चित समय पर महसुस होता है एवं फिर बंद हो जाता है।
- भूख की कमी, जी मिचलाना, उल्टी, वजन में कमी (गैस्ट्रिक अल्सर में), छाती में जलन, अधिक लार बनना
- अल्सर की गम्भीर अवस्था में वमन के समय खून का आना या मल के साथ काला रक्त बाहर आना। अचानक वमन के साथ रक्त आने से रोगी को मानसिक सदमा लगता है तथा रक्त की कमी के कारण कमजोरी आती है।

गैस्ट्रिक अल्सर का घाव आमाशय की भित्ति में एक छोटे गड्ढे के समान दिखाई देता है। इस गड्ढे के तल में संवेदी तंत्रिकाएॅ नग्न तारों की भॉति बिछी रहती है तथा इनके उपर के स्तर का क्षय हो चुका होता है। जब अम्ल इस गड्ढे में पहुॅच कर तंत्रिकाओं को स्पर्श करता है तो रोगी को तीव्र दर्द एवं जलन की अनुभूति होती है। अल्सर की सबसे घातक जटिलताएॅ यह है कि जब घाव से बना गड्ढ़ा गहरा होते–होते आमाशय भित्ति के आर–पार छेद कर देता है तो ऐसी स्थिति को पेट का छिद्रीकरण (Perforation) कहते हैं। इससे आमाशय का अम्ल एवं उसमें उपस्थित भोज्य पदार्थ रोगाणु विहीन पेरिटोनियल गुहा में प्रवेश कर फैल जाते हैं। यदि अल्सर का घाव किसी बड़ी रक्त नलिका में छेद कर देता है तो रक्त स्त्राव होने लगता है। ऐसी स्थिति में फटी हुई रक्त वाहिनी से अधिक रक्त स्त्राव हो जाता है। इन दोनों ही परिस्थितियों में चिकित्सक तुरन्त शल्यक्रिया करता

है, अन्यथा रोगी की मृत्यु तक होने की सम्भावना रहती है। अतः यहाँ आप अल्सर रोग के लक्षणों से परिचित हो गये होंगे।

14.6.2 अल्सर का योगोपचार : आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इस रोग का मुख्य चिकित्सा एण्टाएसिड आधारित होता है जिसका उद्देश्य अम्लता को उदासिन कर रोग की तीव्रता एवं लक्षण की कम करना है। रोग अनियंत्रित होने पर शल्यक्रिया द्वारा रोग ग्रस्त आमाशय का हिस्सा निकाल दिया जाता है।

आधुनिक उपचार के साथ ही यौगिक जीवनशैली एवं योगाभ्यास रोगी के लिए अत्यंत लाभदायक होता है। योग व्यक्ति के विकृत जीवनचर्या एवं मानसिक प्रवृति को संतुलित, प्राकृतिक एवं आनंदायी बनाता है। योग चिकित्सा के अंतर्गत नियमित जीवनचर्या, पोषण युक्त सात्विक आहार, आसन, प्राणायाम, शिथिलिकरण एवं ध्यान आदि आते हैं जिससे रोगी को बुरे आदतों चिंता, तनाव आदि से मुक्ति मिलता है।

यौगिक चिकित्सा की रूपरेखा : पूर्णतः विश्राम एवं वातावरण परिवर्तन अल्सर के सफल उपचार की पहली आवश्यकता है। रोगी को किसी भी प्रकार की जिम्मेदारी जो तनाव या चिंता का कारण बने, से मुक्त कर देना चाहिए। अच्छी नींद एवं सुबह–शाम बिना थके थोड़ा सैर करना चाहिए। तनाव एवं चिंता मुक्त वातावरण बहुत ही आवश्यक है।

- आसन : अल्सर के घाव भरने के उपरांत सरल आसनों जैसे ''आसन, प्राणायाम, मुद्र एवं बंध'' पुस्तक में वर्णित पवन मुक्तासन भाग–1 का अभ्यास योग चिकित्सक के मार्गदर्शन में शुरू करना चाहिए। बीच–बीच में शवासन का अभ्यास करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त वज्रासन, शशांकासन भी उपयोगी माना गया है। शवासन शिथिलिकरण हेतु उपयुक्त अभ्यास है। शवासन में लेटकर श्वांस–प्रश्वास के साथ उदर के हलचल के प्रति सजग रहना चाहिए।
- प्राणायाम : बिना अतिक्ति बल प्रयोग के सहजता पूर्वक 15–30 मिनट तक प्रतिदिन भ्रामरी, नाड़ीशोधन, उज्जायी एवं शीतकारी प्राणायाम का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक प्रतिरक्षा प्रणाली को दुरूस्त करने में सहायक होता है।
- षट्कर्म : इसके अंतर्गत केवल नेति क्रिया का अभ्यास किया जा सकता है। अन्य क्रिया जैसे कुंजल, शंखप्रक्षालन आदि इस रोग में वर्जित है।
- शिथिलिकरण : योग निद्रा का अभ्यास सर्वाधिक उपयोगी है, यह आंतरिक द्वन्दों, तनाव आदि से मुक्त करता है।

मनोवृति में परिवर्तन हेतु बिना प्रतिस्पर्धा किये कुछ देर नियमित रूप से कर्मयोग का अभ्यास उपयोगी होगा।

- आहार संबंधी सावधानियॉ : प्रारंभ में गाय का दूध सर्वोत्तम आहार माना गया है। यह घाव भरने में अत्यंत सहायक होता है। बाद में उबली हुई सब्जियों का सूप, खिचड़ी, दूध के साथ पका केला भी लिया जा सकता है। तला हुआ, मसालेदार, गरिष्ठ भोजन, शराब, धुम्रपान, आदि पूर्णतः वर्जित होना चाहिए।

उपरोक्त जीवनशैली एवं नियमित योगाभ्यास से रोगी निश्चित ही लाभान्वित होगा। अतः यहॉ आप अल्सर के योग उपचार के बारे में अवगत हुए।

अभ्यास प्रश्न – G

सही विकल्प का चयन करें–

1. अल्सर का संबंध पाचन संस्थान के किस भाग से है

(क) ग्रसनी
(ख) आमाशय
(ग) उपरोक्त दोनों
(घ) इनमें से कोई नहीं

2. गैस्ट्रिक अल्सर का संबंध है
(क) ग्रासनलिका से
(ख) आमाशय से
(ग) ग्रसनी से
(घ) उपरोक्त सभी से

3. गैस्ट्रोस्कोपी विधि सहायक है
(क) कैंसर के निदान में
(ख) अल्सर के निदान में
(ग) दोनों में
(घ) इनमें से कोई नहीं

4. अल्सर की पीड़ा खाली पेट अधिक होती है
(क) ड्यूडेनल अल्सर में
(ख) गैस्ट्रिक अल्सर में
(ग) दोनों में
(घ) इनमें से कोई नहीं

5. छाती के बीचों बीच तीव्र पीड़ा लक्षण है
(क) अम्लपित्त
(ख) गैस्ट्रिक अल्सर
(ग) मधुमेह
(घ) गठिया

6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए
(क) अल्सर एक प्रकार का ....रोग माना जाता है।
(ख) पेट में बराबर दर्द बना रहना............का लक्षण है।
(ग) शराब एवं धुम्रपान अल्सर का ....माना जाता है।
(घ) .... अल्सर में अत्यंत उपयोगी आहार माना जाता है।
(ड.).............अल्सर में मुख्य औषधि के रूप में प्रयोग होता है।

14.7 सारांश :

इस इकाई में सर्वप्रथम संधिवात एवं योग उपचार के विषय में चर्चा किया गया है। संधिवात मुख्यतः शारीरिक संधियों को विकृत करने वाले रोग हैं जो जीर्ण अवस्था में रोगी को अपंग बना देता है। इसके लक्षणों एवं प्रकृति के आधार पर इसके कई रूप बताये गये हैं। इस रोग में मुख्यतः शरीर के वजन ढोने वाले संधियॉ अत्यधिक प्रभावित होती है। आधुनिक चिकित्सा के साथ–साथ योग उपचार इसके नियंत्रण में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है। जीवनशैली में प्राकृतिक आहार–बिहार एवं योगाभ्यास इस रोग के बचाव में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके पश्चात् इस इकाई में कब्ज, अम्लपित्त एवं अल्सर के योग उपचार पर प्रकाश डाला गया है। कब्ज हमारे आहार नाल के निचले भाग से संबंधित रोग

है जिसमें कड़ा, सुखा तथा अनियमित मल त्याग की समस्या होती है। कब्ज जीर्ण अवस्था में अन्य कई रोगों को जन्म देता है। इसका समुचित नियंत्रण योगाभ्यास एवं खान–पान में सुधार कर किया जाना संभव है। अंत में अम्लपित्त एवं अल्सर के योग उपचार का वर्णन है। अम्लपित्त एवं अल्सर पाचन संस्थान के अग्रभाग को प्रभावित करता है। अति अम्लता मानिसक तनाव व अन्य भोजन संबंधी गड़बड़ी से उत्पन्न रोग है जिसका दुष्परिणाम अल्सर है। यह घातक रोग है यदि समय रहते इस पर नियंत्रण नहीं किया गया तो यह जानलेवा भी हो सकता है। योग उपचार इस रोग के नियंत्रण में सहायक है।

14.8 शब्दावली :

अस्थि संधि : दो अस्थियॉ जहॉ आपस में एक दूसरे से मिलती है, संधि का निर्माण करती है। यह अस्थि बंध द्वारा बंधे रहते हैं। शारीरिक हलचल इन्हीं संधियों के कारण होता है।

श्लेषक संधि : शरीर की अधिकांश संधियॉ श्लेषक प्रकार की होती हैं। इसमें श्लेषक झिल्ली से श्लेषक तैल स्त्रावित होती है जो हमेशा चिकनाई प्रदान करती है जिससे संधियों के गति में नियमितता बनी रहती है।

विरेचक : एक प्रकार की दवा जो कब्ज को तत्काल कम करने अर्थात् आंत की कियाशीलता को बढ़ाकर एकत्रित मल को बाहर करता है।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल : एक प्रकार का अम्ल जो आमाशय की भित्ती में उपस्थित विशेष प्रकार की कोशिकाओं द्वारा स्त्रावित होता है। यह भोजन के रसायकि प्रकृति में बदलाव कर एन्जाइम्स को सक्रिय बनाने में सहायक होता है।

पेप्सिन : एक प्रकार का एन्जाइम जो जठररस में उपस्थित होता है तथा प्रोटीन के पाचन में सहायक होता है।

एन्टासिड : एक प्रकार की दवा जो अति अम्लता को कम करता है अर्थात् उसके प्रभाव को धीमा कर देता है।

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :

अभ्यास प्रश्न – A

2. – (ग), 2.– (ख), 3. – (क) अस्थिबंध, (ख) कार्टिलेज, (ग) मोटापा, (घ) मांसाहार, (ड.) लक्षण।

अभ्यास प्रश्न -B

2. – (घ), 2.– (घ), 3.– (क) कुंजल एवं शंखप्रक्षालन, (ख) वर्जित, (ग) सुपाच्य एवं सात्विक (घ) नियमित, (ड.) बढ़ाना।

अभ्यास प्रश्न - C

2. – (ख), 2.– (ग), 3.– (ग), 4. – (क) जीवनशैली (ख) कम (ग) कोलन

अभ्यास प्रश्न - D

2. – (ग), 2.– (ग), 3.– (घ), 4. – (क) बढ़ा (ख) दूर (ग) नहीं (घ) वज्रासन (ड.) कब्ज

अभ्यास प्रश्न - E

2. – (क), 2.– (ख), 3.– (घ), 4. – (घ), 5. – (क)

अभ्यास प्रश्न - F

2. मूलकारण 2. नाड़ीशोधन, भ्रामरी एवं शीतकारी 3. अम्लपित्त 4. वज्रासन 5. तीक्ष्ण, मसालेदार गरिष्ठ भोजन

अभ्यास प्रश्न - G

1. – (ग), 2.– (ख), 3.– (ख), 4. – (क), 5. – (क) 6. – (क) मनोकायिक रोग (ख) अल्सर (ग) कारण (घ) दूध (ड.) एण्टासिड

14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. स्वामी कर्मानंद (2008) रोग और योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत
2. स्वामी सत्यानंद सरस्वती (2004) समस्या पेट की समाधान योग का, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत
3. प्रो. रामहर्ष सिंह (2006) योग एवं योग चिकित्सा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली भारत
4. Bakhru, H.K. (2002) A Complete Handbook of Nature cure, Jaico Publishing House, Mumbai, Bharat
5. Nicholas A. Booh, Nicki R. colledge & Brian R. Walker (ed.) (2006) Davidson’s principles & Practice of medicine, Churchill Living stone Elsevier.

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. संधिवात रोग का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख कारण एवं लक्षण पर प्रकाश डालिए।
2. संधिवात रोग के प्रबंधन हेतु योग कार्यक्रम की विस्तृत रूपरेखा तैयार कीजिए।
3. कब्ज किस प्रकार स्वास्थ्य को प्रभावित करता है? इसके प्रमुख कारणों को विस्तार पूर्वक बताइये।
4. कब्ज के उपचार में योग की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए एक योग उपचार कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कीजिए।
5. अम्लपित्त में पाचन क्रिया किस प्रकार प्रभावित होती है? इसके कारण एवं लक्षण को बताते हुए योग चिकित्सा की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
6. अल्सर की गम्भीरता को स्पष्ट करते हुए इसके यौगिक समाधान प्रस्तुत कीजिए।

इकाई – 15 कमर दर्द, गर्दन दर्द एवं सायटिका के लक्षण कारण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 कमर दर्द
 15.3.1 कमर दर्द के कारण एवं लक्षण
 15.3.2 कमर दर्द का योगोपचार
14.4 गर्दन दर्द
 15.4.1 गर्दन दर्द के कारण एवं लक्षण
 15.4.2 गर्दन दर्द का योगोपचार
15.5 सायटिका
 15.5.1 सायटिका के कारण एवं लक्षण
 15.5.2 सायटिका का योगोपचार
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.09 संदर्भ ग्रंथ सूची
15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना :

पूर्व की इकाईयों में आप उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, मोटापा, मधुमेह, कब्ज, संधिवात, अम्लपित्त तथा अल्सर आदि के योग उपचार से भलि प्रकार परिचित हुए। प्रस्तुत इकाई में आप अस्थि एवं पेशिय तंत्र से संबंधित आज की आम समस्याएँ जैसे कमर दर्द, गर्दन दर्द एवं सायटिका के योग प्रबंधन के विषय में जान सकेंगे।

कमर दर्द, गर्दन दर्द एवं सायटिका आज एक सामान्य शारीरिक समस्या का रूप ले चुका है। इसका प्रमुख कारण हमारे कार्य करने की शैली, शारीरिक स्थिति, उचित व्यायाम की कमी, आराम तलब जीवन आदि माना जाता है। कमर दर्द, पीठ दर्द, गर्दन दर्द मुख्यतः रीढ़ की हड्डी एवं उससे जुड़ी हुई पेशियॉ, उपास्थि, स्नायु आदि में गड़बड़ी या असंतुलन के कारण उत्पन्न होता है। सायटिका स्नायु तंत्र से संबंधित रोग है जिसमें एक प्रकार की खास स्नायु में आये व्यतिरेक की वजह से दर्द उत्पन्न होता है। यह स्नायु हमारे रीढ़ में स्थित मेरूरज्जू के निचले हिस्से से निकल कर पैर के नीचे तक स्नायविक आपूर्ति करता है। सायटिका दर्द प्रायः नितंब से शुरू होकर पैर के निचले भाग तक फैलता जाता है जिससे रोगी को चलने, बैठने आदि शारीरिक क्रिया कलाप में अत्यंत दिक्कत होती है।

इन रोगों के आधुनिक उपचार प्रायः दर्द निवारक दवा एवं अनियंत्रित अवस्था में शल्य क्रिया द्वारा होता है। इस इकाई में आप इन रोगों की विभिन्न पक्षों के विषय में तथा इसके योग उपचार से अवगत होंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ पायेंगे –

- कमर दर्द के प्रमुख कारण एवं लक्षण
- कमर दर्द निवारण हेतु योग उपचार एवं अन्य सुझाव
- गर्दन दर्द के प्रमुख संभावित कारण एवं लक्षण
- गर्दन दर्द की समस्या को दूर करने हेतु योग उपचार एवं अन्य उपयोगी सुझाव
- सायटिका के कारण एवं लक्षण
- सायटिका दर्द से मुक्ति हेतु योग उपचार

15.3 कमर दर्द (Backache)

यह ऐसी समस्या है जिससे विश्व के लगभग 60–80 प्रतिशत व्यक्ति अपने जीवन काल में कभी न कभी अवश्य अनुभव करते हैं। वर्तमान समय में हमारे कार्य पद्धति में आये बदलाव जिसमें कुर्सी पर बैठकर लम्बे समय तक एक ही शारीरिक स्थिति में कार्य करना, घर एवं कार्यालय में आराम तलब जीवन आदि के कारण पीठ एवं कमर की मांसपेशियों एवं नसों में अपर्याप्त रक्त आपूर्ति के कारण लचीलापन में कमी तथा तनाव आदि के कारण इस प्रकार के दर्द उत्पन्न होते हैं। यह दर्द प्रायः कमर के उपरी एवं निचले हिस्से को प्रभावित करता है। जब रीढ़ की हड्डी के चारों ओर सहारा देने वाली पेशियॉ दीर्घकाल तक कठोर एवं असुविधाजनक स्थिति के कारण संकुचित हो जाती है तब उस हिस्से में दर्द उभरता है। देर तक एक ही शारीरिक आकृति में कुर्सी तक बैठे रहना या मोटर वाहन चलाना या उस पर बैठना भी इस प्रकार के दर्द का कारण हो सकता है। दीर्घकालिन कमर एवं पीठ दर्द दिन के अंतिम प्रहर या संध्या काल में अधिक देखा जाता है। ऐसी स्थिति में नियमित योगाभ्यास करने से शीघ्र लाभ मिलता है।

दर्द का वर्गीकरण :

1.यांत्रिक दर्द (मेकेनिकल पेन) लगभग 90 प्रतिशत कमर दर्द या पीठ दर्द इसी कारण उभरता है जो कि प्रायः 20–55 वर्ष के लोगों को प्रभावित करता है। इसकी शुरूआत तीव्र होता है जो किसी भारी वस्तु को अचानक झटके के साथ उठाने से या झुकने या मुड़ने से संबंधित है।

2.अयांत्रिक दर्द – इसमें दर्द का कारण कोई यांत्रिक क्रियाकलाप न होकर अन्य रोग जैसे संक्रमण, फ्रैक्चर, क्षयकारी संधिवात आदि होते हैं।

3.सूजन से उत्पन्न दर्द – यहॉ दर्द उत्पन्न होने का कारण अन्य रोग जैसे स्पोण्डिलाइटिस आदि माना जाता है। जिसकी शुरूआत 30 वर्ष की उम्र या उससे पहले हो जाता है।

4.अन्य विशिष्ट कारणों से उत्पन्न होने वाले कमर या पीठ दर्द जैसे अन्तराकशेरूकीय डिस्क का प्रोलेप्स्ड, डिस्क का फटना, पेशियों का कड़ापन तथा कोमल दर्द वाहिनी तंत्रिकाओं का उद्दीपन आदि माना गया है। इस प्रकार की स्नायु दर्द बहुत ही गम्भीर तीक्ष्ण, चुभन पैदा करने वाला होता है। यह कभी–कभी कमर से शुरू होकर घुटने एवं पैर

तक फैल जाता है। यह दर्द खासने, छिंकने एवं मल त्याग के समय अधिक बल लगाने पर और भी अधिक तीव्र हो जाता है। तीर्व पीठ दर्द में रोगी के लिए चलना फिरना असंभव हो जाता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में कमर दर्द, पीठ दर्द आदि के निदान हेतु एक्स–रे, एम. आर. आई., सी. टी. स्केन आदि तकनीक प्रयोग में लाई जाती है।

मेरूदण्ड या रीढ़ की हड्डी की संरचना– मनुष्य का मेरूदण्ड एक खोखली नली की भाति है जिसमें कुछ 33 अस्थियॉ होती है जिसे रीढ़ की हड्डी या कशेरूका (वर्टिब्रा) कहते हैं। ये कशेरूकाएँ एक के उपर एक रखी होती हैं जैसे छल्ला हो तथा मजबुत मेरूदण्डीय पेशियों से जकड़ी होती है। प्रत्येक दो कशेरूकाओं के बीच एक गद्दी की भाति जोड़ होता है। यह गद्दी (डिस्क) फाइब्रो कॉर्टिलेज की बनी होती है जिसमें एक प्रकार का तैलीय पदार्थ भरा होता है जो चिकनाई प्रदान करता है। ये आघात अवरोधक की तरह कार्य करते हैं। यही कारण है कि मस्तिष्क का निचला हिस्सा अर्थात् मेरूरज्जू (स्पाइनल कार्ड) तथा सभी आंतरिक अवयय चलने–फिरने की स्थिति में धक्कों के अघातों से सुरक्षित रहते हैं। इन गद्दीयों में जेली के समान गाढ़ा द्रव भरा रहता है। ये सभी कशेरूकाएँ आपस में एक दूसरे से लिगामेण्ट से भली प्रकार बंधी रहती है।

स्लिप डिस्क : प्रायः कमर के निचले हिस्से में जब अत्यधिक दबाव पड़ता है तो अंतराकशेरूकीय गद्दी में दरार आ जाती है या वह फट जाती है, यही अवस्था स्लिप डिस्क कहलाती है। डिस्क फटने से अंदर का गाढ़ा चिपचिपा द्रव बाहर बहकर स्नायु पर दबाव डालने लगता है। जिससे असहनीय पीड़ा या दर्द होता है। यह दर्द स्थाई बन जाती है तथा कमर की चौथी एवं पॉचवी नम्बर की कशेरूकाओं या उसके उपर नीचे घुमती रहती है। यह स्थिति उन लोगों में आने की संभावना बढ़ जाती है जो अधिकांश समय कुर्सी पर बैठकर बिताते हैं या फिर जिनके कमर के आस–पास के लिगामेंट्स कमजोर एवं दुर्बल होते हैं। झुककर भारी बोझ उठाने से भी इस प्रकार के दर्द उभर सकता है।

इस प्रकार स्लिप डिस्क में दर्द का दौरा बार–बार आता है तथा यह अवस्था लम्बे समय तक बनी रहती है। परिणामस्वरूप रोगी उठने–बैठने, चलने–फिरने में परेशानी महसुस करता है। थोड़ा सा भी झुकना, मुड़ना या किसी अन्य प्रकार के तनाव उसे और पीड़ित कर देता है। इस प्रकार के रोगी को बिस्तर पर लेटे रहने से दर्द में आराम मिलता है। लेटे रहने के कारण शरीर दुर्बल हो जाता है तथा रोगी उदास–निराश–खिन्न तथा झुंझलाया रहता है। इस मानसिक विकृति के कारण उसका निजी, पारिवारिक, दांपत्य एवं सामाजिक जीवन असंतुलित हो जाता है। इस प्रकार यहॉ आपने कमर दर्द की अवधारणा से अवगत हुए।

15.3.1 कमर दर्द के लक्षण एवं कारण

कमर दर्द के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं–

- कमर दर्द के अधिकांश स्थिति में प्रायः दर्द पीठ के मध्य एवं निचले हिस्से में होता है। यह दर्द कमर एवं नितंब के दोनों हिस्से में भी फैल सकता है।
- तीव्र दर्द की स्थिति में रोगी का चलना फिरना तक मुस्किल हो जाता है तथा वह बिस्तर पर लेटा रहता है। लगभग 90 प्रतिशत कमर या पीठ दर्द का कारण लम्बर स्पाण्डिलोसिस माना जाता है। यह एक प्रकार का क्षयकारी रोग है जिसमें

अंतराकशेरूकीय गद्दी अथवा कशेरूका नाजुक एवं आकार में विकृत हो जाता है परिणामस्वरूप मेरूदण्ड का लचीलापन कम हो जाता है।

कमर दर्द के प्रमुख कारण :

- मांसपेशिय तनाव या ऐंठन
- तनावपूर्ण जोड़, खराब शारीरिक भंगिमा जो कि मुलायम एवं गद्देदार कुर्सी पर लम्बे समय तक बैठकर आता है
- नियमित व्यायाम की कमी से मांसपेशियों का कठोर एवं तनावग्रस्त होना, पोषण की कमी
- कुछ तीव्र रोग भी कमर दर्द के कारण हो सकते हैं जैसे गुर्दा एवं प्रोस्टेट ग्रंथि की समस्या, स्त्रियों की समस्या, गठिया, संधिवात, इन्फ्लूएन्जा आदि।
- लम्बे समय तक एक ही शारीरिक भंगिमा में बैठने से उत्पन्न तनाव या खिंचाव।
- वजन उठाने में असावधानी
- उंचे एड़ी वाले चप्पल जूते का इस्तेमाल–उंचे ऐड़ी के जूते–चप्पल पहनने से कमर एवं अन्य पेशियों में तनाव एवं खिचाव पैदा होता है।
- गद्देदार सोफे, बिस्तर का उपयोग भी पीठ एवं कमर दर्द का कारण हो सकता है
- भावनात्मक आघात में भी दर्द उभरने की संभावना रहती है
- आधुनिक आराम तलब जीवन, जिससे मोटापा बढ़ता है, यह मोटापा भी पीठ एवं कमर के मांसपेशियों पर अनावश्यक दबाव या खिंचाव डालता है जिससे पीठ एवं कमर दर्द उभरने की संभावना रहती है। जब मांसपेशियों का पर्याप्त व्यायाम नहीं होता है तो वह कमजोर एवं दुर्बल हो जाता है जिससे छोटे आघात भी नुकसान पहुॅचा सकता है। इस प्रकार आप कमर दर्द के प्रमुख कारणों एवं लक्षणों से परिचित हो गये होंगे।

अभ्यास प्रश्न – A

सही विकल्प का चयन कीजिए –

1. कमर दर्द का संबंध है
   (क) हृदय संस्थान से
   (ख) अस्थि एवं पेशिय संस्थान से
   (ग) गुर्दा से
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. कमर दर्द का प्रमुख कारण है
   (क) व्यायाम की कमी
   (ख) आधुनिक आराम तलब जीवन
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. रीढ़ की हड्डी की सहायक पेशियों के कमजोर व कठोर होने से होता है।
   (क) पेट का दर्द
   (ख) पीठ एवं कमर का दर्द
   (ग) उपरोक्त दोनों

(घ) इनमें से कोई नहीं
4. स्लिप डिस्क कारण हो सकता है
   (क) सरदर्द का
   (ख) पेट दर्द का
   (ग) कमर दर्द का
   (घ) उपरोक्त सभी का
5. दो कशेरूकाओं के मध्य पाई जाती है
   (क) अंतराकशेरूकीय गद्दी
   (ख) स्नायु जाल
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
   (क) कशेरूकीय गद्दी के अंदर............भरा रहता है।
   (ख) अनियंत्रित मोटापा पीठ एवं कमर की पेशियों में ....पैदा करता है।
   (ग) तीव्र पीठ एवं कमर दर्द में रोगी का चलना–फिरना.............हो जाता है।
   (घ) ....कुर्सी या बिस्तर पर लेटने या बैठने की आदत कमर एवं पीठ दर्द को आमंत्रित करना है।
   (ड.) झटके से वनज उठाना ....का कारण हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न – A

सही विकल्प का चयन कीजिए –

1. कमर दर्द का संबंध है
   (क) हृदय संस्थान से
   (ख) अस्थि एवं पेशिय संस्थान से
   (ग) गुर्दा से
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. कमर दर्द का प्रमुख कारण है
   (क) व्यायाम की कमी
   (ख) आधुनिक आराम तलब जीवन
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. रीढ़ की हह्डी की सहायक पेशियों के कमजोर व कठोर होने से होता है।
   (क) पेट का दर्द
   (ख) पीठ एवं कमर का दर्द
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. स्लिप डिस्क कारण हो सकता है
   (क) सरदर्द का
   (ख) पेट दर्द का
   (ग) कमर दर्द का
   (घ) उपरोक्त सभी का

5. दो कशेरूकाओं के मघ्य पाई जाती है
   (क) अंतराकशेरूकीय गद्दी
   (ख) स्नायु जाल
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
   (क) कशेरूकीय गद्दी के अंदर............भरा रहता है।
   (ख) अनियंत्रित मोटापा पीठ एवं कमर की पेशियों में ....पैदा करता है।
   (ग) तीव्र पीठ एवं कमर दर्द में रोगी का चलना–फिरना.............हो जाता है।
   (घ) ....कुर्सी या बिस्तर पर लेटने या बैठने की आदत कमर एवं पीठ दर्द को आमंत्रित करना है।
   (ड.) झटके से वनज उठाना ....का कारण हो सकता है।

कमर दर्द का आधुनिक चिकित्सा : लम्बे समय तक यदि स्लिप डिस्क की समस्या बनी रहे तो चिकित्सा विज्ञान में उसे शल्य क्रिया द्वारा उपचार किया जाता है। शल्य चिकित्सा के अंतर्गत फटी या क्षतिग्रस्त डिस्क को निकाल कर मेरूदण्ड के दोनों अस्थियों को जोड़ दिया जाता है या कृत्रिम डिस्क स्थानांतरित कर दिया जाता है। इससे रोगी का राहत मिलता है। परन्तु पुनः कभी–कभी दर्द उभर आता है जिससे स्थिति और बिगड़ जाती है। प्रारंभिक अवस्था में कमर दर्द के उपचार हेतु चिकित्सक रोगी को कमर में बांधने के लिए एक प्रकार का बेल्ट देता है, परन्तु यह भी स्थाई समाधान नहीं होगा। दर्द एवं सूजन की स्थिति में उस स्थान पर बारी–बारी से ठण्ड़ी एवं गर्म पट्टी लगाने से आराम मिलता है। हल्की मालिस भी आराम पहुॅचा सकता है। दर्द निरोधक दवा या तनाव ग्रस्त पेशियों को शिथिल करने वाले दवा भी प्रयोग में लाई जाती है। इन सब उपायों का तत्काल एवं अस्थाई लाभ मिलता है।

15.3.2 कमर दर्द का योगोपचार : अत्यधिक पीड़ा एवं दर्द की अवस्था में योगाभ्यास करना खास कर शरीर को गति प्रदान करने वाला आसन करना संभव नहीं है। अतः ऐसे स्थिति में बिना गद्देदार बिछावन पर पेट के बल लेटना आराम दायक होता है। इसी स्थिति में मकरासन का अभ्यास क्षतिग्रस्त अंतराकशेरूकीय गद्दी एवं स्नायुयों पर तनाव कम करता है। पेट के बल लेटकर ही एक पैर को छाती तक लाकर विश्राम करना भी आरामदायक होता है।

जैसे–जैसे पीड़ा क्रमशः कम होता है अन्य आसनों का क्रमिक अभ्यास कुशल योग चिकित्सक के मार्गदर्शन में करना जिससे कशेरूकाओं एवं उसकी मांसपेशियॉ, लिगामेंट्स आदि मजबूत हो सकें तथा उचित रक्त प्रवाह बना रह सके। पीछे की ओर झुंकने वाले आसन रोगी के लिए लाभदायक होता है। ये आसन हैं–मकरासन, अद्वासन एवं मत्स्यक्रीड़ासन में विश्राम के बाद सर्पासन, अर्द्धशलभासन, सरल धनुरासन, भुजंगासन, शलभासन, उष्ट्रासन, वज्रासन, मेरूवक्रासन, भूनमनासन आदि का अभ्यास करना चाहिए। उपरी पीठ एवं कंधे के व्यायाम हेतु द्विकोनासन, गोमुखासन, गरूड़ासन, मार्जारी आसन आदि का अभ्यास करना चाहिए। इनमें से प्रमुख आसनों की विधि इस प्रकार है–

- अद्वासन : पेट के बल लेटकर पैर सीधे रखें। दोनों भुजाओं को सामने की ओर सिर को स्पर्श करते हुए फैलायें। शरीर को पूरी तरह शिथिल कर दें।

- मत्सक्रीड़ासन : पेट के बल सीधे लेटकर एक पैर को मोड़कर छाती तक ले आयें। इस स्थिति में विश्राम करें।
- वज्रासन : घुटनों के बल बैठ जायें। पंजों को पीछे फैलाकर पैर के अंगूठे को दूसरे अंगूठे पर रखें। घुटनें पास–पास हो तथा ऐड़ीयों को फैलाकर रखें तथा नितंबों को पैरों के बीच रखें, ऐडियॉ कुल्हों की ओर रहना चाहिए। हथेलियों को घुटनों पर रखकर शांत एवं स्थिर रहना चाहिए।
- उष्ट्रासन : वज्रासन में बैठकर घुटनों के बीच फासला रखें तथा ऐड़ियॉ नितंबों के दोनों ओर रखें। पंजो का उपरी भाग जमीन पर हो। अब घुटनें के बल खड़े हो जायें धड़ को दायीं तरफ मोड़कर पीछे झुंकते हुए दायें हाथ से दायें एड़ी को पकडें, ठीक उसी प्रकार बायें हाथ से बायें एड़ी को पकड़ें। गर्दन तथा शरीर को जितना संभव हो सके पीछे की ओर झुकाऍ। यथासंभव रूकने के पश्चात् वापस आ जाऐं तथा शशांकासन में विश्राम करें।
- अर्द्धशलभासन : पेट के बल सीधे लेटकर दोनों हाथ की हथेलियों को जाघों के नीचें रखें। अब बायें या दायें पैर को सीधा रखते हुए जितना संभव हो उपर उठायें। कुछ देर यथा संभव रूककर पैर को पुनः जमीन पर ला कर विश्राम करें। इसी अभ्यास को दोनों पैरों से बारी–बारी से दुहरायें।
- शलभासन : अर्द्ध शलभासन की तरह पेट के बल सतह पर लेटकर हथेलियों को जाघों के नीचे रख लें। अब पैर को तान कर उपर उठायें। इस स्थिति में यथा संभव रूककर फिर पूर्व स्थिति में आकर विश्राम करें।
- मेरूवक्रासन : पैरों को सीधे सामने की ओर फैलाकर बैठें। नितंबों के पीछे दोनों ओर दोनों हाथों को बगल में रखें। हाथों की उंगलियॉ बाहर की ओर खुली रखें। बायें हाथ को दायें हाथ की बगल में एवं बायें पैर को दायें घुटने के समीप बाहर की ओर रखें। दायें हाथ को कुछ पीछे की ओर ले जाकर सिर और कमर दायें ओर मोडें। यह अभ्यास दोनों ओर 10–10 बार दुहरायें।
- भूनमनासन : पैरों को सीधे सामने की ओर फैला कर बैठें। रीढ़ की हड्डी सीधा रहे। दोनों हाथों को बायें नितंब के बगल में रखें। उपरी धड़ बायें ओर 90 डिग्री अंश पर मोडें, ध्यान रखें नितंब न उठने पाये। शरीर को झुकाकर नासिका से भूमि को स्पर्श करने का प्रयास करें। तत्पश्चात् सिर को सीधाकर प्रारंभिक स्थिति में आ जायें।
- गोमुखासन : पैर को सीधे फैलाकर बैठें। बायें पैर को घुटने से मोड़ते हुए पैर की एड़ी दायें नितंब के समीप रखें। ठीक उसी प्रकार दायें पैर को मोड़कर बायें जांग के उपर रखें। घुटनें एक दूसरे के उपर रहना चाहिए। बायें हाथ को पीठ के पीछे ले जायें। दायें हाथ को भी दाहिने कंधे के उपर ले जाकर दोनों हाथों को पीठ पीछे हो सके तो बांध लें। धड़ सीधा व लम्बवत रहना चाहिए। इसी स्थिति में नेत्र बंद कर यथा संभव रूकें। फिर वापस आकर दूसरी ओर से इसी अभ्यास को दुहरायें।
- शिथिलिकरण हेतु मकरासन, अद्वासन एवं मत्स्यक्रीड़ासन उपयुक्त अभ्यास है। यह अभ्यास 15 से 20 मिनट तक विश्राम के लिए उपयुक्त है।

प्राणायाम : वज्रासन में बैठकर नाड़ीशोधन की 10–20 आवृति एवं भ्रामरी प्राणायाम 10–15 मिनट उपयोगी होगा।

ध्यान : अजपा जप अर्थात् श्वास–प्रश्वास में सजगता केन्द्रित करना। योग में मूलधार एवं आज्ञाचक्र आदि की अवधारणा है। अतः मूलाधार से आज्ञाचक्र एवं आज्ञा से मूलाधार चक्र तक श्वास–प्रश्वास को पूरी सजगता एवं तनाव रहित होकर अभ्यास करना अत्यंत लाभदायक है। प्रत्येक श्वास के साथ पीठ के पेशियों को शिथिल होते एवं प्राण उर्जा का सघन प्रवाह होते हुए अनुभव करना चाहिए। इससे मन में शांति व शरीर की तकलीफ में कमी आऐगी।

आहार संबंधी सुझाव – भोजन ऐसा हो जिससे कब्ज की संभावना बिल्कुल न रहे। फल एवं सब्जियों के सूप व रस पीड़ा काल के लिए उपयोगी आहार माना गया है। मूंग की दाल की खिचड़ी भी लाभदायक होता है। सब्जियों के सूप एवं खिचड़ी कब्ज से दूर रखता है। जैसे–जैसे पीड़ा में सुधार होता जाय भोजन में दलिया, दाल, चावल, सब्जी, रोटी आदि सम्मिलित किया जा सकता ळें

मांसाहार, दूध एवं दुग्ध उत्पाद, तली हुई भोजन, घी आदि से भरसक बचना चाहिए।

अन्य उपयोगी सुझाव :

- सामने झुकने वाले कोई भी काम या आसन कम से कम छः महिने तक बिल्कुल बंद रखना चाहिए।
- अधिक देर तक कुर्सी पर नहीं बैठना चाहिए तथा लगातार गाड़ी ड्राइव करने से बचना चाहिए।
- भारी बोझ उठाने से बचना चाहिए। बेलचा एवं बगीचे में काम करना रोक दें।
- उॅची एड़ी वाले चप्पल–जूते न पहनें।
- अधिक गद्देदार बिस्तर का प्रयोग न करें।
- ड्राइव करते समय सीट बेल्ट अवश्य पहनें।

इस प्रकार उचित रहन–सहन, आहार–विहार एवं योग चिकित्सा से रोगी के ठीक होने की संभावना बढ़ जाती है। अतः कमर एवं पीठ दर्द के यौगिक समाधान से आप परिचित हो गये होगें।

अभ्यास प्रश्न – B

सही विकल्प का चयन कीजिए–

1. कमर दर्द में वर्जित है
   (क) आगे झुंकने वाले आसन
   (ख) पीछे झुंकने वाले आसन
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. तीव्र पीठ या कमर दर्द में विश्राम हेतु उपयुक्त है
   (क) अद्वासन
   (ख) मत्स्यक्रीड़ासन
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. आधुनिक चिकित्सा में स्लिप डिस्क का अंतिम उपचार है

(क) शल्य क्रिया
(ख) दर्द निरोधक दवा
(ग) हल्की मालिस
(घ) उपरोक्त सभी

4. कमर दर्द के रोगी को बचना चाहिए
(क) भारी बोझ उठाने से
(ख) बगीचे में आगे झुकने वाले कार्य करने से
(ग) गद्दीदार बिस्तर से
(घ) उपरोक्त सभी

5. तीव्र पीड़ा की स्थिति में कमर दर्द के रोगी के लिए उपयुक्त आहार है
(क) मांसाहार
(ख) दाल–रोटी
(ग) सब्जि फल के सूप एवं खिचड़ी
(घ) उपरोक्त सभी

14.4 गर्दन दर्द (Neck pain) :

जैसा कि आप जानते हैं कि कमर दर्द की तुलना में गर्दन दर्द कम देखा जाता है। गर्दन दर्द पेशेवर कार्य क्षेत्र में लोगों की क्षमता को अधिक प्रभावित करता है। यह रोग अक्सर 40 वर्ष के बाद के उम्र में अधिक देखा जाता है। आजकल भारी बस्तों के बोज से यह बच्चों में भी देखा जा सकता है। बच्चे जब बस्ते का भारी बोझ लेकर चलते हैं तो अक्सर कंधे आगे की ओर झुका लेते हैं जिससे उसके नाजुक पेशियों में तनाव के कारण दर्द उत्पन्न होता है। गर्दन दर्द अक्सर यांत्रिक कारणों एवं क्षय कारी रोगों की वजह से उत्पन्न होता है। अधिकांशतः गर्दन दर्द में कोई भी रचनात्मक विकृति नहीं देखा जाता है परन्तु कुछ स्थिति में यह उपस्थित होता है। यहॉ दर्द की शुरूआत प्रायः गर्दन एवं कंधे से होकर धीरे–धीरे कनपटी, चेहरे, कंधे की चपटी अस्थियॉ (स्केपुला), बांह आदि में फैल जाता है। कभी–कभी यह छाती तक भी फैल सकता है। यांत्रिक कारणों से उत्पन्न गर्दन दर्द प्रायः तीव्र होता है। तथा असमान रूप से गर्दन की हलचल को प्रभावित करता है। विकरित होने वाले गर्दन दर्द प्रायः हड्डियों के बढ़े हुए भाग एवं डिस्क प्रोलेप्स्ड के दबाव से उत्पन्न होता है। अधिकांश डिस्क प्रोलेप्स्ड (70 प्रतिशत) सर्वाइकल 6 (C_6) डिस्क को प्रभावित करता है जो C_7 रूट पर दबाव डालता है। 20 प्रतिशत स्थिति में C_5 भी प्रभावित होता है। क्षयकारी कारणों में उम्र के साथ ही अन्य कारणों जैसे चोट आदि की वजह से गर्दन की हड्डियों में परिवर्तन आ जाते हैं। इससे अंतराकशेरूकीय गद्दी के मध्य का स्थान कम हो जाने से रोगी को गर्दन में दर्द महसुस होता है। यह गर्दन क्षेत्र की रीढ़ की हड्डियों में दीर्घ अंतराल तक कड़ापन रहने तथा उसमें उतरोत्तर क्षरण हो जाने के कारण होता है जिसे 'ग्रीवा कशेरूकीय शोथ' भी कहा जाता है। चिकित्सकीय परीक्षण में प्रायः गर्दन दर्द से प्रभावित व्यक्ति के गर्दन की चौथी, पॉचवी एवं छठी सर्वाइकल कशेरूका के मध्य विकृति स्पष्ट नजर आती है। कभी–कभी इनमें कोई विकृति दिखाई नहीं देती। चिकित्सा विशेषज्ञ का मानना है कि रीढ़ की हड्डी की विकृति में, दो कशेरूकाओं के बीच जो गद्दी होती है वह सिकुड़कर नष्ट होने लगती है तथा उस स्थान पर हड्डी की मोटी उभार दिखाई देती है जिसे आस्टियोफाइट्स कहते हैं। उस स्थान की रक्त नलिका सिकुड़

कर छोटी हो जाती है। इस रक्त नलिका से रीढ़ की हड्डी एवं मस्तिष्क के पिछले भाग को रक्त मिलता है। इन गद्दी के सिकुडने से इनकी रक्त नलिकाओं तथा नसों (स्नायु) पर अनावश्यक दबाव पड़ता है जिससे रोगी के गर्दन में तनाव, पेशियों में जकड़न, गर्दन मोड़ने एवं घुमाने में तकलीफ कंधों में भारीपन एवं दर्द, यह कंधों से फैलकर हाथों तक पहुॅच जाता है, हाथों का शून्य होना, कम्पन्न होना, चक्कर आना, सरदर्द बना रहना आदि लक्षण परिलक्षित होते हैं। इन लक्षणों के अतिरिक्त भी लक्षण हो सकते हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि कौन सा नस बढ़ी हुई कशेरूकाओं के बीच दबी हुई है या प्रभावित हो रही है।

गर्दन दर्द के निदान हेतु चिकित्सा विज्ञान में प्रभावित क्षेत्र का एक्स–रे, सी.टी. स्केन, एम.आर.आइ. आदि परीक्षणों से रोग की पुष्टि होती है। इन परीक्षणों में गर्दन क्षेत्र के हड्डियों के अंतराल का कम होना, हड्डियों के किनारों का बढ़ जाना, अंतराकशेरूकीय गद्दीयों का सिकुड़न आदि संकेत मिलते हैं।

15.4.1 गर्दन दर्द के कारण एवं लक्षण :

गर्दन दर्द के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं–

- प्रारंभ में दर्द रूक–रूक कर होता है परन्तु बाद में दर्द बढ़ जाता है।
- गर्दन में तनाव, मांसपेशियों में तीव्र या जीर्ण जकड़न
- गर्दन हिलाने–डुलाने एवं घुमाने में पीड़ा
- कंधों में दर्द एवं भारीपन रहना, बाद में यह कंधों से फैलकर बांह तथा हाथों तक पहुॅच जाता है।
- हाथों का सुन्न होना या कम्पन होना
- कभी–कभी हाथ एवं बांह की पेशियों में कमजोरी महसुस होना
- सरदर्द बना रहना, चक्कर आना

गर्दन दर्द के प्रमुख कारण :

- अंतराकशेरूकीय गद्दी का सिकुड़ना
- बाह्य आघात लगना जैसे तेज वाहन चलाते समय एकाएक ब्रेक लगाने से गर्दन में झटका लगना
- संक्रमण, अस्थि टी.वी., रूमेटाइट आर्थराइटिस, सर्वाइकल स्प्रेन, पोलीमायलजिया रूमेटिका, स्पांडिलाइटिस, ऑस्टियोपोरोसिस, ऑस्टियोमेलेसिया, पेगेट्स रोग, फाइब्रोमायलजिया आदि रोगों के कारण भी गर्दन दर्द होने की संभावना रहती है।
- लगातार एवं नियमित गर्दन झुकाकर कार्य करने वाले व्यक्तियों में भी गर्दन दर्द की संभावना रहती है।
- ॅउची मोटी तकिया लगाकर सोने की आदत
- बोझ उठाते समय शारीरिक असंतुलन के कारण
- दैनिक जीवन में व्यायाम की कमी, जिससे पेशियों के कमजोर एवं लचीलापन में कमी के कारण क्षतिग्रस्त होने की संभावना बढ़ जाती है।

उपरोक्त विशलेषण से आप गर्दन दर्द के स्वरूप, कारण एवं लक्षणों से परिचित हो गये होंगे।

अभ्यास प्रश्न – **C**

सही विकल्प का चयन करें–

1. गर्दन दर्द प्रायः देखा जाता है
   (क) प्रायः 40 वर्ष से कम उम्र में
   (ख) 40 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों में
   (ग) बच्चों में
   (घ) उपरोक्त सभी में
2. गर्दन दर्द में प्रायः प्रभावित होता है
   (क) गर्दन क्षेत्र की चौथी, पॉचवी एवं छठी हड्डियॉ
   (ख) पहली एवं दूसरी हड्डियॉ
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. गर्दन के हड्डियों के मध्य स्थान कम होने से होता है
   (क) पेट दर्द
   (ख) पैर दर्द
   (ग) गर्दन दर्द
   (घ) सभी
4. गर्दन क्षेत्र के रीढ़ की हड्डी में दीर्घकाल तक का कड़ापन कहलाता है
   (क) ग्रीवा कशेरूकीय शोथ
   (ख) डिस्क प्रोलेप्स्ड
   (ग) दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
5. रीढ़ के हड्डियों की विकृति में हड्डियों के बढ़े हुए अतिरिक्त भाग कहलाता है
   (क) ऑस्टियोपोरोसिस
   (ख) ऑस्टियोफाइट्स
   (ग) दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
   (क) गर्दन दर्द..................तंत्र से संबंधित रोग है।
   (ख) गर्दन को देरे तक झुकाकर कार्य करने से ....होने की संभावना रहती है।
   (ग) गर्दन दर्द की पुष्टि हेतु ....आदि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।
   (घ) ....भी गर्दन दर्द का एक कारण हो सकता है।
   (ड.) अंतराकशेरूकीय गद्दी में सिकुड़न ....के निदान की पुष्टि करता है।

15.4.2 गर्दन दर्द का योगोपचार :योग उपचार से पूर्व प्रचलित आधुनिक चिकित्सा की संक्षिप्त चर्चा करना यहॉ उचित समझते हैं। प्रचलित आधुनिक चिकित्सा के अंतर्गत दर्द निवारक दवाओं का प्रयोग, पीड़ाग्रस्त रीढ़ के हड्डियों के बीच कार्टिकोस्टीरायड की सुई भी रोग की उॅच्च अवस्था में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त फिजियोथेरेपी में ट्रेक्शन, हल्की मालिश, सर्वाइकल बेल्ट आदि का प्रयोग किया जाता है जिससे आराम मिलता है।

योग चिकित्सा गर्दन दर्द के प्रबंधन में अत्यंत सहायक है। यदि प्रारंभिक अवस्था में गर्दन दर्द का निदान हो जाय अर्थात् ग्रीवा प्रदेश में उपस्थित हड्डियों तथा पेशियों में आ रहे विकृति स्पष्ट हो जाय तो विशिष्ट योगाभ्यास खासकर आसन के आभ्यास से स्नायु, पेशियों आदि की विकृति में सुधार संभव है तथा गर्दन की स्थिति को पुनर्व्यवस्थित किया जा सकता है तथा गर्दन के हड्डियों में हो रहे क्षरण को रोका जा सकता है।

आसन : गर्दन दर्द के उपचार हेतु उपयोगी आसन इस प्रकार हैं–

1. मकारासनः – सर्वप्रथम किसी समतल स्थान पर चटाई या दरी बिछाकर पेट के बल लेट कर सिर और कंधों को धीरे–धीरे उपर उठायें तथा कोहनियों को जमीन पर रखते हुए ठुड्डी को हथेलियों पर टिकाएँ। दोनों कोहनियों के बीच कंधों के बराबर दूरी रखें। कोहनियों को आगे–पीछे कर आसन की आरामदायक स्थिति बनायें। कोहनियों को आगे बढ़ाने पर गर्दन में दबाव अनुभव होगा, जब तक संभव हो इसी स्थिति में बने रहें, तत्पश्चात् धीरे–धीरे वापस आ जायें। मकरासन गर्दन एवं मेरूदण्ड के शेष भाग के स्नायुओं को तनावमुक्त एवं दबावमुक्त करता है।

2. स्कंद चक्रासन अर्थात् कंधों को गोल–गोल घुमानाः – आराम से किसी आसन में बैठकर, दोनों हाथों को बगल की ओर फैलाकर कोहनियों से मोड़ते हुए हाथ की उँगलियों को कंधों पर रखें। अब कंधों को शिथिल रखते हुए गोल–गोल 10–20 बार आगे से पीछे की ओर तथा उतने ही संख्या में पीछे से आगे की ओर घुमाएँ। यह आसन कंधों तथा गर्दन के क्षेत्र रक्त संचार को बढ़ाकर पेशियों को लचीला बनाता है।
3. सर्पासनः – मकारासन के समान ही पेट के बल लेटकर दोनों हथेलियों को कंधे के पास रखें। हथेलियाँ जमीन पर रहे। अब सिर, गर्दन एवं कंधे को धीरे–धीरे उठायें। सुविधानुसार इसी स्थिति में ठहरे रहें तत्पश्चात् विश्राम की स्थिति में आ जायें।

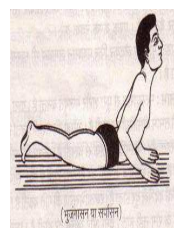

4. भुजंगासनः – उपरोक्त आसन की भांति पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को कंधे के बगल में रखते हुए नाभि प्रदेश के उपर के हिस्से को धीरे–धीरे उठायें। ध्यान रहे उस समय पीठ की मांसपेशियाँ एवं रीढ़ हड्डी का तनाव रहित एवं शिथिल रखें। यथासंभव इसी स्थिति में रूकने के पश्चात् धीरे–धीरे वापस आयें। इस अभ्यास को पॉच से दस बार दुहरायें। हर्निया, उदरीय व्रण, पेट के गम्भीर शल्य क्रिया के छः माह तक यह अभ्यास वर्जित है।
5. धनुरासनः – पेट के बल लेटकर दोनों पैर को घुटने से मोड़ते हुए नितंब की ओर लायें। अब दोनों हाथों से पैर के टखने को ठीक से पकड़ें। सांस भरते हुए कमर से पीछे तथा आगे के हिस्से को उपर की ओर यथासंभव उठाने का प्रयास करें। इसी स्थिति में क्षमतानुसार रूकने के बाद, धीरे–धीरे वापस आयें। 5–10 बार अभ्यास को दुहरायें। तत्पश्चात् शवासन में विश्राम करें। यह अभ्यास हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, हर्निया, उदरीय व्रण, कोलाइटिस आदि रोगों में वर्जित है।

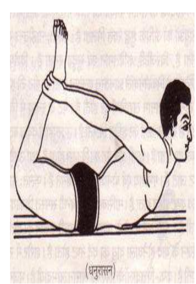

प्राणायाम : उपयुक्त प्राणायाम है नाड़ी शोधन एवं भ्रामरी।

1. नाड़ीशोधन प्राणायाम की विधिः – किसी भी आरामदायक आसन में बैठकर, बायें नासिका से गहरी श्वास लेकर पुनः उसी नासिका से धीरे–धीरे बाहर निकालें। यह क्रिया तीन बार दुहराएँ, तत्पश्चात् दायें नासिका से भी तीन बार गहरी श्वास भरकर पुनः उसी नासिका से बाहर छोड़ें। अब दोनों नासिका से एक साथ श्वास भर कर, मुँह से धीरे–धीरे बाहर निकालें। ध्यान रहे श्वास लेने एवं छोड़ने का अंतराल बराबर रखें। यह नाड़ी शोधन प्राणयाम का एक आवृति माना जाता है। प्रारंभ में यह क्रिया बिना कुम्भक अर्थात् श्वास बिना अंदर–बाहर रोके ही कुछ सप्ताह तक 15–20 मिनट अभ्यास करें। तत्पश्चात् धीरे–धीरे कुम्भक का अभ्यास भी यथासंभव सहजतापूर्वक किया जा सकता है। संभव हो तो प्रत्येक अंदर आती श्वास के साथ दिव्य प्राण संचार एवं बाहर जाते श्वास के साथ शारीरिक एवं मानसिक विकारों को बाहर उत्सर्जित किये जाने की धारणा करें। यह विधि अत्यंत लाभदायक है। यह विधि गायत्री परिवार के संस्थापक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा बताई गई है।
2. भ्रामरी प्राणायाम की विधिः – किसी भी ध्यानात्मक आसन में सुखपूर्वक कमर, पीठ एवं गर्दन सीधी रखते हुए बैठे। ऑख बंद रखते हुए, दोनों हाथों की तर्जनी या अंगुष्ठ से कान को सहजता पूर्वक बंद कर लें। अब दोनों नासिका से गहरी श्वास लेकर, क्षमतानुसार कुछ देर रोक सकें तो रोककर, फिर भ्रमर की गुंजार करते हुए श्वास धीरे–धीरे बाहर छोड़ें। मस्तिष्क में इस ध्वनि तरंग को महसुस करें। ध्यान रहे अभ्यास के समय दोनों ओठ आपस में सटे हों तथा जबड़े थोड़े खुले हुए हों। यह अभ्यास तनाव, दर्द, रक्तचाप आदि को सामान्य बनाने में सहायक होता है तथा शारीरिक पुनर्निमाण प्रक्रिया को तेज करता है।
3. ध्यानाभ्यास हेतु वज्रासन में बैठकर अजपाजप का अभ्यास करना लाभदायक होगा।
4. शिथिलिकरण – गर्दन एवं सिर को पतली मुलायम तकिया का सहारा देते हुए योग निद्रा का पूर्ण अभ्यास लाभदायक होगा।
5. अन्य उपयोगी सुझाव : उपरोक्त आसानाभ्यास के अतिरिक्त यह व्यायाम गर्दन दर्द के लिए उपयोगी है–
    1. दोनों हाथ की हथेलियॉ ललाट पर रखें, सिर को आगे की ओर दबाव डाले तथा हथेलियों से रोककर तनाव आने दें।
    2. हथेलियों को सिर के पीछे की ओर रखकर, सिर को पीछे की ओर झुकाते हुए दबाव दें तथा हथेलियों से रोकें तथा तनाव आने दें।
    3. दायें हथेली को दायें कनपटी पर रखकर, सिर को दायीं ओर झुकाते हुए दबाव दे तथा हथेली से रोकें।
    4. यही प्रकिया बायें ओर से भी दोहराना है। प्रत्येक दबाव में 5–10 सेकण्ड का समय लगाते हुए 10–20 आवृति दोहराएँ।
        - अधिक देर तक गर्दन झुकाकर कार्य करने से बचें, यदि अनिवार्य हो तो बीच–बीच में गर्दन के हल्के व्यायाम अवश्य करते रहें।
        - उॅची मोटी तकिया के प्रयोग से बचें।

- ढ़ीली खटिया या उॅचे–नीचे गद्दे या अधिक गद्देदार बिस्तर का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- रोग की अवस्था में वजन उठाने से बचना चाहिए तथा गर्दन का बेल्ट बांधकर रहना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से आप गर्दन दर्द का योग उपचार से अच्छी तरह अवगत हो गये होंगे।

अभ्यास प्रश्न – D

सही विकल्प का चयन करें –

1. आधुनिक चिकित्सा में गर्दन दर्द निवारण हेतु प्रयोग किये जाते हैं
   (क) दर्द निवारक दवा
   (ख) कार्टिकोस्टीरायड दवा
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. योगासन के अभ्यास
   (क) गर्दन की स्थिति को पुनर्व्यवस्थित करता है
   (ख) पेशी एवं स्नायु के विकृति में सुधार करता है
   (ग) हड्डियों के क्षरण को रोकता है
   (घ) उपरोक्त सभी
3. गर्दन दर्द में विश्राम हेतु सबसे उपयुक्त आसन है
   (क) धनुरासन
   (ख) चक्रासन
   (ग) मकरासन
   (घ) उपरोक्त सभी
4. सर्पासन किया जाता है
   (क) पीठ के बल लेट कर
   (ख) पेट के बल लेटकर
   (ग) करवट लेटकर कर
   (घ) शवासन में
5. भ्रामरी प्राणायाम दूर करने में सहायक है
   (क) दांत दर्द को
   (ख) तनाव को
   (ग) पेट दर्द को
   (घ) उपरोक्त सभी को
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
   (क) गर्दन दर्द में गर्दन को अधिक देर तक...................कार्य नहीं करना चाहिए।
   (ख) गर्दन दर्द के रोगी को...................के प्रयोग से बचना चाहिए।
   (ग) ....बांधना गर्दन दर्द में लाभकारी होता है।
   (घ) धनुरासन का अभ्यास....................रोगी के लिए वर्जित है।

(ड.) वज्रासन में बैठकर ....का अभ्यास गर्दन दर्द में लाभकारी है।

15.5 सायटिका (Sciatica) :

यह स्नायु तंत्र से संबंधित एक गम्भीर रोग है। जिसमें शरीर की सबसे बड़ी स्नायु (सियाटिक नर्व) मुख्य रूप से प्रभावित होता है। यह सियाटिक स्नायु कमर क्षेत्र से निकल कर नितंभ, जांघ तथा पैर की ओर संवेदना संवाहित करता है। यह स्नायु जांघ की पेशियों में विभाजित होकर घुटने, पिण्डली तथा पैर में पीछे की ओर से फैली होती है। यह अन्य स्नायु की अपेक्षा आघात एवं सूजन से अधिक प्रभावित होती है। व्यक्ति के कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाला यह गम्भीर रोग माना जाता है।

सायटिका में तीव्र चुभन जैसा दर्द उभरता है। यह दर्द कमर की अंतिम तीन कशेरूकाओं अर्थात् L_3, L_4 एवं L_5 तथा नितंबीय दो कशेरूकाओं अर्थात् S_1 एवं S_2 के बीच के क्षेत्र में से बढ़ते हुए नीचे पैर के पीछले हिस्से तक जाता है। अंतराकशेरूकीय गद्दी के फटने या अपने स्थान से खिसकने से सियाटिक नर्व पर अनावश्यक दबाव पड़ता है, जिससे तीव्र दर्द अनुभव होता है। यह स्नायु कमर से होकर दोनों पैरों के पिछले भाग से जांघ एवं घुटने से होते हुए एड़ी तक पहुँचती है। यही कारण है कि सायटिका में नितंब, जांघ तथा टखनों में दर्द होता है। तीव्र दर्द की स्थिति में यदि रोगी खड़ा रहे या चलता रहे तो जांघ एवं पैर के निचले हिस्से में तनाव और बढ़ जाता है तथा दर्द असहनीय होते जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी को लेटकर विश्राम करना चाहिए। तीव्र दर्द की स्थिति में दर्द के स्थान के आस–पास की पेशियॉ बहुत जल्दी संकुचित हो जाती है। उस स्थान को सुरक्षाात्मक स्थिरता प्रदान करने के लिए पट्टी या प्लास्टर का प्रयोग किया जाता है। तीव्र दर्द की स्थिति में दर्द निवारक दवा का प्रयोग कर लकड़ी के तख्त पर हल्का पतला गद्दा डालकर लेटना लाभकारी होता है।

सायटिका का दर्द का दौरा रोगी को बारंबार आने से उठने–बैठने में परेशानी महसुस होता है। थोड़ा भी झुकना–मुड़ना या किसी अन्य प्रकार का तनाव जैसे छींकना, खांसना, मलत्याग के समय दबाव डालने से पीड़ा और बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी बिस्तर पर लेटे रहना अधिक पसंद करता है ताकि दर्द से आराम मिल सके। रोगी कमजोर एवं दुर्बल हो जाता है व सदा हताश–निराश–खिन्न रहता है। इस प्रकार के मानसिक विकृति के कारण उसका पारिवारिक सामाजिक व वैयक्तिक जीवन दैयनीय होता चला जाता है।

उपरोक्त विवेचन से आप सायटिका रोग से भली प्रकार से परिचित हुए होंगे। अब इसके कारण एवं लक्षण की चर्चा करेंगे।

15.5.1 सायटिका के लक्षण एवं कारण :

सायटिका के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं–

- रोगी में दर्द की शुरूआत या तो धीरे–धीरे या तो एकाएक भी हो सकता है। यह दर्द अत्यंत तीव्र, चुभने वाला होता है जो नितंब से शुरू होकर पिछले हिस्से से जांघ, पिंडली एवं एड़ी की ओर बढ़ जाता है।
- रोग की गम्भीर अवस्था में रोगी पिण्डली एवं पैर की मांसपेशियों में कमजोरी महसुस करता है।
- कभी–कभी दर्द की तीव्र अवस्था में रोगी खड़ा तक नहीं हो पाता है, रेंगने की स्थिति में आ जाता है।

- यदि दर्द अंतराकशेरूकीय गद्दी के फटने से शुरू हुआ है तो यह खासने–छिंकने, आगे झुकने, झटका लगने आदि स्थिति में और तीव्र हो जाता है। लेटकर आराम करने से यह दर्द कम होने लगता है।

सायटिका के प्रमुख कारणः –

- रीढ़ की हड्डी में किसी प्रकार का आघात, जिसमें सियाटिक स्नायु की जड़ या उसपर दबाव बढ़ जाता है।
- इस स्नायु के क्षेत्र में किसी प्रकार का संक्रमण होने से
- इस क्षेत्र की अंतराकशेरूकीय गद्दी के फटने या क्षतिग्रस्त होने या अपने स्थान से खिसकने के कारण
- आस्टियो आर्थ्राराइटिस के कारण
- अन्य कारण हैं– गर्भकाल, पेल्विस क्षेत्र में ट्यूमर, रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में किसी प्रकार की विकृति, कुबड़ आदि के कारण
- अचानक दौड़ते हुए, टहलते समय या वाहन चलाते समय सियाटिक स्नायु में आघात लगने से
- लम्बे समय तक खड़े रहने से, कुर्सी पर एक ही किनारे पर बैठे रहने से भी रोग के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।
- मेरूरज्जू के ट्यूमर, पेल्विस के मेलिगनेंट रोग, वर्टिब्रल बॉडी में टी.बी. आदि के कारण भी यह रोग उभर सकता है।

रोग का निदान – इस रोग के पुष्टि करने हेतु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में कई तकनीक प्रयोग में लाई जाती है जैसे लम्बर स्पाइन का एक्स–रे, अंतराकशेरूकीय गद्दी के क्षतिग्रस्त भाग या स्थान का अवलोकन हेतु सी.टी. स्केन किया जाता है तथा यदि कोमल उतक का साफ चित्र लेना हो तो एम.आर.आई. की मदद ली जाती है।

आधुनिक चिकित्सा के अंतर्गत इस रोग को नियंत्रित करने हेतु दर्द निरोधक दवा, कमर की पेशियों को बल देने वाले व्यायाम की सलाह रोगी को दिया जाता है। इसके अतिरिक्त स्थानिय एनेसथेटिक या कॉर्टिकोस्टेराइड दवा का प्रयोग किया जाता है। यदि इन सब दवा का कोई असर न दिखाई दे तो अंत में शल्य क्रिया द्वारा इसका उपचार किया जाता है।

15.5.2 सायटिका का योगोपचार : तीव्र पीड़ा की अवस्था में योगासन या अन्य अभ्यास कुछ दिनों तक छोड़ कर पूर्णतः विश्राम करना चाहिए। जैसे–जैसे पीड़ा एवं दर्द में सुधार हो तथा रोगी बैठने एवं चलने में सक्षम हो तब धीरे–धीरे कुशल योग चिकित्सक के मार्गदर्शन में योगाभ्यास आरंभ करना चाहिए। विश्राम के लिए सख्त तख्त अर्थात् पतले तथा कम गद्दे वाले लकड़ी के तख्त उपयोग में लाया जा सकता है। यहॉ योगासन का मुख्य उद्देश्य कशेरूकाऍ एवं मांसपेशियों के साथ ही लिगामेंट्स को मजबूत करना है तथा रक्त संचार को सुचारू बनाना है ताकि उस हिस्से में पोषक तत्व एवं ऑक्सीजन की आपूर्ति सुचारू हो सके तथा स्वास्थ्य लाभ जल्द मिल सके।

सायटिका के उपचार हेतु उपयुक्त आसन इस प्रकार हैं– मकरासन, मत्स्यक्रीड़ासन, सर्पासन, अर्द्धशलभासन, मार्जारी आसन, भुजंगासन, शलभासन, सरल धनुरासन, उष्ट्रासन, सरल चक्रासन, वज्रासन। इन आसनों की संक्षिप्त विधि की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

प्रारंभ सरल अभ्यास से करना चाहिए। जैसे–जैसे शरीर की क्षमता तथा अनुकूलनशीलता बढ़े अन्य उच्च आसन भी अभ्यास में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

शिथिलिकरण : 15–20 मिनट तक अद्वासन या मत्स्यक्रीड़ासन में विश्राम करना चाहिए तत्पश्चात् शवासन एवं योग निद्रा का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम : सर्वप्रथम नाड़ी शोधन का सरल अभ्यास अर्थात् बिना कुम्भक के वज्रासन में बैठकर करना चाहिए। भ्रामरी एवं उज्जायी प्राणायाम भी लाभकारी होगा। यह अभ्यास भी सामर्थ्य अनुसार 15–20 मिनट से शुरू करना चाहिए।

ध्यान : अजपाजप का अभ्यास लाभकारी होगा।

आहार संबंधि सुझाव : प्रारंभ में तीव्र पीड़ा की अवस्था में कुछ दिनों तक सब्जियों के सूप एवं फल के जूस आदि तरल या अर्द्धतरल भोजन लेना चाहिए। तत्पश्चात् मूँग की दाल की खिचड़ी लेना चाहिए। यह कब्ज को दूर रखने में सहायक होता है क्योंकि बिस्तर पर लेटे रहने से कब्ज की संभावना बढ़ जाती है। इस प्रकार के तरल एवं अर्द्धतरल भोजन स्वास्थ लाभ में अत्यंत सहायक होता है। रोग में सुधार होने पर रोटी, दाल, चावल, सब्जी आदि का सेवन भी क्रमशः किया जा सकता है। कब्ज बढ़ाने वाले आहार जैसे दूध एवं डेयरी पदार्थ, मांस, पनीर, तला–भूना हुआ भोजन का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि इनमें अधिक प्रोटीन होने से पाचन में अधिक समय लगता है तथा रोग को ठीक होने में समय लगता है।

अन्य उपयोगी सुझाव :

- अधिक समय तक एक भंगिमा में कुर्सी पर बैठकर काम नहीं करना चाहिए।
- नीचे से भारी वस्तु आगे झुककर नहीं उठाना चाहिए बल्कि घुटनों को मोड़कर सावधानी पूर्वक कोई वस्तु नीचे से उठाना चाहिए ताकि कमर पर अधिक तनाव या दबाव न पड़े।

इस प्रकार दैनिक जीवन में छोटी–छोटी सावधानियॉ, नियमित योगाभ्यास एवं संतुलित आहार से उपरोक्त रोगों से दूर रह सकते हैं तथा रोगों को दूर कर सकते हैं। अतः यहॉ आप सायटिका के योग उपचार से परिचित हो गये होंगे।

अभ्यास प्रश्न – F

सही विकल्प का चयन कीजिए –

1. सायटिका रोग की तीव्र पीड़ा की अवस्था में
   (क) व्यायाम करना चाहिए
   (ख) योगाभ्यास करना चाहिए
   (ग) लेटकर विश्राम करना चाहिए
   (घ) उपरोक्त सभी
2. योगासन के अभ्यास
   (क) केशेरूकाओं एवं पेशियों को मजबूत बनाता है
   (ख) लिगामेंट्स को मजबूत बनाता है
   (ग) उपरोक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
3. सायटिका के प्रबंधन हेतु उपयोगी योगासन है
   (क) सर्पासन

(ख) शलभासन
(ग) भुजंगासन
(घ) उपरोक्त सभी

4. सायटिका की तीव्र पीड़ा अवस्था हेतु उपयुक्त आहार है
(क) सब्जियों को सूप
(ख) फलों का जूस
(ग) उपरोक्त दोनों
(घ) इनमें से कोई नहीं

5. सायटिका रोगी के लिए सावधानी है
(क) आगे झुककर कार्य करना वर्जित
(ख) एक ही अवस्था में कुर्सी में लम्बे समय तक बैठना वर्जित
(ग) उपरोक्त दोनों
(घ) इनमें से काई नहीं

6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
(क) प्रोटीन प्रधान भोजन का अधिक सेवन............उत्पन्न करता है।
(ख) सायटिका दर्द का दौरा बारंबार आने से रोगी को.................में परेशानी आती है।
(ग) डिस्क फटने के कारण उत्पन्न दर्द ....से और बढ़ जाता है।
(घ) सायटिका रोगी के लिए उपयोगी प्राणायाम ....एवं ....है।
(ङ.) खिचड़ी एक ....आहार है।

15.6 सारांश

इस इकाई में हम कमर दर्द, गर्दन दर्द एवं सायटिका रोग के योग चिकित्सा के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा किया है। जैसा की आप जानते हैं कि कमर दर्द एवं गर्दन दर्द में प्रायः हमारे शरीर के अस्थि एवं मांसपेशिय संस्थान प्रभावित होती है साथ ही साथ स्नायु संस्थान भी इससे प्रभावित होने की संभावना रहती है। सायटिका रोग में कमर से शरीर के निचले हिस्से में फैलने वाली सायटिका स्नायु प्रभावित होती है। ये रोग किसी प्रकार के बाह्य आघात, कार्य करते समय शरीर की गलत भंगिमा एवं कई रोगों की वजह से उत्पन्न होते हैं। ये रोग व्यक्ति की कार्यक्षमता को अत्यधिक प्रभावित कर उसके सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष को प्रभावित करते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में लक्षण आधारित उपचार किया जाता है जैसे दर्द निरोधक दवा आदि तथा अंत में शल्य क्रिया का सहारा लिया जाता है। योग चिकित्सा के अंतर्गत न केवल आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास किया जाता है बल्कि जीवनशैली में सुधार, मानसिक एवं भावनात्मक पक्ष को भी पुनर्संतुलित कर रोगी का समग्र उपचार किया जाता है। अतः योग एक समग्र उपचार पद्धति है।

15.7 शब्दावली

कशेरूका – हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी अनेक अस्थि टुकड़ों से मिलकर बना होता है। इन अस्थि टुकड़ों को कशेरूका या वर्टिब्रा कहते हैं। रीढ़ की हड्डी में कशेरूकाओं की संख्या कुल 33 है। 7 गर्दन के क्षेत्र में, 12 पीठ प्रदेश में, 5 कमर प्रदेश में, ये सभी

अलग–अलग देखे जा सकते हैं जबकि इसके बाद के 5 कशेरूकाएँ जुड़ कर सेक्रम बनाती है तथा शेष 4 कॉकसिक्स बनाती है।

उपास्थि (कार्टिलेज) – यह एक विशेष प्रकार का संयोजी उतक है जो प्रायः अस्थियों के सिरों पर एवं शरीर के अन्य हिस्से में पाये जाते हैं। यह अस्थि की तुलना में मुलायम तथा लचीली होती है।

लिगामेंट – यह विशिष्ट प्रकार का उतक है जो रेशे के भांति होती है तथा अस्थि जोड़ों में अस्थियों को आपस में बांधने का कार्य करती है।

अंतराकशेरूकीय गद्दी – यह एक प्रकार से विशेष उपास्थि से निर्मित गद्दी है जो कशेरूकाओं के बीच आघात अवशोषक या निरोधी का कार्य करती है।

डिस्क प्रोलेप्स्ड – अंतराकशेरूकीय गद्दी का अपने स्वाभाविक आकार से छोटा हो जाना या सिकुड़ जाना।

सर्वाइकल वर्टिब्रा – ग्रीवा प्रदेश की प्रथम सात कशेरूकाएँ सर्वाइकल वर्टिब्रा कहलाती है।

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – A

3. – (ख), 2.– (ग), 3.– (ख), 4. – (ग), 5. – (क), 6. – (क) – गाढ़ा तरल पदार्थ, (ख) – खिंचाव, (ग) – मुश्किल, (घ) – गद्देदार, (ड.) – पीठ एवं कमर दर्द।

अभ्यास प्रश्न -B

3. – (क), 2.– (ग), 3.– (क), 4. – (घ), 5.– (ग)

अभ्यास प्रश्न - C

3. – (ख), 2.– (क), 3.– (ग), 4. – (क), 5.– (ख), 6.– (क) अस्थि एवं पेशिय (ख) गर्दन दर्द (ग) एक्स–रे, एम.आर.आई. एंव सी.टी.स्केन (घ) अस्थि टी.बी. (ड.) गर्दन दर्द

अभ्यास प्रश्न - D

3. – (ग), 2.– (घ), 3.– (ग), 4. – (ख) 5.– (ख), 6.– (क) झुकाकर (ख) उॅची मोटी तकिया (ग) गर्दन का बेल्ट (घ) हृदय (ड.) अजपाजप

अभ्यास प्रश्न - E

3. – (घ), 2.– (ख), 3.– (क), 4. – (ग), 5. – (ग) 6.– (क) सियाटिक (ख) तीन (ग) लेट (घ) दबाव (ड.) कारण

अभ्यास प्रश्न - F

1. – (ग), 2.– (ग), 3.– (घ), 4. – (ग), 5. – (ग) 6.– (क) कब्ज (ख) उठने–बैठने में (ग) छिंकने–खांसने (घ) नाड़ीशोधन एवं भ्रामरी (ड.) अर्द्धतरल
2.

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

6. डॉ. स्वामी कर्मानंद (2008) रोग और योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

7. प्रो. रामहर्ष सिंह (2006) योग एवं योग चिकित्सा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, भारत
8. Bakhru, H.K. (2002) A Complete Handbook of Nature cure, Jaico Publishing House, Mumbai, Bharat
9. Nicholas A. Booh, Nicki R. colledge & Brian R. Walker (ed.) (2006) Davidson's principles & Practice of medicine, Churchill Living stone Elsevier.

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. कमर दर्द के कारण एवं लक्षण का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. कमर दर्द में होने वाले शारीर रचनात्मक परिवर्तनों को स्पष्ट करते हुए इसके योग उपचार की योजना प्रस्तुत कीजिए।
3. गर्दन दर्द में ग्रीवा प्रदेश किस प्रकार प्रभावित होता है? इसके प्रमुख कारण एवं लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
4. गर्दन दर्द के आधुनिक चिकित्सा की ओर संकेत करते हुए योग चिकित्सा की उपयोगिता सिद्ध कीजिए।
5- सायटिका किस प्रकार रोगी के कार्यक्षमता को प्रभावित करता है? इसे योग चिकित्सा द्वारा किस प्रकार रोका जा सकता है?

इकाई–16 तनाव– लक्षण, कारण एवं तनाव प्रबन्धन

16.1 प्रस्तावना
16.2 उददेश्य
16.3 तनाव का स्वरूप
16.4 तनाव के लक्षण
16.5 तनाव के कारण
16.6 तनाव का प्रबन्धन
 16.6.1 योग द्वारा तनाव प्रबन्धन
 16.6.2 तनाव प्रबन्धन के लिए प्राकृतिक चिकित्सा
 16.6.3 तनाव प्रबन्धन में उपयोगी आहार चिकित्सा
 16.6.4 तनाव प्रबन्धन के लिए उपयुक्त जीवन शैली
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

सोलहवीं इकाई तनाव और तनाव प्रबन्धन से सम्बन्धित है। प्रस्तुत इकाई में तनाव का स्वरूप बताते हुये उसके शारीरिक, मानसिक एवं व्यवहारगत लक्षणों एवं मुख्य कारणों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही तनाव प्रबन्धन के लिए योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा और उपयुक्त जीवन शैली के चयन के माध्यम से तनाव का चिकित्सीय समाधान प्रस्तुत किया गया है।

समाज में दिनोंदिन बढ़ती तनाव की समस्या ने प्रत्येक आयु वर्ग के लोगों को अपनी चपेट में ले लिया है। जिसके कारण मनुष्य को अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्टों का सामना करना पड़ रहा है। पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण ने मनुष्य के अस्तित्व के लिए संकट खड़ा कर दिया है। आधुनिक कृत्रिमता ने मनुष्य और प्रकृति के मध्य गहरी खाई खोद दी है। विकृत आहार सेवन और बनावटी जीवन शैली ने तन और मन के सुख व चैन को छीनकर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डाला है। ऐसी दशा में मानवीय समुदाय के सम्मुख शान्ति का भंग होना और तनाव का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। ऐसी विषम परिस्थितियों में वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति अत्यन्त प्रासंगिक एवं उपयोगी है। आधुनिकता की बढ़ती होड़ में मनुष्य का अपना वास्तविक स्वरूप खोता जा रहा है। योग के क्रमिक रूप से उत्तरोतर विकसित अभ्यासों के द्वारा मनुष्य को अपने अस्तित्व का बोध होता है और उसकी मौलिकता उभर कर सामने आती है। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मनुष्य का प्रकृति के पंच तत्वों से सहज सम्पर्क स्थापित होता है, परिणामस्वरूप उसे

मानसिक तृप्ति एवं तनाव मुक्ति का आभास होता है। आहार के अन्तर्गत पथ्य सेवन से औषधि जैसा लाभ मिलता है और मानसिक द्वन्द दूर होता है। उपयुक्त जीवन शैली प्रतिदिन के जीवनक्रम में होने वाले व्यतिरेको को दूर करती है, जिससे प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है और तनाव दूर होता है।

आधुनिकता की बाहरी चकाचौंध के युग में मनुष्य अपनी वास्तविकता से वंचित होता जा रहा है। जिसके कारण उसकी वास्तविक प्रगति का द्वार अवरूद्ध हो रहा है और वह तनाव की गिरफ्त में फँसता जा रहा है। ऐसे संकट के समय में वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का चयन तनाव के निवारण के लिए अत्यन्त मौलिक, प्राकृतिक, प्रासंगिक एवं निरापद है।

16.2 उददे्श्य

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- तनाव के स्वरूप को जान सकेंगे।
- तनाव के लक्षणों को समझ सकेंगे।
- तनाव के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- तनाव प्रबन्धन के लिए योग चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा की व्याख्या कर सकेंगे।
- तनाव प्रबन्धन के लिए आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का विवरण कर सकेंगे।

16.3 तनाव का स्वरूप

आधुनिक भाग–दौड़ के युग में तनाव भयावह समस्या का रूप लेता जा रहा है। वर्तमान दौर में मनुष्य की अधिकांश बीमारियों का कारण तनाव है। मानवीय क्रियाओं, विचारों एवं भावनाओं के पारस्परिक द्वन्द के परिणाम स्वरूप मनःस्थिति एवं परिस्थिति के मध्य असंतुलन एवं असमायोजन से तनाव उत्पन्न होता है। तनाव जीवन में अनेकानेक मनोविकारों का समावेश करता है। जिससे शरीर अस्वस्थ, मन अशान्त और भावनाएं के अस्थिर होने से मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक विकास में अवरोध उत्पन्न होता है।

दर्शन शास्त्र एवं आयुर्वेद में मन के तीन गुण सत्व, रज और तम बताये गये है। मन का सम्पूर्ण व्यापार इन त्रिगुणों की पारस्परिक क्रिया से सम्बद्ध है। मन सन्निबद्ध गुण के प्रभाव के अनुरूप बर्ताव करता है। सत, रज और तम विविध मानसिक भावों को उत्पन्न करते है। इन्हें मानसिक गुण या मानसिक दोष कहा जाता है। सत्त्वगुण शुद्ध, प्रकाशक एवं अविकारी होने के कारण मानसिक व्याधियों का हेतु नहीं हो सकता है। अतः सत्व में कभी विकृति न होने के कारण हमेशा गुण ही रहता है। रज और तम विकारी होने के कारण बहुत सारी मानसिक व्याधियों के कारण माने गये है। रज और तम जब विकृत होकर मन को दूषित करके विभिन्न मानसिक व्याधियों को उत्पन्न करते है तो दोष कहे जाते है। तनाव के लिए उत्तरदायी कोई न कोई राजसिक वृत्ति यथा राजसी परिवेश, साधनों का संग्रह, मान–सम्मान की अभिलाषा, पद की आकांक्षा इत्यादि तथा तामसिक वृत्ति के रूप में आलस्य, मोह, द्वेष एवं वासनाएँ इत्यादि है।

कनाडा के प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता हेन्स सेल्ये ने सर्वप्रथम वर्ष 1936 में प्रतिबल के प्रत्यय को प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने अनुसंधान के अन्तर्गत मानवीय जीवन की विभिन्न प्रक्रियाओं

पर तनाव के प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि मानसिक तनाव से व्यक्ति विभिन्न प्रकार की बीमारियों की चपेट में आ सकता है। बहुत अधिक तनाव की स्थिति में पागलपन से लेकर अचानक मृत्यु तक होती देखी गयी हैं। तनाव जीवनी शक्ति को घटा देता है और शरीर में जुकाम एवं कैन्सर जैसी घातक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है। हेन्स सेल्ये को इस विशेष खोज के लिए नोबुल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

तनाव एक स्थिति तक सामान्य व्यक्तित्व विकास के लिए उपयोगी है। इसकी अधिक मात्रा व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से बीमार कर देती है। नकारात्मक तथा तनाव युक्त घटनाए कई प्रकार के मानसिक विकार उत्पन्न करती है। जिसका सम्बन्ध सामान्यतः शारीरिक, जटिल पारिवारिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक या जैविक घटकों से होता है। ये घटक मनुष्य में शारीरिक और मानसिक बैचेनी उत्पन्न करके कई प्रकार के रोग को निमन्त्रण देते है।

परिभाषाएं

अरूण कुमार सिंह ने अपनी पुस्तक आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान में बताया है कि मनोवैज्ञानिकों ने तनाव की परिभाषा कई दृष्टिकोण को आधार पर दी है–

i) तनाव उद्दीपक कारकों के रूप में–

कोई भी घटना या परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करती है, तनाव कहलाती है। उदाहराणार्थ– भूकम्प, नौकरी का छूटना, प्रियजनों की मृत्यु आदि घटनाए।

ii) तनाव अनुक्रिया के रूप में–

मनुष्य मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाओं के रूप में चिन्ता, क्रोधादि तथा दैहिक अनुक्रियाएं यथा नींद में व्यवधान, रक्तचाप का बढ़ना, पाचन तंत्र का ठीक से कार्य न करना आदि के माध्यम से तनाव को प्रकट करता है।

''तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार किए गए अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।''

हेन्स शैलीः द स्ट्रेस ऑफ लाइफ, 1979, पृ. 40

iii) तनाव उद्दीपक और अनुक्रिया दोनों के संबंध के रूप में–

''तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हमलोग में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है या विघटित करने की धमकी देता है।''

बेरोनः साइकोलॉजी, 1992, पृ. 443

''तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते है। जो शरीर के दैहिक माँगों(बीमारी की अवस्थाएं, अत्यधिक तापक्रम आदि) या वैसे पर्यावरणीय एवं सामाजिक परिस्थितियां जिसे सचमुच में हानिकारक, अनियंत्रण योग्य तथा निबटने के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाला के रूप में मूल्यांकित किया जाता है, से उत्पन्न होता है।''

मार्गन, किंग विस्ज एवं स्कौपलर, इन्ट्रोडक्सन टू साइकोलॉजी, 1986, पृ. 321

तनाव की विशेषताएँ–

प्रिय विद्यार्थियों, तनाव की उपयुक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर तनाव से सम्बन्धित निम्न विशेषताएं प्रत्यक्ष होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तनाव किसी परिस्थिति या घटना के प्रति की गयी एक प्रकार की अनिुक्रिया है जो व्यक्ति में मानसिक एवं दैहिक क्षुब्धता उत्पन्न करती है।

1. तनाव एक प्रकार की अनुक्रिया है।
2. तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया है क्योंकि इसको उत्पन्न करने वाले अनेक कारण हो सकते है।
3. तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर होती है।
4. तनाव में व्यक्ति को मानसिक एवं शारीरिक दोनों तरह के कष्टों का सामना करना होता है।
5. तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों या घटनाओं के स्वरूप के आधार पर तनाव समयावधि कम या अधिक हो सकती है।

तनाव के प्रकार–

तनाव 'यूस्ट्रेस' और 'डिस्ट्रेस' दो प्रकार का होता है। यूस्ट्रेस सकारात्मक जबकि डिस्ट्रेस नकारात्मक तनाव है। यूस्ट्रेस के अन्तर्गत किसी कार्य विशेष के दौरान तनाव तथा दबाव की थोड़ी मात्रा बनी रहती है जो कार्य को बेहतर ढ़ग से सम्पादित करने के लिए प्रेरित करती है। यूस्ट्रेस मन में उत्साह का संचार करता है। डिस्ट्रेस में तनाव अत्यधिक या अनियन्त्रित होता है।

16.4 तनाव के लक्षण–

पाठकों, तनाव अनेकानेक प्रकार से मानवीय जीवन को प्रभावित करता है। मनोवैज्ञानिकों ने तनाव के लक्षण को मुख्यतः शारीरिक, मानसिक एवं व्यवहार के अन्तर्गत रखा है–

1. शारीरिक लक्षण–

तनाव के शारीरिक प्रभाव का सम्बन्ध मुख्यतः न्यूरोलॉजिकल, एंडोक्राइन एवं इम्युनोलॉजिकल संस्थानों से है। हेंस सेल्ये के अध्ययन के अनुसार तनाव का लम्बा दौर मनुष्य की एड्रीनल एवं पिट्यूटरी जैसी अन्तःस्रावी ग्रंथियों को असामान्य रूप से उत्तेजित कर देता है ऐसे में ये ग्रंथियाँ लाभकारी हॉर्मोनों के स्थान के हानिकारक हॉर्मोन रसायनों का स्रावण करने लगती हैं। तनाव के दौरान सिम्पैथेटिक स्नायुसंस्थान सक्रिय हो जाता है। सामान्य क्रम में शरीर का इम्युनोलॉजिकल तन्त्र प्रतिरक्षा का कार्य करता है, परन्तु उस पर लगातार अतिरिक्त दबाव पड़ने से उसकी कार्यशक्ति घटने लगती है, और शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों का शिकार होने लगता है।
अन्तःस्रावी ग्रंथियों से ऐड्रीनलिन तथा नॉरऐड्रीनलिन का स्रावण होने लगता है। जिसके प्रभाव में उत्पन्न शारीरिक लक्षणों में हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, मांस–पेशियों के कड़े होने से हाथ–पैर तन जाते है और उदर कड़ा हो जाता है, रक्त चाप बढ़ जाता है, रक्त का प्रवाह अंतरांगों से वाह्य परिधीय अंगों की ओर हो जाता है, पाचन क्रिया पर प्रतिकूल असर पड़ता है, श्वास की संख्या बढ़ जाती है।

2 मानसिक लक्षण–

तनाव मन पर अत्यन्त गहरा प्रभाव डालकर मानसिक पीड़ा पहुँचाता है। इसका समय रहते यदि उपचार न किया जाये तो यह शरीर को विभिन्न प्रकार के मनोशारीरिक रोगों का आश्रय–स्थल बना देता है। तनाव के मानसिक लक्षण के अन्तर्गत–मन का कहीं पर न लगना, आत्म विश्वास का निम्न स्तर, बार–बार गुस्सा आना या चिड़चिड़ाहट, घबराहट, अकारण भय का अनुभव, एकाग्रता की कमी, लेखन में अक्षर का आगे पीछे लिख जाना, लोभी प्रवृत्ति एवं निर्णय लेने में असमर्थता इत्यादि आते है।

3 व्यवहारगत लक्षण–

व्यवहार के माध्यम से प्राणी अपने आपको अभिव्यक्त करता है। अच्छे व्यवहार द्वारा वह दूसरों को प्रभावित करता है। भिन्न–भिन्न तनाव कारकों का मानवीय व्यक्तित्व पर प्रभाव विभिन्न रूपों में होता है और उसकी व्यवहारगत अभिव्यक्ति में भी असमरूपता होती है। साधारणतया तनाव की साधारण अवस्था के सकारात्मक परिणाम होते है और व्यक्ति का व्यवहार समायोजित रहता है। तीव्र तनाव के प्रभाव नकारात्मक होते है और व्यक्ति के व्यवहार पर विपरीत प्रभाव डालते है। तनाव के दौरान सामान्यतः सामाजिक सम्बन्ध भी बाधित होते है। तनाव की अवस्था में व्यक्ति के व्यवहार में प्रदर्शित होने वाले कुछ परिवर्तनों के अन्तर्गत्– भूख का अत्यधिक बढ़ या घट जाना, शराब एवं ध्रूमपान की लत, बहुत जल्दी नर्वस हो जाना, नाखून चबाना, मुँह सूखना एवं जल्दी–जल्दी प्यास लगना, समस्याओं के निराकरण में विफल साबित होना, शीघ्र क्रोधित हो जाना, अवसाद ग्रसित होना आदि आता है।

16.5 तनाव के कारण

तनाव के कारण व्यक्ति के कार्य की कुशलता में कमी आ जाती है। व्यक्ति अपने सहज स्वाभाविक शान्त स्वरूप को छोड़कर चिड़चिड़े स्वभाव का भी हो जाता है, जिसका विपरीत प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। तनाव से ग्रसित व्यक्ति स्वाभाविक आनन्द के साथ किसी कार्य को सम्पादित एवं सम्पन्न नहीं कर पाता है। तनाव को उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारण निम्नलिखित है–

1. **स्वास्थ्य सम्बन्धित परेशानियाँ–**
   स्वस्थ शरीर और स्वच्छ मन मानवीय उन्नति के दो प्रमुख द्वार है। इनमें से किसी पर भी आघात लगने पर न केवल उन्नति का द्वार अवरूद्ध होता है अपितु जीवन के लिए भी संकट खड़ा हो जाता है। गिरते स्वास्थ्य के लिए जिम्मेदार अंग विशेष दूसरे सम्बन्धित अंगों को भी अपनी चपेट में ले लेता है, जिससे व्यक्ति शारीरिक रूप से अपाहिज हो जाता है। शारीरिक रोग मनुष्य को असमायोजित करके तनाव को जन्म देता है। जबकि मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य के संकट से मानवीय व्यक्तित्व के विविध आयाम यथा–व्यवहार, संज्ञान इत्यादि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। स्वंय का या परिवार के किसी सदस्य का बीमार या चोटग्रस्त होना, तनाव को उत्पन्न करता है। शारीरिक रूग्णता और मानसिक अस्वस्थता के साथ–साथ औषधियों के प्रतिकूल प्रभाव भी मानसिक तनाव के हेतु है।
2. **परिवारिक उत्तरदायित्व सम्बन्धित कारण–**
   घरेलू स्तर पर ऐसे अनेको उत्तरदायित्व है जिनमें से कुछ मनुष्य को प्रायः और कुछ यदा–कदा तनाव से व्यथित करते है। उदाहरणार्थ– पारिवारिक असन्तुलन, घर का रख–रखाव, भोजन की व्यवस्था, भारी कर्ज की अदायगी, आर्थिक संकट, बच्चों की शिक्षा के दायित्व, मकान बनवाना या निवास स्थान का बदलना आदि।
3. **कार्याधिक्य–**
   आधुनिक भागदौड़ के युग में कार्य के अतिरिक्त दबाव से व्यक्ति तनाव का शिकार हो जाता है। जैसे–विभिन्न प्रकार के दायित्वों और कर्तव्यों का एक साथ पालन, केरियर बनाने के लिए किया गया कठोर श्रम, समय की अल्पता इत्यादि।
4. **पर्यावरणीय परेशानियाँ–**

मनुष्य के आस–पास का पर्यावरण एवं वातावरण सतत् एक दूसरे को पोषित एवं प्रभावित करते है। ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, पारिवारिक दायित्वों का दबाव, विपन्न पड़ोस तथा समाज में संव्याप्त अपराध एवं भ्रष्टाचार आदि मानवीय मन के समक्ष तनाव का सकंट खड़ा कर देते हैं।

5. **असुरक्षा–**
   सुरक्षा की भावना से मनुष्य जीवन के प्रति आशान्वित होता है। किन्तु बेरोजगारी, परीक्षा में असफल होने का भय, महंगाई, सेवा निवृत्ति तथा कभी–कभी ज्योतिषीय भविष्यवाणी, अनिष्ट के घटने का भय आदि असुरक्षा के भाव को उत्पन्न करके तनाव को जन्म देते है।
6. **आन्तरिक दिक्कतें–**
   आन्तरिक परिवेश में उपजी प्रतिकूल मनोदशा मनुष्य को तनाव के लिए बाध्य करती है। इसके अन्तर्गत अकेलेपन का भाव, आपसी मनमुटाव, समाज का मुकाबला कर पाने में अपने को असक्षम पाना आदि आता है।
7. **आजीविका अर्जन में परेशानियाँ–**
   आजीविका मानवीय निर्वाह का साधन है। आजीविका अर्जन के मार्ग में आने वाली दिक्कतें मनुष्य को तनाव से ग्रसित कर देती है। जैसे–व्यवसाय या नौकरी का बार–बार बदलना, व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा एवं असफलता, अधिकारी तथा सहकर्मियों में मतभेद, अनिश्चित आजीविका, अनिच्छित कार्य, कार्य असन्तुष्टि आदि मुख्य है।
8. **निराशा–**
   आवश्यकता सन्तुष्टि या इच्छापूर्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न होने पर मनुष्य की मानसिक प्रतिक्रिया निराशा के रूप में होती है जो परिणामतः तनाव को जन्म देती है। यहाँ पर वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के कारक निराशा उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी हो सकते है। वाह्य कारकों के अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, कई प्रकार के सामाजिक नियम या प्रतिबन्ध, गरीबी इत्यादि के कारण मनुष्य प्रबल निराशा का शिकार हो जाता है। वाह्य कारकों के विपरीत आन्तरिक कारक मनुष्य में व्यक्तिगत रूप से कार्य करके निराशा को उत्पन्न करता है जैसे– किसी प्रकार की शारीरिक विकृति, उच्च महत्वकाक्षां, परिक्षाओं में असफल होने का भय तथा मानसिक संघर्ष इत्यादि।
9. **जीवन में घटित अप्रिय घटनाए–**
   जीवन क्रम में यदा–कदा ऐसी घटनाएं घटित होती है जो जीवन के अस्तित्व के लिए महासंकट खड़ा कर देती है। जिसके कारण मनुष्य तीव्र तनाव का शिकार हो जाता है जैसे– प्रियजन की मृत्यु, तलाक या अचानक उत्पन्न आर्थिक संकट आदि।

प्रिय विद्यार्थियों, ऐसे अनेकानेक कारण है जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार है। प्रत्येक व्यक्ति की तनाव को सहन करने की सामर्थ्य अलग–अलग होती है। एक व्यक्ति जिन कारणों द्वारा तनाव से पीड़ित हो उठता है। दूसरा व्यक्ति तनाव को सहन करने की अतिरिक्त शक्ति के कारण उन्हीं परिस्थितियों में सामान्य बना रहता है।

16.6 तनाव का प्रबन्धन

पाठकों, अब तक आप तनाव का स्वरूप, लक्षण एवं कारण के विषय में जान चुके है। अब तनाव को जान लेने के पश्चात् इसके चिकित्सीय पक्ष को जान लेना आवश्यक है।

तनाव प्रबन्धन के लिए वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति आधुनिक युग की महती आवश्यकता बन गयी है। मानवीय समुदाय का प्रत्येक वर्ग चाहे वह बालक, तरूण, युवा या वृद्ध किसी भी वर्ग में आता हो, कहीं न कहीं अपने–आपको तनाव से घिरा हुआ पाता है। जिसका कारण उसके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में उत्पन्न असन्तुलन है। सन्तुलन को कायम करने में वैकल्पिक चिकित्सा की भूमिका अतुलनीय है। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का प्रयोग तनाव के प्रबन्धन में सक्षम एवं समर्थ है। आपको यहाँ पर योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा और उपयुक्त जीवनशैली के माध्यम से तनाव प्रबन्धन से अवगत कराया जा रहा है।

16.6.1 योग द्वारा तनाव प्रबन्धन

मानवीय मन और मस्तिष्क का योग से वियोग और योग विरोधी तत्वों के साथ संयोग तनाव की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है। भौतिकता प्रधान आधुनिक युग में यान्त्रिकता का अन्धाधुंध प्रयोग और प्रतियोगिता की होड़ में उत्पन्न जीवन की व्यस्तता, मनुष्य को कदम–कदम पर तनाव का अहसास देती है। शहरी भाग–दौड़ युक्त जीवन, वातावरण में बढ़ता प्रदूषण, पारिवारिक और सामाजिक समस्याएं तनाव में उत्तरोत्तर वृद्धि करती हैं।

यौगिक क्षेत्र में सफलता प्राप्ति के लिए योगाभ्यासी के मन में सहज उल्लास का होना आवश्यक है। यौगिक प्रक्रियाओं का अभ्यास प्रसन्नता और उल्लास के साथ दीर्घकाल तक धैर्यपूर्वक करने पर सिद्धि निश्चित रूप से मिलती है। योगाभ्यासी क्रमिक रूप से योग की उच्चस्तरीय कक्षाओं में प्रवेश करता है। हठप्रदीपिका के अन्तर्गत योग में सिद्धि के लिए उल्लास को योग के साधक तत्वों में रखा गया है। सामान्य क्रम में पाया जाता है कि व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्यायें तथा वैचारिक एवं भावनात्मक द्वन्द मनुष्य से प्रायः उसका उल्लास छीन लेते है। ऐसे में मनुष्य यौगिक साधनाओं या अभ्यासों की ओर तन–मन से प्रवृत नहीं हो पाता। यौगिक प्रक्रियाओं के अभ्यास के दौरान भी मन तनाव युक्त अवस्था में बना रहता है और वह अपने उस साहस एवं लगन को खोता जाता है जो योग में सफलता के लिए अनिवार्य है।

व्यक्ति का परिवेश उसे तनाव मुक्त अवस्था में रहने नहीं देता। व्यक्ति अपनी निजी दुबर्लताओं से या फिर अपने चारों ओर के परिवेश द्वारा उत्पन्न की गयी जटिलताओं से तनाव का शिकार होता रहता है। वास्तव में ये जटिलतायें एवं चुनौतियाँ मानव विकास के लिए है। ऐसे में इनसे उलझकर परेशान होने के बजाय इन्हें स्वीकार कर योग में इनका समाधान खोजना चाहिए। योग शास्त्रों में ऐसी अनेकानेक विधियाँ एवं पद्धतियाँ महर्षियों द्वारा बतायी गयी हैं जिसका जीवन के विविध क्षेत्रों में सम्यक् अनुसंधान मनुष्य को तनाव जैसी द्वन्दात्मक अवस्था से निकाल कर उसके जीवन में सुख एवं शान्ति की स्थापना करता है। इस प्रकार योग तनाव की चिकित्सा के साथ–साथ जीवन को सफल एवं सम्मुनत भी बनाता है।

चिकित्सीय शोधों से पता चलता है कि तनाव से मनुष्य को अत्यधिक क्षति होती है। शोध निष्कर्षों में पाया गया कि एक घन्टे का क्रोध एक दिन के बुखार जितनी हानि पहुँचाता है। तीव्र शोक और उद्वेग के कष्टकर पलों में नींद एवं भूख आदि गायब हो जाते है। विभिन्न

कारणों से उत्पन्न होने वाला तनाव सामयिक कष्ट के साथ दूरगामी दुष्परिणाम भी साथ लाता है।

तनाव के पलों में कभी–कभी शरीर या मन इतने ज्यादा उत्तेजित एवं अस्त–व्यस्त हो जाते है जिसके लिए स्वाभाविक नींद भी प्रभावहीन होने लगती है। प्राकृतिक रूप में गहन निद्रा थकान मिटाने का सबसे सरल और उपयोगी माध्यम है। थकाहारा व्यक्ति जब रात्रि को गहन निद्रा में सो जाता है तो सुबह उठकर उसमें नयी स्फूर्ति, ताजगी एवं प्रसन्नता का संचार होता है। प्राकृतिक निद्रा में तनाव एवं थकान को मिटाने की स्वाभाविक विशेषता है। तनाव मनुष्य की सहज नींद की वृत्ति को छीन लेता है। जिससे उसकी नींद में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है और ऐसी दशा में उसे नींद नहीं आती या फिर बहुत हल्की नींद आती है। ऐसी नींद तनाव एवं थकान को मिटाने में असफल सिद्ध होती है।

नींद लाने और थकान तथा तनाव मिटाने के लिए लोग शामक औषधियों एवं नींद की गोलियों का उपयोग करते है किन्तु इनके उपयोग से रोग पूरी तरह से ठीक नहीं होता है। कुछ लोग तो तनाव मिटाने के लिए नशे की आदत तक डाल लेते है। ट्रंकोलाइजरों के सेवन से मात्र खुमारी आती है और मनुष्य अपनी सुध–बुध खो देता है। ऐसी अवस्था में गहन निद्रा से मिलने वाली ताजगी से मानव वंचित ही रहता है। ट्रंकोलाइजर के सेवन की आदत पड़ जाती है और उसका प्रभाव घट जाता है तथा अधिक मात्रा में लेने की आवश्यकता महसूस होती है। साथ ही अनेकों दुष्प्रभाव भी सामने आते है जिसके कारण नये–नये रोग शरीर एवं मन को आश्रय बना लेते है।

योग के उच्च अभ्यासों के लिए आसन में स्थिरता आवश्यक है। आसन में स्थिर होने के लिए गत्यात्मक एवं शरीर संवर्धनात्मक आसनों द्वारा शरीर को दृढ़ एवं जीवनीशक्ति से परिपूर्ण बनाया जाता है। शरीर के साथ–साथ मन की दृढ़ता एवं स्थिरता आवश्यक है जिसके लिए शिथिलीकरण सर्वसुलभ अभ्यास है। शिथिलीकरण के नियमित अभ्यास से विचारों एवं भावनाओं की द्वन्दात्मक स्थितियाँ समाप्त होती है। जिससे मानसिक शान्ति की प्राप्ति होती है और शान्त मन में तनाव का सर्वथा अभाव होता है।

शिथिलीकरण–

शरीर की स्वाभाविक चेष्टाओं को शिथिल कर देना शिथिलीकरण है। शिथिलीकरण की प्रक्रिया में शरीर को पूरी तरह से ढीला और मन को पूर्णतः खाली करना होता है। तनाव को मिटाने का सरल उपाय शिथिलीकरण का अभ्यास है। इसके अभ्यास में मनोबल का प्रयोग किया जाता है स्वंय को स्व संकेत देते हुए कहा जाता है कि हमारे अंग–प्रत्यंग शिथिल हो रहे है और मन की भाग–दौड़ थम रही है। समस्त अच्छी–बुरी वृत्तियाँ नष्ट हो रही है। लगातार के अभ्यास से मन प्रशिक्षित हो जाता है और स्वनिर्देशन के अनुरूप कार्य करने लगता है। ऐसा होने पर स्वाभविक गहन निद्रा के परिणाम स्वरूप तनाव दूर हो जाता है।

गाँधी जी का नींद पर नियन्त्रण था। विनोबा भावे प्रत्येक ऋतु में छः बजे सो जाते थे और निर्धारित समय पर जग जाते थे। नेपोलियन और क्लाइव युद्ध मोर्चे पर हफ्तों घोडे पर सवार रहते थे। थकान मिटाने के लिए मात्र घोड़े को पेड़ से सटाकर उसी स्थिति में पेड़ के सहारे थोड़ी देर गहन निद्रा में चले जाते थे और जागकर पुनः नये उत्साह से काम में लग जाते थे।

शिथिलीकरण की विधियाँ–

प. श्रीराम शर्मा आचार्य ने साधना पद्धतियों का ज्ञान विज्ञान नामक वाड़मय में शिथिलीकरण की कई प्रभावी विधियाँ बतायी है। वे निम्न है–

1. शिथिलीकरण तनाव से छुटकारा पाने का श्रेष्ठ एवं सरल उपाय है। शवासन इसके लिए सर्वाधिक उपयोगी अभ्यास है। शवासन से तात्पर्य है मुर्दे की तरफ निश्चेष्ट पड़े रहना। यह कुर्सी पर बैठकर या फिर दीवार अथवा अन्य किसी आरामदायक वस्तु का सहारा लेकर भी किया जा सकता है। इसमें शरीर को दबाव मुक्त एवं सुविधा जनक स्थिति में रखा जाता है। इसी अवस्था में गहन भावना की जाती है कि समस्त शरीर का प्राण खिंचकर मस्तिष्क मध्य में केन्द्रित हो गया शरीर के अन्य सभी घटक शान्त एवं मृतप्राय हो गये है।
   इस प्रकार के अभ्यास से शरीर के समस्त अंग–प्रत्यंग क्रमिक रूप से शिथिल हो जाते है और मन शान्त हो जाता है। दीर्घकाल के अभ्यास के बाद एक ऐसी अवस्था आती है जब अन्तर्जगत में चल रहे संघर्ष का अन्त हो जाता है और इस अवस्था में परमशान्ति मिलती है। परमशान्ति की प्राप्ति ही तनाव से मुक्ति है।
2. शिथिलीकरण के अभ्यास के लिए कोलाहल रहित स्थान पर लेटकर शरीर को भार रहित अनुभव करते हुए कल्पना करना चाहिए कि सम्पूर्ण शरीर रूई जैसा हल्का हो गया है।
   इसी दिशा में प्रलयकाल के दृश्य का मानसिक अवलोकन करना चाहिए। सर्वत्र अथाह जल–राशि का भाव चित्र बनाना चाहिए। मन को शान्त करने के लिए कल्पना करनी चाहिए संसार में कोई पदार्थ, व्यक्ति एवं प्राणी में से कुछ भी नहीं है इसके साथ न कोई विचारणा या समस्या ही शेष है। प्रलय की अथाह जल–राशि में हम अकेले है। छोटे बालक के रूप में पत्ते की नौका पर लेटे हुए है और हवा के वेग के साथ मन्द गति से किसी अज्ञात दिशा की ओर प्रवाहित हो रहे है। मार्ग की सारी समस्याओं एवं बाधायें मिट चुकी है।
3. यदि मृत्यु का भय मन से निकल जाये तो मृत्यु की कल्पना एक सुखद अहसास देती है। मृत्यु की कल्पना के अन्तर्गत भाव करना होता है कि शरीर और मन अपनी मौलिक अवस्था में शान्त निःचेष्ट पड़े है। जिसमें से हमारा प्राण निकल चुका है। जीवन भर की थकान मिटाने के लिए दीर्घकाल तक एक ऐसे सुन्दर वातावरण में सोने को मिल गया है जहाँ पर सर्दी, गर्मी, मक्खी, मच्छर, कीट–पंतगों आदि बाधाओं का अवरोध नहीं है। जीवन से जुड़े सारे प्रश्न, कर्तव्य, जिम्मेदारियाँ, चिन्ताए एवं समस्यायें मृत शरीर के साथ कोसो दूर चली गयी है। हम एक नये सुन्दर एवं सौम्य वातावरण में आ गये है। जो सर्वत्र तनाव मुक्त है। जहाँ पर परम शान्ति एवं सुख व्याप्त है।
   यदि प्रतिदिन थोड़े समय के लिए शिथिलीकरण का सम्यक् अभ्यास किया जाये तो शरीर और मन दोनों ही उस प्रक्रिया के अभ्यस्त हो जाते है। जिसके परिणामस्वरूप तनाव एवं थकान को मिटाने वाली नींद अपनी इच्छा से बुलायी जा सकती है। शिथिलीकरण के नियमित अभ्यास से तनाव मुक्ति के साथ–साथ सहज प्रसन्नता भी प्रतिदिन के जीवन में मन में छाई रहती है।

आसन

शिथिलीकरण के बाद किये गये आसनों का अभ्यास योग के मार्ग में उचित सफलता देता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से आसनों का यौगिक चिकित्सा में प्रमुख स्थान है। यदि रोग के

अनुरूप आसनों का चुनाव करके सम्यक् प्रयोग किया जाये तो योगानुसंधान में उचित सफलता मिलती है। शलभ ने वैकल्पिक चिकित्सा नामक पुस्तक में बताया है कि 'आसन के अभ्यास से शरीर में रक्त का संचार तीव्र गति से होता है और शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य सन्तुलित होते है आसनो का अभ्यास पाचन तंत्र को सबल और पाचन क्रिया को सन्तुलित एवं नियन्त्रित करता है। नाड़ी सूत्रों और मस्तिष्क से पूरे शरीर का संचालन होता है। इन दोनों को गतिशील बनाए रखने के लिए प्रतिदिन आसनों का अभ्यास करना आवश्यक है।' शलभ के अनुसार सूर्यनमस्कार, जानुशिरासन, सुप्तवज्रासन, सर्वांगासन, मकरासन, पवन मुक्तासन एवं हलासन के नियमित अभ्यास से तनाव से मुक्ति मिलती है।
प्रो. रामहर्ष सिंह ने 'योग एवं यौगिक चिकित्सा' नामक ग्रन्थ में बताया है कि 'हठयोग के आसनों में शरीर को विभिन्न प्रकार की स्थितियों में इस प्रकार से रखते है, जिससे शरीर प्राणायतन अंगों तथा अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों की क्रिया पूर्व की अपेक्षा भलीभाँति होकर शरीर तथा मन को स्वस्थ बना सके। योगासनों की प्रक्रिया अत्यन्त प्रभावी एवं अव्ययी है जिसके द्वारा शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ–साथ, वृद्धावस्था एवं व्याधि–निवारण जैसे योगभ्यास के माध्यमिक उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।' यौगिक अभ्यासों में आसनों का दायरा अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इनमें ऐसे आसनों का समावेश है जिनसे शारीरिक और मानसिक विश्रान्ति भी प्राप्त होती है। अतएव आसनों का अभ्यास मानसिक तनाव जैसी मनोद्वन्दात्मक परिस्थिति से बाहर आने के लिए भी किया जाता है। आसनों की विविध विधियों और उनके प्रभाव को ध्यान में रखकर प्रो. रामहर्ष सिंह ने आसनों की तीन श्रेणियाँ निर्धारित की है। इसके अन्तर्गत शरीर संवर्धनात्मक, विश्राान्तिकारक और ध्यानात्मक आसनों की श्रेणियाँ शामिल है।
संवर्धनात्मक आसनों द्वारा शरीर बलिष्ट, सुदृढ़ एवं जीवनी शक्ति से परिपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार से विकसित शरीर को ध्यान जैसे उच्च अभ्यासों के दौरान स्थिर एवं आरामदायक स्थिति में रखा जा सकता है। मत्स्येन्द्रासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, मत्स्यासन और गोमुखासन आदि प्रमुख संवर्धनात्मक आसनों के उदाहरण है। शवासन एवं मकरासन का समावेश विश्राान्तिकर आसनों में है। जिनसे पूर्ण शारीरिक शिथिलता तथा मानसिक विश्रान्ति प्राप्त की जा सकती है। पद्मासन, स्वास्तिकासन, सिद्धासन और सुखासन–ध्यानात्मक आसन के अन्तर्गत आते है। इन्हीं आसनों में शरीर को स्थिर रखकर प्राणायाम, धारणा और ध्यान आदि उच्च यौगिक प्रक्रियाओं का अभ्यास किया जाता है। वास्तव में समस्त संर्धनात्मक आसनों एवं विश्रान्तिकर आसनों के अभ्यास का ध्येय ध्यानात्मक आसन में स्थिरता प्राप्त करना ही है जिसके माध्यम से मन और मस्तिष्क का विकास तथा चेतना को व्यापक विस्तार मिलता है।
आधुनिक समाज की बदलती हुए परिस्थितियाँ मनुष्य को तनाव देने के लिए पर्याप्त है। तनाव से ग्रसित मन सहज ही अशान्त एवं अस्थिर हो जाता है। अशान्त मन को सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। तनावग्रस्त मन शरीर को भी रोगग्रस्त कर देता है। आधुनिक समाज में फैले हुए विविध प्रकार के मनोकायिक रोग इसी प्रकार से उत्पन्न हुए है। मनोकायिक रोग की चिकित्सा में शरीर को दृढ़ एवं सशक्त बनाने के लिए शरीर संवर्धनात्मक आसन को आधार बनाया जाता है। जिसके लिए सूर्य नमस्कार, सिंहासन, वीरासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तनासन मत्स्येन्द्रासन, उत्कटासन, शलभासन, मत्स्यासन, कूर्मासन, गरूड़ासन, गोमुखासन और भुजंगासन के दीर्घकालिक अभ्यास के परिणाम से शरीर के हृदय, फेफड़े आदि प्राणिक अंगों की क्रिया सुचारू हो जाती है। मांसपेशियों की क्रियाविधि संतुलित हो

जाती है। शरीर के विविध अंगों में प्राण का सम्यक् संचार होने से उनमें सबलता एवं दृढ़ता आती है। ऐसा होने पर रोगी में कुछ कर सकने का भाव जागृत होने से आत्मविश्वास विकसित होता है। शारीरिक विकास के साथ पूर्ण विश्रान्ति की प्राप्ति के लिए शवासन एवं मकरासन का अभ्यास किया जाता है। स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने घेरण्ड संहिता में बताया है कि शवासन का अभ्यास सम्पूर्ण मनोकायिक संस्थान को विश्रान्त करता है। इसके द्वारा शरीर और मन के शान्त एवं शिथिल होने से तनावजन्य रोगों से मुक्ति मिलती है। किसी प्रकार की शारीरिक उत्तेजना एवं अन्य आसनों के दौरान होने वाले थकान का अनुभव शवासन के अभ्यास से दूर हो जाता है। विश्रान्त शरीर सजग एवं चैतन्य होता है और सहजता के साथ योग के उच्च अभ्यासों को करने की योग्यता अर्जित कर लेता है।

शवासन का दीर्घकालीन अभ्यास मनुष्य में विषम से विषम परिस्थिति में भी तनाव मुक्त रहने की योग्यता विकसित कर देता है। स्वात्माराम के अनुसार शवासन थकान को मिटाता है और मानसिक शान्ति प्रदान करता है।

शवासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्।।हठप्रदीपिका 1/32।।

विश्रान्त शरीर बहुत सहजता से ध्यानात्मक आसन में स्थिर हो जाता है। ध्यानात्मक आसन के अन्तर्गत पद्मासन के अभ्यास से मेरूदण्ड के निचले भाग में दबाव उत्पन्न होने से तन्त्रिकातन्त्र शिथिल हो जाता है। पेशीय तनाव में कमी आती है जिससे उत्पन्न होने वाली शारीरिक स्थिरता मन को शान्त एवं एकाग्र करती है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार पद्मासन का अभ्यास मन को नियन्त्रित कर विचारशून्य बना देता है ध्यानात्मक आसनों का नियमित अभ्यास मन को विकसित एवं समुन्नत करके क्लेशों से मुक्ति दिलाता है। ऐसी अवस्था में सहज ही तनाव से मुक्ति मिल जाती है।

आसन, व्यायाम से मूलतः भिन्न है। व्यायाम से मांस पेशियाँ प्रभावित होती है जबकि शरीर के अन्य जैविक अंगों पर प्रभाव गौण रहता है। व्यायाम के दौरान शरीर की पर्याप्त शक्ति का व्यय हाता है। आसनों के अभ्यास में स्थिरता एवं सुख की अनुभूति होती है तथा शरीर की शाक्ति का व्यय अल्पतम होता है। प्रो0 रामहर्ष सिंह ने यौगिक आसनों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को प्रयोग द्वारा ज्ञात किया। परीक्षण में पाया कि तीन से छ. मास तक योग का अभ्यास करने वाले युवक मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ्य हो गये उनमें तनाव का स्तर घट गया और साथ ही उनके व्यक्तित्व में व्यापक सुधार पाया गया।

डॉ. सरस्वती काला के अनुसार त्रिविध तापों या दुःखों से बचने के लिए योग परम औषधि है। यह परम औषधि मन और शरीर दोनों को प्रभावित करती है। अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ सामान्यतः रोगग्रस्त अंग की ही चिकित्सा करती है जबकि योग विद्या मन और शरीर की सर्वांग चिकित्सा करती है।

प्राणायाम–

आसनों के स्थिर या सिद्ध हो जाने के पश्चात् किया गया प्राणायाम का अभ्यास विशेष लाभ देता है। डॉ. प्रणव पण्डया अखण्ड ज्योति में बताते है कि 'आसन प्राणायाम का स्थूलतम रूप है जबकि ध्यान इसका सूक्ष्मतम रूप। जो आसन सिद्ध कर लेता है, वह शनैः शनैः प्राणायाम भी साध लेता है इसी तरह जो ध्यान की साधना करते है, वे प्राणों का नियमन–नियन्त्रण कर लेते हैं। आसन सधते ही प्राणचेतना सधने लगती है, जबकि ध्यान सधते ही वह सिद्ध होने लगती है। इसी कारण से आसन के स्थिर होने पर शरीर सर्दी–गर्मी के और मन सुख–दुःख के द्वंदों की पीड़ा से मुक्त हो जाता है, जब तक प्राण

दो अतियों के बीच पेंडुलम की भाँति डोलता है, सारे द्वंद तभी तक है।' प्राण के मध्यम मार्ग अपनाने पर सभी द्वंदों की समस्त पीड़ा मिट जाती है।

प्राण जीवन की शक्ति है, इसके द्वारा जीवन चक्र चलता रहता है। जीवन की समस्त क्रियाएं एवं चेष्टाएं प्राण द्वारा ही क्रियान्वित या संचालित होती है। शरीर में प्राण का असंतुलन मनुष्य में रोगों को जन्म देता है। प्राण के संतुलित रहने पर शरीर की समस्त गतिविधियँ सुचारू रूप से सम्पन्न होती रहती है और मानवीय काया स्वस्थ रहती है। योग दर्शन में प्राणायाम के दो प्रमुख परिणामों को दर्शाते हुए कहा गया है–

1. प्राणायाम के अभ्यास से अज्ञान मिटता है।
   अर्थात् अज्ञान तमच्छादित आवरण के रूप में मानव के भीतर के प्रकाश को ढके रहता है। कर्म, संस्कार और पंचक्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश) ही मूलतः अज्ञान रूपी आवरण है। प्राणायाम के अभ्यास से शनैः–शनैः यह आवरण क्रमिक रूप से क्षीण होता जाता है। फलस्वरूप योगाभ्यासी का अन्तःकरण सर्वथा प्रकाशित हो जाता है।
2. अज्ञान रूपी आवरण के क्षीण होने पर प्राणायाम अभ्यासी के मन में धारणाओ की योग्यता हो जाती है।
   अर्थात् निर्मल मन में धारणा की योग्यता विकसित होने पर उसे जिस स्थान पर चाहे सहजता से स्थिर किया जा सकता है।

प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से मन और इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाते है तथा इन्द्रियों और मन से सम्बन्धित रोग नष्ट हो जाते है। तनाव के दौरान मन अस्थिर एवं अशान्त हो जाता है। तनाव प्रबन्धन के लिए नाड़ीशोधन, शीतली, शीतकारी और भ्रामरी प्राणायाम अत्यन्त लाभकारी है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी ने अपनी पुस्तक 'आसन प्राणायाम मुद्रा बंध' में बताया है कि 'प्राणायाम का अभ्यास मन को स्थिरता प्रदान करता है।' स्थिर मन शान्त एवं रोग मुक्त होता है। शान्त मन तनाव से भी सर्वथा मुक्त रहता है। नाड़ीशोधन,शीतली, शीतकारी और भ्रामरी प्राणायाम मन की स्थिरता एवं शान्ति को प्रेरित करते है। इसके अभ्यास से प्राण के प्रवाह में आने वाले अवरोध मिट जाते है। मस्तिष्क की नाड़ियों के शुद्ध हो जाने से मस्तिष्क में स्थित केन्द्रों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। महर्षि घेरण्ड इस बात की पुष्टि करते हुए कहते है कि नाड़ी शुद्धि से नाड़ियों के अवरोध दूर होते है। रक्त संचार सुचारू रूप से होने से मस्तिष्क को पर्याप्त मात्रा में रक्त पहुँचता है तथा तनाव दूर होता है। शीतली, शीतकारी एवं भ्रामरी प्राणायाम मानसिक एवं भावनात्मक उत्तेजनाओं कों शांत करता है। इन प्राणायामों का सामान्यतः मस्तिष्क पर विश्रान्तिदायक प्रभाव होने के कारण तनाव मिट जाता है।

षटकर्म

षटकर्म शरीर के शोधन के साथ–साथ मन को विकासोन्मुख करने की यौगिक प्रक्रिया है। इसके अर्न्तगत आने वाली नेति, त्राटक तनाव को दूर करने में सहायक हैं। नेति क्रिया मस्तिष्क को शान्त करती है, जिसके माध्यम से मस्तिष्कीय उत्तेजना एवं गर्मी का शमन होता है और परिणामस्वरूप तनाव दूर होता है। त्राटक से आत्मबल में वृद्धि होती है। विचार एवं भावों के शुद्धिकरण से तनाव मिटता है।

अन्य यौगिक अभ्यास

ध्यान एक उच्च स्तरीय यौगिक अभ्यास है। प्राणायाम के अभ्यास से शुद्ध हुआ मन धारणा करने के योग्य बन जाता है। अन्तर्जगत या बहिर्जगत के किसी भी विषय को धारणा का

विषय बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ध्यान का विषय निर्गुण या सगुण परमात्मा भी हो सकता है। प्रगाढ़ धारणा ही ध्यान का रूप धारण करती है। ध्यान के अभ्यास की बहुत सी विधियाँ प्रसिद्ध है। मन पर विश्राान्तिकारक प्रभाव डालने वाली ध्यान की विधियाँ तनाव को दूर करती है। तनाव के कम होने के साथ व्यक्ति की कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। ध्यानात्मक द्वारा तनाव की कमी होने पर सहिष्णुता एवं सौहार्द की भावना में भी वृद्धि होती है।

ध्यानात्मक आसन में बैठकर अपने ईष्ट–आराध्य का चिन्तन मन में ऐसी विश्रान्ति उत्पन्न करता है जिसके द्वारा तनाव की चिकित्सा हो जाती है। मंत्र जप और स्वाध्याय की प्रक्रिया मनुष्य के अन्तरंग को पवित्र बनाती है। शुद्ध मन मानसिक तनाव से मुक्त होता है।

16.6.2 तनाव प्रबन्धन के लिए प्राकृतिक चिकित्सा

मनुष्य की शरीर संरचना इतनी विलक्षण है कि यदि उसे बिना तोड़े–मरोड़े सहजता से चलने दिया जायें तो वह लम्बे समय तक सुचारू रूप से कार्य कर सकती है। आरोग्य स्वाभाविक है जबकि रोग को प्रयत्नपूर्वक आमंत्रित किया जाता है। मनुष्य जब सादगी से परिपूर्ण स्वाभाविक जीवन जीता है तो वह बिना किसी विशेष प्रयत्न के प्रकृति की शक्तियों से लाभान्वित होता है। जबकि स्वाभाविकता को त्यागकर कृत्रिमता को अपनाने पर प्रकृति के सहज सम्पर्क से दूर हो जाता है, ऐसे में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें बढ़ती है और वह तनाव का शिकार हो जाता है। तनाव के लिए कई प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित है। इनमें औषधियों के प्रयोग से जहाँ तनाव में आराम मिलता है वही इनकी प्रतिक्रिया के दुष्प्रभाव से अन्य कई रोग उत्पन्न हो जाते है। नये–नये रोगों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए, तनाव की चिकित्सा हेतु प्राकृतिक चिकित्सा वर्तमान समय में अत्यन्त उपयोगी है।

प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तत्वों का विधिवत् प्रयोग किया जाता है। इन पंचतत्वों में भौतिक गुणों के साथ कई दिव्य गुण भी पाये जाते है जिसका लाभ तनाव के रोगी को मिलता है। मिट्टी की दिव्यता मल को भी खाद में रूपान्तरित करके उपयोगी बना देती है। जल की तरलता व्यक्ति और वस्तु को धुलकर पवित्र बनाती है। अग्नि की तेजस्विता भीतर और बाहर के समस्त दोषों को नष्ट करती है। वायु का शीतल प्रवाह तन और मन को आनन्दित एवं अहलादित करके प्राण का संचार करता है। आकाश तत्व का महत्व इन सबसे बढ़कर है। प्रकृति के पंचतत्वों में मूलतत्व आकाश है। आकाश तत्व अन्य तत्वों को नियमित एवं नियन्त्रित करता है। आकाश तत्व की साधना से उत्पन्न शब्दों के स्पन्दन तन और मन को विश्रान्ति देते है, जिससे तनाव को उत्पन्न करने वाले शारीरिक और मानसिक कारण दूर होते है। प्राकृतिक चिकित्सा में प्रकृति के पाँच तत्वों के गुणों और शक्तियों का उपयोग तनाव की चिकित्सा में किया जाता है।

प्रकृति के साथ निकटता स्थापित करने के लिए तनाव के रोगी को प्रातःकाल या सायं काल टहलने की आदत डालनी चाहिए। ऐसा करने पर मस्तिष्क को शान्त करने वाली तंत्रिका कोशिकाए क्रियाशील हो उठती है। शरीर के प्रत्येक अंगों एवं कोशिकाओं में शुद्ध रक्त का संचार होता है। इस प्रकार से टहलना तनाव मुक्ति के लिए सबसे सरल एवं उपयोगी तरीका है। तनाव की दशा में पानी पीने से शीतलता मिलती है और तनाव दूर होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से पेट की पट्टी, कटि स्नान एवं एनिमा के द्वारा मानसिक तनाव के कब्ज एवं अनिद्राजन्य लक्षणों को हटाया जाता है। सोने से पूर्व कमर एवं गर्दन पर गीली पट्टी बाँध लेने से मानसिक तनाव दूर होता है और रोगी को शीघ्र

नींद आ जाती है। बिस्तर को गीला होने से बचाने के लिए गीले कपड़े के ऊपर सूखा कपड़ा लपेट दिया जाता है। सोने से पूर्व नहाने पर भी तनाव दूर होता है और गहरी नीद आती है। रीढ़ स्नान देने से तनाव रोगी को लाभ मिलता है।

मालिश के माध्यम से शरीर की थकान दूर होती है और कोशिकाओं को विश्राम मिलता है, जिससे मन शान्त एवं तनाव दूर होता है। सूर्य प्रकाश तनाव के रोगी के लिए अमृत तुल्य है। सूर्य स्नान से रूधिर संचार में तीव्रता आती है। सूर्य स्नान श्वसन क्रिया को गहरी एवं धीमी करता है, रक्त में पोषक तत्वों की आपूर्ति को बढ़ाता है। जिससे रोगी में शक्ति का अहसास होता है और तनाव दूर होता है।

पाठकों, इस प्रकार कुशल मार्गदर्शन में दी गयी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा तनाव के रोगी को आशातीत लाभ मिलता है।

16.6.3 तनाव प्रबन्धन में उपयोगी आहार चिकित्सा

आधुनिक परिवेश की अधिकांश समस्यायें तनाव से जन्म पाती है। तनाव मन की द्वन्दात्मक स्थिति है। मानसिक विचारों एवं भावों की उधेड़–बुन के फलस्वरूप मस्तिष्क पर थकान की प्रतिक्रिया होती है। मस्तिष्क एक ओर शरीरगत स्थूल गतिविधियों को नियमित एवं नियंत्रित करता है तो दूसरी तरफ मन की सूक्ष्म गतिविधियों को संचालित करता है। थका हुआ मस्तिष्क शरीर की गतिविधियों को नियंत्रित करने में असफल होने के साथ–साथ मन के कुशल संचालन में असफल सिद्ध होकर तनावग्रसित हो जाता है। तनावग्रसित मन को आहार के चयन के लिए स्वतंत्र छोड दिया जाये तो वह असंयम ही दिखायेगा। ऐसी दशा में तनाव मन पर अपनी गहरी पैठ अदा करके स्थिति को और बिगाड़ देता है।

तनाव ग्रसित मन की प्रवृति रजोगुण और तमोगुण की ओर होती है। ऐसी दशा में व्यक्ति का रूझान फास्टफूड की ओर होता है। शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के फास्टफूड प्रचलन में है। फास्टफूड को स्वादिष्ट बनाने के लिए ब्रेड, सैंडविच, पराठा, केक आदि शुद्ध शाकाहारी माने जाने वाले भोज्य पदार्थों में अड़ें की मिलावट सामान्य बात हो गयी है। बोतल बंद ठंडें पेय पदार्थ पीना समान्य बात हो गयी है।

राजसिक और तामसिक श्रेणी के खाद्य पदार्थों की लिप्सा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालती है। दोषपूर्ण आहार का अन्धाधुंध सेवन व्यक्तिगत ही नहीं, समाज की समस्या बन गया है। इन भोज्य पदार्थों ने स्वास्थ्य के लिए संकट खडा करके जीवन को संकट ग्रस्त बना दिया है।

आहार से ही शरीर और मन का निर्माण होता है। आहार जीवन पर्यन्त व्यक्ति के विकास पथ को प्रशस्त करने में अपनी अहम भूमिका अदा करता है इसलिए मनुष्य को समुचित मात्रा में उपयोगी आहार का ही सेवन करना चाहिये। मिर्च–मसाले युक्त, तले–भुने एवं डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ में प्राण ऊर्जा और जीवनी शक्ति का पर्याप्त अभाव होता है। जायकेदार और जीवनी शक्ति से रहित होने पर भूख से अधिक खाने की प्रवृत्ति को उत्पन्न करने के कारण इनके दोहरे नुकसान है। एक तो प्राण ऊर्जा से रहित होने के कारण ये मनुष्य को भीतर ही भीतर खोखला बना देते है। दूसरे जिह्वा को रूचिकर लगने के कारण भूख से अधिक खा लिए जाते है और विभिन्न प्रकार के रोग को उत्पन्न करते है। रोगों का दबाव मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है। मन विचलित होता रहता है। मन की अस्थिर अवस्था उसे किसी काम पर टिकने नहीं देती। ये परिस्थितियाँ तनाव को उत्पन्न करती है। तनाव की दशा में मन अपनी स्वाभाविक सामर्थ्य को खो बैठता है।

तनाव से छुटकारा पाकर मन की सामर्थ्य को विकसित करने की प्रक्रिया आहार की उपेक्षा करके सम्भव नहीं है। जीवधारियों की भाँति भोज्य पदार्थों में भी स्थूलकोश, सूक्ष्मकोश और कारण कोश होते है। स्थूलकोश में स्वाद एवं भार होता है, सूक्ष्म कोश में प्रभाव और गुण होते है जबकि कारण कोश में अन्न का संस्कार रहता है, जो अन्न किस स्रोत से अर्जित किया गया है इस पर भी निर्भर करता है। अन्न के सूक्ष्म और कारण कोश से व्यक्ति की मनोभूमि निर्मित होती है। व्यक्ति को ऐसे आहार का चयन करना चाहिए जो उसे तनाव मुक्त जीवन दे सके।

आहार विशेषज्ञों का मानना है कि तनावमुक्त जीवन जीने के लिए व्यक्ति को सादे, सुपाच्य और प्राकृतिक आहार को प्रसन्नतापूर्वक खाने की आदत विकसित करनी चाहिए। उदारीकरण एवं ग्लोवलाइजेशन के युग में प्रचलित होती फास्टफूड की पश्चिती सभ्यता को छोड़ना चाहिए। प्रचीन भारतीय संस्कृति की दाल, चावल, रोटी, सब्जी जैसी पुरानी आहार परम्परा को पुनः जीवन का अंग बनाना होगा। प्राकृतिक एवं नैसर्गिक आहार पोषण शक्ति और जीवनी शक्ति से भरपूर होते है। इस दृष्टि से अंकुरित आहार अत्यन्त उपयुक्त है। तनाव की दशा में सेब खाने से लाभ मिलता है। इसके साथ अपने क्षेत्र में उत्पन्न एवं सहजता से उपलब्ध होने वाले ऋतुफल, शाक, टमाटर, गाजर, भिंडी, मूली, खीरा, ककड़ी, लैकी, सेम आदि सब्जियाँ एवं सलाद इस दृष्टि से उपयोगी होते है।

तनाव के निराकरण के लिए स्वास्थ्य के लिए उपयोगी प्राकृतिक एवं संतुलित आहार का सेवन सर्वोतम उपाय है। हरी सब्जियों, तरबूज, खरबूज जैसे मौसमी फलों में सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते है। ये प्राकृतिक आहार सात्विक, हल्के एवं मानव मन की स्वाभाविक प्रकृति के अनुरूप होते है। आवश्यकता के अनुसार दूध, दही एवं घी का सेवन स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा होता है। इस प्रकार का आहार ग्रहण करने पर शरीर में रोगों से लडने की अपार क्षमता विकसित हो जाती है। रोगमुक्त शरीर में स्वस्थ्य मन का निवास होता है। उपयोगी प्राकृतिक आहार के सेवन से तनाव रहित स्वच्छ मन का विकास भी होता है इसलिए तनाव से मुक्ति के लिए आहार की महत्ता बताई गयी है।

16.6.4 तनाव प्रबन्धन के लिए उपयुक्त जीवन शैली

सदा जीवन और उच्च विचार के सिद्धांत को अपनाने वाला हल्की–फुल्की जिन्दगी जीने का अभ्यस्त होता है और तनाव जन्य मानसिक विकारों से चिरकाल तक दूर रहते है वैज्ञानिक, बौद्धिक और आर्थिक प्रगति के वर्तमान दौर में मनुष्य नित नयी–नयी व्यथाओं से घिरता जा रहा है। इन व्यथाओं का वास्तविक कारण न तो अभावजन्य है और न जीवाणुओं एवं विषाणुओं का आक्रमण, मूलतः ये व्यथायें मानसिक तनाव का परिणाम होती है। तनावयुक्त दशा में मन की शक्ति अस्त–व्यस्त होकर मस्तिष्क की सामर्थ्य को क्षीण कर देती है। तनाव का प्रमुख कारण विकृत जीवन शैली हैं। विकृत जीवन–शैली मानसिक तनाव को उत्पन्न करने में प्रेरक का कार्य करती है। अस्त–व्यस्त जीवन–शैली को सुव्यस्थित करके तनावजन्य मनोविकारों से छुटकारा पाया जा सकता है।

अध्ययन, व्यवसाय एवं नौकरी की प्रतिस्पर्द्धा, सफलता की इच्छा, दूसरों से आगे बढ़ने की चाहत एवं असफल होने का भय जैसे कई कारक तनाव में वृद्धि करते हैं। विलासिता पूर्ण जीवन–शैली तनाव को सहन करने की सामर्थ्य को भी घटा देती है। तनाव के भयावह स्वरूप से बचने के लिए शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्तरों को स्वस्थ एवं समर्थ बनाना होगा। इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण बातों को अपनी जीवन–शैली का अंग बनाकर बड़ी सहजता से तनाव से बचा और विकास के नये सोपानों पर चढ़ा जा सकता है। ऐसे कई

प्रेरक, सफल एवं सार्थक उपाय है जिन्हें जीवन–शैली का अंग बनाकर मानसिक तनाव को दूर किया जा सकता है।

1. मनुष्य को अपनी समार्थ्य के अनुरूप ही कार्यों को हाथ में लेना चाहिए।
2. समय की सम्पदा का उपयोग सोच समझकर करना चाहिए।
3. जीवन को रचनात्मक बनाने के लिए अपनी रूचियों का बढ़ाना चाहिए।
4. समधुर संगीत को जीवन–शैली में स्थान देना चाहिए।
5. आशावादी दृष्टिकोण अपनाने से तनाव दूर होता है और कठिन परिस्थितियों में भी लक्ष्य की ओर बढ़ना आसान हो जाता है।
6. कार्यों की सूची बनाकर प्राथमिकता के आधार पर व्यवस्थित ढंग से करना चाहिए। बीच–बीच में कार्य को बदल लेना चाहिए या फिर अपनी पसंद के कार्य को कर लेने से ताजगी का अहसास होता है।
7. डायरी लेखन जीवन–शैली को सुगठित एवं सुव्यवस्थित करने का सरल एवं सर्वोत्तम माध्यम है। जीवन के समस्त छोटे–बड़े कार्यों का लेखा–जोखा की जिम्मेदारी मस्तिष्क को सौंपने पर उसका बोझ बढ़ता जाता है। ऐसी दशा में मस्तिष्क तनाव एवं थकान ग्रस्त होकर, ठीक से कार्य करने की सामर्थ्य को खो बैठता है। डायरी लेखन की प्रक्रिया में मस्तिष्क की कार्यों के लेखा–जोखा की प्रक्रिया में खर्च होने वाली बहुत सी मानसिक ऊर्जा बच जाती है। लेखन की प्रक्रिया के अनेकों लाभ है, जैसे – पहला, डायरी लेखन से कार्यों का लेखा–जोखा करने पर मस्तिष्क का बोझ कम हो जाता है। दूसरा, लिखने की प्रक्रिया में कार्य को प्राथमिक के आधार पर कर पाना आसान हो जाता है। तीसरा, लिखने की प्रक्रिया में कार्य को करने की योजना भी मस्तिष्क में आने लगती है, साथ ही कार्य करने की शक्ति भी बढ़ जाती है। इसके लिए मनुष्य को अपने कार्य से संबंधित सभी बातों व भविष्य की योजनाओं के साथ–साथ मस्तिष्क में उठने वाली अच्छी विचारधाराओं को अपनी डायरी लेखन में शामिल करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को बेचैनी, चिडचिड़ापन जैसे–तनावजन्य लक्षणों में शीघ्र आराम मिलता है।
8. प्रतिदिन कुछ समय प्राकृतिक दृश्यों जैसे– उगते एवं डूबते हुए सूरज, पक्षियों के कलरव, नदी, वृक्ष, वनस्पतियों, अनन्त आकाश, चन्द्रमा आदि के साथ बिताने से मन को प्रसन्नता एवं शांति मिलती हैं।
9. नींद एंव विश्राम के सुनिश्चित निर्धारण से ताजगी आती है। छल कपट से बचते हुए कथनी और करनी के भेद को समाप्त करना चाहिए तथा मन मस्तिष्क को निरन्तर निर्मल बनाने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।
10. उच्च भावनाओं तथा दया, करूणा, प्रेम के विकास के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की ओर प्रवृत होना चाहिए।
11. जीवन–शैली में मौन एवं प्रार्थना के समावेश से मन नितान्त तनाव मुक्त एवं शांत हो जाता हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न– सत्य/असत्य

1. तनाव के दौरान सिम्पैथेटिक स्नायुसंस्थान निष्क्रिय हो जाता है।
2. शिथिलीकरण का अभ्यास तनाव को मिटाने का सरल अभ्यास है।
3. आशावादी दृष्टिकोण अपनाने से तनाव दूर होता है।

4. कार्य का अत्यधिक दबाव व्यक्ति को तनावमुक्त करता है।
5. तनावमुक्ति के लिए व्यक्ति को सादे, सुपाच्य तथा प्राकृतिक आहार को प्रसन्नतापूर्वक खाना चाहिए।

16.7 सारांश

शान्ति और प्रगति के आकांक्षा मानवीय समुदाय को होती है। सामान्यतः मानव बाहरी संसार की ओर आकर्षित होता है। संसार के आकर्षण उसे लुभाते है। ऐसी दशा में उसकी प्रगति की दिशा भी बहिरंगी होती है और उसके लिए किया गया प्रयास भी एकांगी एवं अधूरा होता है। परिणाम स्वरूप उसे या तो असफलता हाथ लगती है या फिर उसकी सफलता अधूरी रह जाती है। सफलता की चाहत से पनपने वाली प्रतियोगी वृत्ति के कारण मनुष्य में मानसिक द्वन्द, उद्वेग, तनाव, हताशा, निराशा ईर्ष्या, द्वेष जैसे अनेकों नकारात्मक संवेग उत्पन्न होकर मन को दुर्बल बना देते है। तनाव देने वाले इन नकारात्मक संवेगों के निराकरण में वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति अत्यन्त कारगर है।
योग मनुष्य की सर्वांगीण एवं समग्र प्रगति का आधार है। योग चिकित्सा नकारात्मक संवेगो को निकालती हुई मनुष्य के लिए सफलता के द्वार खोलती है। योग का प्रयोग मनुष्य को परावलम्बी से आत्मावलम्बी बनाकर तनावमुक्त करता है। योग से प्राप्त सफलता समग्र एवं सम्पूर्ण होती है। तनाव युक्त दशा में मानवीय मन प्रकृति के सहज सानिध्य से वंचित हो जाता है। तनाव की स्थिति में प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा प्रकृति के पंचतत्वों का चिकित्सीय ढ़ग से उपयोग किया जाता है। वास्तव में प्रकृति के पंचतत्व मनुष्य का प्रकृति से सहचर्य स्थापित करते है और मनुष्य तनाव से मुक्ति की सहज अनुभूति करता है। सादा, सुपाच्य और प्राकृतिक आहार शरीर के साथ–साथ मन को भी उचित पोषण देता है। जिससे मानसिक सामर्थ्य विकसित होती है और मन तनाव से दूर रहता है। जीवन की अस्त–व्यस्तता को दूर करके और उपयोगी एवं प्रेरक तत्वों को शामिल करके जीवन शैली को सम्यक् बनाया जाता है। सम्यक् जीवन शैली मनोग्रंथियों को खोलकर मनुष्य को तनाव मुक्त जीवन देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रयुक्त वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों के समुचित अभ्यास से उत्पन्न सूक्ष्म प्रभाव मन की विकृतियों को दूर करके तनाव का निराकरण कर देता है।

16.8 शब्दावली

सिम्पैथेटिक स्नायु संस्थान–	तंत्रिकातंत्र का वह भाग जो किसी अंग विशेष की क्रियाशीलता को त्वरित करता है।
त्रिविध ताप–	दुःख के तीन भेद आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक है।
असमायोजन–	समायोजन का अभाव।
सामयिक कष्ट–	वर्तमान संकट।

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य

16.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरूण कुमार(2002) आधुनिक आसामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- सुलेमान, डा.मुहम्मद और तौवाब, डा. मुहम्मद(2004) *असमान्य मनोविज्ञान,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डा अजय कुमार(2008) *मनोविकृति विज्ञान,* अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
- गुप्ता, हरि ओम(2009) *सूर्य चिकित्सा,* डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली।
- शलभ, शशिभूषण(2011) वैकल्पिक चिकित्सा, राजा पॉकेट बुक्स, दिल्ली।

- सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द(2004) *घेरण्ड संहिता,* योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, बिहार।
- पण्डया, डा. प्रणव(मई, 2011) अखण्ड ज्योति, अति घातक है यह तनाव, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 32।
- पण्डया, डा. प्रणव(सितम्बर, 2013) अखण्ड ज्योति, डायरी लेखन की आदत जरूरी, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 9–10।
- पण्डया, डा. प्रणव(सितम्बर, 2013) अखण्ड ज्योति, क्रोध को नियंत्रण में कैसे रखें, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 31–32।
- पण्डया, डा. प्रणव(दिसम्बर, 2011) अखण्ड ज्योति, द्वन्द्वातीत बनाती है आसनसिद्धि, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 37।
- चैतन्य, द्वारका प्रसाद(जनवरी, 2010) युग निर्माण योजना, विकृत आहार हमें रोगी बनाता है, युग निर्माण योजना ट्रस्ट मथुरा, पृ. 9।
- चैतन्य, द्वारका प्रसाद(जुन, 2009) युग निर्माण योजना, अंकुरित आहार ले, ओजस बढाएँ, युग निर्माण योजना ट्रस्ट मथुरा, पृ. 12–13।
- चैतन्य, द्वारका प्रसाद(अगस्त, 2012) युग निर्माण योजना, आहार गुणशील हो, युग निर्माण योजना ट्रस्ट मथुरा, पृ. 16।
- आचार्य, श्रीराम शर्मा(2007) *गायत्री महाविज्ञान,* गायत्री तपोभूमि मथुरा।
- सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द(2003) *आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध,* योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, बिहार।
- ब्रह्मवर्चस(2003) आर्युवेद का दर्शन क्रिया शारीर एवं स्वस्थवृत्त, श्रीवेदमाता गायत्री ब्रह्मवर्चस(1998) ट्रस्ट, हरिद्वार, पृ. 27।
- ब्रह्मवर्चस(1998) *साधना पद्धतियो का ज्ञान और विज्ञान,* वाङ्.मय 4, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
- सिह, प्रो. रामहर्ष(1999) योग और यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
- दिगम्बर, स्वामी और झा, डा. पिताम्बर(2011) हठ प्रदीपिका स्वात्माराम–कृत, कैवल्य धाम, श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला।
- काला, डा सरस्वती (2012) योग चिकित्सा आधार भूत तत्व एवं सिद्धांत, जगदम्बा पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
- गोयन्दका, हरिकृष्णदास(2005) *पातंजल योग दर्शन* (2/46,48,52), गीताप्रेस गोरखपुर।
- उपाध्याय, गोविन्द प्रसाद (2000) *आयुर्वेदीय मानस रोग चिकित्सा,* चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. तनाव के स्वरूप को स्पष्ट करिए।

प्रश्न 2. तनाव के लक्षणों एवं कारणों का विवरण दीजिए।

प्रश्न 3. तनाव प्रबन्धन के लिए योग चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 4. तनाव प्रबन्धन के लिए आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली की व्याख्या कीजिए।

इकाई–17 चिन्ता– लक्षण, कारण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

17.1 प्रस्तावना
17.2 उददे्श्य
17.3 चिन्ता का स्वरूप
17.4 चिन्ता के लक्षण
17.5 चिन्ता के कारण
17.6 चिन्ता की वैकल्पिक चिकित्सा
17.6.1 योग द्वारा चिन्ता की चिकित्सा
17.6.2 चिन्ता की प्राकृतिक चिकित्सा
17.6.3 चिन्ता के लिए आहार चिकित्सा
17.6.4 चिन्ताग्रस्त रोगियों के लिए आवश्यक जीवन शैली
17.7 सारांश
17.8 शब्दावली
17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, रोगों की वैकल्पिक चिकित्सा से सम्बन्धित यह सत्रहवी इकाई है। प्रस्तुत इकाई में चिन्ता के लक्षण, कारण एवं उसकी वैकल्पिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है। चिन्ता के स्वरूप की पहचान होने के साथ वैकल्पिक चिकित्सा की विधियों द्वारा उसका समाधान कर पाना सरल हो जाता है। यहाँ पर वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा और उपयुक्त जीवन शैली के चयन के माध्यम से चिकित्सीय समाधान प्रस्तुत किया गया है।

चिन्ता की मनोव्यथा व्यक्ति के मन–मस्तिष्क को अवरूद्ध करके उसकी मानसिक और शारीरिक सामर्थ्य को क्षीण कर देती है। ऐसी दशा में जीवन के दैनिक क्रियाकलापों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों की विविध विधियाँ व्यक्ति को कृत्रिमता से दूर सहज स्वाभाविक जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है। जिसके द्वारा उसे अपनी खोई हुयी मानसिक और शारीरिक सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है। वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत आने वाली योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा और श्रेष्ठ जीवन शैली जब व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाती है। तो चिन्ता के रोगी का मानसिक उत्थान होता है जिसके प्रभाव में चिन्ता के तहत उत्पन्न होने वाले शारीरिक लक्षण भी दूर होते हैं। ये चिकित्सा पद्धतियाँ रोगी में प्रेरक की भूमिका निभाती हैं जिससे रोगी की मनोव्यथा कम होती है। रोगी के भीतर नकारात्मकता के स्थान पर सकारात्मकता को बल मिलता है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के विपरीत वैकल्पिक चिकित्सा व्यक्ति को आधुनिकता से दूर प्राकृतिक तरीकों से चिन्ता रोग का समाधान करने के लिए प्रेरित करती है। ये तरीके सभी प्रकार के दुष्प्रभाव से रहित है। इनके माध्यम से व्यक्ति के स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और सामर्थ्य का विकास होता है। वास्तव में इनके द्वारा चिन्तन को सही दिशा मिलती है जिससे व्यक्तित्व सुगठित और व्यवस्थित हो जाता है तथा प्रगति के नये मार्ग खुलते है। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ रोगी के लिए चिन्ता निवारण का स्थायी समाधान प्रस्तुत करती है।

17.2 उददे्श्य

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के बाद आप–

- चिन्ता के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- चिन्ता के लक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- चिन्ता के कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- चिन्ता की वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा का विश्लेष्ण कर सकेंगे।
- चिन्ता के समाधान हेतु आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का विवेचन कर सकेंगे।

17.3 चिन्ता का स्वरूप

चिन्ता अपने आप में एक ऐसा मानसिक रोग है जो व्यक्ति के विचारों में लगकर भीतर ही भीतर उसे खोखला करता जाता है। चिन्ता सामान्यतः अज्ञात, अमूर्त एवं व्यक्तिनिष्ठ परिस्थितियों से सम्बन्धित होती है। जो प्रायः इच्छित वस्तु के न प्राप्त होने की दशा में या फिर उसको प्राप्त करने के मार्ग में आने वाले अवरोधों के द्वारा उत्पन्न होती है। चिंता का स्वरूप नकारात्मक होता है, इसमें किसी घटना के घटित होने से पूर्व ही उसके हानिकारक परिणाम की आशंका का विचार मन में उठता है, जो प्रश्रय मिलने पर बढ़ता जाता है। चिन्ता की मनोव्यथा में व्यक्ति के सम्मुख प्रेरक तत्वों का अभाव हो जाता हैं और आशंकाएँ व नकारात्मक कल्पनाएँ उत्पन्न होकर प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध कर देती है।

परिभाषायें

मनोवैज्ञानिकों द्वारा चिन्ता के सम्बन्ध में दी गई कुछ परिभाषाए निम्नवत् है–

फ्रायड(1924) के अनुसार–"चिन्ता एक ऐसी भावनात्मक एवं दुखद अवस्था होती है, जो व्यक्ति के अहं को आवंबित खतरों से सतर्क करती है ताकि व्यक्ति वातावरण में समायोजित हो सके।"

स्पाइलबरगर(1960) कहते है– "चिन्ता उद्दोलन की वह अवस्था है जो भय से बचने के कारण उत्पन्न होती है।"

कॉलमेन(1969) के अनुसार "असुरक्षा की भावना के कारण तथा दमित इच्छाओं के कारण अचेतन स्तर पर व्यक्त न हो पाने के कारण चिन्ता उत्पन्न होती है। "

हर्नी(1945) के अनुसार " चिन्ता एक प्रकार की भावना है जो व्यक्ति में उस समय उत्पन्न होती है जब वह अनुभव करता है कि वह शत्रुता पूर्ण संसार में अकेला असहाय है।"

चिन्ता के प्रकार

विख्यात मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने चिन्ता के तीन प्रमुख प्रकार बताये है–

1. वस्तुनिष्ठ चिन्ता
2. नैतिक चिन्ता
3. तन्त्रिकातापी या मनस्तापी चिन्ता

वाह्य भौतिक जगत या सामाजिक वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने में जब व्यक्ति का अहम् दुर्बल पड़ जाता है तो वस्तुनिष्ठ चिन्ता उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ– प्राकृतिक आपदा, निकटतम सम्बन्धी की असाध्य बीमारी, प्रतिष्ठा–क्षति आदि से उत्पन्न चिन्ता। व्यक्ति के अनैतिक इच्छा की अभिव्यक्ति के सम्भावित दुष्परिणामों या कठोर दण्ड की सम्भावना से नैतिक चिन्ता की उत्पत्ति होती है। व्यक्ति के अचेतन संघर्ष के द्वारा तन्त्रिकातापी चिन्ता उत्पन्न होती है।

आयुर्वेदीय मानसरोग चिकित्सा नामक पुस्तक में डा0 गोविन्द प्रसाद उपाध्याय ने चिन्ता के दो प्रकार बताए हैं–

1. स्वाभाविक चिन्ता व
2. अस्वाभाविक चिन्ता।

स्वाभाविक चिन्ता का कारक मूलतः वातावरण में विद्यमान मूर्त (स्थूल) वस्तु या मन पर दुष्प्रभाव डालने वाली कोई परिस्थिति होती है। इसमें कारण को हटा देने पर चिन्ता भी दूर हो जाती है। जबकि अस्वाभाविक चिन्ता में रोगी के चिन्तित रहने के कारण अज्ञात होता है। उसकी चिन्ता का कोई प्रत्यक्ष स्रोत नहीं होता है। उसके समक्ष अपने दुःखें, कष्टों एवं अन्तर्द्वन्दों का कारण अस्पष्ट होता है। अस्वाभाविक चिन्ता, चिन्ता की ऐसी असामान्य एवं विकृत दशा होती है जो व्यक्ति की नकारात्मक कल्पना एवं अन्तर्मन की उपज होती हैं।

17.4 चिन्ता के लक्षण

चिन्ता ग्रस्त रोगी का समय पर उपचार न करने पर उसमें अनेक तरह के शारीरिक और मानसिक लक्षण प्रकट होते है।

शारीरिक लक्षण

चिन्ता के शारीरिक लक्षणों के अन्तर्गत मुहँ सूखना, श्वास–प्रश्वास सम्बन्धी कठिनाइयाँ या रूक–रूककर लंबी साँस खींचना, हाथ काँपना, हथेलियों और पैरों के तलवों का ठण्डा होना, सिर दर्द, आँखों के चारों ओर काला घेरा, भौहों का तन जाना, आँखों की पुतलियों का फैल जाना, समस्त शरीर की मांसपेशियों का अकड़ जाना, अनिद्रा, थकान, कमजोरी, चक्कर आना, नाड़ी की गति का बढ़ना, असन्तुलित जठराग्नि, बार–बार पेशाब या शौच करने की इच्छा होना एवं चेहरे पर भय या घबराहट का भाव उभरना प्रमुख हैं।

मानसिक लक्षण

चिन्ता के मानसिक लक्षणों के अन्तर्गत छोटी–छोटी बात को लेकर परेशान रहना, मानसिक अस्थिरता, विचारों में द्वन्द की स्थिति, निर्णय लेने की क्षमता का अभाव, हीन भाव, मृत्यु से भय, भविष्य को अन्धकारपूर्ण समझना, असुरक्षा का भाव, असहनशीलता, शीघ्र गुस्सा आना, चिड़चिड़ापन आदि आते है। रात में इन लक्षणों का वेग बढ़ जाने से नींद में विघ्न पड़ता है और रोगी गहरी नींद नहीं ले पाता।

चिन्ता के रोगी किसी कार्य को करने की सोचते है तो उसको पूरा करने के लिए योजना बनाने और उसके लिए साधनों को जुटाने की चिन्ता करते है। कार्य सम्पादन के मार्ग में आने वाली बाधाओं के विषय में सोचना उनका स्वभाव बन जाता है। ऐसी दशा में उनकी

रातों की नींद उड़ जाती है और दिन का चैन खो जाता हैं। अनेकों प्रकार की आशंकाएँ उन्हें घेरे रहती है। ऐसी चिन्तित मनोव्यथा में सफलता के बजाए असफलता ही मिलती है।

17.5 चिन्ता के कारण

आप चिन्ता के लक्षणों से परिचित हो गये हैं अब उन लक्षणों को उत्पन्न करने वाले कारणों को जानने का प्रयास करते है। चिन्ता की उत्पत्ति के लिए अनेकानेक कारण उत्तरदायी होते हैं–

1 जीवन की जटिल समस्याएं

चिन्ता की दशा में व्यक्ति जीवन की जटिल समस्याओं का सामना करने के बजाए उनसे घबड़ाता है और उनसे बचने का प्रयास करता है।

2 असुरक्षा की भावना

चिंता ग्रस्त व्यक्ति सामान्य परिस्थितियों में भी अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है और थोडी़ सी भी प्रतिकूल परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने पर घबड़ा जाना उसका सहज स्वभाव बन जाता है।

3 उत्साहहीन जीवन

जीवन में मिलने वाली सतत् असफलताओं एवं अन्तर्द्वन्दों से कुछ व्यक्ति दुःखी हो जाते हैं और अपने भीतर का उत्साह खो बैठते हैं।

4 पारिवारिक सम्बन्धों में मनमुटाव

पारिवारिक सम्बन्धों में समायोजन का अभाव और वैवाहिक जीवन में पारस्परिक मनमुटाव व अलगाव से व्यक्ति परेशान हो उठता है। ऐसी दशा में उसे अपना भविष्य अन्धकारमय एवं निराशाजनक प्रतीत होता है, जिससे वह चिन्ता ग्रस्त रहने लगता है।

5 मादक द्रव्यों का अत्यधिक सेवन

मानसिक वेदना को कम करने के लिए कुछ लोग मादक पदार्थों का सेवन करते हैं, परन्तु समय बीतने पर मादक द्रव्यों के अत्यधिक उपयोग से भी उन्हें लाभ नहीं मिलता तो चिन्ता के लक्षण प्रत्यक्ष दिखने लगते हैं।

6 कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ

मानव जीवन चुनौतियों से भरा हुआ है। जीवन के विविध पड़ावों पर कुछ ऐसी कष्टपूर्ण परिस्थितिया आती हैं जिससे व्यक्ति में चिन्ता की मनोव्यथा उत्पन्न हो जाती है। इन कष्टजन्य परिस्थितियों में प्रियजन की असामयिक एवं दुःखद मृत्यु, वैधव्य, निराशापूर्ण वैवाहिक जीवन, तलाक, दीर्घकालिक शारीरिक रूग्णता, प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली धन व सम्पत्ति की हानि आदि आते है। जिसके दुष्प्रभाव से जीवन अन्धकार मय एवं आशाविहीन हो जाता है और व्यक्ति में स्थायी चिन्ता अपना अस्तित्व जमा लेती है।

इन कष्टदायी परिस्थितियों के अतिरिक्त उच्च महत्वाकाक्षाएं भी व्यक्ति को चिन्ता ग्रस्त कर देती हैं, क्योंकि उच्च महत्वाकाक्षाओं को पूरा करने के लिए निरन्तर सतर्क रहने की आवश्यकता पड़ती है । इस प्रक्रिया में व्यक्ति की बहुत अधिक मानसिक ऊर्जा का व्यय होता है। ऐसी दशा में व्यक्ति के लिए सामान्य घटनाक्रम का भी मुकाबला करना कठिन हो जाता है और उच्च महत्वाकाक्षां को पूरा करना असम्भव प्रतीत होने पर चिन्ता जीवन का अंग बन जाती है।

उपभोक्तावाद के दौर में विज्ञापनों द्वारा उत्पादों का प्रचार इस तरह से किया जाता है कि उसके प्राप्त न होने पर जीवन में सुखों का अभाव सा लगता है। आज इंटरनेट और

मोबाइल फोन सामान्यतः मनुष्य की आवश्यकता बन गया है इसके अभाव में व्यक्ति का जीवन बोझिल एवं उबाऊ लगता है। जिससे उसके भीतर चिन्ता घर कर जाती है।

इन कारणों के साथ ऐसे अनेकानेक कारण है जिन्हें यदि जीवन में पराश्रय मिले तो वे व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक शक्तियों का ह्रास करते है और व्यक्ति की चिन्ता का कारण बनते है।

17.6 चिन्ता की वैकल्पिक चिकित्सा

पाठकों, चिन्ता के लक्षण और कारण को जान लेने के पश्चात् अब आपको चिन्ता के निवाकरण के लिए वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों का विवरण दिया जा रहा है।

मनुष्य को छोटे बच्चों की भाँति उत्साही, सक्रिय, खुशमिजाज, और सरल रहना चाहिए। वे स्वयं प्रसन्न रहते है और सानिध्य में आने वाले परिचितों और अपरिचितों को भी प्रसन्नता का अहसास देते रहते हैं। बाल मन अत्यंत सरल, सहज एवं प्रकृति के अत्यन्त निकट होता है। वह प्रकृति के सानिध्य में ही तरह–तरह के आकर्षण को खोजकर आनान्दित होता रहता है। बाल मन की यही सरलता, सहजता और प्रकृति से नजदीकी बच्चों को सभी प्रकार के मनोरोगों से बचाती है। मनुष्य की संरचना ऐसी विलक्षण है जो प्रकृति के साथ लयबद्ध होकर सहजता से रोगमुक्त एवं प्रसन्न रह सकती है।

मनुष्य की लगातार बढ़ती बीमारियों का मूलकारण प्रकृति के साथ बढ़ती दूरी और कृत्रिमता का अंधानुकरण है। मनुष्य का वर्तमान जीवन अत्याधिक कृत्रिम एवं आप्राकृतिक हो गया है और कृत्रिमता उसके व्यवहार, विचार एवं भावों में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। परिणाम रूप में वह लोभ, क्रोध, मोह, आसक्ति एवं महत्वकाक्षां के जंजाल में फँसा दिखायी देता है। ये मनो दशायें चिन्तन को विकृत करके चिन्ता को जन्म देती है। चिन्ता अपने आप में एक रोग है जो व्यक्तित्व को खोखला कर देती है, उसकी सार्थक एवं स्वस्थ चिन्तन की सामर्थ्य को छीन लेती है।

मस्तिष्क के कार्यों के अंतर्गत उसकी सोचने की क्रिया प्रमुख है। मस्तिष्क की वृहद संरचना में उसकी चेतन परत के साथ अन्य पर्तें भी आती है। मनोविज्ञान जिन्हें चेतन के साथ–साथ अचेतन, अवचेतन और अतिचेतन की संज्ञा देता है। मनुष्य की शांत, एकान्त एवं विश्राम की अवस्था में चेतन मस्तिष्क तो शान्त रहता है किन्तु मस्तिष्क की अन्य पर्तें क्रियाशील रहती हैं। कई बार जिन संकेतों को अनावश्यक एवं अनुपयुक्त मानकर चेतन मस्तिष्क अस्वीकार कर देता है, उन्हीं अनुपयोगी समझे जाने वाले संकेतों से मस्तिष्क की अन्य पर्तें प्रभावित हो जाती हैं और उन्हीं के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर देती है। मनोवैज्ञानिकों ने अनेकानेक प्रयोगों में इसी सिद्धांत को आधार बनाया और पाया कि यदि चेतन मस्तिष्क को ठीक–ठीक संकेत दिया जाये तो मन मस्तिष्क की गहनतम् पर्तों में छिपी चिन्ता, हतासा, निराशा एवं उदासी जैसे रोगों का निवारण किया जा सकना संभव है।

मनोचिकित्सकों का कहना है कि मनुष्य की निद्रावस्था और जागते समय सुषुप्ति अवस्था मे पड़े रहने पर भी उसका मन–मस्तिष्क शांत नहीं रहता। उस समय वह विचारों के झंझावात में फँसा रहता है और उपयोगी लगने वाली बात को सुरक्षित करके शेष को छोड़ देता है। तात्पर्य यह है कि इस काल में मस्तिष्क का कार्य सूचनाओं का चयन करना होता है। यदि इस प्रक्रिया का ठीक से उपयोग किया जाये तो इसके माध्यम से मनोविकारों का निष्कासन किया जाना भी संभव है। मस्तिष्क की चेतन परत को बारम्बार एक ही प्रकार का संवेदन

देने पर वह मस्तिष्क की गहनतम पर्तों में प्रवेश कर जाती है। तब संवेदन के अनुसार प्रतिक्रियायें होने लगती हैं और उसी के अनुरूप परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं यह प्रक्रिया मन मस्तिष्क के अवचेतन और अचेतन पर्तों को प्रभावित करती है और ये भाग उसी के अनुरूप कार्य करने लगते हैं। इस तरह मन की इन गहन पर्तों में प्रवेश करके इनका परिष्कार और परिमार्जन के साथ–साथ विकास एवं विस्तार भी किया जा सकता है।
जहाँ आधुनिक उपचार पद्धति रोगों का कुशल उपचार करने में असफल साबित हो रही है वहीं वैकल्पिक उपचार पद्धति उसी कार्य को कुशलता पूर्वक करने में सफल है। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा और उपयुक्त जीवन शैली का अवलम्बन न केवल शारीरिक रोगों से सुरक्षा देता है अपितु व्यक्ति की मानसिक संरचना को ठीक करके मनोरोगों से भी मुक्ति दिलाता है। योग चिकित्सा में प्रारम्भिक यौगिक अभ्यासों के अन्तर्गत षट्कर्म, आसन आदि शारीरिक कष्टों का निराकरण करके मन को हल्का करते हैं। क्रमिक रूप से उच्चतर यौगिक अभ्यास प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि मन से चिन्तादि विकारों को निकालकर मन की संरचना को पुष्ट करते है। प्राकृतिक चिकित्सा में चिन्ता के शरीरगत कारणों का उपचार तो होता ही है, साथ ही प्राकृतिक तत्वों के माध्यम से व्यक्ति का मन प्रकृति के अत्यधिक नजदीक पहुँच जाता है। प्रकृति से नजदीकी का अनुभव चिन्ता के चिन्तन को दूर करता हुआ मन में सन्तुष्टि के अहसास को जन्म देता है। आहार चिकित्सा के अन्तर्गत प्रयुक्त आहार व्यक्ति को चिन्तामुक्त रखने में उपयोगी सिद्ध होता है। व्यक्ति को अपनी जीवन शैली ऐसी सुनियोजित, सुव्यवस्थित एवं सुगठित रखनी चाहिए कि उसमें चिन्ता जैसे नकारात्मक चिन्तन के लिए जगह ही न रहे। यदि किसी कारणवश चिन्ता का समावेश हो भी जाये, तो उपयुक्त जीवनशैली के माध्यम से उसे दूर भगा देना चाहिए।

17.6.1 योग द्वारा चिन्ता की चिकित्सा

चिन्ता एक ऐसा मनोरोग है, जो व्यक्ति के विचारों में घुन की भाँति लगकर, उसे भीतर ही भीतर खोखला कर देता है। चिंता भविष्य के प्रति असुरक्षा के भाव को प्रकट करती है। चिन्ता व्यक्ति के मन–मस्तिष्क को अवरुद्ध करके उसकी निर्णय करने की सामर्थ्य को छीन लेती है, ऐसी दशा में उचित और अनुचित में भेद कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। चिन्ता की मनोव्यथा मूलतः अज्ञान से उत्पन्न होती है। जीवन के ऐसे बहुत से वाह्य एवं आन्तरिक पहलू है जिनसे मनुष्य अनभिज्ञ है। यह अनभिज्ञता ही मनुष्य को चिन्ताग्रस्त करती रहती है। मनुष्य अपने जीवन को सुरक्षित, सुखी एवं समृद्ध बनाना चाहता है। इस दिशा में अतिरिक्त प्रयास करने पर जब वह असफल होता है तो अनजानी सी चिन्ता उसे घेर लेती है। ऐसी दशा में वह अनेकों तरह की नकारात्मक कल्पनाएँ करके अनेकों प्रकार से चिन्ता को आमन्त्रण देता है।
चिन्ता में चिन्तन शक्ति नकारात्मक हो जाती है। ऐसी दशा में व्यक्ति छोटे–छोटे संकटों, परेशानियों एवं चुनौतियों से घबडाकर हार मान लेता है; अनेकों आशंकाएँ आकर प्रगति के पथ को अवरुद्ध कर देती है। चिन्ता की मनोव्यथा में प्रेरक तत्वों का अभाव हो जाता है। चिन्ता का मुख्य कारण व्यक्ति का स्वयं पर अविश्वास है। यह अविश्वास शक्ति को क्षीण कर देता है जिसके कारण जीवन में लगातार असफलता मिलने से व्यक्ति हतास हो जाता है। चिन्ता का दूसरा बड़ा कारण व्यक्ति का अपनी क्षमताओं को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर आकलन करना है जिससे उच्च महत्वाकांक्षाएँ जन्म पाती है, जिसे पूर्ण कर पाना अत्यन्त कठिन होने से चिन्ता, निराशा या हताशा हस्तगत होती है। वास्तव में चिन्ता के व्यूह में

फँसा व्यक्ति उसमें फँसता ही चला जाता है। चिन्ता के व्यूह को तोड़ने का सर्वोच्च मार्ग योग है।

चिन्ता व्यक्ति को नकारात्मक कल्पनाएँ देती हैं तो योग व्यक्ति को अनवरत सकारात्मकता का दृढ़ सम्बल प्रदान करता है। योग व्यक्ति को उसकी वर्तमान सामर्थ्य एवं स्थिति का बोध कराता है इसके साथ योगाभ्यास से व्यक्ति के भीतर सन्निहित शक्ति जागृत होती है व उसे सही दिशा एवं गति मिलती है। योग व्यक्ति का बहुमुखी विकास करता है। योग का मूल ध्येय तन और मन को स्वच्छ एवं निर्मल करना है। ऐसे स्वच्छ एवं निर्मल तन–मन की सामर्थ्य अनन्त गुना होती है। यौगिक अवलम्बन में शरीर दृढ़ एवं सशक्त तथा मन विकसित व विस्तारित हो जाता है। विकास की यह प्रक्रिया स्वास्थ्य एवं सम्पन्नता लाती है। यह समृद्ध दशा व्यक्ति को सदा के लिए चिन्तामुक्त रखती है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा व बंध, षट्कर्म तथा कुछ विशेष यौगिक अभ्यासों का जीवन में सम्यक् अनुसंधान करने से जीवन के प्रति सकारात्मक भाव विकसित होने के साथ–साथ शरीर और मन की सामर्थ्य के विकसित होने से चिन्ता का समाधान हो जाता है।

आसन–आसनों के नियमित अभ्यास से शारीरिक और मानसिक कष्टों से मुक्ति मिलती है। आसनों से शारीरिक दृढ़ता प्राप्त होती है और शरीर से दूषित तत्वों के निष्कासन की प्रक्रिया सुचारू होती है। व्यायाम से जहाँ शरीर âष्ट–पुष्ट होता है, वही आसनाभ्यास से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति भी होती है। आसनों के अभ्यास से श्वासें लम्बी एवं गहरी हो जाती है, जिससे मानसिक एवं भावनात्मक सन्तुलन स्थापित होता है और चिन्ताग्रस्त व्यक्ति लाभान्वित होता है। चिन्ताग्रस्त व्यक्ति को गत्यात्मक और स्थिर– दोनों प्रकार के आसनों का अभ्यास कराया जाता है। गतिशील आसनों के माध्यम से शरीर को लोचदार बनाया जाता है, अन्यथा लम्बे समय तक स्थिर आसनों में बैठने पर मांसपेशियों में दर्द और तनाव हो सकता है। यह स्थिति मन में विक्षेप को जन्म देकर दुःख और चिन्ता को उत्पन्न करती है। गतिशील आसनों के अभ्यास से शरीर की सामर्थ्य बढ़ती है और तब स्थिर आसनों में बैठकर मानसिक चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाकर चिन्ता मुक्त हुआ जाता है।

चिन्ता की यौगिक चिकित्सा के अन्तर्गत गतिशील आसनों में प्रज्ञायोग व्यायाम और मार्जरी आसन का नियमित अभ्यास लाभकारी होता है। प्रज्ञायोग व्यायाम आचार्य पण्डित श्रीराम शर्मा के मार्गदर्शन में विकसित की गयी सोलह आसनों की श्रृंखला है। जिसमें ताड़ासन, पाद हस्तासन, व्रजासन, उष्ट्रासन, योग मुद्रा, अर्द्ध ताड़ासन, शशांकासन, भुजंगासन, तिर्यक् भुजंगासन–बायें, तिर्यक् भुजंगासन–दायें, शशांकासन, अर्द्ध ताड़ासन, उत्कटासन, पाद् हस्तासन, ताड़ासन और ऊँ उच्चारण के साथ बल की भावना करते हुए सावधान की स्थिति में आना क्रमिक रूप से अभ्यास किये जाने वाले सोलह आसन है। इसमें आसनों, मुद्राओं, क्रमिक श्वास–प्रश्वास तथा शरीर–संचालन की लोम–विलोम क्रियाओं का समन्वय एवं सुनियोजन है। इसका अभ्यास बच्चों–वृद्धों तथा नर–नारियों सभी के लिए सुगम है। इससे सभी मुख्य अंगों का सन्तुलित अभ्यास होता है। जिससे अंगों की दुर्बलता एवं जकड़न मिटती है अंग लचीले बनते है और उनमें शक्ति का संचार होता है।

प्रज्ञायोग के अभ्यास से शरीर और मस्तिष्क की क्रियाओं में सकारात्मक परिवर्तन घटित होता है। जिससे सन्धियाँ और पेशियाँ लचीली बनती है, पाचन तंत्र के रोग दूर होते है, रक्त में पोषक तत्वों का प्रवाह स्वतंत्र रूप से होता है, श्वसन तंत्र की कार्य क्षमता में वृद्धि होने से श्वास–प्रश्वास लम्बी एवं गहरी हो जाती है, उत्सर्जी अंगों द्वारा मल का निर्माण एवं निष्कासन ठीक ढंग से होता है, और इनके साथ–साथ अंतःस्रावी एवं तंत्रिका तंत्र की कार्य

प्रणाली भी समायोजित ढ़ग से कार्य करती है। शरीर बद्ध क्रियायें यदि सुचारू हो तो व्यक्ति अपने प्रतिदिन के कार्यों को बिना किसी कष्ट कठिनाई के सम्पन्न कर सकता है जिससे उसे मानसिक तृप्ति एवं सन्तुष्टि की प्राप्ति होती है। यह भाव चिन्ता मुक्त करके मानसिक विकास को प्रेरित करता है। मार्जारी आसन शरीर के अंगों में उत्पन्न अवरोधों को दूर करता है जिससे सम्पूर्ण शरीर में संवेदना का सम्यक् संचार होता है। अभ्यासी में ताजगी व प्रसन्नता का संचार होता है और चिन्ता दूर होती है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आसनाभ्यासों के रूप में ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन, कटि चक्रासन, शशांकासन, कूर्मासन, मण्डूकासन, मत्स्येन्द्रासन, धनुरासन का अभ्यास चिन्ताग्रस्त रोगी को कराना उपयोगी होता है। इन आसनों के अभ्यास के पश्चात् शरीर और मन की क्रियाशीलता को सामान्य करने के लिए 5 से 10 मिनट का शवासन का अभ्यास कराया जाता है। तत्पश्चात् स्थिर आसनों (ध्यानात्मक आसन) में पद्मासन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन के अभ्यास से मन सहज रूप से चिन्ता मुक्त हो जाता है।

ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन और कटि चक्रासन का प्रयोग चिन्ताग्रस्त रोगी के लिए प्रारम्भिक आसनाभ्यास के रूप में किया जाता है। इससे शरीर की जकड़न दूर होने से ताजगी एवं स्फूर्ति का अहसास होता है।

शशांकासन अभ्यासी की शारीरिक और मानसिक गतिविधियों को शान्त करता है। कूर्मासन मन की एकाग्रता को विकसित करने वाला अत्यन्त उपयोगी अभ्यास है। क्रोध की दशा में शशांकासन का अभ्यास करने से क्रोध कम हो जाता है इसलिए क्रोध पर नियंत्रण पाने के लिए कूर्मासन का अभ्यास किया जाता है। चिन्तित व्यक्ति को क्रोध आना स्वाभाविक है और क्रोध पर नियंत्रण से चिन्ता का निराकरण होता है। मण्डूकासन का अभ्यास ताजगी का अहसास देता है और शरीर तथा मन में शक्ति का संचार होता है। मत्स्येन्द्रासन के अभ्यास से एड्रीनल ग्रन्थि के स्राव का नियमन होने से तनावमुक्ति एवं चिन्ता मुक्ति की प्राप्ति होती है। धनुरासन से पाचक अंगों एवं वृक्क की मालिश होती है, जिसका प्रभाव एड्रीनल ग्रन्थि पर पड़ने से हार्मोन का स्राव सन्तुलित होता है और मन शान्त हो जाता है। इन आसनों के अभ्यास से व्यक्ति की सामर्थ्य बढ़ती है और उसके बाद दिया गया शवासन का अभ्यास विश्रान्तिदायी होता है।

इन आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर और मन की सामर्थ्य का विकास होता है। ऐसे विकसित शरीर और मन को शवासन के माध्यम से कुछ पलों का विश्राम देने पर वह स्थिर आसनों में स्थित होने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। स्थिर आसनों या ध्यानात्मक आसनों में पद्मासन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन का अभ्यास किया जाता है। इनके अभ्यास से चेतना निर्मुक्त होती है। मानसिक नियन्त्रण की प्राप्ति होती है। निम्नगामी भावनाएं रूपान्तरित होकर उर्ध्वगामी बन जाती है। मन के शान्त और एकाग्र होने से सहज चिन्तामुक्ति की प्राप्ति होती है। स्थिर आसन आध्यात्मिक प्रगति का द्वार है।

प्राणायाम–प्राणायाम की प्रक्रिया आसनों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है। यौगिक चिकित्सा में प्राणायाम की केन्द्रीय भूमिका होती है। हठयोग मूलतः प्राण के सिद्धान्त पर कार्य करता है। प्राणायाम की विधियों के माध्यम से प्राण का अर्जन, संरक्षण एवं नियोजन किया जाता है। श्वासें प्राण प्रवाह की स्थूल अभिव्यक्ति हैं श्वास के आवागमन से शरीर में प्राण प्रवेश करता है और विभिन्न अंग–प्रत्यंगो में संचरण करता है। प्राण की डोर एक ओर शरीर को साधती है तो दूसरी ओर यह सूक्ष्म मन को बाँधे रहती है। जीवन में प्राण का सन्तुलन मन और शरीर दोनों को रोग मुक्त रखता है। प्राण के असन्तुलन से उत्पन्न मानसिक विक्षोभ

चिन्ता को जन्म देता है। लम्बे समय की चिन्ता से प्राण का स्तर घटता जाता है, जिसका दुष्प्रभाव समूचे व्यक्तित्व पर पड़ता है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से प्राण का सम्वर्धन करके व्यक्तित्व को पुनः सुगठित किया जा सकता है।

सामान्यतः प्राणायाम को अधिक आक्सीजन प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है। परन्तु वास्तविकता इससे अलग हैं । प्राणायाम के माध्यम से नाडियाँ शुद्ध होती हैं, उनमें प्राण का स्वतन्त्र संचार होता है। मानसिक स्थिरता की सहज प्राप्ति होती हैं। प्राणायाम के अन्तर्गत की जाने वाली कुम्भक की प्रक्रिया द्वारा प्राण नियंत्रित होता है और मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं।

चिन्ताग्रस्त रोगी में चिन्ता के अनेकों शारीरिक एवं मानसिक लक्षण पाये जाते है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास द्वारा उन लक्षणों के साथ चिन्ता का निराकरण भी सम्भव हैं। नाडीशोधन, उज्जायी और भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास चिन्ता की चिकित्सा की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। नाड़ीशोधन प्राणायाम नाड़ियों को शुद्ध करके उनमें प्राण के स्वतन्त्र संचार को प्रेरित करता है। उज्जायी प्राणायाम तन्त्रिका तन्त्र को सबल एवं स्वस्थ बनाता है। मानसिक स्तर पर इसका अभ्यास अत्यन्त शिथिलीकारक है, जिससे शाीघ्र मानसिक शान्ति की प्राप्ति होती है। चिन्ता के अनिद्राजन्य लक्षण को यह शीघ्रता से दूर कर देता है। शान्त मन चिन्ता से सर्वथा दूर रहता है। चिन्ता के योगोपचार में भ्रामरी प्राणायाम अत्यन्त उपयोगी है, जिससे मस्तिष्क को विश्रान्ति की प्राप्ति होती है। इसका नियमित अभ्यास चिन्ता और उसके लक्षणों के रूप में क्रोध, अनिद्रा, तनाव, अरूचि तथा अन्य परेशानियों का निवारण करता है।

मुद्रा एवं बन्ध–हठयौगिक मुद्रा एंव बन्ध की प्रक्रियाएं मानसिक संवेदनाओं एंव उत्तेजनाओं को शान्त एवं संयत करती हैं । योगाभ्यासी इनके माध्यम से शरीर स्थित प्राण–शक्ति की तरंगों के प्रति जागरूक बनता है, जिस पर उसका चेतन नियन्त्रण होता है। इस प्रक्रिया में वह मानसिक शक्तियों का उर्ध्वगमन करके चिन्ता रोग से भी मुक्ति पा लेता है। चिन्ता के योगोपचार के लिए मूलबन्ध ,महाबन्ध ,अश्विनी मुद्रा एवं काकीमुद्रा की प्रकियाएं अत्यन्त उपयोगी हैं।

हठयौगिक अभ्यासों में मूलबन्ध श्रोणि–प्रदेश की नाड़ियों को उत्तेजित करता है। निम्नगामी होती जीवन ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाता है। इसके माध्यम से मुक्त हुई ऊर्जा द्वारा मनोग्रन्थियाँ खुलती हैं और मनोरोगों का निवारण होता है। महाबन्ध का अभ्यास सम्पूर्ण अन्तःस्रावी संस्थान का नियमन करता है, जिसके द्वारा तनाव एवं क्रोध जैसे नकारात्मक मनोभावों का नाश होता है। मन अन्तर्मुखी होकर चिन्तामुक्त हो जाता है। अश्विनी मुद्रा का अभ्यास प्राणशक्ति के ह्रास को रोकता है, इस तरह शक्ति संचय को प्रेरित करता है। इसके अभ्यास से प्राण प्रवाह ऊर्ध्वगामी होकर मानसिक शक्तियों का विकास करता है जिससे चिन्ता रोग की दशा सुधरती है। काकी मुद्रा के अभ्याास से पाचन शक्ति बढ़ती है। चिन्ता के पाचन सम्बन्धी लक्षण दूर होते हैं । काकी मुद्रा से मानसिक शीतलता की प्राप्ति होती है और चिन्ता दूर होती है।

षट्कर्म–षट्कर्म शारीरिक और मानसिक शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। इसके द्वारा इडा और पिंगला– दो मुख्य प्राण प्रवाहों में सामन्जस्य स्थापित होता है। यही सामन्जस्य योगाभ्यासी को चिन्ता के शारीरिक और मानसिक लक्षणों को दूर करता है और शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन को कायम रखता है। नेति, कपालभाति और त्राटक का चिकित्सा की दृष्टि से किया जाने वाला प्रयोग चिन्ता का निवारण करता है। नेति क्रिया से खोपड़ी के क्षेत्र की

शुद्धि होती है और मानसिक शान्ति एवं एकाग्रता की प्राप्ति होती है फलस्वरूप चिन्ता दूर होती है। चिन्ताग्रस्त व्यक्ति का मन अशान्त एवं अस्थिर होता है। त्राटक के अभ्यास में मन को एक बिन्दु पर स्थिर रखा जाता है। यह अभ्यास एकाग्रता एवं आत्मविश्वास में वृद्धि करता है और चिन्ता को घटाता है। परिणाम में मानसिक शान्ति एवं स्थिरता प्राप्त होती है। कपालभाति का अभ्यास मन को शान्त एवं स्थिर बनाकर चिन्ता मुक्त करता है।

विशेष योगाभ्यास–हठयोगिक अभ्यासों के साथ यदि सोऽहम साधना, ऊँ उच्चारण, मन्त्र जप एवं स्वाध्याय का सहारा लिया जाए तो चिन्ता की अत्यन्त प्रभावी चिकित्सा होती है। सोऽहम साधना के अभ्यास से श्वास–प्रश्वास की गति नियमित एवं नियंत्रित हो जाती है। शारीरिक एवं मानसिक लयबद्धता की प्राप्ति होती है। मानसिक विश्रान्ति की अनुभूति एवं चिन्ता का निवारण होता है। मन की रिक्तता को भरने या विचारों की उथल–पुथल को रोकने के लिए ऊँ उच्चारण या फिर किसी अन्य मन्त्र का सहारा लिया जाता है। ऐसी दशा में मन विचारों के अन्तर्द्वन्द से दूर हो चिन्तामुक्त जाता है। स्वाध्याय से मानसिक सन्तुष्टि मिलती है। नियमित स्वाध्याय से मन में श्रेष्ठ एवं सकारात्मक विचार उठते हैं, जो मन का विकास करते हैं और चिन्ता से दूर रखते हैं।

17.6.2 चिन्ता की प्राकृतिक चिकित्सा–आरोग्य स्वाभाविक है, जबकि रोग को प्रयत्नपूर्वक आमंत्रित किया जाता है। मनुष्य जब सादगी से परिपूर्ण स्वाभाविक जीवन जीता है तो वह बिना किसी विशेष प्रयत्न के प्रकृति की शक्तियों से लाभान्वित होता है। स्वाभाविकता को त्यागकर कृत्रिमता को अपनाने पर प्रकृति के सहज मार्ग से दूर हो जाता है। ऐसे में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं बढ़ती जाती हैं और वह चिन्ता जैसे मनोरोग का शिकार हो जाता है। चिन्ता के निवारण के लिए कई प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रयोग मे लायी जाती हैं। इनमें दवाओं के प्रयोग से जहाँ एक ओर आराम मिलता है वही दूसरी ओर उनके दुष्परिणाम से अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नये–नये रोगों की बढ़ती हुई संख्या के कारण प्राकृतिक चिकित्सा वर्तमान युग की आवश्यकता बन गयी है। प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी, जल, वायु, सूर्य–प्रकाश और उपवास का प्रयोग किया जाता है। इनका विधिवत् प्रयोग सभी प्रकार के दुष्प्रभाव से रहित है।

प्राकृतिक चिकित्सा में प्रकृति के पाँच तत्वों के गुणों और शक्तियों का उपयोग करके चिकित्सा की जाती है। इसके अन्तर्गत चिन्ताग्रस्त रोगी को एनिमा, कटि स्नान, पेट की पट्टी का उपचार देकर कब्ज को हटाया जाता है। चिन्ता से उत्पन्न नींद के व्यवधान को दूर करने के लिए सोने से पहले नहाना लाभदायक होता है। इसके लिए सोने से 15–20 मिनट पूर्व रोगी को रीढ़ स्नान देना या हल्के गरम जल से भरे टब में लेटाना लाभकारी होता है। चिन्ता को दूर करने में पैरों का गर्म स्नान भी उपयोगी सिद्ध होता है।

सूर्य का प्रकाश चिन्ता को दूर करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सूर्य का प्रकाश लेने से रुधिर संचार में तीव्रता आती है। सूर्य प्रकाश के प्रभाव से श्वासें गहरी और लम्बी हो जाती हैं। रुधिर में पोषक तत्वों और आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। रात्रि को गहरी नींद ले पाने के कारण मन शान्त एवं हल्का हो जाता है इससे रोगी की चिन्ता मिटती है। इन उपचारों के साथ–साथ मालिश चिकित्सा चिन्ता रोग में अत्यन्त उपयोगी है। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा का उपचार कुशल मार्गदर्शन में लेने पर चिन्ताग्रस्त रोगी को पर्याप्त लाभ मिलता है।

17.6.3 चिन्ता के लिए आहार चिकित्सा–चिकित्सा क्षेत्र में रोग के सफल उपचार के लिए रोग के मूल कारण की पहचान अनिवार्य है। कारण को पहचानने वाला चिकित्सक उसके

उपचार का उपाय भी सोच पायेगा। रोग मुक्ति के अनेकों उपाय है पर सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जीवन में रोगी होने का अवसर ही न आये या जो रोगी हो गये है, उन्हें सहजता से आरोग्य लाभ प्राप्त हो। यदि व्यक्ति आहार का उचित उपयोग करने लगे तो ये सभी बातें आज के दौर में भी खरी सिद्ध हो सकती है। केवल औषधि के सहारे अस्वस्थता का स्थायी निराकरण असम्भव है। आहार के सम्यक् उपयोग द्वारा जन–सामान्य के मध्य प्रचलित होती जा रही चिन्ता जैसी विकराल समस्या से आसानी से निपटा जा सकता है। दवाओं मात्र के उपयोग से चिन्ता की दशा में आशातीत सुधार नहीं किया जा सकता है।
चिन्ता से निपटने के लिए आहार से सम्बन्धित तीन बातें अनिवार्य है।

"मित भुक्" अर्थात् भूख से कम खाना
"हित भुक्" अर्थात् सात्विक खाना
"ऋत भुक्" अर्थात् न्यायोपार्जित खाना

इन तीन बातों का पालन करने वाला रोगी नहीं होगा और उसका स्वास्थ्य आजीवन बिना चिकित्सा के ठीक रहेगा। ऐसी दशा में रोगी व्यक्ति के लिए भी बिना चिकित्सा के स्वस्थ होने की सम्भावना होगी। इन तीन विशेषताओं से युक्त आहार औषधि का काम करता हुआ रोगी की समग्र चिकित्सा करेगा। आहार यदि सात्विक हो, न्यायोपार्जित ढंग से प्राप्त किया गया हो और भूख से कम खाया गया हो तो वह मनुष्य के चिन्तन को ठीक करके चिन्ता मुक्त कर देता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार का संतुलित एवं मूल्यवान होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उसको पकाने और खाने का तरीका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस दिशा में रखी गयी असावधानी भी मूल्यवान आहार के स्तर को गिरा कर उसके प्रभाव को न्यून कर देती है। उदाहरण स्वरूप तेज आग पर पकाया गया भोज्य पदार्थ अपने मौलिक गुणों का अधिकांश भाग खो बैठता है। चिकनाई युक्त पदार्थों में तलने–भूनने पर अन्य उपयोगी तत्व भी नष्ट हो जाते है। अतिरिक्त मसालों से युक्त आहार उत्तेजना के साथ–साथ विषाक्तता भी उत्पन्न करता है।

भोजन करने के दौरान बरती गई असावधानी भी रोग को जन्म देती है। कम चबाने और जल्दी–जल्दी निगलने से मुख में सम्पन्न होने वाली पाचन क्रिया ठीक से नहीं होती है। स्वादिष्ट व्यंजन भूख से अधिक मात्रा में उदरस्थ हो जाता है। यह स्थिति अपच उत्पन्न करती है। अमाशय और आंतों में पड़े आहार के सड़ने से उत्पन्न विषैली गैसों के दुष्प्रभाव से अनेकों प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती है। सामान्य मन रोगों की चपेट में आने पर चिन्ताग्रस्त हो जाता है। चिन्ता मन को और अधिक अस्त–व्यस्त कर देती है और चिन्ता करना व्यक्ति का स्वभाव बन जाता है। ऐसे में यदि उपयुक्त आहार को उचित रीति से ग्रहण किया जाये तो चिन्ता मुक्ति के साथ–साथ व्यक्ति की शारीरिक बीमारियाँ भी दूर होती हैं।

निरोग प्राप्ति के लिए सामान्यतः ऐसे संतुलित आहार के ग्रहण की बात की जाती है जो प्रोटीन, स्टॉर्च, वसा, खनिज–लवण, विटामिन और जल से युक्त हो। इस उपयोगी और संतुलित आहार का सेवन करने वाले लोगों को रोगग्रस्त होता देखकर शोधकर्ताओं का ध्यान दूसरे विषय की ओर आकृष्ट हुआ है, यह दूसरा विषय खाद्य पदार्थ की जीवनी शक्ति या प्राण ऊर्जा है। आर्ष ग्रंथों में सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार के आहार का वर्णन मिलता है। तामसिक आहार को अखाद्य पदार्थ की श्रेणी में रखा गया है। राजसिक आहार को रोग उत्पन्न करने वाला कहा गया है। एक मात्र सात्विक आहार

मानव प्रकृति के अनुरूप है। सात्विक आहार में प्राण ऊर्जा एवं जीवनीशक्ति प्रचण्ड रूप में पायी जाती है। जबकि राजसिक और तामसिक आहार में प्राण तत्व अत्यन्त न्यून या नष्टप्राय होता है। सत्व का मूल गुण प्रकाश उत्पन्न करना है इसलिए सात्विक आहार पोषण के साथ–साथ सजगता एवं बोध भी देता है, जिसके प्रभाव में मन के द्वन्द शान्त होते हैं और चिन्ता का निराकरण होता है। मनुष्य को सात्विक आहार का आश्रय लेना चाहिए, जो उसके लिए हर प्रकार से उपयुक्त एवं उपयोगी है।
सात्विक आहार में बहुमुल्य क्षार पदार्थ की उपलब्धता के कारण मानव प्रकृति के भी अनुकूल होता है। हरी शाक–सब्जियों को मध्यम आग पर अधपका बना लेने पर उसकी क्षार धर्मिता बनी रहती है। सूखे एवं मोटे अनाजों को धीमी आग पर उबालकर खाना भी हितकारी है। प्राकृतिक खाद्य पदार्थों के अंतर्गत अंकुरित आहार सात्विक, बहुमूल्य एवं गुणवत्ता युक्त होता है। अंकुरण काल में अन्न की जीवनीशक्ति विकासोन्मुख एवं अत्यधिक सक्रिय होती है। इस समय में शारीरिक चयापचय के लिए उपयोगी एंजाइम की मात्रा में अतिरिक्त वृद्धि होती है। जिससे शारीरिक संस्थानों की गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने के लिए शक्ति मिलती है। अंकुरित बीजों में विद्यमान प्रोटीन, विटामिन, एंजाइम एवं खनिज लवण की मात्रा में असाधारण वृद्धि होती है। तेज आग पर भूने जाने पर बीज की अंकुरण क्षमता एवं जीवनीशक्ति नष्ट हो जाती है। अंकुरित आहार की कम मात्रा भी पोषण की आवश्यकता को पूर्ण करने एवं जीवनीशक्ति का संचार करने में उपयुक्त होती है। इसके लिए अनाज में परिवर्तन करते रहना भी उपयुक्त होता है। अंकुरण के लिए सामान्यतः मूँग, मूँगफली, चना, सोयाबीन एवं मेथी का प्रयोग किया जाता है। अंकुरित बीज में प्रोटीन की प्रचुरता होती है और जटिल एवं गरिष्ट प्रोटीन रूपान्तरित होकर सरल प्रोटीन (अमीनो एसिड्स) में बदल जाती है। अंकुरण की प्रक्रिया में बीजों की रोग उत्पन्न करने की प्रवृत्ति न्यून हो जाती है और उसकी गुणवत्ता कई गुना बढ़ जाती है।
इसके साथ–साथ ताजे फल एवं दूध या दही स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम आहार है। इन्हें चिन्ताहर आहार कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। ये आहार पोषण के साथ प्राणशक्ति भी देते हैं। प्राणऊर्जा से सम्पन्न व्यक्ति कष्टकर एवं द्वन्दात्मक स्थिति से बाहर आने की सामर्थ्य जुटा लेता है और कार्यों को सहजता से सम्पन्न करता हुआ सुरक्षा एवं सन्तुष्टि के साथ जीता है। सात्विकता ये युक्त आहार की गुणवत्ता को अब व्यापक स्तर पर स्वीकारा जा रहा है। ये आहार शरीर के साथ–साथ मन का भी परिपोषण एवं अभ्युदय करते हैं, जिसके फलस्वरूप मानवीय जीवन चिन्तामुक्त होकर विकसित एवं उन्नत बनता है।

17.6.4 चिन्ताग्रस्त रोगियों के लिए आवश्यक जीवन शैली–

'सादा जीवन और उच्च विचार' पर आधारित जीवन–शैली सर्वश्रेष्ठ है। इससे मनुष्य में सन्तोष की वृत्ति पनपती एवं पोषित होती है। इसी उत्कृष्ट भाव दशा की अभिव्यक्ति श्रीमद्भगवद् गीता के 12 वें अध्याय के 19 वें श्लोक में इस प्रकार हुई है–'जो निन्दा–स्तुति को समान समझने वाला, मननशील और जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही सन्तुष्ट है और रहने के स्थान में ममता और असक्ति से रहित है–वह स्थिर बुद्धि भक्तिमान् पुरूष मुझको प्रिय है।' इन्हीं भावों में चिन्ता मुक्ति तथा परम सुख एवं शांति की प्राप्ति का सच्चा सूत्र समाया है।
मनुष्य ने भौतिक जगत् में विकास की जितनी ऊँचाईयाँ तय की है, उतना ही उसका जीवन एकांगी एवं अपूर्ण हुआ है। इसी एकांगिता एवं अपूर्णता के भाव से असन्तोष पनपता

है। असंतोष चिन्ता को जन्म देता है। संसार के चकाचौंध में फँसा मनुष्य असंतोष का तृप्ति के लिए लोभ, मोह एवं प्रलोभन में फँसता चला जाता हैं ऐसी दशा में उसकी चिन्ता और बढ़े–चढ़े रूप में अन्य अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों के साथ प्रकट होती है।

वास्तव में स्थूल शरीर के क्षेत्र से ज्यादा विस्तृत एवं प्रभावी विचारों एवं भावनाओं का क्षेत्र है। चिन्ता का कारण शारीरिक हो या मानसिक, वह सीधा मनुष्य के विचारों एवं भावनाओं पर आघात करती है। इसलिए चिन्ता के समाधान के लिए शारीरिक, वैचारिक एवं भावनात्मक इन सभी स्तरों पर प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

पश्चिमी विचारधारा खुली प्रतियोगिता एवं मुक्त व्यापार को बढ़ावा देती है। जहाँ पर धन, साधन तथा सुविधाओं के आधार पर ही सुख, शांति एवं समृद्धि लाने का प्रयास किया जाता है। इसी कारण पश्चिमी सभ्यता में असंतोष को विकास का आधार बनाया गया है। पश्चिमी विचार धारा मनुष्य को पदार्थ की ओर उन्मुख करती हैं किन्तु इसके विपरीत कठोपनिषद् में कहा गया है–'मनुष्य को धन से सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता है।' धन शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम अवश्य है किन्तु मन की सच्ची सुख–शांति एवं चिन्ता मुक्ति इससे नहीं पायी जा सकती है। सद्कर्मों, सद्विचारों एवं सद्भावों को जीवन–शैली में शामिल करके सहजता से चिन्ता को दूर किया जा सकता है।

चिन्ता यह दर्शाती है कि मनुष्य को परमात्मा की कृपा पर भरोसा नहीं है। परमात्मा और उनके न्याय पर विश्वास करना चाहिए। ईश्वर विश्वास, कर्म के प्रति गहरी आस्था तथा कर्मफल के प्रति अनासक्ति से संतोष का भाव उत्पन्न होता है। जो मनुष्य को चिन्ता मुक्त बना देता है। इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए श्रीमद् भगवद् (7/15/17) में कहा गया है–जिसके मन में संतोष है उसके लिए सर्वदा सब जगह सुख ही सुख है, दुःख है ही नहीं। सन्तोष की वृति में आलस्य, अकर्मण्यता एवं उदासीनता नहीं है, अपितु यहां जो कुछ भी विद्यमान है उसी में निष्कपट भाव से त्वरित गति से कर्म करने की प्रेरणा है।

साधन–सुविधा एवं समृद्धि के दौर में असंतोष अत्यन्त तीव्र गति से पनपा है। जिसका प्रभाव मनुष्य के व्यवहार में लोभ, मोह, कामना, ईर्ष्या एवं द्वेष के रूप में देखने को मिलता है। ऐसे में अपनत्व का भाव समाप्त हो जाता है। चिन्ता का भाव उत्पन्न होकर विविध प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों को आश्रय देता है। चिन्ता मुक्त होने के लिए मनुष्य को तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठकर निरन्तर पूर्ण मनोयोग से कर्म करना चाहिए।

मनुष्य की इच्छाएं एवं कामनाएं अनन्त हैं ये अनन्त इच्छाएं अनेकों चिन्ताओं को जन्म देती हैं। यदि निम्नलिखित बातें को जीवन शैली का हिस्सा बना लिया जाये तो चिन्ता सहजता से दूर हो जाती है–

- अपने आपसे और दूसरों से जरूरत से ज्यादा अपेक्षा करना चिन्ता का कारण बनता है। इसलिए अपनी क्षमता को पहचानते हुए उसके अनुरूप कार्य को हाथ में लेना चाहिए।
- चिन्ता के निराकरण के लिए इच्छाओं एवं लालसाओं पर अंकुश लगाना चाहिए।
- चिन्तित व्यक्ति अकेले रहना पसन्द करता है। अकेलेपन में चिन्ता अपने प्रबल वेग से हावी होती है। इसलिए चिन्ता की स्थिति में अकेले नहीं रहना चाहिए, अपितु किसी निकटतम एवं विश्वास पात्र व्यक्ति से समस्याओं एवं दुःखों को कह देना चाहिए। परिवार के सदस्यों के साथ मिल–जुल कर रहने से हंसी–खुशी का वातावरण बनता है। जिससे मन हल्का एवं चिन्ताएं कम हो जाती हैं।

- घूमने–फिरने, स्थान परिवर्तन एवं कार्य को कुछ समय बाद परिवर्तित कर देने से चिन्ताजन्य स्थिति में सुधार होता है।
- मन में स्थित विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा वह मन पर अनावश्यक रूप से दबाव डालकर चिन्ता को उत्पन्न करते है। एक छोटी सी डायरी में अपने प्रतिदिन के भावों को अभिव्यक्त करके अत्यन्त सहजता के साथ चिन्ता से मुक्त हुआ जा सकता है।
- चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों एवं परिवेश से बचने का प्रयास करना चाहिए। चिन्ता को छोड़कर खुश रहना चाहिए। खुशी की अभिव्यक्ति हंसकर करनी चाहिए। ऐसा करने से चिन्ता दूर होती है और हल्केपन का अहसास होता है।
- समय की बहुमूल्य सम्पदा का सदुपयोग मनुष्य को चिन्ता मुक्त कर देता है।
- मनुष्य अपने अस्त–व्यस्त विचारों के द्वारा स्वयं चिन्ता को आमन्त्रित करता है। विचारों की सुव्यवस्था से चिन्ता दूर भागती है। इसलिए सकारात्मक विचारों एवं भावनाओं का जीवन में समावेश होना चाहिए।

जीवन के सुखद क्षणों को आन्नद के साथ जीना चाहिए। मन में आत्मविश्वास, प्रसन्नता, आशा एवं उत्साह का सतत् संचार चिन्ता को दूर करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न– सही/गलत

6. चिन्ता का स्वरूप नकारात्मक होता है।
7. चिन्ताग्रस्त व्यक्ति जीवन की जटिल समस्याओं का सामना करने में घबड़ाहट का अनुभव करता है।
8. चिन्ताग्रस्त व्यक्ति का जीवन उत्साह से युक्त होता है।
9. हथेलियों और पैरों के तलवों का ठण्डा होना चिन्ता का मानसिक लक्षण है।
10. मानसिक अस्थिरता एवं मृत्यु से भय चिन्ता के मानसिक लक्षण है।
11. योग व्यक्ति को सकारात्मकता का दृढ़ सम्बल देकर चिन्ता से दूर रखता है।
12. समय की बहुमूल्य सम्पदा का सदुपयोग मनुष्य को चिन्ता ग्रस्त बनाता है।

17.7 सारांश

वर्तमान दौर के अतिव्यस्थ जीवनक्रम में चिन्ता जनसामान्य का अंग बन गयी है। दिन प्रतिदिन लोगों की बढ़ती महत्तवाकाक्षां, प्रतियोगिता की दौड़, पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण ऐसे अनेकों कारण है जिसकी पूर्ति के लिए मनुष्य योजना बनाता है, साधनों को जुटाता है, मार्ग में आने वाली बाधाओं से परेशान होता है। उसकी असफलता चिन्ता के रूप में प्रकट होता है। उत्पन्न चिन्ता रातों की नींद और दिन का चैन छीन लेती है। चिन्ता जब जीवन का स्थायी अंग बन जाती है तो विभिन्न प्रकार के मानसिक और शारीरिक लक्षणों के रूप में प्रकट होती है।

चिन्ता से बचाव के लिए जब व्यक्ति आधुनिक चिकित्सा पद्धति का सहारा लेता है तो व्यक्ति को उसकी आदत पड़ जाती है। लगातार के उपयोग से दवाएं अपना प्रभाव खोती जाती है, साथ में रोगी पर अपने दुष्प्रभाव भी छोड़ती है। जिससे चिन्ता का स्थायी समाधान नहीं हो पाता है अपितु दुष्परिणाम रूप में दूसरे रोगों के आगमन से भयंकर कष्ट का सामना करना पड़ता है। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा और उपयुक्त जीवन शैली का चयन पूरी तरह से निर्विवादित

एवं दुष्प्रभाव रहित है। जिसका कुशल मार्गदर्शन में चिन्ता रोगी पर किया गया अनुसंधान सकारात्मक परिणाम प्रकट करता है। वास्तव में ये चिकित्सा पद्धतियाँ सही मायने में व्यक्ति को जीवन जीने का तरीका सिखाती है।

उत्पन्न चिन्ता दर्शाती है कि व्यक्ति ने जीवन की सहजता को खो दिया है। जीवन को जटिल एवं कठिन बनाकर अनेकों भूलों एवं अन्तर्द्वन्दो को आमन्त्रण दिया है। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति जीवन जीने का सही तरीका सिखाकर चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को गढ़ती है। जिसके माध्यम से व्यक्ति का मानसिक विकास होता है और चिन्ता के कारण उत्पन्न होने वाले शारीरिक और मानसिक लक्षण दूर होते है। अतः वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में चयनित योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली अत्यन्त प्राकृतिक एवं प्रासंगिक है जिसके माध्यम से चिन्ता का स्थायी समाधान सम्भव है।

17.8 शब्दावली

अमूर्त– अगोचर, अभौतिक।

अन्तर्द्वन्द– मानसिक उहापोह।

प्रज्ञायोग व्यायाम– आचार्य श्रीराम शर्मा के मार्गदर्शन में विकसित 16 निर्देशों में पूरी होने वाली योग–व्यायाम की एक श्रृखला।

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सही 2. सही 3. गलत 4. गलत 5. सही 6. सही 7. गलत

17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उपाध्याय, गोविन्द प्रसाद (2000) *आयुर्वेदीय मानस रोग चिकित्सा,* चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. विप्लव, विनोद (2006) *मानसिक रोग कारण व बचाव,* प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली।
3. शर्मा, भगवती देवी(दिसम्बर, 1993) अखण्ड ज्योति, उदासीः गले की फॉसी, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 31–32।
4. पण्डया, डा. प्रणव(अप्रैल, 2008) अखण्ड ज्योति, आप सोचें या न सोचें, मस्तिष्क सोचता रहता है, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 39।
5. पण्डया, डा. प्रणव(मार्च, 2014) अखण्ड ज्योति, चिन्ता से चिन्तित न हो, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 12–13।
6. पण्डया, डा. प्रणव(फरवरी, 2014) अखण्ड ज्योति, भय से भयभीत न हो, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 16–17।
7. पण्डया, डा. प्रणव(2005) *आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति,* वेद माता गायत्री ट्रस्ट, हरिद्वार।
8. ब्रह्मवर्चस(1998) *जीवेम शरदः शतम्,* वाड्.मय 41, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
9. जिन्दल, डा राकेश(2005) *प्राकृतिक आयुर्विज्ञान,* आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर।
10. चैतन्य, द्वारका प्रसाद(अक्टूबर, 2009) युग निर्माण योजना, आहार और उसकी पोषक शक्ति, युग निर्माण योजना ट्रस्ट मथुरा, पृ. 22–24।

11. श्रीमद्भगवमतगीता 12/19।
12. कठोपनिषद् 1/1/27
13. श्रीमद्भागवत् 7/15/17

17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. चिन्ता के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
प्रश्न 2. चिन्ता के लक्षणों एवं कारणों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 3. चिन्ता की वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा का विवरण दीजिए।
प्रश्न 4. चिन्ता के समाधान हेतु आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली पर निबन्ध लीखिए।

इकाई–18 अवसाद– लक्षण, कारण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उददे्श्य
18.3 अवसाद का स्वरूप
18.4 अवसाद के लक्षण
18.5 अवसाद के कारण
18.6 अवसाद की वैकल्पिक चिकित्सा
18.6.1 योग द्वारा अवसाद की चिकित्सा
18.6.2 अवसाद की प्राकृतिक चिकित्सा
18.6.3 अवसाद के लिए आहार चिकित्सा
18.6.4 अवसादग्रस्त रोगियों के लिए आवश्यक जीवन शैली
18.7 सारांश
18.8 शब्दावली
18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
18.11 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

अटठ्ारहवी इकाई अवसाद रोग और उसकी वैकल्पिक चिकित्सा से सम्बन्धित है। जीवन की लम्बी यात्रा में प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी हताशा, निराशा, उत्साहहीनता एवं थकान का अनुभव करता है। जटिलताओं से गुजरने के बाद व्यक्ति पुनः अपनी सहज, स्वाभाविक एवं स्फूर्त दशा को प्राप्त कर लेता है। किन्तु जब उत्साहहीनता एवं थकान जीवन में आधिपत्य जमा लेते है तो यह ही अवसाद का रूप लेकर जीवन को अन्धकारमय बना देता है। अवसाद की दशा में व्यक्ति के विचार एवं भावनाओं की स्थिति निम्नगामी हो जाती है। अवसादग्रस्त व्यक्ति की निम्नगामी मनोदशा को वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली के चयन के माध्यम से ठीक किया जा सकता है।

योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का समावेश करके अवसादी के अवसाद को निःसन्देह दूर किया जा सकता हे। अवसादग्रस्त रोगी में विचार एवं भावनाएं दुर्बल एवं कमजोर हो जाते है। यौगिक अभ्यासों के माध्यम से शरीर एवं मन दोनों को सशक्त बनाया जाता है। जिससे अवसादी के अन्दर की क्रियाशीलता बढ़ती है और मांसपेशीय हलचल एवं रक्त संचार सुचारू रूप से होने लगता है। इसके साथ ही मनोदशा पर प्रभाव पड़ने से अधोगामी विचार एवं भाव ऊर्ध्वगामी हो उठते है। जिसके कारण अवसादी में थकान एवं उत्साहहीनता के स्थान पर उत्साह एवं स्फूर्ति स्पष्ट रूप से दिखने लगते है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रकृति के पाँच मूल तत्वों के माध्यम से अवसादी की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि कर देती है। जिसके प्रभाव से रोगी पुनः स्वस्थ

जीवन जीने लगता है। शरीर और मन आहार से ही निर्मित होती है युक्ताहार के माध्यम से शरीर और मन को पोषण मिलने से अवसाद के रोगी को लाभ मिलता है। अवसाद का बहुत बड़ा कारण असंतुलित जीवन शैली है इसलिए उपयुक्त जीवन शैली के माध्यम से उत्तरोतर जीवन के अवरोधों को घटाया जाता है जिसके माध्यम से अवसाद दूर होता है।
अवसाद व्यक्ति की चिन्तन की सामर्थ्य को छीन कर उसे पंगु बना देता है। समाज में क्रमिक रूप से बढ़ती अवसाद रोगियों की संख्या सम्पूर्ण समाज के लिए अभिशाप है। ऐसे में अवसाद के निराकरण में सक्षम वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली वरदान स्वरूप है।

18.2 उददेश्य

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के बाद आप–

- अवसाद के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- अवसाद के लक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अवसाद के कारणों को जान सकेंगे।
- अवसाद की वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन कर सकेंगे।
- अवसाद के समाधान हेतु आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का विवरण कर सकेंगे।

18.3 अवसाद का स्वरूप

अवसाद एक मानसिक रोग है, इसमें मन और भावनाएँ अस्थिर एवं अधोगामी हो जाती है। इस बीमारी में मानसिक एवं भावनात्मक ऊर्जा का क्षरण होने से व्यक्ति की क्रियाशीलता एवं कार्य करने की शक्ति घटती जाती है। जीवन के आरोह–अवरोह से गुजरते हुए दुःख, अशांति, उदासी, निराशा, अरूचि एवं थकान का उत्पन्न होना स्वाभाविक बात है। सामान्य क्रम में जीवन की गुत्थियों के सुलझने के साथ मनुष्य अपनी क्रियाशीलता द्वारा पुनः विकासोन्मुखी पथ पर अग्रसर होता है। अवसादग्रस्त व्यक्ति को कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है कि हताशा एवं निराशा अकारण ही मन को आच्छादित करती जा रही है। जिससे वह लाचार व दुःखी हो रहा है असफलताएं मनुष्य को परेशान एवं निराश करतीं हैं और लगातार की असफलता से निराशा अत्यधिक गहरी एवं सघन होकर अवसाद का स्वरूप ले लेती है। अवसादग्रस्त व्यक्ति में उत्साहहीनता, थकान एवं निराशा प्रत्यक्ष प्रकट होते है जिसके कारण वह न कही स्थिर हो पाता है और न उसे कुछ अच्छा लगता है। उसे सम्पूर्ण जीवन अंधकारमय प्रतीत होता है।
व्यक्ति के जीवन के घटनाक्रम विविध आरोहों– अवरोहों को समेटे रहते है। ये घटनाक्रम मस्तिष्क को प्रभावित करते रहते है। सामान्यता इनके प्रभाव अल्पकालिक होते है और व्यक्ति प्रभाव की समाप्ति पर पुनः अपने कार्यों में लग जाता है परन्तु जब दुःखद घटनाक्रमों का प्रतिकूल प्रभाव लम्बे समय तक मन पर पड़ता है तो व्यक्ति की हताशा एवं निराशा अवसाद में बदल जाती है।
अवसाद को डिप्रेशन भी कहा जाता है, जो पीड़ादायक मानसिक स्थिति से उत्पन्न होता है। अवसादग्रस्त व्यक्ति की उदासी उसे निष्क्रिय बना देती है तथा चिन्तन शक्ति एवं निर्णय लेने की सामर्थ्य को कमजोर कर देती है।

डॉ. मुहम्मद सुलेमान ने अपनी पुस्तक असामान्य मनोविज्ञान में डिप्रेशन को एक ध्रुवीय विकृति कहा है क्योंकि इसके अन्तर्गत रोगी में उत्साह के लक्षण का अभाव हो जाता है, मात्र विषादी लक्षण ही प्रकट होते है।

परिभाषायें–

अवसाद को कई प्रकार से विद्वानों ने परिभाषित किया है जो निम्न है–

डेवीसन तथा नील(1996) के अनुसार ''एकध्रुवीय विषाद का तात्पर्य उस विकृति से है, जिसमें व्यक्ति केवल विषादी घटनाओं से पीड़ित होता है, किसी उत्साह से नहीं। इसे DSM-IV में प्रधान विषाद माना गया है।''

सरासन तथा सरासन(2002) के अनुसार ''एक ध्रुवीय विकृति का तात्पर्य एक प्रभावी विकृति से है जिसमें केवल विषाद घटित होता है और उत्साह की घटनाओं का कोई इतिहास नहीं होता है।''

मेहता, पं० विजयशंकर, (2007) ने आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में अवसाद को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''जो है, उसका सदुपयोग नहीं करना तथा जो नहीं है, उसे पाने की तीव्र आकांक्षा करना'' । इन दोनों ही अवस्थाओं में प्राप्त असफलता से तनाव उत्पन्न होता है। उसके परिणाम में जो उदासी मिलती है वह अवसाद का रूप लेती है।

अवसाद के प्रकार

मनोरोग विज्ञान में अवसाद को मनोदशा विकृति के अन्तर्गत रखा गया है। मनोविश्लेषकों ने अवसाद को मूलतः प्रधान विषाद विकृति और डाइसथाइमिक विकृति इन दो प्रकारों में बाँटा है–

1. प्रधान विषाद विकृति

DSM-IV(1994) के अनुसार एक ध्रुवीय विषाद ही प्रधान विषाद है। प्रधान विषाद से ग्रसित व्यक्ति में गम्भीर अवसाद के लक्षण प्रकट होते है। इसमें रोगी की कार्य शक्ति प्रभावित होती है जिसके कारण दैनिक कार्यों के अन्तर्गत खाने, सोने एवं पढ़ने आदि की शक्ति बाधित होती है। रोगी में थकान, भूख की न्यूनता और नींद में व्यतिक्रम जैसे शारीरिक लक्षणों के साथ–साथ मानसिक अस्थिरता और आत्महत्या के भाव भी उत्पन्न होते है।

2. डाइसथाइमिक विकृति

विषाद में इस प्रकार के अन्तर्गत अवसाद का कोई गम्भीर लक्षण प्रकट नहीं होता है। किन्तु इसके लक्षणों की अवधि एक या दो वर्ष से अधिक समय की होती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं को अस्वस्थ अनुभव करता है। दैनिक कार्यों के प्रति उदासीनता प्रकट करता है तथा कार्यों को सामान्य रूप से सम्पन्न करने में उसे बाधा महसूस होती है।

18.4 अवसाद के लक्षण

पाठकों, आपने अवसाद के स्वरूप को जाना। अब अवसाद ग्रस्त व्यक्ति की पहचान के लिए अवसाद के लक्षणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

कभी–कभी अवसाद स्वतः ठीक हो जाता है, लेकिन जब अवसाद का रोग मन की गहराई में उतर आता हैतो वह रोगी के लिए अनेकानेक जटिल समस्यायें उत्पन्न करता है। अवसादी व्यक्ति में पाये जाने वाले महत्वपूर्ण लक्षण निम्नवत् हैं–

मानसिक अवस्था सम्बन्धी

अवसादया डिप्रेशन स्वास्थ्य के लिए कष्टप्रद है। इससे ग्रसित व्यक्ति अकारण उदास रहता है।ये उदासी पूरे दिन किन्तु प्रातः काल मुख्य रूप से मन पर हावी होती है खिन्नता, निराशा, हतासा एवं कष्ट के मनोभाव उत्पन्न होते है। उसे किसी बात में कोई खुशी की अनूभूति नहीं होती हैअपितु छोटी छोटी घटनाओं से दुःख से अहसास गहता होता रहता है ऐसे व्यक्ति का किसी काम में मन नही लगता और उसकी अभिरूचियाँ दिन–प्रतिदिन घटती जाती है।वह संवेदनहीन एवं निरूत्साही हो जाता है। ऐसे में उसे किसी से मिलने–जुलने में संकोच एवं हिचकिचाहट होती है।

1.एकाग्रता की कमी

अवसादी व्यक्ति का मन अशांत एवं अस्थिर होता हैं, उसमें एकाग्रता की कमी होने से वह किसी कार्य पर ठीक तरीके से केन्द्रित नहीं हो पाता है।ऐसी दशा में उसकी स्मृति या याददाश्त कमजोर पड़ जाती हैं।

2.प्रेरणा की कमी

अवसाद ग्रस्त व्यक्ति में प्रेरणा का स्तर बहुत कम होता है। वे अपने आपको दूसरों से कम समझते है। इनके मन में हीन भावना और कुण्ठा इतनी गहरी होती है कि इन्हें लगता है कि ये अपनी समस्याओं का निराकरण नहीं कर सकते है। परिणाम स्वरूप इनकी प्रेरणा का स्तर कम होता चला जाता है।

3. खुशी का अभाव

अवसाद ग्रस्त व्यक्ति प्रायः अपने आपको अकेला, दुःखी एवं उदास महसूस करता है। इन्हें जीवन से कोई आशा नहीं होती है। प्रकृति में इनको कोई आकर्षण नजर नहीं आता। जीवन में किसी भी परिस्थिति में इन्हें खुशी का अहसास नहीं होता। इनको हंसाना या प्रसन्न करना अत्यन्त दुष्कर है।

4.आत्मविश्वास की कमी

अवसाद ग्रसित व्यक्ति सामान्यतः अपने को अयोग्य एवं असमर्थ मानता है। जीवन में मिली असफलताओं के कारण उसका आत्म विश्वास एवं आत्म सम्मान निरन्तर घटता जाता है। अवसाद का रोगी किसी पर शीघ्र विश्वास नहीं कर पाता, इसके साथ–साथ उसका स्वयं पर से भी भरोसा उठ जाता है।

5.निराशावादी दृष्टिकोण

अवसादी अपने निराशावादी दृष्टिकोण के कारण स्वयं दुःखी एवं निराशा होता रहता है। इनकी निराशा विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है। कुछ रोगी अन्तर्मुखी हो जाते है, वे प्रायः बहुत कम बोलते है और किसी कार्य की पहल करने से घबड़ाते है। कुछ अन्य अवसादग्रस्त व्यक्ति अपनी ही गल्तियाँ ढूंढते और हीन भावना से ग्रसित होते रहते है।जबकिदूसरे बहुत से अवसादी रोगी औरों की गल्तियाँढूढ़ते और चिन्तित होते है। अनेक रोगी निराशावादी चिन्तन में डूबे और गुमसुम रहते है। अपने निराशावादी दृष्टिकोण के कारण विविध कार्यों में इन्हें असफलता हाथ लगती है और साथ ही इनके पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्ध भी बिखर जाते है।

6.नकारात्मक चिन्तन

अवसादी व्यक्ति का नकारात्मक चिन्तन अवसाद को गम्भीर बना देता है।नकारात्मक चिन्तन के कारण वे स्वयं को बुरा, गलत, कमजोर और दीन–हीन मानते हैं। अपनी ही गलतियाँ खोजकर परेशान और निराश होते हैं। अपनी असफलता के लिए स्वयं को जिम्मेदार समझते हैं। कुछ अवसादग्रस्त रोगी चिड़चिड़े हो जाते है और उन्हें गुस्सा आता

है।

7. अपराध बोध

अवसाद के रोगी अपनी वर्तमान अवस्था के लिए स्वयं को दोषी ठहराते हैं। उनके भीतर अपराध की भावना इतनी गहरी हो जाती है, जिसके लिए वे प्रत्येक दिन स्वयं को कोसते रहते हैं।

8.आत्म हत्या के विचार

अवसाद ग्रस्त रोगी में जब आत्महत्या की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है, तो वह विभिन्न सांकेतिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से उसे प्रकट करता है। जिसे दर्शाने वाली कुछ सांकेतिक प्रतिक्रियाए इस प्रकार है– आत्महानि या दूसरों को नुकसान पहुँचाने की बात करना उसके लिए योजनाएं बनाना, छोटी–छोटी बातों पर रोना, परिवार के सदस्यों, मित्रादि से बचना एवं एकान्त प्रिय होना आदि।

अवसाद के शरीरगत लक्षण

अवसाद न केवल रोगी के मानसिक स्वास्थ्य अपितु शारीरिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। शारीरिक स्वास्थ्य के अन्तर्गत दिखने वाले लक्षणों में प्रमुख है–

1.अनियन्त्रित नींद

अवसाद के रोगी में नींद का सामान्य क्रम गड़बड़ा जाता है जिसके कारण रोगी अनिद्रा या फिर हाइपरसोमनिया का शिकार हो जाता है। अनिद्रा ग्रस्त रोगी को नींद न आने की शिकायत हो जाती है यदि नींद आ भी जाती है तो बहुत जल्दी टूट जाती है। जिसके कारण वह सुस्त और निष्क्रिय हो जाता है। हाइपरसोमनियाके अन्तर्गत अत्यधिक एवं अनियन्त्रित रूप से नींद आती है जिससे रोगी निष्क्रिय एवं निश्चेष्ट बना रहता है।

2.अनियन्त्रित भूख

अवसाद के रोगी की भोजन ग्रहण की शक्ति अवरोधित हो जाती है जिसके कारण भूख में अनियमितता प्रकट होती है और रोगी की भूख या तो बढ़ जाती है जिससे वह ज्यादा खाने लगता है या फिर भूख कम होने से भोजन ग्रहण की मात्रा घट जाती है। रोगी के शारीरिक वजन में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। उसके शारीरिक भार में वृद्धि या कमी आ जाती है।

3.यौन के प्रति रूचि का घटना

अवसाद के रोगी में यौन के प्रति रूचि स्पष्ट रूप से घटती जाती है। रोगी में नपुंसकता एवं बांझपन की शिकायत उत्पन्न होनेलगती है।

4.अन्य शारीरिक रोग

अवसाद रोगी का प्रतिरक्षा तन्त्र कमजोर पड़ जाने से रोगों से लड़ने की क्षमता कमजोर पड जाती है। अवसाद से ह्रदय एवं मस्तिष्क को भारी क्षति होती है।ह्दय रोगों के अन्तर्गत हार्ट अटैक और स्ट्रोक की आशंका बढ़ जाती है। ह्रदय रोग और मस्तिष्क रोग से मृत्यु का खतरा उत्पन्न हो जाता है। अवसादी में सिर दर्द की शिकायत उत्पन्न हो जाती हैं।पाचन सम्बन्धी समस्याओं के अन्तर्गत कब्ज, अपच आदि की शिकायत प्रारम्भ हो जाती है,जो मात्र शारीरिक उपचार से कम नहीं होती है।

5. ऊर्जा की कमी

अवसाद का प्रभाव शारीरिक और मानसिक निष्क्रियता के रूप में दृष्टि गोचर होता है। जिसके कारण शरीर ऊर्जाहीन सा हो जाता है और रोगी की कार्य क्षमता घटने लगती है।

मनोगति लक्षण

अवसाद के रोगी में मनोगति के अन्तर्गत मनोगति उत्तेजना तथा मनोगति मन्दन दो प्रकार के लक्षण पाये जाते है।

1. साइकोमोटर एजिटेशन(मनोगति उत्तेजना)–इसके अन्तर्गत रोगी उत्तेजना एवं बैचेनी का अहसास करता है। वह सक्रिय रहता है किन्तु उसकी क्रियायें उद्देश्यपूर्ण नहीं होती है।

2. साइकोमोटर रिटार्डेशन (मनोगति मन्दन)–इसके अन्तर्गत रोगी का मनोगति व्यवहार मन्द पड़ जाता है। रोगी अपने आपको कार्यो के बोझसे लदा हुआ पाता है। मन्दन(रिटार्डेशन) का यह प्रभाव उसकी वाणी पर स्पष्ट दिखाई देता है।

अवसाद के इन लक्षणों से आपको स्पष्ट रूप से परिचय मिलता है कि अवसाद रोगी के मनोसंवेग, शरीर एवं व्यवहार को बुरी तरह प्रभावित करता है। रोगी दुःख की गहराईयों में इस तरह डूब जाता है कि उसे अपनी समस्या का निराकरण असम्भव लगता है।

18.5 अवसाद के कारण

पाठकों, अवसाद के लक्षण को जान लेने के पश्चात अब उसे उत्पन्न करने वाले कारणों को जान लेना आवश्यक है।

मो. सुलेमान(2004) के अनुसार अवसाद के कारणों को कई प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है। इनमें शारीरिक या जैविक कारक, मनोगतिक कारक, अधिगम कारक और संज्ञात्मक कारक अवसाद के विकास में प्रमुख भूमिका निभाते है।

1. **शारीरिक या जैविक कारक**–

   आनुवांशिक एवं न्यूरोट्रांसमीशन अवसाद के विकास को प्रभावित करने वाले दो मुख्य जैविक कारक है–

   i) **आनुवांशिक कारक**–

      माता–पिता एवं पूर्वजों के माध्यम से बच्चों में अवसाद के पहुँचने या जननिक रूप से अवसाद रोग से ग्रसित होने की सम्भावना बहुत अधिक होती है।

   ii) **न्यूरोट्रांसमीशन कारक**–

      अवसाद के विकास में न्यूरोट्रांसमीटर की प्रमुख भूमिका होती है न्यूरोट्रांसमीटर मस्तिष्क में पाये जाने वाले ऐसे रसायन है जो दो न्यूरोन्स के मध्य के सन्धिस्थल पर पाये जाते है और सूचनाओं के संचारण के लिए उपयोगी होते है। सीरोटोनिन एवं नोर एपिनेफ्रीन अवसाद अवसाद के लिए उत्तरदायी दो न्यूरोट्रांसमीटर है, इन्हें संयुक्त रूप में कैटेकोलामीन्स कहते है। इनकी उपस्थिति में मस्तिष्क एवं शरीर के हिस्सों में लयबद्धता स्थापित होती है जबकि इनकी कमी अवसाद को उत्पन्न करती है।

2. **मनोगतिक कारक**–मनोगतिक कारकों में शारीरिक रोग एवं भौगोलिक परिवर्तन आदि अनेक कारणों से उत्पन्न तनाव के द्वारा अवसाद के विकास की सम्भावना बन जाती है। बचपन के दुखद अनुभवों के साथ–साथ दोषपूर्ण पारिवारिक पारस्परिक क्रिया का प्रभाव अवसाद को उत्पन्न करता है।

3. **अधिगम या व्यवहारात्मक कारक**–

अवसाद को विकसित करने वाले अधिगम कारणों में पुरस्कार एवं दण्ड का अनियन्त्रित एवं असंतुलित विधान शामिल है। जब किसी व्यक्ति को कम पुरस्कार या अधिक दण्ड मिलता है या फिर किसी कार्य के लिए पुरस्कार न देकर दण्ड दिया जाता है। ऐसी दशा में उसका आत्मसम्मान कम हो जाता है। जिससे उसके उस व्यवहार के पुनः घटित होने की सम्भावना कम हो जाती है यह घटी हुई क्रियाशीलता अवसाद का प्रमुख लक्षण है।

4. संज्ञानात्मक कारक–

अवसाद का विकास संज्ञानात्मक कारक के अन्तर्गत नकारात्मक संज्ञानात्मक प्रवृत्ति और अर्जित निस्सहायता इन दो तरह से होता है। बेक(1976) के मतानुसार नकारात्मक संज्ञानात्मक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत कमजोरियों पर अधिक ध्यान देने लगता है और किसी विषय या समस्या के सम्बन्ध में नकारात्मक ढ़ग से सोचता है तो अवसाद से घिर जाता है।

अर्जित निस्साहता भी अवसाद को उत्पन्न करती है। लम्बे समय से तनावयुक्त एवं दुखद वातावरण में रहने पर निस्सहायता का भाव जड़ जमा लेता है और तब पलायन या उपेक्षा कर पाना सम्भव नहीं होता। ऐसे निस्सहायता के भाव में अवसाद पनपता है।

18.6 अवसाद की वैकल्पिक चिकित्सा

प्रिय पाठकों अभी तक आपने अवसाद के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। अब आपके लिए अवसाद के समाधान हेतु वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति को समझ लेना आवश्यक है।

स्वस्थ्य रहना मनुष्य का नैसर्गिक अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने पास उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का सम्यक् उपयोग करे तो जीवनपर्यन्त स्वस्थ एवं निरोगी रह सकता है। सृष्टि के अन्याय प्राणी साधारण बुद्धि होते हुए भी निरोगी रहते है। मनुष्य के पास विकसित मन एवं बुद्धि होने के बावजूद बीमारी की गिरफ्त में जकड़ा हुआ पाया जाता है। सम्भवतः उसकी इस करूणादायक स्थिति का कारण मन और बुद्धि की उपेक्षा करना है। आधुनिक मानव ने अनियंत्रित, असंयमित और अप्राकृतिक जीवन के द्वारा स्वयं ही रोगों को आमंत्रित किया है। रोगों की जडें मूलतः शरीर एवं मन में होती हैं, इसलिए उसका सफल उपचार शरीर एवं मन को माध्यम बनाकर ही सम्भव है।

लगातार के अवसाद में रोगी का मन इतना जीर्ण–शीर्ण और कमजोर हो जाता हैकि वह जीवन की आशा ही छोड़ने लगता है। ऐसे में प्रचलित पैथियों की मृगतृष्णा में भटकने के बजाय वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति को अपनाना श्रेयस्कर है। एलोपैथिक दवाओं के प्रतिकूल प्रभाव को देखते हुए वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति ठीक होने के साथ निरापद भी है। आधुनिक रासायनिक दवायें रोग को पूर्ण रूप से नष्ट करने की कोई गारन्टी नहीं देती। साथ ही प्रतिक्रिया रूप में दूसरे रोगों के उत्पन्न होने का कारण बनती है। इस विपरीत परिस्थिति में वैकल्पिक चिकित्सा ही वह कारगर पद्धति है जो मानव जीवन पर छाये स्वास्थ्य संकट का समाधान कर सकती है।

वैज्ञानिको ने भी रोगों के मूल में मन की अहम भूमिका को स्वीकार कर लिया है। चिकित्सा पद्धतियों में मनोनियमन और मानसिक संतुलन पर विशेष बल दिया जा रहा है। आज का मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अतिवाद का सहारा ले रहा है। वह संयम–नियमन का ऐसा कठोर आश्रय लेता है कि वर्तमान परिस्थितियों में उसका निर्वाह हो पाना कठिन जान पड़ता है और इसके विपरीत उपेक्षा–तिरस्कार का जीवनयापन इस हद तक करता है कि

रोग ग्रस्त अवस्था में काल के गर्त में जाता प्रतीत होता है। जीवन यापन की दोनों ही अवस्थायें मानसिक संघर्ष को उत्पन्न करने वाली है। जिससे मानसिक अस्त–व्यस्तता जन्म लेती है जो मन की शक्तियों को बिखेरकर उसे शक्तिहीन बना देती है। शक्तिहीन मन उत्साह–उल्लास से रहित हो अवसाद ग्रस्त हो जाता है। अवसाद के उपचार के लिए मन की शक्ति सम्पन्नता और एकजुटता चाहिये। मानसिक अस्त–व्यस्तता को मिटाने और बिखरी हुई शक्तियों को एकजुट करने के लिए वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति विशेष रूप से कारगर है।जिसमें योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा और उपयुक्त जीवन शैली के माध्यम से अवसाद रोग का समाधान किया जा सकना सम्भव है।

18.6.1 योग द्वारा अवसाद की चिकित्सा–योगेश्वर श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवदगीता में 'योग भवति दुःखहा' की उक्ति देकर रूग्ण एवं दुःख से त्रस्त मानव जाति के लिये आशा की ज्योति जला दी है। निःसंदेह योग में प्रत्येक समस्या के विधिवत् समाधान के संकेत छिपे हुए है। महाभारत युद्ध में अर्जुन के अन्तर्विषाद के समाधान हेतु योग की पृष्ठभूमि तैयार की गयी क्योंकि ये वह समय था जब अर्जुन अपने कर्तव्य से पलायन करने को तत्पर था। ऐसे में गीता के माध्यम से ज्ञान, भक्ति और कर्म के संदेश से योग का समग्र ज्ञान देकर अर्जुन को कर्त्तव्यच्युत होने से बचाया गया।

वर्तमान युग के बाह्य चकाचौंध की एकागीं प्रगति ने मनुष्य की आन्तरिक शक्ति को अवरूद्ध किया है। यही कारण है कि मानसिक बीमारियों में अवसाद एक सामान्य समस्या का रूप लेती जा रही है। अवसाद के उपचार के लिए दवाओं का प्रयोग मात्र क्षणिक आराम देता है। प्रतिक्रिया रूप में विषैली दवाओं के दुष्परिणाम प्रकट होते है और अनेकानेक छोटी–बड़ी बिमारियाँ जन्म लेती है। अवसाद की कष्टदायी अवस्था से मुक्ति दिलाने में यौगिक अभ्यासों की भूमिका असंदिग्ध है। योगाभ्यासों से अवसाद के शारीरिक और मानसिक समस्त कारणों का समाधान होता है इनके द्वारा न केवल अवसाद पर नियंत्रण अपितु उस पर विजय प्राप्त कर सकना भी सम्भव है।

स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता स्वस्थ जीवन का मूल आधार है।अवसाद के उपचार हेतु कई प्रकार की चिकित्सायें काम में लायी जाती है। साइकोथेरेपी के अन्तर्गत कॉग्निटिव बिहेविरल थेरेपी (CBT)का उपयोग होता है। ये चिकित्सा पद्धतियॉ अवसाद के रोगी को पूरी तरह से स्वस्थ करने में समर्थ नहीं है। उपयुक्त आहार और प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने के साथ की गयी योग चिकित्सा इस क्षेत्र में विशेष रूप से कारगर उपाय है।

अवसाद के कारणों में सबसे ज्यादा भयावह अवसादी की काल्पनिक सोच होती है। दुःखों से विहीन जीवन, सुख और आनन्द के गहन अनुभव से भी सर्वथा वंचित ही रहता है इसलिए कष्टों के मिथ्या काल्पनिक चिन्तन से दूर रहना चाहिए। वैसे भी दुःखों को सहजता से स्वीकारने और उनका सामना करने से न केवल उनसे छुटकारा मिलता है अपितु व्यक्तित्व का भी विकास एवं विस्तार होता है। योग के नियमित अभ्यास से चिन्तन, चरित्र और व्यवहार का परिष्कार होता है अर्थात् योग सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पुनर्संघटन करता है। उपयुक्त षट्कर्म और आसनों का अभ्यास शरीरगत और मनोगत दबावों को दूर करके अवसाद से राहत देता है। प्राणायाम, धारणा आदि का अभ्यास सीधा मानसिक या आन्तरिक वेदनाओं को कम करते हैं।

योग द्वारा उत्पन्न सजगता वेदनाओं को कम करने में सहायक है। दुःखों की लम्बी अवधि निराशा उत्पन्न करती है और आत्मविश्वास को घटाती है। जिससे अवसाद जैसा कष्टदायी

रोग अत्यधिक कष्टकर हो जाता है। यौगिक प्रक्रिया आत्मविश्वास को विकसित करके दुःखों एवं निराशा को नियंत्रित करती है।

योग समग्र चिकित्सा शास्त्र है इसमें शारीरिक व्याधियों को दूर करने वाली बहुत सी प्रक्रियायें सम्मलित है परन्तु योग प्रधानतः मनः चिकित्सा शास्त्र है। इसका मूल उद्देश्य मनोविकारों का निराकरण करने के साथ मानसिक शाक्तियों का जागरण और मनोबल का सम्वर्धन करके मानवी प्रगति करना है। मनः शास्त्र के उच्च सिद्धान्तों का समावेश योग की प्रत्येक छोटी बड़ी प्रक्रियाओं में है। यौगिक प्रक्रियाओं में शारीरिक अंग अवयवों को उपयुक्त अभ्यासों में लगाकर आरोग्य लाभ प्राप्त किया जाता है। षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा–बंध इत्यादि व्यायाम स्तर के दिखने वाले अभ्यास भी मनोसंरचना के विभिन्न स्तरों को प्रभावित करते हैं।संघर्षो से विचलित होने पर मानवीय मन का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। जिसका परिणाम दीनता, पागलपन, हिंसा, अपराधबोध, आत्मप्रताड़ना और आत्महत्या जैसी घटनाओं के रूप में देखने को मिलता है। सामान्यता मनुष्य इन विकृतियों के कारण को बाहर खोजता फिरता है। निःसंदेह बाह्य परिस्थितियॉ मानव मन को प्रभावित करती हैं और तदनुरूप वह आचरण भी करता है। सफलता व्यक्ति को उल्लसित करती है और असफलता परेशान करती है। सफलता का मनभावन अहसास और असफलता का कटु अनुभव दोनों ही किसी हद तक अचेतन मन को स्पन्दित और तरंगित करते है जिससे जीवन जीने की कला प्रभावित होती है। मनुष्य को जीवन के उतार–चढ़ाव से अप्रभावित रहने के लिए आत्मबल, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान एवं आत्मज्ञान की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति होने पर मन की विभिन्न पर्तों में समाया अवसाद उत्साह का रूप ले लेगा और यही मानसिक रोगों की सफल चिकित्सा है। गीता इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अवसाद जब योग का आश्रय लेता है तो मन पर छाया समस्त अन्धकार मिट जाता है और ऐसी परिष्कृत बुद्धि जन्म लेती है जहाँ जीवन के सभी क्षेत्र प्रकाश और उल्लास से परिपूर्ण होते है।

मन और शरीर का अन्योन्नाश्रित सम्बन्ध है। शरीर के स्वस्थ रहने पर उसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है। पाचन तंत्र के ठीक रहने पर शरीर के अन्य अवयव भी अपना काम सुचारू रूप से करते है। शरीर के किसी भाग में उत्पन्न अवरोध समस्त शरीर को प्रभावित करता है, जिसका एक लक्षण निराशा के रूप में भी दिखायी देता है।

अवसाद किसी भी कारण से उत्पन्न हो, वह मानसिक सामर्थ्य को क्षीर्ण और कमजोर कर देता है जिससे व्यक्ति सकारात्मक चिन्तन और भावों को उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है। इसलिए अवसाद ग्रस्त रोगी को ऐसी यौगिक प्रक्रियाओं का अभ्यास कराना चाहिये, जिससे उसकी आन्तरिक क्रियाशीलता में वृद्धि हो, पाचन तंत्र ठीक प्रकार कार्य करे, रक्त प्रवाह सुचारू ढंग से हो, मांसपेशियों की गतिशीलता नियमित एवं नियंत्रित हो। इन्ही बातों पर केन्द्रित होते हुए अवसाद के समाधान हेतु उपयुक्त षट्कर्म, आसन, मुद्रा एवं बन्ध, प्राणायाम तथा कुछ अन्य विशेष यौगिक अभ्यास रोगी को कराने चाहिये।

आसन–आसनों के विषय में घेरण्ड संहिता में कहा गया है 'आसनेन भवेद्दृढम्' यानि आसनों से दृढ़ता की प्राप्ति होती है। जो शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य का आधार बनती है। हठयोग में अनेक प्रकार के आसन बताये गये है, किन्तु महर्षि पतंजलि 'योग दर्शन' में दूसरे अध्याय के 46वें सूत्र में स्थिर और सुखपूर्वक बैठने की प्रक्रिया को आसन कहते है।

अर्थात् हठयोग में वर्णित जटिल एवं कठिन आसन जिसके लिए अतिरिक्त अभ्यास की आवश्यकता होती है, राजयोग के अभ्यास के लिए उपयुक्त नही है। यह तो शरीर की ऐसी सरल एवं सहज अवस्था है जिसमें मन देह के बन्धन एवं बाधाओं से स्वतंत्र हो जाता है। इसी कारण तो योग दर्शन(2/48) में आसन सिद्धि का परिणाम बताते हुए कहा गया है कि इससे द्वन्दों से उत्पन्न अशान्ति का अभाव हो जाता है। मूलतः शारीरिक द्वन्द (सर्दी–गर्मी)और मानसिक द्वन्द (सुख–दुख) से उत्पन्न पीड़ा ही अवसाद का रूप लेती है। इस प्रकार द्वन्दों का समाधान करके आसन अवसाद का उपचार करता है।

सामान्यतः अवसाद के रोगी को सबसे पहले उन आसनों का अभ्यास कराना चाहिये जिनसे शारीरिक उष्णता उत्पन्न होती है।सूर्य नमस्कार या प्रज्ञायोग–व्यायाम, ताडासन, तिर्यक् ताडासन, कटि चक्रासन, पवन मुक्तासन भाग–3, शशांक भुजंगासन, हलासन और पश्चिमोत्तानआसनका क्रमबद्ध अभ्यास, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, गोमुखासन, मार्जरी आसन, सिंह गर्जन आसन एवं शवासन अवसाद के उपचार हेतु उपयोगी आसनाभ्यास हैं। इनमें से सूर्य नमस्कार या प्रज्ञायोग का अभ्यास शारीरिक उष्णता, मानसिक क्रियाशीलता एवं जागरूकता को विकसित करता है। ताडासन, तिर्यक ताडासन एवं कटिचक्रासन का अभ्यास शारीरिक विकास करता है और मेरूदण्ड के अवरोधों को दूर करके उसके सही विकास को प्रेरित करता है। मन का अवसाद शरीर पर भी प्रतिकूल असर डालता है। इसमें मांसपेशियॉ और सन्धियॉ अत्यधिक कडे हो जाते है। पवन मुक्तासन भाग–3 के अन्तर्गत आने वाले शक्तिबंध के आसन (चक्की चालासन, नौका संचालन, रज्जूकर्षण, कष्टतक्षण आादि) शरीर को ढीला करके लोचदार बनाते है। ये अभ्यास विशेष रूप से अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के स्त्राव को नियंत्रित करके शरीर और मन की गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित करते है। गत्यात्मक आसनों शशांक भुजंगासन, हलासन और पश्चिमोत्तानासन का क्रमबद्ध अभ्यास मेरूदण्ड और शरीर के अंगों की मालिश करके और शारीरिक और मानसिक क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। अर्द्धमत्स्येन्द्रासन उदरस्थ अंगों पर दबाव के साथ शरीर के पश्च भाग में वृक्क के ऊपर स्थित अधिवृक्क ग्रन्थि के स्त्राव को संयमित करके अवसाद के मनोभाव पर नियंत्रण स्थापित करता है। गोमुखासन वक्ष का विस्तार करके श्वास–प्रश्वास को सुसंतुलित करता है और मन की उदासी दूर करता है। मार्जरी आसन मेरूरज्जू का ठीक से विस्तार करता है और विश्रान्ति की दशा उत्पन्न करता है। सिंह गर्जन आसन व्यक्तित्व में दबी हुई कुण्ठा एवं निराशा को निकालता है और आत्मविश्वास के भाव को उत्पन्न करता है। आत्मविश्वास का विकास ही अवसाद की उचित चिकित्सा है।

इन आसनाभ्यासों के साथ कुछ पलों का शवासन अवसाद के उपचार में स्थिरता ला देता है। मूल रूप से यदि इन आसनों का अभ्यास मनोयोग पूर्वककिया जायेतो रोगी की मनोग्रंथियों को खोलकर अवसाद पीड़ित व्यक्ति में सफल जीवन जीने की उमंग जगा देता है।

प्राणायाम–योगदर्शन में वर्णित अविद्यादि पंचक्लेश अवसाद आदि मनोरोगों का मूलकारण है। इन पंचक्लेशों को क्षीण करने के साधन के रूप में महर्षि पंतजलि ने प्राणायाम के महत्व को बताया है– ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्(2/52) अर्थात् अज्ञान के आवरण के क्षीण होने से ज्ञान का प्रकाश उदित होता है, जिसके प्रकाश में मानसिक रोग नष्ट हो जाते है। आचार्य पं. श्रीराम शर्मा के अनुसार प्राणायाम का प्रमुख उद्देश्य अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में संव्याप्त प्राणतत्व (वाइटल फोर्स) को पर्याप्त मात्रा में आकर्षित करना है, जिसके माध्यम से शरीर और मन के कुछ मुख्य शक्ति संस्थानों को समर्थ बनाया और नियन्त्रित किया जा

सके। प्राणायाम प्राणशक्ति का परिशोधन एवं अभिवर्द्धन करने वाली अनूठी प्रक्रिया है। जिसकी सहायता से आसानी से आरोग्य या स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

प्राणायाम अवसाद के उपचार का सबल एवं कारगर उपाय है। नाड़ीशोधन और भ्रामरी प्राणायाम के साथ–साथ ऊष्ण प्रकृति के प्राणायाम के रूप में सूर्यभेदन और भस्त्रिका विशेष रूप से उपयोगी है।नाड़ी–शोधन प्राणायाम के माध्यम से शरीर एवं नाड़ियों की अशुद्धिया एवं अवरोध दूर होते है और समस्त नाड़ियों में प्राण का प्रवाह सुचारू रूप से होता है। शरीर में उपस्थितकार्बन डाई ऑक्साइड के निष्कासन से रक्त परिशुद्ध होता है, जिससे सम्पूर्ण शरीर को स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। शरीर में पहुँची आक्सीजन द्वारा शरीर को पोषण मिलता है। मस्तिष्क की कोशिकाओं के शुद्ध होने से मस्तिष्कीय–केन्द्रों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। इड़ा और पिगंला नाड़ियों के प्राण–प्रवाह में सन्तुलन स्थापित होता है। प्राण संचार के सभी मार्ग खुल जाते है और मार्ग की रूकावटें दूर हो जाती है। मन शांत एवं स्थिर हो जाता है, जिसका प्रभाव विचारों एवं भावनाओं पर पड़ता है और व्यक्ति की सांवेगिक परिपक्वता बढ़ती है, हताशा या निराशा घटती है। भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास मस्तिष्क को विश्रान्ति देता है। मन के द्वन्द को कम करके क्रोध, भय, कुण्ठा बैचेनी आदि के भावों का शमन करके अवसाद के कारणों की समाप्ति करता है।

अवसाद रोगियों के लिए सूर्यभेदी प्राणायाम सर्वोपयोगी है। इसका अभ्यास पिंगला नाड़ी को क्रियाशील करके प्राण ऊर्जा को जाग्रत करता है। जिससे शरीर की गर्मी और ताप में वृद्धि होती है। यह अनुकम्पी– तंत्रिका तन्त्र और चयापचय की दर को बढ़ा देता है। निराशा ग्रसित या अन्तर्मुखी लोगों की निराशा को दूर करता है और उनकी चेतना को बहिर्मुखी बनाता है, जिससे वे शारीरिक गतिविधियों को अधिक कुशलता के साथ पूरा कर पाते है। मन को अनुभवगम्या एवं जागरूक बनाता है जिससे अवसाद का उपचार हो पाता है।

भस्तिका प्राणायाम फेफड़ों के बन्द वायु कोशो को खोलता एवं समस्त वायुकोशों का परिशोधन करके उन्हें शक्तिशाली बनाता है। जिससे गैसीय विनिमय की क्रिया तीव्र होती है और कोशिकाओं को पर्याप्त ऑक्सीजन की पूर्ति होती है। शरीर के नाड़ी–संस्थान सबल एवं सक्षम बनते है। मस्तिष्क को पर्याप्त रक्त, आक्सीजन एवं पोषक तत्वों की पूर्ति होती है। अवसाद से पीड़ित रोगी में स्फूर्ति एवं संवेदना का संचार करके उन्हें क्रियाशील बनाता है।

षट्कर्म–अवसाद के उपचार में नेति, अग्निसार क्रिया, नौली, शंखप्रक्षालन, कपालभाति और त्राटक का अभ्यास करना उपयोगी है। नेति के नियमित अभ्यास से सिर के अग्रभाग की सफाई होती है। सिर का दर्द व भारीपन दूर होता है। ताजगी की अनुभूति होती है। आँख, नाक एवं कान की सामर्थ्य सकारात्मक रूप में प्रभावित होती है। वास्तव में व्यक्ति की मुख–मुद्रा एवं हाव–भाव आन्तरिक अवस्था या मनोदशा को भी दर्शाते हैं। अवसादी की मुख–मुद्रा नीरस एवं बेजान प्रतीत होती है। जबकि नित्य नेति के अभ्यास से उत्पन्न ताजगी अवसाद को अत्यधिक दूर कर देती है। शंख प्रक्षालन शुद्धिकरण की सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया है। इसमें जल के माध्यम से सम्पूर्ण आहारनाल की सफाई होती है। यह प्रक्रिया देह के मल एवं विकारों को दूर करती है। शरीर को कान्तियुक्त, हल्का एवं ओजस्वी बनाती है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मनोगत स्वास्थ्य के अन्तर्गत अवसाद में भी असाधारण सुधार दिखाई देता है।

अग्निसार की क्रिया अत्यन्त अन्तर्मुखी मानसिक रोगियों के लिए श्रेष्ठतम् अभ्यास है। इसका अभ्यास निराशाग्रसित व्यक्ति को निराशा से बाहर ले आता है और व्यक्ति कई

घण्टों तक सामान्य व्यक्ति की भाँति व्यवहार करने लगता है। यह प्रक्रिया तंत्रिका तंत्र को बहुत तीव्रता के साथ उत्तेजित करती है। किन्तु तंत्रिका तंत्र के पुनः शिथिल पड़ने पर रोगी में फिर से निराशा प्रकट होने लगती है। यदि अवसादी व्यक्ति को नियमित अग्निसार का अभ्यास कराया जाये, तो उसकी समस्या का समाधान स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

नौलि क्रिया से उदरस्थ अंगों की मालिश होती है। जिससे व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्षमता प्रभावित होती है। शरीर के छोटे बड़े अंगों और संस्थानों के साथ–साथ तंत्रिका तंत्र और अंतःस्रावी ग्रन्थियों की क्रियाविधि नियंत्रित एवं सुचारू हो जाती है। जिससे शरीर की मनोगत् दशा में भी सुधार होता है। मन की दुर्बलता दूर होकर उसमें शक्ति का संचार होता है।कपालभाति की क्रिया मस्तिष्क के अग्र भाग को शुद्ध करती है और पाचन शक्ति तथा श्वसन क्रिया में भी सुधार में लाती है। कपालभाति का अभ्यास मस्तिष्क को शक्तिशाली बनाता है। मानसिक थकान और अतिरिक्त नींद की शिकायत वालों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी अभ्यास है। इससे ऐसी आन्तरिक शक्ति उत्पन्न होती है कि मन पर छाया अवसाद दूर हो जाता है और रोगी को जागरूकता का अहसास होता है एवं मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।शरीर के अवरोध व्यक्ति की सफलताओं में बाधा डालते है और निराशा उत्पन्न करते है। वही निराशा एक समयान्तराल के बाद अवसाद का रूप ले लेती है। षट्कर्म का अभ्यास शरीरगत् अशुद्धियों को निकाल बाहर करता है। स्वस्थ शरीर द्वारा आसानी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है, इसके साथ सफलतायें प्राप्त करना भी सरल हो जाता है। षट्कर्म की क्रियाएं प्रत्यक्षतः शारीरिक शुद्धि करती प्रतीत होती है पर मूलतः वे मानसिक शुद्धि का कारण बनती है और अवसाद का निराकरण करती है।

विशेष अभ्यास–हठयौगिक अभ्यासों के साथ यदि सोऽहम् साधना, ऊँ उच्चारण, गायत्री मंत्र जप, महामृत्युंजय मन्त्र जप कराया जाये तो अवसाद के रोगी को स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है।सोऽहम साधना श्वास–प्रश्वास को सुसंतुलित करने के साथ–साथ देह और मन में शक्ति तथा संवेदना का संचार करती है। इसके द्वारा आत्म–जागरण का सुन्दर सुयोग उपलब्ध होने से अवसाद अपने कारण के साथ नष्ट हो जाता है।ईश्वर का दिव्य एवं पवित्र नाम ऊँकार है, जिसके जप से अन्तःकरण पवित्र होता है। पवित्र अन्तःकरण में सुख और शान्ति का स्वतन्त्र संचार होता है। ऊँ उच्चारण अवसादी के मन के कष्टों का शमन करता है। गायत्री मंत्र जप और महामृत्युंजय मंत्र जप से व्यक्ति के भीतर की सुप्त शक्तियों का जागरण होता है। इसके नियमित जप से अवसादी व्यक्ति भी अपने बाहरी जगत और आन्तरिक जगत में सामंजस्य बैठाने की योग्यता अर्जित कर लेता है।

18.6..2 अवसाद की प्राकृतिक चिकित्सा

रोग निरोधक क्षमता प्रकृति की देन है। प्रकृति के साथ सहचर्य स्थापित करने पर दीर्घायु और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। केवल दवाओं के माध्यम से स्वास्थ्य को कायम रख पाना कठिन है। औषधियों के उपयोग से प्रतिरक्षा तंत्र को शक्तिशाली नहीं बनाया जा सकता है। दवाओं की सहायता से प्रतिरक्षा तंत्र को मात्र व्यवस्थित एवं उद्दीपित किया जाता है। आधुनिक युग की विकसित विकिरण एवं केमोथेरेपी भी रोग उत्पन्न करने वाले जिन रोगाणुओं का पता लगाने में असफल सिद्ध हुई है, शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र उन रोगाणुओं को नष्ट करने की भी सामर्थ्य रखता है।

आधुनिकता की अंधी दौड़ में मनुष्य ने जितना पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण किया है उतना ही वह प्रकृति के सहचर्य से वंचित हुआ है। प्रकृति से निकटता मनुष्य को शान्ति,

तृप्ति, संतुष्टि एवं सुरक्षा का भाव देती है, इसके साथ–साथ शरीरगत प्रतिरक्षा प्रणाली भी सशक्त बनती है। इसके विपरीत प्रकृति से बढ़ती दूरी प्रतिरक्षा प्रणाली को दुर्बल करती है और शारीरिक रोगों को आमन्त्रण देने के साथ–साथ मानसिक कष्टों के रूप में निराशा, उदासी और अवसाद को भी जन्म देती है। समाज में अवसाद का दिनोंदिन बढ़ता स्तर प्रमुखता से मनुष्य और प्रकृति के मध्य बढ़ते असन्तुलन का परिणाम है। प्रकृति का सानिध्य चिकित्सा के साथ–साथ सुरक्षा भी देता है। इस दृष्टि से अवसाद के निवारण के लिए प्राकृतिक चिकित्सा सर्वोत्तम एवं उपयोगी है।

प्रकृति के पंचतत्व–मिट्टी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश प्राकृतिक चिकित्सा के आधार तत्व है। अवसाद के रोगी पर प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत मिट्टी की पट्टी, रीढ़ स्नान और सूर्य स्नान का प्रयोग किया जाता है। इसके माध्यम से वह शीघ्र ही सामान्य जीवन जीने लगता है। अवसाद के रोगी की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाशीलता घट जाती है, जिसके कारण उसके शरीर में मलावरोध हो जाता है। मिट्टी में दूषित तत्वों को सोखने की सामर्थ्य होती है। पेट की मिट्टी पट्टी देने पर मलावरोध दूर होता है जिससे आँतों की सफाई होने पर शारीरिक क्रियाशीलता बढ़ती है जिसका प्रभाव उल्लास एवं उमंग के रूप में दिखाई देता है। रीढ़ स्नान द्वारा अवसादी के स्नायु संस्थान में संवेदनाओं एवं सूचनाओं का संचार ठीक से होने लगता है। अवसाद का रोग शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों की सामर्थ्य क्षीण कर देता है। ऐसी दशा में सूर्य चिकित्सा के अन्तर्गत सूर्य स्नान अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। सूर्य स्नान शरीर में रक्त के संचार को सुचारू करता है। जिससे शरीर के प्रत्येक अंग एवं कोशिका को पोषण प्राप्त होता है और शारीरिक एवं मानसिक क्रियाशीलता में तेजी आने से अवसाद का निवारण होता है।

18.6..3 अवसाद के लिए आहार चिकित्सा

आहार से शरीर बनता है और उसी से मन का निर्माण होता है। आहर के अनुरूप ही व्यक्ति का गुण, कर्म एवं स्वभाव विनिर्मित होता है। इसीलिए अन्न के महत्व को बताते हुए उद्दालक ऋषि ने छांदोग्योपनिष्द के छठे उध्याय के पाँचवें खण्ड में कहा है– भोजन के रूप में ग्रहण किया गया अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है। उसका स्थूल अंश मल, माध्यम अंश रस, रक्त, मांस तथा सूक्ष्म अंश मन के रूप में परिणत होता है।

उत्कृष्ट आहार के माध्यम से अंतःकरण, विचारतंत्र एवं भावनाओं को पवित्र, प्रखर एवं सर्वोपम बनाया जाता है। आहार की शुद्धि पर मन की शुद्धता निर्भर करती है। इसीकारण कहा गया है 'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन।' सात्विक भोजन मन को निर्मल बनाता है। तामसिक और राजसिक आहार के प्रयोग से शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य भी गिरता चला जाता है। विकृत आहार मन को तमोगुणी बनाकर अधोगामी कर देता है। जिससे मन में कुविचार आते है एवं उत्तेजनाएँ उठती है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति आवेश एवं चिन्तायुक्त हो जाता है। ऐसी स्थिति लम्बे समय तक बनी रहने पर अवसाद का रूप ले लेती है।आयुर्वेद में औषधि से भी अधिक महत्त्व पथ्य को दिया गया है।

विनापि भेषजं व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्यविहीनोऽयं भेषजानां शतैरपि।।

पथ्य सेवन से व्याधि बिना औषधि के भी नष्ट हो जाती है, परंतु जो पथ्य का सेवन नहीं करता, युक्ताहार–विहार नहीं करता, वह चाहे सैकड़ों औषधियाँ ले ले, पर उसका रोग दूर नहीं होता इसलिए आरोग्य प्राप्ति के लिए संयमित जीवन जीना चाहिए।

कष्टदायी अवसाद रोग की चिकित्सा आहार में उचित परिवर्तन करके भी की जा सकती है। अवसाद से पीड़ित रोगी में सामान्यतः ऊर्जा का स्तर गिरा रहता है। चीनी(शुगर) का प्रयोग करने से ऊर्जा की वृद्धि होती है और अवसाद में लाभ मिलता है। शुगरयुक्त पदार्थों के रूप में फलों के रस और केक के टुकड़े के उपयोग से रोगी को ताजगी महसूस होती है। कार्बोहाइड्रेट का प्रयोग अवसाद के रोग में हितकारी है। ब्रेड कार्बोहाइडेट से भरपूर होती है। जैम के साथ रोगी को ब्रेड का उपयोग करना चाहिए। आयरन युक्त भोजन से शरीर को ऊर्जा मिलती है। जिससे शरीर में आयरन का स्तर ठीक होने के साथ अवसाद भी ठीक होता है। पालक में विटामिन–बी और आयरन की प्रचुरता होती है। पालक का सूप पीने से व्यक्ति अवसाद से उबर सकता है। इन सबके साथ–साथ व्यक्ति को अपने भोजन में नियमित रूप से हरी एवं रेशेदार सब्जियाँ रसदार फल और सलाद का उपयोग करना चाहिए।

18.6.4 अवसादग्रस्त रोगियोंके लिए आवश्यक जीवन शैली

मानव का जीवन लक्ष्युक्त, तथ्यपूर्ण, सप्रयोजन एवं सार्थक होना चाहिए। उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि उन्नत जीवन शैली और श्रेष्ठ कार्यों के अवलम्बन में जीवन की सफलता और सार्थकता निहित है। इस भाव के घनीभूत होने पर मनुष्य को कार्य करने में आनन्द आता है और मानसिक सन्तुलन कायम रहता है। लक्ष्यविहीन व्यक्ति कर्तव्यों के प्रति उदासीन हो जाता है। ऐसी दशा में वह मानसिक संतुलन को बिगाड़ कर अवसाद जैसे मनोरोग का शिकार हो जाता है।चिकित्सा का वास्तविक लक्ष्य शारीरिक, स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कराना भी है। शारीरिक और मानसिक पक्ष स्वास्थ्य के दो मूलभूत घटक है, जिनके सम्मुन्नत एवं सुदृढ़ होने पर सहजता के साथ सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विकसित एवं सम्मुन्नत होने पर व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य में स्थायित्व एवं स्थिरता आ जाती है। मानसिक स्वास्थ्य की अवसाद मुक्त अवस्था को प्राप्त करने के लिए उच्च, पवित्र एवं संयमित जीवन शैली अपनाने पर बल दिया जाता है।

ऐसी जीवन शैली में प्रतिदिन की क्रियाऐं नियमित एवं नियन्त्रित होनी चाहिए। इसके लिए निर्धारित समय पर स्वास्थ्य के अनुकूल भोजन ग्रहण करना चाहिए। अवसादी को अपनी नींद नियमित रखनी चाहिए। कार्य का निर्धारण अपनी सामर्थ्य के अनुसार करना चाहिए। तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से दूर रहना चाहिए। परिवार के लोगों एवं सगे–सम्बन्धियों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध सहयोगपूर्ण होना चाहिए। अपने कार्यों को तल्लीनता, स्फूर्ति एवं आन्नद के साथ करना चाहिए। अवसाद का कारण कुछ भी हो किन्तु यह एक ऐसा मानसिक रोग है, जिसमें व्यक्ति का आत्मविश्वास कमजोर पड़ता चला जाता है। अवसाद व्यक्ति को नकारात्मकता से भर देता है। ऐसे में कष्ट या दुःख देने वाली परिस्थियों से मन को हटा लेना चाहिए। ऐसे सकारात्मक, वास्तविक या काल्पनिक विचारों का आश्रय लेना चाहिये जो मन को सुकून एवं आनन्द देकर मानसिक शक्तियों को सुदृढ़ करने वाले हो।

इस प्रकार आत्मविश्वास को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। आत्मविश्वास की शक्ति से जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान सम्भव है। इसके लिए अपनी भावनाओं एवं विचारों को पोषण देने के लिए स्वाध्यायऔर प्रार्थना का सहारा लिया जाना चाहिए। ऐसा होने पर अवसादी की स्थिति में सुधरती है और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न– सही/गलत

13. लगातार मिलने वाली असफलता से उत्पन्न निराशा अत्यधिक गहरी होकर अवसाद का रूप धारण करती है।
14. अवसाद ग्रस्त व्यक्तियों में आत्महत्या के विचार उत्पन्न होते है।
15. अवसाद के रोगी की भूख नियन्त्रित रहती है।
16. अवसाद का प्रभाव शारीरिक और मानसिक निष्क्रियता के रूप में प्रकट होता है।
17. अग्निसार क्रिया अवसादग्रस्त रोगियों के लिए श्रेष्ठतम अभ्यास है।
18. सूर्यभेदी प्राणायाम का अभ्यास अवसाद ग्रसित अन्तर्मुखी लोगों पर दुष्प्रभाव डालता है।
19. कार्बोहाइड्रेट युक्त पदार्थों का प्रयोग अवसाद के रोगी को नहीं करना चाहिए।

18.7 सारांश

समाज में बढ़ते अवसाद का सबसे प्रमुख कारण अनियंत्रित नकारात्मक विचार है। ये नकारात्मक विचार व्यक्ति की मानसिक प्रसन्नता, उत्साह एवं उल्लास को छीन लेते है। फलस्वरूप व्यक्ति दुःखी एवं निरूत्साही रहने लगता है। ये वृत्तियाँ ही व्यक्तित्व में जड़ जमा कर उसे अवसाद की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देती है। अवसादग्रस्त व्यक्ति का स्वयं पर अविश्वास होता है इसके साथ–साथ उसे भगवान पर भी विश्वास नहीं होता है। प्रकृति से भी उसकी स्वाभाविक दूरी होती है, ऐसी दशा में प्रकृति के नियमों का सहजता से पालन करना उसके लिए कठिन होता है और प्रकृति के संरक्षण से भी वंचित रहता है। शरीर और मन पर दुष्प्रभाव डालने वाले भोज्य पदार्थ उसे स्वभाव से पसन्द होते है। जीवन शैली के सुचारू न होने का दुष्परिणाम उसके मन पर निरन्तर पड़ता रहता है। ये कुछ ऐसे प्राथमिक कारक है, जिसका व्यक्ति के जीवन से सीधा सम्बन्ध होता है इनके ठीक न होने से व्यक्ति पर अवसाद की मनोव्यथा का हावी होना स्वाभाविक ही है। अवसाद को पोषण देने वाले इन कारकों को ठीक करने के लिए योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं अवसाद निवारण के लिए उपयोगी जीवन शैली का चयन सशक्त आधार है। योग चिकित्सा अवसादी के शरीर और मन में पुर्नजीवन का संचार करती है जिसके द्वारा उसे स्वयं पर विश्वास हो जाता है। स्वयं पर विश्वास के साथ–साथ उसे ईश्वर पर भी विश्वास हो जाता है।ईश्वर विश्वास अवसादी को मानसिक सुरक्षा प्रदान करता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचतत्वों के माध्यम से चिकित्सा दी जाती है समस्त प्रकृति इन्हीं पंचतत्वों से निर्मित हुई है। प्रकृति के इन्हीं पंचतत्वों से जब अवसादी को चिकित्सा दी जाती है तो अवसादी का प्रकृति से सहज जुड़ाव स्थापित होता है और वह प्रकृति के सहज संरक्षण को अनुभव करने लगता है। आहार चिकित्सा के माध्यम से अवसादी को ऐसा सार युक्त भोजन दिया जाता है जिसका प्रभाव लम्बे समय तक उसके शरीर और मन पर बना रहता है। आहार के द्वारा रोगी अपने भीतर चैतन्यता, उत्साह एवं स्फूर्ति के लक्षण को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करता है। उपयुक्त जीवन शैली के चयन द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हाने वाली नानाविध भूलों को सुधार लिया जाता है और कमियों को दूर कर लिया जाता है। जिसके प्रभाव से अवसाद की मनोव्यथा चिकित्सीय रूप में उत्तरोत्तर दूर होती जाती है। इस प्रकार योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का सम्बल पाकर अवसाद की मनोव्यथा का सम्पूर्णता से निवारण किया जा सकता है।

18.8 शब्दावली

संज्ञानात्मक– विचार संस्थान से सम्बद्ध
हाइपरसोमनिया– अत्यधिक एवं अनियन्त्रित रूप से नींद का आना।

18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सही 2. सही 3. गलत 4. सही 5. सही 6. गलत 7. गलत

18.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.सुलेमान, डा.मुहम्मद और तौवाब, डा. मुहम्मद(2004) *असमान्य मनोविज्ञान*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

2. मेहता, पं. विजयशंकर(2007) *लाइफ मैनेजमेंट– कृपा करहुँ गुरूदेव की नाईं*, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृ.–152

3.ब्रह्मवर्चस(1998) *जीवेम शरदः शतम्*, वाड्.मय 41, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।

4.ब्रह्मवर्चस(1998) *व्यक्तित्व विकास हेतु उच्च स्तरीय साधनाएँ*, वाड्.मय 20, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।

5.आचार्य, श्रीराम शर्मा(2010) *मनोविकास सर्वनाशी महाशत्रु*, विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

6.पण्डया, डा. प्रणव(जुलाई, 2010) अखण्ड ज्योति, सम्भव है अवसाद से जूझ पाना, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 25–27।

7.शर्मा, भगवती देवी(दिसम्बर, 1993) अखण्ड ज्योति, उदासीः गले की फॉसी, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 31।

गोयन्दका, हरिकृष्णदास(2005) *पातंजल योग दर्शन*(2/46,48,52), गीताप्रेस गोरखपुर।

8.पण्डया, डा. प्रणव(2011) अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान विज्ञान भाग–2, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, हरिद्वार, पृ. 172, 180

9.पण्डया, डा. प्रणव(मार्च, 2009) अखण्ड ज्योति, महाव्याधि अवसाद का प्राणायाम द्वारा उपचारः एक अध्ययन, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 35–38।

10.पण्डया, डा. प्रणव(अप्रैल, 2008) अखण्ड ज्योति, आप सोचें या न सोचें, मस्तिष्क सोचता रहता है, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 39।

11.सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द(2004) *घेरण्ड संहिता*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, बिहार।

12.आचार्य, श्रीराम शर्मा(2007) *गायत्री महाविज्ञान*, गायत्री तपोभूमि मथुरा।

13.छान्दोग्योनिषद् 6/5/1।

14.चैतन्य, द्वारका प्रसाद(दिसम्बर, 2011) युग निर्माण योजना, अन्न से बनता है मन, युग निर्माण योजना ट्रस्ट मथुरा, पृ. 11।

18.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अवसाद के स्वरूप से आप क्या समझते है?

प्रश्न 2. अवसाद के लक्षणों एवं कारणों को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3. अवसाद की वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन दीजिए।

प्रश्न 4. अवसाद के समाधान हेतु आहार चिकित्सा एवं उपयुक्त जीवन शैली का विवरण दीजिए।